माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बालेश्वर प्रसाद (सभी में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

Cr. M.P. Nos. 1457, 1459 with 1460 of 2006. Decided on 31st July, 2010.

खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954—धाराएँ 16 (1)(a) (i) एवं 19(2)—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अपमिश्रित नमक का विक्रय–संज्ञान–प्रारंभिक बोझ विक्रेता पर है और अगर वह प्रमाणित करता है कि उसने विहित फॉर्म में लिखित वारंटी के साथ खाद्य सामग्रियों को खरीदा था, तो उसे कोई अपराध कारित करने वाला समझा नहीं जायेगा–याची के विक्रेता होने के कारण उसे प्रमाणित करना है कि उसने वास्तव में विनिर्माता से नमक के जब्त नमूनों को खरीदा था और इसे उसी हालत में रखा था–यह तथ्य कि याची अभिकथित अपमिश्रित नमक बेचते हुए पाया गया था, स्वयं में विक्रेता के विरुद्ध अधिनियम के अधीन अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला इंगित करने के लिए पर्याप्त था–संज्ञान का आक्षेपित आदेश त्रुटि पर नहीं हो सकता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Kailash Pd. Deo. (In all) For the Petitioner; M/s M. B. Lal, Vinod Singh (in all) For the State; Mr. Deepak Kr. Prasad (in all) For the O.P. No. 2.

आदेश

समस्त तीनों आवेदनों, जो विनिश्चय के लिए समरुप प्रश्न अंतर्ग्रस्त करते हैं, में याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन वर्तमान दांडिक विविध याचिकाएँ याची द्वारा खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (1)(a)(i) के अधीन अपराध के लिए सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, देवघर द्वारा पारित संज्ञान के आदेश के अभिखंडन के लिए और दंडाधिकारी द्वारा पारित संज्ञान के आक्षेपित आदेशों के विरुद्ध भी प्रार्थना करते हुए दाखिल की गयी है।

3. इन मामलों के निपटारे के लिए प्रासंगिक तथ्य निम्नलिखित हैं:–

इन तीनों दांडिक विधिक याचिकाओं में याची नमक सहित अनेक खाद्य वस्तुओं का विक्रेता है।

परिवादी–खाद्य निरीक्षक ने याची की खुदरा दुकान का दौरा किया और याची को विभिन्न ब्रांड के नमक को बेचता पाया। खाद्य निरीक्षक ने नमक के विभिन्न ब्रांड के नमूनों को खरीदा और प्रत्येक नमूना पर याची के हस्ताक्षरों को प्राप्त करने के बाद उसने नमूनों के परीक्षण के लिए इनको कॉमबाइन्ड फूड एन्ड ड्रग लेबोरेटरी, अगमकुआँ, पटना भेजा। लेबोरेटरी द्वारा प्रस्तुत नमूना के परीक्षा रपटों ने संपुष्ट किया कि नमक के नमूने खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली, 1955 के परिशिष्ट–B के नियम A.15.01 सह–पठित नियम 5 के अधीन विहित स्तर के साथ सुसंगत नहीं है। अतः लेबोरेटरी रिपोर्ट के आधार पर परिवादी ने निष्कर्षित किया था कि याची को अपमिश्रित नमक बेचता हुआ पाया गया था।

याची ने अभिवचन किया था कि नमक के विभिन्न ब्रांडों, जिनका अभिग्रहीत नमूना तैयार किया गया था, को उसके द्वारा उत्पादित अथवा निर्मित नहीं किया जाता था। बल्कि नमक के विभिन्न ब्रांडों को विभिन्न निर्माताओं द्वारा उत्पादित किया जाता है और उसने सदाशयता से सद्भावपूर्वक विश्वास किया था कि नमक, जिसकी आपूर्त्ति उसे निर्माताओं द्वारा की जाती थी, खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली के अधीन अधिकथित विहित स्तर के साथ सुसंगत है।

अपने दावे के समर्थन में, उसने तात्पर्यित निर्माताओं द्वारा जारी खरीद का बिल/वाउचर भी प्रस्तुत किया था।

उक्त प्रकटीकरण के आधार पर, खाद्य निरीक्षक ने स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकारी से सम्यक् मंजूरी प्राप्त करने के बाद खाद्य अपमिश्रण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (1) (a) (i) के अधीन अपराध के लिए याची और याची द्वारा नामित विनिर्माताओं के अभियोजन के लिए पृथक अभियोजन रिपोर्टों को प्रस्तुत किया था।

अभियोजन रिपोर्टों के आधार पर, विद्वान अवर न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया और मामलों में से प्रत्येक में विचारण का सामना करने के लिए याची को सम्मन जारी करने का निर्देश दिया।

संज्ञान के आदेशों से व्यथित होकर, याची ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष पृथक दांडिक पुनरीक्षण आवेदनों को दाखिल किया जिन्हें खारिज कर दिया गया था।

4. यद्यपि याची ने अनेक आधारों पर दोनों अवर न्यायालयों के आक्षेपित आदेशों का विरोध किया है, याची के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्यत: इस आधार पर जोर दिया है कि चूँकि स्वीकृत रूप से याची नमक का निर्माता नहीं है जिसके नमूनों को उसके कब्जे से संग्रहित किया गया है, अत: वह खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 19 (2) के अधीन सुरक्षित है और अभिकथित अपराध के लिए उसका अभियोजन नहीं किया जा सकता है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता तर्क करेंगे कि तथ्य, जैसा अभियोजन रिपोर्ट में कथित किए गए हैं, पूर्ण रूप से प्रदर्शित करेंगे कि याची को अपमिश्रित नमक बेचते हुए पाया गया था। इन परिस्थितियों के अधीन, पी॰ एफ॰ ए॰ अधिनियम के प्रावधानों के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध आरंभ की गयी कार्यवाही को अवैध नहीं कहा जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची का अभियोजन संपूर्ण रूप से इस तथ्य पर आधारित है कि उसे अपमिश्रित नमक बेचता पाया गया था और चूँकि केवल याची के बयानों के आधार पर निर्माता को भी अभियुक्त के रूप में नामित किया गया है, यह स्वयं में उपदर्शित नहीं करेगा कि याची के बचाव का दावा स्वीकार कर लिया गया है।

6. परस्पर विरोधी निवेदनों के समुचित अधिमूल्यन के लिए पी॰ एफ॰ ए॰ अधिनियम, 1954 की धारा 19 (2) के प्रावधानों को ध्यान में लिया जा सकता है:–

"19[1][(2) किसी विक्रेता को किसी अपमिश्रित अथवा मिसब्रांडेड खाद्य वस्तुओं के विक्रय से संबंधित किसी अपराध को कारित करता नहीं माना जाएगा यदि वह सिद्ध करता है

(a) कि उसने खाद्य वस्तु–

(i) ऐसे मामले में, जहाँ उसके विक्रय के लिए अनुज्ञप्ति विहित है, सम्यक् रूप से लाइसेन्सधारी निर्माता, वितरक अथवा डीलर से;

(ii) किसी अन्य मामले में विहित फॉर्म में लिखित वारंटी के साथ निर्माता, वितरक अथवा डीलर से खरीदी थी; और

(b) कि खाद्य वस्तु, उसके कब्जा में रहते हुए समुचित रूप से भंडारित किया गया था और उसने उसे उसी अवस्था में बेचा था जिसमें उसने इसे खरीदा था।]''

7. प्रावधान के कोरे पठन से, यह स्पष्ट होगा कि आरंभिक जवाबदेही विक्रेता पर है और यदि वह सिद्ध करता है कि उसने विहित फॉर्म में लिखित वारंटी के साथ खाद्य वस्तुओं को खरीदा था, उसे अपराध करता नहीं माना जाएगा। यह जवाबदेही यह सिद्ध करके निर्वहित की जाती है कि विक्रेता ने सम्यक् रूप से लाइसेन्सधारी निर्माता, वितरक अथवा डीलर से विहित फॉर्म में लिखित वारंटी के साथ खाद्य वस्तुओं को खरीदा था।

प्रावधान यह भी अधिकथित करता है कि यह सिद्ध करने कि उसने विहित फॉर्म में लिखित वारंटी के साथ सम्यक रूप से लाइसेन्सधारी निर्माता, वितरक अथवा डीलर से खाद्य वस्तुओं को खरीदा था, के अतिरिक्त यह सिद्ध करने की जवाबदेही भी विक्रेता पर है कि खाद्य वस्तु, जब यह उसके कब्जा में थी, समुचित रूप से भंडारित की गयी थी और उसने इसे उसी अवस्था में बेचा था जिसमें उसने इसे खरीदा था।

8. प्रमाण की आवश्यकता, जैसा अधिनियम की धारा 19 (2) में परिकल्पित किया गया है, अंतर्हित करता है कि ऐसा प्रमाण केवल विचारण के क्रम में साक्ष्य में लाया जा सकता है, न कि अपराध का संज्ञान लेने के चरण पर। यह तथ्य कि याची को अभिकथित अपमिश्रित नमक बेचता पाया गया था, स्वयं में विक्रेता के विरुद्ध अधिनियम के अधीन अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला उपदर्शित करने के लिए पर्याप्त है और मामले के उस दृष्टिकोण में संज्ञान के आक्षेपित आदेश को दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

9. याची के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों से, यह प्रतीत होता है कि जोर इस आधार पर याची द्वारा उठाए गए बचाव को सिद्ध करने की आवश्यकता के अभिमोचन पर है कि ऐसे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह तथ्य कि याची ने नमक निर्माता से खरीदा था, को अभियोजन द्वारा स्वीकार किया गया है।

विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क मान्य नहीं है।

यह तथ्य कि याची ने विक्रेता होने के नाते, यह प्रतिवाद किया है कि जो उसे अधिनियम की धारा 19 (2) के अधीन उपलब्ध हो सकता है, इसे और भी आवश्यक बनाता है कि अभियोजन निर्माता और वितरक को भी इसी विचारण से जोड़े। ऐसा संयुक्त विचारण अधिनियम की धारा 20 के अधीन परिकल्पित किया गया है। अत:, यह तथ्य मात्र कि निर्माता को भी सह-अभियुक्त बनाया गया है, स्वयं में यह उपदर्शित नहीं करता है कि अभियोजन ने पूरी तरह प्रतिवाद स्वीकार कर लिया है जो बचाव अधिनियम की धारा 19(2) के प्रावधानों के अधीन याची को उपलब्ध होगा। याची को सिद्ध करना है कि उसने नमक के अभिग्रहित नमूनों को वास्तविक रूप से निर्माता से खरीदा था और उसने खाद्य वस्तु उसी अवस्था में भंडारित किया था जिसमें उसके द्वारा इसे खरीदा गया था। निर्माता, जो वारंटी देने का दावा करता है, सुनवाई में भाग लेने का और साक्ष्य देने का हकदार होगा। अत: खाद्य वस्तु पर अधिनियम की धारा 19 की उपधारा 2 का लाभ याची केवल तभी प्राप्त कर सकता है यदि वह सिद्ध करता है कि उसने नमक को मूल अवस्था में बेचा था जिसमें उसने इसे निर्माता से खरीदा था। अत: इस धारा में निर्दिष्ट संतुष्टि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर ही न्यायालय द्वारा प्राप्त की जा सकती है और ऐसी संतुष्टि प्राप्त करने के लिए सामग्री की मात्रा एवं डाटा की आवश्यकता अथवा पर्याप्तता पर कोई अन्य नियम अथवा मार्गदर्शक सिद्धान्त अधिकथित नहीं किया जा सकता है।

10. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों और ऊपर की गयी चर्चा के आलोक में, मैं दंडाधिकारी द्वारा पारित संज्ञान के आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधता अथवा अनौचित्यता नहीं पाता हूँ। इन सारे दांडिक विविध आवेदनों [दां॰ वि॰ याचिका सं॰ 1457, 1459 और 1460 वर्ष 2006] को तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

मो॰ आफताब अंसारी

बनाम

झारखण्ड राज्य

Cr. Revision No. 121 of 2010. Decided on 3rd November, 2010.

किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं सरक्षण) अधिनियम, 2000–धारा 7A–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन अभियोजन–किशोरपन के अभिवाक् को खारिज किया गया–मेडिकल बोर्ड द्वारा निर्धारित आयु के अनुसार, याची प्राथमिकी दर्ज होने की तिथि पर 18 वर्ष से कम उम्र का था–आक्षेपित आदेश अपास्त–अवर न्यायालय को मामले को किशोर न्याय बोर्ड के पास किशोर अधिनियम के अनुसार विचारित करने हेतु प्रेषित करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 8)

अधिवक्तागण.–M/s P. P. N. Roy, Tarun Kumar Sinha, For the Petitioners; Mr. T. Kabiraj, For the State; Mrs. Rita Kumari, For the Informant.

आदेश

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–बिर्नी पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 68 वर्ष 2008 एवं जी॰ आर॰ सं॰ 1411 वर्ष 2008 से उद्भूत विचारण सं॰ 579 वर्ष 2010 के सम्बन्ध में न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 15.1.2010 के आदेश के विरुद्ध याची के किशोर होने के लिए घोषणा करने के लिए दाखिल आवेदन को अस्वीकार कर दिया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि सूचक ताइबुन खातुन ने 29.6.2008 को एक लिखित रिपोर्ट दाखिल किया है। उसमें यह कथन करते हुए कि 5-6 महीने पहले अगहन के महीने में जब वह अपने घर में अकेली थी, क्योंकि उसकी माता खेतों में काम करने के लिए गई हुई थी उसके पिता मंगलोर में थे, तभी अचानक मो॰ आफताब अंसारी (वर्तमान याची) जो लगभग 20 वर्षों का है, उसके पास आया और दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया और उसके साथ बलात्संग कारित किया। यह भी अभिकथन किया गया है कि अभियुक्त याची ने किसी भी व्यक्ति से घटना को न बताने की धमकी दी थी। परन्तु तीन महीनों के बाद जब उसे जानकारी हुई कि वह गर्भवती थी, तब उसने अपनी माता को घटना के बारे में सूचित किया। अंतत:, उसने बिर्नी पुलिस थाना में आरक्षी अधीक्षक के समक्ष लिखित रिपोर्ट दाखिल किया।

3. उक्त रिपोर्ट के आधार पर, याची अर्थात् मो॰ आफताब अंसारी के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन एक मामला दर्ज किया गया है।

4. याची ने 24 जुलाई, 2009 को स्वेच्छा से मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, गिरिडीह के न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण किया और स्वयं को किशोर होने का दावा करते हुए कई शैक्षणिक प्रमाण पत्रों के साथ एक आवेदन दाखिल किया, क्योंकि उसके प्रमाण पत्रों के अनुसार उसकी जन्म तिथि 15.5.1993

है। अवर न्यायालय ने याची द्वारा दाखिल दस्तावेजों पर अविश्वास किया है और याची के मामले को उसके उम्र के निर्धारण के लिए मेडिकल बोर्ड को निर्दिष्ट किया। याची की जाँच 16.9.2009 को करने के उपरांत मेडिकल बोर्ड ने उसकी आयु 18 से 19 वर्ष निर्धारित की है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अवर न्यायालय ने यहाँ तक कि मेडिकल बोर्ड द्वारा निर्धारित उम्र के अनुसार भी उसकी आयु उचित रूप से गणना किए बिना उसे एक किशोर घोषित करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि स्वीकृत रूप से, मेडिकल बोर्ड ने उसकी आयु 16.9.2009 को 18 से 19 वर्ष निर्धारित की है। चूँकि प्राथमिकी 29.6.2008 को दर्ज किया गया था, जिसमें अभिकथित अपराध की तिथि प्राथमिकी दर्ज किए जाने की तिथि से 5 से 6 महीना पहले की थी, इसलिए, याची प्राथमिकी दर्ज किए जाने की तिथि पर भी निश्चित रूप से 18 वर्ष से कम उम्र का था।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क किया है कि विचारण न्यायालय ने याची की आयु अपने स्व-मूल्यांकन द्वारा निर्धारित की है। जो आत्यंतिक रूप से अविधिमान्य एवं मनमाना है।

7. सूचक की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि विचारण न्यायालय ने याची को देखने के उपरांत अपना निष्कर्ष दिया है कि याची एक वयस्क है। उन्होंने आगे इंगित किया कि याची ने एक बच्चे को जन्म दिया है। इसलिए, उसे एक किशोर नहीं माना जा सकता है। इसलिए, अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है तथा यह पुनरीक्षण आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

8. आक्षेपित आदेश में, मैं पाता हूँ कि मेडिकल बोर्ड ने 16.9.2009 को याची की आयु 18 से 19 वर्ष निर्धारित की है। स्वीकार्यत:, प्राथमिकी 29.6.2008 को दर्ज की गई थी, इसलिए मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार भी अगर याची की आयु 16.9.2009 को 18 वर्ष मानी जाती है तो वह प्राथमिकी दर्ज किए जाने की तिथि 29.6.2008 को निश्चित रूप से 18 वर्ष से कम का था। याची द्वारा दाखिल दस्तावेजों की यथार्थता पर विचार किए बिना एवं याची की ओर से परीक्षित गवाहों के साक्ष्य के गुणावगुणों पर विचार किए बगैर, मेडिकल रिपोर्ट से, यह कहा जा सकता है कि अभिकथित घटना की तिथि पर एवं यहाँ तक कि याची के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज किए जाने की तिथि पर याची किशोर था। इसलिए, मैं विचारण सं॰ 579 वर्ष 2010 में न्यायिक दण्डाधिकारी, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 15.1.2010 के आक्षेपित आदेश को आपास्त करती हूँ और पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात करती हूँ और अवर न्यायालय को यह निर्देश भी देती हूँ कि वह इस मामले को किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम के अनुसार आगे की कार्यवाही करने के लिए किशोर न्याय बोर्ड को भेजें।

9. कार्यालय को यह निर्देश दिया जाता है कि वह सम्बद्ध न्यायालय को तत्काल सम्पूर्ण अवर न्यायालय के अभिलेखों को वापस भेजें।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

जय कुमार एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1021 of 2006. Decided on 13th August, 2010.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 420, 467, 468, 471 एवं 34—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं कूटरचना–संज्ञान–याचीगण एक फर्म के भागीदार हैं जिन्होंने बैंक से कैश क्रेडिट सुविधा का लाभ प्राप्त किया था और तत्पश्चात् ऋण खाता चलाने में अनियमिततायें कारित की थी–बैंक को ऋण राशि का पुनर्भुगतान किए बिना याचीगण ने स्टॉक विक्रय आगमों को कपटपूर्वक दुर्विनियोजित कर लिया तथा स्टॉक को कपटपूर्वक हटा लिया–विवाद एक वाणिज्यिक संव्यवहार एवं संविदा के भंग से सम्बन्धित–परिवादी एक गलत विश्वास कर रहे हैं कि चूँकि स्टॉक का आडमान बैंक के पक्ष में किया गया है, अतः बैंक को स्टॉक का मालिक समझा जाना है और ऐसे स्वामित्व के परिणामस्वरूप, स्टॉक को इसपर आधिपत्य देते हुए याचीगण को न्यस्त किया गया था–आडमान मात्र संपत्ति पर एक प्रभार तथा देनदार तथा आडमानकर्त्ता की ओर से व्यतिक्रम की दशा में कब्जा लेने के लिए लेनदार के पक्ष में अधिकार सृजित करता है–ऐसा कोई भी अपराध निर्मित नहीं हुआ है जिसके लिए अवर न्यायालय ने संज्ञान लिया है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित। (पैराएँ 7 से 13)

निर्णयज विधि.–2006(3) SCC (Cri) 188—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Sanjeev Thakur, R. P. Sinha, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. S. J. Roy, For the O.P. No.-2.

आदेश

याचीगण के अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 6.5.2005 के संज्ञान के आदेश, जिसके द्वारा याचीगण के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406, 420, 467, 468, 471 और 34 के अधीन अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया था और उन्हें मामले में उपस्थित होने और विचारण का सामना करने के लिए कहा गया था, सहित बोकारो सेक्टर-IV पी॰एस॰ केस सं॰ 82/04 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 983/04 के तहत अवर न्यायालय के समक्ष लंबित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए वर्तमान आवेदन को दाखिल किया है।

यह संप्रेक्षित किया जा सकता है कि इस मामले में पारित अंतरिम आदेश द्वारा अवर न्यायालय के समक्ष याचीगण के विरूद्ध लंबित मामले में आगे की कार्यवाही स्थगित कर दी गयी है।

3. इस मामले के निपटारे के लिए मामले के प्रासंगिक तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित है:–

सूचक, पंजाब नेशनल बैंक के प्रबंधक द्वारा दाखिल लिखित रिपोर्ट के आधार पर मामला दर्ज किया गया था। प्राथमिकी में अभिकथन ये हैं कि याची ने एक फर्म अर्थात मेसर्स जय स्टील का भागीदार होने के नाते दिनांक 27.9.2001 को सूचक बैंक से 15 लाख रुपया कर्ज प्राप्त किया था और कर्ज राशि की सीमा तक नगद उधार सुविधा का लाभ लिया था और प्रतिभूति के तौर पर अपने चालू स्टॉक बैंक के साथ आडमान किया था और साथ-साथ गारन्टर अर्थात श्रीमती जलेश्वरी देवी की गारंटी भी दी थी।

कर्ज के निबंधनों और आडमान के निबंधनों के मुताबिक, लेनदारों से स्टॉक के विक्रय आगम को कर्ज खाता में तत्परता से जमा करने की अपेक्षा की जाती थी। तत्पश्चात, कर्ज खाता सुगमता और नियमितता से प्रवर्तित रहा था किन्तु जुलाई, 2003 से विक्रय आगम जमा करने में लेनदार अनियमित

थे। बार-बार पत्राचार किए जाने और चेतावनी दिए जाने के बावजूद ऐसी अनियमितता जारी रही और दिनांक 31.1.2004 को याचीगण के कर्ज खाता में बकाया राशि 16,93,478/- रुपया थी।

यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 16.1.2004 को बैंक अधिकारियों ने याचीगण के फर्म के गोदाम और कार्यालय परिसर का दौरा किया और निरीक्षण करने पर उन्होंने संपूर्ण स्टॉक को गायब पाया।

इस अभिकथन पर कि याचीगण ने कपटपूर्वक स्टॉक हटा दिया है और बैंक को कर्ज राशि का पुनर्भुगतान किए बिना स्टॉक के विक्रय आगम का गैर ईमानदारी से दुर्विनियोग कर लिया है और तद्द्वारा दांडिक दुर्विनियोग, न्यास का दांडिक भंग और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467 और 468 के अधीन अपराध किया है। पुलिस थाना में मामला दर्ज किया गया था और याचीगण के विरूद्ध दांडिक कार्यवाही शुरू की गयी थी।

4. याचीगण ने संज्ञान के आक्षेपित आदेश सहित प्राथमिकी और संपूर्ण दांडिक कार्यवाही का इस आधार पर विरोध किया है कि अभिकथनों के आधार पर याचीगण के विरूद्ध कोई दांडिक अभियोजन आरंभ नहीं किया जा सकता था और यदि ऐसा है भी तो तथ्य संविदा के भंग का सिविल विवाद गठित कर सकते हैं और कल्पना के किसी विस्तार तक याचीगण पर दांडिक दायित्व नहीं लादा जा सकता है।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि स्वीकृत तथ्यों के मुताबिक भी यद्यपि स्टॉक के संबंध में बैंक के पक्ष में याचीगण द्वारा आडमान करार निष्पादित किया गया था किन्तु आडमान करार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो प्रत्येक माह स्टॉक की सटीक मात्रा दर्शाने के लिए इसे याचीगण के लिए बाध्यकारी बनाएगा। ऐसा इसलिए है कि केवल बी०एस०एल० से स्टील सामग्री खरीदने और इसे खुले बाजार में बेचने के उद्देश्य से नगद उधार सुविधा को मंजूरी दी गयी थी और इसका रोजाना का क्रियाकलाप होने के चलते यह कभी नहीं अनुध्यात किया गया था कि याचीगण को बैंक को विनिर्दिष्ट न्यूनतम स्टॉक घोषित करना चाहिए।

विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि नगद उधार सुविधा धारणाधिकार (लियन) में कर्ज नहीं है बल्कि यह नगद उधार कर्ज है और आडमान करार स्टॉक बेचने से याचीगण को निर्बंधित करने के लिए बैंक के लिए किसी शक्ति को सृजित नहीं करता है। इसके अतिरिक्त, मात्र इसलिए कि स्टॉक पर प्रभार सृजित किया गया है, देनदार को वस्तुओं के स्वामित्व का अधिकार नहीं है। बल्कि वस्तुओं का स्वामित्व लेनदारों के पास बना रहता है।

अपने तर्कों को पुख्ता करने के लिए विद्वान अधिवक्ता **भारतीय तेल निगम बनाम एन०ई०पी०सी० इंडिया लि० एवं अन्य, 2006 (3) SCC (Cri) 188** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हैं और उसपर विश्वास करते हैं।

6. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता तर्क करेंगे कि प्राथमिकी में किए गए अभिकथनों के परिशीलन से यह प्रकट होगा कि वस्तुत: कर्ज राशि का पुनर्भुगतान करने का आशय याचीगण का नहीं था और उन्होंने गैर इमानदार आशय के साथ बैंक से कर्ज प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त, करार के निबंधनों के अधीन नियमित रूप से स्टॉक के विक्रय आगम को जमा करने के लिए बाध्य होने के बावजूद याचीगण ने स्टॉक के विक्रय आगम का दुर्विनियोग कर लिया है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह न केवल धन का दांडिक दुर्विनियोग है बल्कि न्यास का दांडिक भंग भी है।

7. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद और प्राथमिकी के विषयवस्तु सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि स्वीकृत रूप से, सूचक बैंक प्रबंधक की मुख्य शिकायत यह है कि संविदा के निबंधनों के मुताबिक स्टॉक के विक्रय आगम को जमा करने में विफल होकर और कर्ज राशि के पुनर्भुगतान में विफल होकर याचीगण ने संविदा को भंग किया है। ऐसा दावा आडमान करार के आधार पर आधारित है जिसके अधीन याचीगण के फर्म के चालू स्टॉक को आडमानित किया गया था।

स्वीकृत तथ्यों से, यह प्रकट है कि विवाद वाणिज्यिक संव्यवहार और संविदा के भंग से संबंधित है। आगे यह प्रतीत होता है कि परिवादी भ्रामक विश्वास में पड़ा हुआ है कि चूँकि स्टॉक को बैंक के पक्ष में आडमानित किया गया था, बैंक को स्टॉक का स्वामी माना जाएगा और ऐसे स्वामित्व के फलस्वरूप स्टॉक के उपर उनको अधिकार क्षेत्र देते हुए स्टॉक को याचीगण को न्यस्त किया गया था।

8. यह सुनिश्चित है कि जब संपत्ति लेनदार के पास आडमनित की जाती है, आडमानित संपत्ति का स्वामित्व और कब्जा केवल ऋणी के पास रहता है क्योंकि देनदार का संपत्ति पर स्वामित्व अथवा लाभदायी हित नहीं होता है। आडमान केवल कर्जदार और आडमानकर्ता की ओर से व्यतिक्रम की स्थिति में कब्जा लेने के लिए लेनदार के पक्ष में अधिकार और संपति पर प्रभार सृजित करता है। यही दृष्टिकोण **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

सूचक का दावा है कि बैंक के पक्ष में सृजित प्रभार के चलते याचीगण/ऋणदाता स्टॉक को बेच नहीं सकते थे, भ्रामक और गलत प्रतीत होता है। स्वीकृत रूप से, स्टॉक का स्वामित्व और अधिकार क्षेत्र याचीगण के साथ रहता है।

9. स्वीकृत तथ्यों से, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 403 तथा साथ ही धारा 405 के अधीन यथा परिभाषित चल संपत्ति के बेइमानी से किए गए दुर्विनियोजन के आवश्यक अवयव की स्पष्ट रूप से कमी है।

10. नि:संदेह, कोई वाणिज्यिक संव्यवहार अथवा विवाद दांडिक अपराध अंतर्ग्रस्त कर सकता है किन्तु केवल तभी यदि दांडिक अपराधों के आवश्यक घटकों को निर्मित किया जाता है। जहाँ प्राथमिकी/परिवाद में किए गए अभिकथन उनके प्रकट-मूल्य पर लिए जाते हैं, वे अनन्य रूप से सिविल विवाद को प्रकट करते हैं जिसके लिए सिविल उपचार उपलब्ध है अथवा उनका लाभ लिया गया है, तब उन्हीं तथ्यों पर दांडिक कार्यवाही का आरंभ नही किया जाना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग होगा और ऐसे मामलों में, जैसा **भारतीय तेल निगम (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित किया गया है, व्यक्ति, जिसने अंतरस्थ हेतु से ओछे रूप में दांडिक कार्यवाही को शुरू किया है, को दंड दिया जाना चाहिए। परीक्षा यह है कि क्या परिवाद में किया गया अभिकथन दांडिक अपराध प्रकट करते हैं।

11. वर्तमान मामले में, प्राथमिकी में किए गए संपूर्ण अभिकथनों को मानते हुए भी अपराध में से कोई भी, जिसके लिए अवर न्यायालय ने संज्ञान लिया है, निर्मित नहीं होता है। लेनदार बैंक इस तथ्य से व्यथित होकर कि याचीगण ने लेनदार होने के नाते कर्ज का पुनर्भुगतान करने में व्यतिक्रम किया है, कर्ज राशि की वसूली के लिए सिविल वाद दाखिल करके विधिक उपचार करवा सकता है किन्तु राशि के पुनर्भुगतान के लिए ऋणदाताओं पर दबाब सृजित करने के लिए न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नही दी जा सकती।

12. संज्ञान के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय मामले के स्वीकृत तथ्यों का अधिमूल्यन करने में विफल रहा है जिन्हें प्राथमिकी में घोषित किया गया था और विवेक का इस्तेमाल किए बिना यांत्रिक रूप से अपराध का संज्ञान लेने के लिए अग्रसर हुआ है।

13. तथ्यों एवं परिस्थितियों और उपर की गयी चर्चा के प्रकाश में, मैं इस आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। तद्नुसार, बोकारो सेक्टर-IV पी॰ एस॰ केस सं॰ 82/04 से उद्भूत जी॰ आर॰ केस सं॰ 983/04 के तहत अवर न्यायालय के साक्ष्य याचीगण के विरूद्ध लंबित समस्त दांडिक कार्यवाही और संज्ञान का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्तिगण

झारखंड राज्य (1 में)

अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती (392 में)

बनाम

अमित चक्रवर्ती उर्फ अमीर चक्रवर्ती उर्फ गुड्डु (1 में)

झारखंड राज्य (392 में)

Death Reference No. 01 of 2010 with Cr. Appeal (D.B.) No. 392 of 2010.
Decided on 17th August, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 131/06 में श्री विजय शंकर सिंह, विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश-सह-विशेष न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 13.4.2010 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 15.4.2010 के दंडादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 376, 302 एवं 301—अ॰ जा॰ एवं अ॰ ज॰ जा॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धाराएँ 3(2)(v) एवं 3(2)(vi)—बलात्संग एवं हत्या–मृत्यु दण्डादेश–छह वर्षीय बालिका के साथ बलात्संग एवं हत्या–इसे छिपाने के इरादे से शव को पानी में फेंक दिया गया–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा सम्पोषित–परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले के लिए अपेक्षित अवयव को अभियोजन द्वारा भली प्रकार से प्रमाणित किया गया जो अतिरिक्त संवीक्षा की अपेक्षा नहीं करता है–लेकिन, अपीलार्थी घटना के प्रासंगिक समय पर 20 वर्ष की आयु का था एवं उसके पुनर्वास की संभावना एवं अवसर था क्योंकि उसके विरुद्ध कोई दाण्डिक पूर्ववृत्त रिपोर्ट नहीं किया गया था–वर्तमान मामला विरल से विरलतम मामलों की कोटि के भीतर नहीं आता है–दोषसिद्धि कायम परन्तु मृत्यु दण्डादेश को आजीवन कठोर कारावास में उपान्तरित किया गया। (पैराएँ 9 से 14)

निर्णयज विधि.–(1980) 2 SCC 684; (1994) 2 SCC 220; (2005) 10 SCC 322—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Appellant-Accused; Mr. Ravi Prakash, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–जोरापोखर पी॰ एस॰ केस॰ सं॰ 264/05, तत्सम सत्र विचारण सं॰ 131/06, में एक ही दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश से उद्भूत एकमात्र अपीलार्थी अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 366(1) के अधीन मृत्यु संदर्भ और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अधीन पूर्वोक्त दांडिक अपील एक साथ सुनी जाती है जिसके द्वारा अपीलार्थी अमीर

चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 376/302/201 के अधीन और एस॰ सी॰ एवं एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 की धाराएँ 3(2)(v) और 3(2) (vi) के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया था। श्री विजय शंकर सिंह, विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश-सह-विशेष न्यायाधीश, धनबाद द्वारा दिनांक 15.4.2010 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/201 के अधीन विभिन्न गणनाओं पर अपीलार्थी को कारावास का दंड अधिनिर्णीत करने के अतिरिक्त उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन उसकी दोषसिद्धि के लिए मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया गया था।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह था कि सूचक अ॰ सा॰ 13 अष्टमी देवी के उसी दिन दर्ज फर्दबयान के आधार पर दिनांक 27.12.2005 को जोरापोखर पी॰ एस॰ केस सं॰ 264/05 दर्ज किया गया था। उसने उसमें कथन किया कि दिनांक 26.12.2005 को रात्रि लगभग 7.30 बजे उसकी आठ वर्षीय पुत्री उर्मिला कुमारी (तब से मृत) अपनी सखी छह-वर्षीय रूक्मिणी कुमारी के साथ मनसा मंदिर में स्व-अध्ययन कर रही थी। उस समय सूचक कुछ दूरी पर उक्त मंदिर के बगल में अपनी बहनों गोलफी देवी, बीबी बौरी और सखी देवी के साथ बात-चीत कर रही थी। इसी बीच, अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती मनसा मंदिर आया और यह कहते हुए कि उसकी भाभी उसको रोटी खिलाने के लिए बुला रही थी, उसकी पुत्री उर्मिला कुमारी को फुसलाकर ले गया। जब उर्मिला कुमारी काफी देर तक नहीं लौटी, सूचक ने अपने पुत्र राजू बौरी को उसे खोजने के लिए कहा। उसने आगे कथन किया कि उसकी बहन और बहु भी पड़ोस में उर्मिला कुमारी को खोजने गयी। खोजने के दौरान अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती नदी की ओर से आता दिखाई दिया था। जब उससे उर्मिला कुमारी के पता-ठिकाना के बारे में पूछा गया, वह नर्वस हो गया और भाग गया। गवाहों में से कुछ ने उसका पीछा किया जबकि गवाहों का एक अन्य संवर्ग खोजते हुए नदी की ओर गया और नदी के किनारे उर्मिला कुमारी का मृत शरीर पाया। उसका शरीर नग्न था और उसके गुप्तांग से पस जैसा पदार्थ बाहर आ रहा था। सूचक ने अभिकथन किया कि आमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती ने उसका बलात्कार करने के बाद उसकी पुत्री की हत्या कर दी थी और इसे छुपाने के लिए उसका मृत शरीर पानी में फेंक दिया था। सूचक ने फर्दबयान पर अपना हस्ताक्षर किया जिसे अ॰ सा॰ 2 जोसना देवी द्वारा अनुप्रमाणित किया गया था। उसके फर्दबयान पर अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 376/302/201 के अधीन अपराध के लिए मामला दर्ज किया गया था और अन्वेषण के बाद अन्वेषण अधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 376/302/201 के अधीन और एस॰ सी॰ एवं॰ एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(xii) के अधीन भी उसके विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया।

3. विद्वान अधिवक्ता श्री इन्द्रजीत सिन्हा ने निवेदन किया कि कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है और केवल उसके विरूद्ध उठाए गए संदेहों और परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया था। मृत्युदंड, जो उसे अधिनिर्णीत किया गया था, विधि के सुस्थापित सिद्धान्तों पर विचार किए बिना किया गया था और वर्तमान मामला विरल मामलों में विरलतम की श्रेणी के भीतर नहीं आता था। विद्वान विचारण न्यायाधीश यह अधिमूल्यन करने में विफल रहा कि अभियोजन गवाहों के बयानों में महत्वपूर्ण विरोधाभास था और इस प्रकार ऐसे बयानों पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। अपीलार्थी को अधिनिर्णीत दंडादेश निष्पादित करने के लिए अत्यधिक और कठोर था और विद्वान विचारण न्यायाधीश ने कम करने वाली परिस्थितियों कि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था, को विचार में नहीं लिया था। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अंतिम बार देखा गया साक्ष्य जो निश्चयात्मक प्रकृति का नहीं था, पर विश्वास करके आगे गलती की अभियोजन यह जोड़ने में विफल रहा कि अपीलार्थी अमित चक्रवर्ती को

छोड़कर और कोई नहीं था जिसने हत्या की थी और ऐसी हत्या के पीछे अपीलार्थी का हेतु इंगित करने में आगे विफल रहा। शव परीक्षण रिपोर्ट यह प्रकट नहीं करता था कि पीड़िता के साथ उसकी मृत्यु के पहले बलात्संग किया गया था। इस प्रकार परिस्थितियों की ऋँखला में कड़ी गायब थी और यह सिद्ध नहीं किया जा सकता था कि अपीलार्थी ने अवयस्क बालिका की हत्या की थी। अपने तर्कों को आगे बढ़ाते हुए विद्वान अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने आगे स्पष्ट किया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धाराओं 3 (2) (v) और 3(2) (vi) के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्ध आकृष्ट करने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं थी क्योंकि कहीं भी यह अभिकथन नहीं किया गया था कि अभिकथित अपराध केवल इसलिए किया गया था क्योंकि उर्मिला कुमारी अनुसूचित जाति की बालिका थी।

4. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में वर्तमान मामला विरल मामलों में विरलतम की श्रेणी में नहीं आता है यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप सहित उसके विरूद्ध विरचित अनेक आरोपों के विरूद्ध अपीलार्थी की सह-अपराधित को सिद्ध किया गया पाया भी गया है। प्रासंगिक समय पर अपीलार्थी बीस-वर्षीय अशिक्षित बेरोजगार युवक था जिसका कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं था। विचारण के क्रम में अभियोजन द्वारा अभिलेख पर कोई उदाहरण नहीं लाया गया है कि वह अपने विगत आचरण के कारण अपराधी मनोवृति का अथवा असुधार योग्य था। सिवाय यह उल्लिखित करने कि अपीलार्थी का कृत्य पशु के समान था जिसने अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए असहाय अवयस्क बालिका का बलात्कार किया और इस तरीके से उसने पशुता के अतिवादी रूप का प्रदर्शन किया, अपीलार्थी को मृत्यु दंड का कठोर दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए विचारण न्यायाधीश द्वारा कोई विशेष कारण नहीं दिया गया है। श्री सिन्हा ने निवेदन किया कि यदि तर्कों की खातिर से विचारण न्यायालय का ऐसा संप्रेक्षण स्वीकार भी किया जाता है, वर्तमान मामला विरल मामलों से विरलतम की श्रेणी में नहीं आता है।

5. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 SCC 684, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने दोषसिद्ध को कठोर दंड अधिनिर्णीत करने के लिए परीक्षा के रूप में कम करने वाले कारकों पर चर्चा करते हुए मार्गदर्शक सिद्धान्तों को निर्मित किया और विचारार्थ कम करने वाले कारकों को सुझाया था जो निम्नलिखित है:-

*''**कम करने वाली परिस्थितियाँ.**-उक्त मामलों में अपने स्वविवेक के प्रयोग में न्यायालय को निम्नलिखित परिस्थितियों को ध्यान में लेना होगा:*

(1) कि अपराध अति मानसिक अथवा भावात्मक अशांति के प्रभाव के अधीन किया गया था।

(2) अभियुक्त की आयु। यदि अभियुक्त जवान अथवा वृद्ध है, उसे मृत्यु का दंडादेश नहीं दिया जाएगा।

(3) यह संभाव्यता कि अभियुक्त हिंसा का दांडिक कृत नहीं करेगा जो समाज के प्रति जारी रहते धमकी गठित करेगा।

(4) यह संभाव्यता कि अभियुक्त को सुधारा और पुनर्वासित किया जा सकता है।

राज्य को साक्ष्य द्वारा सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त उक्त (3) और (4) शर्तों को पूरा नहीं करता है।

(5) कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त विश्वास करता है कि वह अपराध करने में नैतिक रूप से न्यायोचित था।

(6) कि अभियुक्त ने किसी अन्य व्यक्ति के दबाब अथवा प्रभाव के अधीन कृत्य किया था।

(7) कि अभियुक्त की दशा ने दर्शाया था कि वह मानसिक रूप से पीड़ित था और उक्त त्रुटि ने उसके आचरण की अपराधिता का अधिमूल्यन करने की क्षमता को क्षीण किया था।''

6. उक्त सुझावों पर विचार करते हुए, न्यायालय पा सकता है कि अपीलार्थी केवल बीस वर्ष का था, बिल्कुल नौजवान था और उसको सुधारने और पुनर्वासित करने का पूरा अवसर था। यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि अभिकथित अपराध अपीलार्थी द्वारा अति मानसिक और भावात्मक अशांति के प्रभाव के अधीन किया गया था जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है और विकल्प में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि के लिए मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत और परिवर्तित किया जा सकता है।

7. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों की संपूर्णता को ध्यान में लेते हुए हम पाते हैं कि अ॰ सा॰ 1 गोलफी देवी, अ॰ सा॰ 2 जोसना देवी, अ॰ सा॰ 7 सखी देवी और अ॰ सा॰ 10 रूक्मनी कुमारी (बाल गवाह) संगत में हैं कि अपीलार्थी अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती आठ वर्षीय बालिका उर्मिला कुमारी को, जब वह मनसा मंदिर में दिनांक 26.12.2005 को रात्रि लगभग 7.30 बजे स्वाध्याय कर रही थी, ले गया था। उस समय पीड़िता उर्मिला कुमारी अ॰ सा॰ 10 रूक्मनी कुमार के साथ स्वाध्याय कर रही थी और उसकी माता अ॰ सा॰13 अष्टमी देवी कुछ दूरी पर अन्य गवाहों के साथ बैठकर गप-शप कर रही थी जब अपीलार्थी मनसा मंदिर आया और यह कहते हुए कि उसकी भाभी उसे रोटी खिलाने के लिए बुला रही थी उर्मिला कुमारी को फुसलाकर ले गया। जब उर्मिला कुमारी काफी देर तक नहीं लौटी, उसकी माता अ॰ सा॰1 अष्टमी देवी को किसी दुर्घटना का संदेह हुआ और उसने अपने पुत्र अ॰ सा॰ 6 राजू बौरी को जाने और अपनी बहन उर्मिला कुमारी को खोजने के लिए कहा। अन्य गवाहों ने भी स्वीकार किया है कि वे भी बालिका को खोजने निकले। इसी क्रम में अपीलार्थी आता हुआ दिखायी दिया और जब उसे उर्मिला कुमारी, जिसे वह अपने साथ ले गया था, का पता-ठिकाना स्पष्ट करने के लिए कहा गया वह भागने लगा। कुछ देर बाद उसे गवाहों द्वारा पकड़ लिया गया था जिनकी उपस्थिति में उसने अपना दोष कबूल किया और यह कि उसने उर्मिला कुमारी के साथ जो कुछ किया था, उसके लिए वह शर्मिन्दा था। विद्वान विचारण न्यायाधीश ने इस अपीलार्थी की न्यायिकतेर संस्वीकृति पर विश्वास किया जो प्रासंगिक था और उन्होंने आगे पुलिस के समक्ष उसके संस्वीकृत बयान पर विश्वास किया जो नदी किनारे जंघिया की खोज की ओर ले गया जहाँ उसने बलात्संग कारित किया था और माता अ॰ सा॰ 13 अष्टमी द्वारा जंघिया की शिनाख्त की गयी थी कि यह उर्मिला कुमारी की थी और अभिग्रहण सूची को सिद्ध किया गया था। बाल गवाह अ॰ सा॰ 10 रूक्मनी कुमारी के बयान पर विचार करने की आवश्यकता है जिसने विचारण न्यायालय के समक्ष परिसाक्ष्य दिया कि वह घटना के प्रासंगिक समय पर दिनांक 26.12.2005 को रात्रि लगभग 7.30 बजे उर्मिला कुमारी के साथ स्वाध्याय कर रही थी जबकि उर्मिला की माता सहित अन्य गवाह कुछ दूरी पर बैठे हुए थे और गप-शप कर रहे थे। इसी बीच, अमीर चक्रवर्ती उर्फ अमित चक्रवर्ती वहाँ आया और उर्मिला को साथ चलने को कहा क्योंकि उसकी भाभी उसे रोटी खिलाने के लिए बुला रही थी। जब उर्मिला काफी देर तक नहीं लौटी, उसकी माता अष्टमी देवी ने अपने पुत्र राजू को जाने और उर्मिला को खोजने के लिए कहा। खोजते हुए राजू जोरिया (पानी की नहर) की ओर गया जहाँ उसने अपीलार्थी को आता हुआ पाया। जब गवाहों ने उर्मिला के पता-ठिकाना के बारे में पूछा, उसने कथन किया कि अमित चक्रवर्ती उस स्थान से भाग निकलने के आशय से दौड़ने लगा। वह अन्य गवाहों के साथ आगे गयी और दो चट्टानों के बीच उर्मिला के नग्न मृत शरीर को पाया। उसने आगे परिसाक्ष्य दिया कि मृत शरीर की बरामदगी के स्थान पर गवाहों द्वारा अमित को लाया गया था। वह प्रति-परीक्षण

की परीक्षा में खरी उतरी और उसके परिसाक्ष्य की विश्वसनीयता को प्रतिपरीक्षण में हिलाया नहीं जा सका था। वह एकमात्र गवाह थी जिसे प्रस्तुत किया गया था और अभियोजन की ओर से परीक्षण किया था और उसने स्वीकार किया कि जब वे मनसा मंदिर में साथ-साथ स्वाध्याय कर रही थी, उसकी उपस्थिति में अपीलार्थी बालिका उर्मिला कुमारी को ले गया था।

8. हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से आगे पाते हैं कि उर्मिला की शव परीक्षा पी॰ एम॰ सी॰ एच॰, धनबाद के न्यायालयिक औषधि विभाग के सह-प्राध्यापक अ॰ सा॰ 14 डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार द्वारा दिनांक 27.12.2005 को दोपहर लगभग 11.30 बजे की गयी थी। उन्होंने मृतका के बाहरी परीक्षण पर निम्नलिखित शव पूर्व जख्मों को पाया:

(I) खरोंच

(a) बाएँ गाल पर 1/2' x 1/4'

(b) मुख के बाएं कोण के ठीक नीचे 1/2' x 1/4'

(c) चिन के बाएँ हिस्से के फ्राँड पर 1/4' x 1/4'

(d) गर्दन के सामने उपरी भाग पर 1' x 1/2'

(e) निचले जबड़े के दाएँ भाग के ठीक उपर 1/4' x 1/4'

(f) दाएँ कोहनी के अन्दरूनी भाग पर 1/2/ x 1/4'

(II) नीचे और बाहर जाता हुए बाँह के सामने के उपरी भाग पर स्थित लगभग 3/4 'एक लिनियर (खरोंच)

(III) मध्य में उपरी लीप के अंदरूनी सतह पर लगभग 1/4" व्यास का सूजनयुक्त लाल रंग का खरोंच

(IV) बाएँ उरूसन्धि पर दो छोटे अर्द्धचन्द्रीय नाखून के निशान।

(V) हाइमन चोटिल और रक्त/श्लेष्मा से भरा पाया गया।

(VII) लीबिया मेजोरा और लीबिया माइनोरा चोटिल, सूजी हुई और दोनों हिस्सों पर श्लेष्मा से भरी पायी गयी।

<u>शव विच्छेदन करने पर</u>

गर्दन के सामने के हिस्से पर सबक्यूटेनियस टिशू में ऐकिमोसिस पाया गया था।

हृदय का बायाँ हिस्सा खाली था और दायाँ हिस्सा काले तरल रक्त से भरा था।

पेट में 150 ग्राम चावल था।

ब्लैंडर खाली था और समस्त आंतरिक अंगों को श्लेष्मा से भरा पाया गया था।

मृत्यु के बाद से बीता समय 12 से 18 घंटा था।

मृत्यु का कारणः- मृत्यु गला दबाने से हुई थी और गला दबाने से पहले मृतक पर यौन प्रहार किया गया था।

9. डॉक्टर का विशेषज्ञ मत स्पष्टत: उपदर्शित करता था कि अपीलार्थी ने अवयस्क बालिका का बलात्कार करने का प्रयास किया था और उपहतियों को कारित किया था, जैसा उपर उपदर्शित किया गया है। डॉक्टर के बयान के मुताबिक बालिका का हाइमन चोटिल और श्लेष्मा से भरा पाया गया था। उसका लीबिया मेजोरा और लीबिया माइनोरा चोटिल, सूजा हुआ और दोनों हिस्सों पर श्लेष्मा से भरा पाया गया था जो निश्चयात्मक रूप से उपदर्शित करता था कि प्रवेशन के कारण पीड़िता ने अपने गुप्तांग में उपहतियों को प्राप्त किया था। डॉक्टर जिन्होंने शव परीक्षा किया था, का स्पष्ट मत था कि मृत्यु गला दबाने से हुई थी और गला दबाए जाने के पहले मृतक पर यौन प्रहार किया गया था। शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श-2 के रूप में सिद्ध और चिन्हित किया गया था।

10. हम पाते हैं कि अपीलार्थी की ओर से दिए गए तर्कों का मुख्य जोर इस पर था कि वर्तमान मामला विरल मामलों में से विरलतम की श्रेणी में नहीं आता ताकि अपीलार्थी को मृत्यु दंडादेश दिया जा सके। हम यहाँ उपर चर्चा किए गए **बचन सिंह के मामले (ऊपर)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को अपनाते हैं। वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है और यह सुनिश्चित विधि है कि परिस्थितियाँ जिनसे दोष का निष्कर्ष निकाला जाना है, को न केवल पूर्णत: स्थापित करना होगा, बल्कि यह भी कि इस प्रकार स्थापित समस्त परिस्थितियों को केवल निश्चयात्मक प्रकृति का और अभियुक्त के दोष की प्राक्कल्पना के साथ संगति में होना होगा। साथ-साथ, साक्ष्य की श्रृँखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए जो अभियुक्त की निर्दोषिता के साथ संगत विश्वास करने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार नहीं छोड़े। **धनन्जय चटर्जी उर्फ धना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1994) 2 Supreme Court- Cases 220,** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि विधिक रूप से स्थापित परिस्थितियाँ और न कि न्यायालय का मात्र क्रोध दोषसिद्धि का आधार निर्मित कर सकता है और अपराध जितना गंभीर होता है, उतना ही सावधानीपूर्वक साक्ष्य का संवीक्षण करना होगा ताकि संदेह प्रमाण का स्थान न ले।

11. वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामले में अपेक्षित घटकों को अभियोजन द्वारा सुसिद्ध किया गया है जो किसी अतिरिक्त संवीक्षण की अपेक्षा नहीं करता है किन्तु यह तथ्य बना रहता है कि क्या वर्तमान मामला विरल मामलों में से विरलतम श्रेणी के भीतर आता है या नहीं? साथ ही साथ हम पाते हैं कि घटना के प्रासंगिक समय पर अपीलार्थी मात्र बीस वर्ष की आयु का था और उसके पुनर्वास का अवसर था क्योंकि उसके विरूद्ध कोई आपराधिक पूर्ववृत रिपोर्ट नहीं किया गया था। नि:संदेह, अपीलार्थी ने एक अत्यन्त जघन्य प्रकृति का अपराध किया था क्योंकि उसने आठ वर्षीय बालिका का बलात्कार किया था और उसकी मृत्यु कारित किया था किन्तु इसी समय यहाँ उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, हमारा सुविचारित दृष्टिकोण है कि वर्तमान मामला विरल मामलों में से विरलतम की श्रेणी में नहीं आता है।

12. राहुल उर्फ रावसाहब बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2005) 10 Supreme Court Cases 322, में प्रकाशित मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:-

> *''4. हमने मामले के सभी प्रासंगिक पहलूओं पर विचार किया है। यह सत्य है कि अपीलार्थी ने अत्यन्त जघन्य तरीके से गंभीर अपराध किया किन्तु यह तथ्य कि अपराध के समय वह 24 वर्ष की आयु का था, को ध्यान में लेना ही होगा। यद्यपि अपीलार्थी दिनांक 27.11.1999 से अभिरक्षा में है, फिर भी हमें अपीलार्थी के संबंध में परिवीक्षा अधिकारी द्वारा अथवा कारा प्राधिकारियों द्वारा कोई रिपोर्ट नहीं दिया गया है। अपीलार्थी का कोई पूर्व दांडिक रिकार्ड नहीं है और न्यायालय के ध्यान में कुछ भी नहीं लाया गया है। यह नहीं कहा जा सकता है कि भविष्य में वह समाज के लिए खतरा होगा। अपीलार्थी की आयु और अन्य परिस्थितियों पर विचार करते हुए हम नहीं समझते हैं कि मृत्युदंड उसपर अधिरोपित किया जाए।*
>
> *5. परिणामस्वरूप, हम समस्त गणना पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि संपुष्ट करते हैं किन्तु भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन उसपर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश के लिए हम उसके मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत करते हैं।''*

13. इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/201 के अधीन और एस॰ सी॰ एवं एस॰ टी॰ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धाराओं 3(2) (v) और 3 (2) (vi) के अधीन भी उसको अधिनिर्णीत अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दंडादेश को मान्य ठहराते हुए भारतीय दंड संहिता

की धारा 302 के अधीन उसकी दोषसिद्धि के लिए अपीलार्थी को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश को कठोर आजीवन कारावास के दंड में परिवर्तित किया जाता है।

14. दंडादेश में इस परिवर्तन के साथ, अपीलार्थी की अपील खारिज की जाती है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 366(1) के अधीन विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश-सह-विशेष न्यायाधीश द्वारा अग्रसारित किया गया मृत्यु निर्देश संपुष्ट नहीं किया जाता है।

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

आर॰ एस॰ सिंह उर्फ रमा शंकर सिंह एवं अन्य (1653 एवं 1654 में)

बलदेव प्रसाद शर्मा एवं एक अन्य (1631 एवं 1652 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

Cr. M.P. Nos. 1631, 1652, 1653 with 1654 of 2009. Decided on 31st July, 2010.

भारतीय वन अधिनियम, 1927—धाराएँ 33 एवं 63—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—प्रतिबंधित वन क्षेत्र का अतिक्रमण–संज्ञान–स्वीकृत रूप से याचीगण घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे जब सन्निर्माण कार्य का अभिकथित कृत्य किया जा रहा था–एक ही तथ्यों एवं वाद हेतुक पर वन विभाग ने याचीगण के विरुद्ध बिहार सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम के अधीन एक कार्यवाही प्रारम्भ की थी जिस कार्यवाही को विवादित अभिधान की दृष्टि में उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित किया गया था–अधिकार एवं अभिधान पर यथार्थ विवाद होने के कारण याचीगण के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाहियाँ विधि में अपेक्षित नहीं है–राज्य सिविल न्यायालय के समक्ष वाद/अपील में उपचार का अनुसरण कर सकता है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 13)

निर्णयज विधि.–2005 (3) JCR 464 (Jhr)—Applied; AIR 1966 SC 1847; (2008) 5 SCC 668—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Delip Jerath, Indrajeet Sinha, For the Petitioners; M/s Rajiv Ranjan Mishra, A. B. Mahato, Amaresh Kumar, For the State.

आदेश

चूँकि इन सारे मामलों में एक ही विवाद्यक अंतर्ग्रस्त हैं, इस एक ही आदेश द्वारा उन्हें निपटाया जाता है।

2. याचीगण के अधिवक्ता और राज्य के अधिवक्ता को सुना।

3. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इन न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का अवलम्ब लेते हुए, याचीगण ने भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धाराओं 33 और 63 के अधीन अपराधों के लिए अवर न्यायालय द्वारा पारित संज्ञान के आदेश सहित समस्त दांडिक कार्यवाहियों, जो उनके विरुद्ध लंबित है, के अभिखंडन की प्रार्थना की है।

4. इन मामलों के निपटारे के लिए प्रासंगिक तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं:

यह दावा करते हुए कि याचीगण की कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा मजदूरों को काम पर लगाकर वन भूमि पर गैर कानूनी रूप से ईंट की चारदीवारी का निर्माण किया जा रहा था, वन रक्षक द्वारा प्रस्तुत

रिपोटों के आधार पर वनपाल, चास वन डिविजन, बोकारो ने प्राप्त सूचना को सत्यापित करने के बाद डिविजनल वन अधिकारी, बोकारो वन डिविजन को संबोधित करते हुए अपराध रपटों को प्रस्तुत किया और इसके आधार पर इस अभिकथन पर कि याचीगण ने वन विभाग से पूर्वानुमति लिए बिना न केवल संरक्षित वन भूमि का अधिक्रमण किया है बल्कि इसके ऊपर गैरकानूनी निर्माण भी खड़ा करने लगे हैं, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो के समक्ष पृथक अभियोजन रपटों को दाखिल किया था। अभियोजन रपटों के आधार पर, भारतीय वन अधिनियम की धाराओं 33 और 63 के अधीन अपराधों के लिए अभिकथित अपराधकर्ताओं अर्थात मामलों में प्रत्येक में वर्तमान याचीगण के विरुद्ध मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो द्वारा संज्ञान लिया गया था।

प्रत्येक मामलों में सामान्य अभियोजन का मामला यह है कि बोकारो जिला में भागबन्द गाँव में खाता सं॰ 58 मौजा सं॰ 83 के अधीन भूखंड सं॰ 1159, 1389, 1428, 1289, 1120 और 1321 के अधीन भूमि सहित 133.38 एकड़ से गठित भूमि के विशाल टुकड़े को बिहार सरकार द्वारा भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 के अधीन दिनांक 24.5.1958 की अधिसूचना के तहत संरक्षित वन के रूप में अधिसूचित किया गया था। भूमि को इस प्रकार संरक्षित वन भूमि घोषित किए जाने के बाद वन व्यवस्थापन अधिकारी ने विभिन्न भूखंडों को सीमांकित किया था और तद्नुसार एक विस्तृत नक्शा तैयार किया गया था। याचीगण मेसर्स इलेक्ट्रो स्टील इंटीग्रेटेड लिमिटेड के कर्मचारी होने के नाते न केवल संरक्षित वन भूमि का अतिचार किया था, बल्कि अधिनियम की धारा 33 के अधीन अपराध के लिए दंडनीय भारतीय वन अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में गैर कानूनी रूप से चारदीवारी का निर्माण भी किया था।

5. प्रत्येक मामलों में उनके विरुद्ध आरंभ की गयी दांडिक अभियोजन का विरोध याचीगण ने निम्नलिखित आधार पर किया है:

(i) परिवादी द्वारा विश्वास किया गया दिनांक 24.5.1958 की अधिसूचना अपूर्ण है क्योंकि इसे प्रश्नगत भूमि पर निजी व्यक्तियों के अधिकारों के अधीन बनाने के बाद ही जारी किया गया था और चूँकि निजी रैयतों के अधिकारों के निर्धारण के लिए कोई जाँच संचालित नहीं की गयी थी, अतः उनके अधिकार निर्वापित नहीं होते थे।

(ii) अन्यथा भी, खाता सं॰ 58 के अधीन भागबन्द गाँव के भूखंड सं॰ 1429 और 1289 और 1830 की भूमि, इन्हें संरक्षित वन अथवा आरक्षित वन घोषित करते हुए, किसी अधिसूचना के अधीन आच्छादित नहीं हैं। इस प्रकार, इन भूखंडों में भूमि के संबंध में परिवादी याचीगण को अभियोजित करने के लिए सशक्त अथवा न्यायोचित नहीं है।

(iii) यदि अभियोजन के संपूर्ण मामले को सत्य भी माना जाए, भारतीय वन अधिनियम की धाराओं 33 और 63 के अधीन कोई अपराध निर्मित नहीं होता है क्योंकि एकमात्र अभिकथन यह है कि याचीगण संरक्षित वन में कुछ निर्माण गतिविधियाँ कर रहे हैं और ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण को किसी पेड़ अथवा जीव को विनष्ट करता पाया गया था। इसके अतिरिक्त, अभियोजन रपटों/परिवादों में से कोई भी यह प्रकट नहीं करता है कि किस तरह याचीगण, जो स्वीकृत रूप से घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे, को अभिकथित अपराधों को करने के लिए अभियोजन का दायी/जिम्मेवार माना जा सकता था।

6. आधारों को विस्तार देते हुए, याचीगण के अधिवक्ता स्पष्ट करेंगे कि दिनांक 24.5.1958 की अधिसूचना प्रश्नगत भूमि को संरक्षित वन की श्रेणी में नहीं लाती है। भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 (1) को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि प्रावधान नि:संदेह राज्य सरकार को

अधिसूचना द्वारा यह घोषित करने के लिए सशक्त करते हैं कि अधिनियम का अध्याय-IV के प्रावधान किसी वन अथवा बेकार पड़ी भूमि पर लागू होने योग्य होंगे, किन्तु ऐसी अधिसूचना को जारी किया जाना इस पूर्व शर्त के अधीन है कि ऐसी भूमि पर सरकार का सांपत्तिक अधिकार होना ही चाहिए। प्राईवेट व्यक्तियों के संबंध में ऐसी अधिसूचना तब तक जारी नहीं की जा सकती है जब तक ऐसी भूमि पर अथवा वन पर अथवा बेकार पड़ी भूमि पर सरकार के और निजी व्यक्तियों के अधिकारों की प्रकृति और सीमा व्यवस्थापन के सर्वेक्षण द्वारा जाँचा और/अथवा अभिलिखित नहीं किया जाता है। विद्वान अधिवक्ता जोडते हैं कि आपवादिक परिस्थितियों के अधीन भी, जैसा अधिनियम की धारा 29 (3) के अधीन अधिकथित किया गया है, अत्यावश्यकता की स्थिति में जारी ऐसी अधिसूचना अधिसूचित भूमि पर व्यक्तियों अथवा समुदायों के किसी विद्यमान अधिकार को संक्षिप्त नहीं कर सकती है अथवा प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर सकती है। किन्तु आज की तिथि तक, अधिसूचित भूमि पर सरकार और प्राईवेट व्यक्तियों के अधिकारों की प्रकृति और सीमा को जाँचा नहीं गया है और न ही अधिनियम की धारा 29 (3) के अधीन अनुध्यात कोई सर्वेक्षण किया गया है।

वर्तमान मामलों में विवादित भूमि के इतिहास को खोजते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 67 के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग में व्यवस्थापन केस सं॰ 104/31-32 में उप-कलक्टर, पुरुलिया द्वारा पारित दिनांक 16.8.1932 के आदेश द्वारा वस्तुतः रैयतों के पक्ष में इसके व्यवस्थापन की अनुमति देकर इन भूमि को रैयती भूमि में परिवर्तित करने की अनुमति दी गयी थी और आदेश ने अंतिमता प्राप्त कर ली है और यह प्रवर्तित बना हुआ है और राज्य सरकार पर बाध्यकारी है।

विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क करते हैं कि याचीगण मेसर्स इलेक्ट्रो स्टील लिमिटेड के कर्मचारी हैं। विवादित भूमि कम्पनी द्वारा अलग-अलग रैयतों द्वारा निष्पादित अनेक विक्रय विलेखों के अधीन अर्जित की गयी थी। जब प्रत्यर्थी वन विभाग ने भूमि पर रैयतों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया, कम्पनी के ऐसे एक विक्रेता अर्थात् हरिपद महतो ने अपने स्थायी अधिभोग रैयत की घोषणा और भूमि, जो भूखंड सं॰ 1159, 1229, 1329 और 1321 के अंश को निर्मित करती हैं, पर कब्जा की संपुष्टि के लिए डिक्री के लिए टाइटल वाद सं॰ 25 वर्ष 1996 के तहत सब-जज-I, बोकारो के न्यायालय में वाद संस्थापित किया। डिविजनल वन अधिकारी, बोकारो प्रतिवादी के रूप में वाद में उपस्थित हुए और इस आधार पर वाद का प्रतिवाद किया कि दिनांक 24.5.1958 की सरकारी अधिसूचना द्वारा वाद भूमि पहले ही संरक्षित वन के रूप में घोषित की जा चुकी थी। यह घोषणा करते हुए कि वादी वाद भूमि पर अधिभोगी रैयत बन चुका था और चूँकि भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 (3) के अधीन कोई जाँच संचालित नहीं की गयी थी और इसलिए, वाद भूमि पर रैयत का अधिकार निर्वापित नहीं हुआ है, दिनांक 29.5.2007 को वाद प्रतिवाद करने पर वादी के पक्ष में डिक्री किया गया था। विचारण न्यायालय ने भी घोषणा की थी कि प्रतिवादी का दावा कि वाद भूमि संरक्षित वन है, केवल एक मिथक है और ऐसा दावा सम्यक् रूप से सिद्ध नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि यद्यपि विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री, जैसा पूर्वोल्लिखित टाइटल वाद सं॰ 25 वर्ष 1996 में पारित किया गया था, के विरुद्ध प्रतिवादी डिविजनल वन अधिकारी ने एक अपील दाखिल किया था जो अभी भी लंबित है, किन्तु अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्णय और डिक्री को स्थगित नहीं किया गया है। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि अन्य भूखंडों के अधीन भूमि को शामिल करते हुए एक अन्य रैयत द्वारा टाइटल वाद सं॰ 26 वर्ष 1989 के तहत दाखिल एक अन्य वाद में वन विभाग द्वारा विश्वास की गयी यही अधिसूचना न्यायालय के विचारार्थ आयी थी और यह घोषणा करते हुए कि अधिसूचना प्रश्नगत भूमि पर रैयतों के अधिकारों को निर्वापित नहीं करती थी, भूमि पर वादी/रैयत का दावा मान्य ठहराया गया था। पूर्वोल्लिखित टाइटल वाद सं॰ 26 वर्ष 1989

में दिनांक 22.8.1991 को न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री सिविल अपील सं॰ 5471 वर्ष 1991 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक अभिपुष्ट की गयी थी। अपील खारिज करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निबंधनों में अभिनिर्धारित किया है:

''उन दस्तावेजों, जो दस्तावेजों के अंश थे, के परीक्षण के बाद हम संतुष्ट हैं कि प्रश्नगत भूमि वन भूमि अथवा निजी वन घोषित कभी नहीं की गयी थी।''

बिहार राज्य बनाम के॰ एस॰ आर॰ स्वामी, AIR 1966 Supreme Court 1847, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि बिहार संरक्षित वन अधिनियम की धारा 30 के अधीन मामला विनिश्चित करते हुए जो कि भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 के समविषयक है, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम की धारा 30 के परन्तुक के अधीन जारी अधिसूचना निजी वन को निजी संरक्षित वन के रूप में अंतिम गठन होने के लिए आशयित नहीं है और उक्त जाँचों, प्रक्रियाओं और अपीलों को लंबित रखते हुए ही परन्तुक के अधीन अधिसूचना जारी करनी होगी।

आगे तर्क करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दिनांक 24.5.1958 की इसी अधिसूचना के आधार पर अधिसूचना के अधीन आच्छादित भूमि से उनकी बेदखली इप्सित करते हुए कम्पनी के और याचीगण के भी विरुद्ध सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण अधिनियम के अधीन राज्य सरकार ने कार्यवाही आरंभ किया था। ऐसी कार्यवाही को कम्पनी द्वारा डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3362 वर्ष 2009 के तहत रिट आवेदन में चुनौती दी गयी थी। राज्य सरकार ने वही दृष्टिकोण अपनाते हुए रिट आवेदन का जोरदार विरोध किया कि 1958 की अधिसूचना कम्पनी पर बाध्यकारी है और टाइटल वाद सं॰ 25 वर्ष 1996 और टाइटल वाद सं॰ 26 वर्ष 1996 में पारित निर्णय और डिक्री में निर्दिष्ट की गयी भूमि संपूर्ण क्षेत्र को आच्छादित नहीं करती है और उक्त निर्णय रिट याचीगण का मददगार नहीं था। राज्य सरकार की ऐसी आपत्ति के बावजूद, इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए कि रिट आवेदन को अनुज्ञात किया कि विवादित टाइटल की दृष्टि में, सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण अधिनियम के अधीन संक्षिप्त कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और अधिनियम के अधीन कम्पनी और याचीगण के विरुद्ध आरंभ की गयी कार्यवाही को अभिखंडित कर दिया था। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि वर्तमान समस्त दांडिक मामले इन्हीं अपराध रपटों पर आधारित है जो सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण कार्यवाहीयों में मामले थे और इस उच्च न्यायालय ने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि कम्पनी को वन भूमि पर अधिक्रमणकारी नहीं कहा जा सकता है। भारतीय वन अधिनियम के अधीन किसी अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध दांडिक अभियोजन विधिपूर्वक आरंभ नहीं किया जा सकता है।

7. तीसरे आधार को विस्तार देते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यदि अभियोजन का संपूर्ण मामला सत्य माना भी जाता है, भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धाराओं 33 और 63 के अधीन कोई अपराध निर्मित नहीं होता है क्योंकि एकमात्र अभिकथन यह है कि याचीगण संरक्षित वन में कुछ निर्माण गतिविधियाँ कर रहे थे और ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण को पेड़ और जीव को विनष्ट करता पाया गया था। स्वीकृत रूप से याचीगण घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे जब निर्माण कार्य का अभिकथित कृत्य किया जा रहा था। इन परिस्थितियों के अधीन, कोई प्रतिनिधिक दांडिक दायित्व कम्पनी निदेशक अथवा अधिकारियों पर प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता **मकसूद सईद बनाम गुजरात राज्य, [(2008)5 SCC 668]** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करते हैं और निवेदन करते हैं कि कम्पनी के निदेशक अथवा अधिकारियों पर प्रतिनिधिक दायित्व नियत करने के लिए भारतीय वन अधिनियम के अधीन कोई प्रावधान नहीं है।

8. समानान्तर स्तंभ में, विपक्षी पक्षकार अर्थात सरकार और वन अधिकारियों द्वारा लिया गया दृष्टिकोण निम्नलिखित है:

दिनांक 24.5.1958 की अधिसूचना भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 (3) के परन्तुक के अधीन जारी की गयी थी। अधिसूचना जारी किए जाने के बाद, वन व्यवस्थापन अधिकारी ने अधिसूचित भूमि के विभिन्न भूखंडों को सीमांकित किया था और मौजा भागबन्द के विभिन्न भूखंडों का विस्तृत नक्शा तैयार किया था। अधिसूचना के अनुसरण में, उक्त अधिसूचना के अधीन भूमि ''संरक्षित वन'' घोषित की गयी थी। प्राईवेट व्यक्तियों के विरुद्ध अधिसूचना में एक सामान्य प्रतिषेध अंतर्विष्ट है और भारतीय वन अधिनियम के प्रावधानों का कोई उल्लंघन अधिनियम की धारा 33 के अधीन दंडनीय है जिसे अब गैर-जमानती और संज्ञेय अपराध बना दिया गया है। याचीगण की कम्पनी के कर्मचारियों को गैर वनीय गतिविधि, जैसे वन भूमि को पाटना और खोदना और निर्माण कार्य के जरिए वन भूमि पर अधिक्रमण करना, करता हुआ पाया गया था। ऐसी गैर-वनीय गतिविधियाँ मौजा भागबन्द के भूखंड सं॰ 1120, 1329, 1428 और अन्य भूखंडों की भूमि पर की जाती पायी गयी थी और ऐसी गतिविधियाँ याचीगण की कम्पनी की ओर से याचीगण के कहने पर की जा रही थी। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि शब्द ''वन'' जैसा सिविल अपील सं॰ 202 वर्ष 1995 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है और वन संरक्षण अधिनियम की धारा 2 के अधीन परिभाषित किया गया है, स्वामित्व को ध्यान में लिए बिना सरकारी अभिलेखों में ''वन'' के रूप में दर्ज किसी क्षेत्र को सम्मिलित करता है। वन की यही परिभाषा भारतीय वन अधिनियम के संदर्भ में भी लागू होगी। भारत सरकार, पर्यावरण और वन मंत्रालय ने अपने दिनांक 17.2.2005 के परिपत्र (प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट-C) के तहत घोषित किया था कि राजस्व अभिलेखों में वन अथवा जंगल-झाड़ के रूप में घोषित किसी भूमि का विधिक दर्जा वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के प्रावधानों के मुताबिक केन्द्र सरकार के पूर्वानुमोदन के बिना परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क करते हैं कि सरकारी सर्वेक्षण खतियान में भूखंड सं॰ 1120, 1259, 1329 और 1321 में भूमि का दर्जा जंगल-झाड़ के रूप में दर्ज किया गया था। आगे तर्क किया गया है कि चूँकि अधिसूचना में उल्लिखित भूमि का स्वामी बिहार राज्य और अब झारखंड राज्य है, इसलिए ऐसी भूमि का दर्जा संरक्षित वन का बना रहेगा जब तक इसे भारत सरकार के सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनधिसूचित और असंरक्षित नहीं कर दिया जाता है।

विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि कुल भूमि, जिसे 1958 की अधिसूचना द्वारा संरक्षित वन के रूप में घोषित किया गया था, 133.38 एकड़ है जबकि दो टाइटल वाद अर्थात्, टाइटल वाद सं॰ 25 वर्ष 1996 और टाइटल वाद सं॰ 26 वर्ष 1996 में अंतर्ग्रस्त भूमि का क्षेत्र केवल 17.68 एकड़ है। इस प्रकार, तात्पर्यित रैयतों द्वारा दाखिल पूर्वोक्त दो टाइटल वादों में पारित निर्णय और डिक्री शेष भूमि, जो वर्तमान दांडिक कार्यवाही में भूमि गठित करती है, के संबंध में प्रवर्तित नहीं होगा।

विद्वान अधिवक्ता आगे तर्क करते हैं कि तात्पर्यित विक्रय विलेख, जिनके आधार पर याचीगण की कम्पनी ने विश्वास करना इप्सित किया है, किसी लाभ का नहीं है क्योंकि विक्रय विलेखों के सूक्ष्म संवीक्षण से पता चलेगा कि रैयतों द्वारा तात्पर्यित रूप से बेची गयी भूमि, यद्यपि भूखंड संख्या एक ही है, बिहार सरकार द्वारा जारी 1958 की अधिसूचना के अंतर्गत नहीं आती है।

9. परस्पर विरोधी निवेदनों से, निम्नलिखित प्रमुख लक्षण सामने आते हैं:-

(i) बोकारो जिला में ग्राम भागबन्द के मौजा सं० 83 के भूखंड सं० 1159, 1389, 1428, 1289, 1120 और 1321 सहित अनेक भूखंडों के अधीन को बिहार सरकार द्वारा दिनांक 24.5.1958 की अपनी अधिसूचना के तहत भारतीय वन अधिनियम की धारा 29(3) के प्रावधानों के अधीन संरक्षित वन के रूप में अधिसूचित किया गया था।

(ii) उक्त अधिसूचना के पहले, छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 67A के प्रावधानों के अधीन व्यवस्थापन केस सं० 104/31-32 में उप-कलक्टर द्वारा पारित दिनांक 16.8.1932 के आदेश द्वारा रैयतों के पक्ष में इसके व्यवस्थापन को अनुज्ञात करते हुए भूमि को रैयती भूमि के रूप में परिवर्तित करने की अनुमति दी गयी थी। व्यवस्थापन की तिथि से ही, बन्दोवस्तदारगण भूमि के अधिभोग में बने हुए हैं।

(iii) याचीगण की कम्पनी मेसर्स इलेक्ट्रो स्टील लिमिटेड विभिन्न तिथियों पर अपने पक्ष में निष्पादित पृथक विक्रय विलेखों के फलस्वरूप बन्दोबस्तदारों से भूमि अर्जित करने का दावा करता है।

(iv) वर्ष 1958 की सरकारी अधिसूचना के अनुसरण में, जब वन विभाग ने भूमि का अधिग्रहण आशयित किया था, व्यवस्थापित रैयतों में से कुछ ने सिविल न्यायालय के समक्ष टाइटल वाद दाखिल करते हुए आपत्ति की थी। ऐसे दो वादों को टाइटल वाद सं० 26 वर्ष 1989 और टाइटल वाद सं० 25 वर्ष 1996 के तहत दाखिल किया गया था। वन विभाग ने एक ही आधार पर दोनों वादों का प्रतिवाद किया कि वर्ष 1958 में बिहार सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के फलस्वरूप वाद भूमि को संरक्षित वन के रूप में अधिसूचित और घोषित किया गया था और इसलिए वादों में वाद भूमि पर वादीगण को कोई अधिकार, टाइटल अथवा हित नहीं था। दोनों वादों को वादीगण के पक्ष में और प्रतिवादी वन विभाग के विरुद्ध डिक्री किया गया था। टाइटल वाद सं० 26 वर्ष 1989 में सब-जज के न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष यह था कि यदि राज्य सरकार की 1958 की अधिसूचना भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 (3) के अधीन जारी की भी गयी थी, यह रैयतों के अधिकारों को निर्वापित तब तक नहीं करेगी जब तक संपूर्ण प्रक्रिया, जैसा अर्जन और भूमि को वन भूमि में परिवर्तित करने के उद्देश्य से अधिनियम के अधीन अनुध्यात किया गया है, पूरी नहीं की जाती है। ऐसा निष्कर्ष सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी अपने समक्ष दाखिल विशेष अनुमति याचिका में भी मान्य ठहराया गया था। टाइटल वाद सं० 25 वर्ष 1996 में वादीगण के पक्ष में पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादी वन विभाग ने अपील दाखिल किया था जो अभी भी लंबित है।

(v) बिहार संरक्षित वन अधिनियम की धारा 30, जो भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 का समविषयक है, के अधीन जारी अधिसूचना के आधार पर वन विभाग द्वारा प्रतिवादित समरुप विवाद्यक पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिसूचना, यदि इसे धारा के परन्तुक के अधीन जारी भी किया गया था, निजी संरक्षित वन के अंतिम गठन के तौर पर आशयित नहीं है और अपेक्षित जाँचों और अपीलों और प्रक्रियाओं को लंबित रखते हुए ही अधिसूचना जारी करनी होगी।

10. यहाँ यह ध्यान में लेना प्रासंगिक है कि इन्हीं तथ्यों और वाद हेतुक के आधार पर वन विभाग ने बिहार सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण अधिनियम के अधीन याचीगण के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ किया था। कार्यवाही का प्रतिवाद किए जाने पर, इस न्यायालय ने डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 3362 वर्ष 2009 में पारित

निर्णय के तहत यह अभिनिर्धारित करते हुए कि विवादित टाइटल की दृष्टि में बिहार सार्वजनिक भूमि अधिक्रमण अधिनियम के अधीन कार्यवाही दोषपूर्ण है, कम्पनी के कर्मचारियों के विरुद्ध आरंभ की गयी कार्यवाही को अभिखंडित कर दिया था।

11. वर्ष 1958 की राज्य सरकार की अधिसूचना के आधार पर वन विभाग द्वारा उठाये गये ऐसे ही विवाद्यक, जैसा वर्तमान मामलों में अंतर्ग्रस्त है, पर **ब्रजेश कुमार राय बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य [2005 (3) JCR 464 (Jhr.)]** के मामले में इस न्यायालय की पीठ द्वारा विचार किया गया था। याची ब्रजेश कुमार राय ने भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 33 के अधीन अपराधों के संज्ञान के आदेश को चुनौती दी थी जिसे मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो द्वारा डिविजनल वन अधिकारी, बोकारो द्वारा दाखिल अभियोजन रिपोर्ट के आधार पर पारित किया गया था। वन विभाग द्वारा लिया गया दृष्टिकोण यह था कि भूमि, जिस पर याची ब्रजेश कुमार राय और अन्य ने अधिक्रमण किया था, वन भूमि और बेकार पड़ी भूमि थी जिसे वर्ष 1958 की राज्य सरकार अधिसूचना के अधीन ऐसा घोषित किया गया था। रिट याची ने वन विभाग के दावा का विरोध इस आधार पर किया कि भूमि रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों के अधीन मूल अधिभोगी रैयतों से खरीदी गयी थी और यह कि, भारतीय वन अधिनियम की धारा 29(3) के अधीन जारी राज्य सरकार की 1958 की अधिसूचना के बावजूद, रैयत के रैयती अधिकार निर्वापित नहीं हुए थे। रिट याची ने टाइटल वाद सं॰ 7 वर्ष 1997 में रैयतों के पक्ष में पारित निर्णय और डिक्री का समर्थन भी लिया था चूँकि डिक्री द्वारा न्यायालय ने घोषित किया था कि वाद भूमि पर रैयतों का अधिभोगी अधिकार मात्र भारतीय वन अधिनियम की धारा 29 (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी 1958 की अधिसूचना द्वारा निर्वापित नहीं होते थे।

रिट आवेदन में अंतर्ग्रस्त समस्त विवाद्यकों पर विचार करने पर, इस न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:

> *''यह मात्र इतना दर्शाता है कि पक्षकारगण मुकदमा में उलझे हैं और दोनों ही अपने-अपने अधिकारों, टाइटल और कब्जा का दावा कर रहे हैं। याचीगण रैयतों से प्राप्त रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों के आधार पर अपने अधिकार और टाइटल का दावा कर रहे हैं जबकि राज्य ने दावा किया है कि यह ''संरक्षित वन'' और तद्द्वारा राज्य की भूमि है।.....पूर्वोक्त परिस्थितियों में, अधिकार और टाइटल का वास्तविक विवाद होने के चलते, मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि दांडिक कार्यवाही विधि में अपेक्षित नहीं है। वस्तुतः, इसके वन विभाग सहित राज्य सरकार को सक्षम अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय के समक्ष अथवा इस न्यायालय के समक्ष लंबित वाद/अपील में उपचार का अनुसरण करना चाहिए।''*

पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के आधार पर, न्यायालय ने रिट याचीगण के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अपास्त कर दी थी।

12. वर्तमान मामले में भी, पक्षों के बीच विवाद की प्रकृति यह देखते हुए समरुप है कि दोनों पक्षों ने इन मामलों में संदर्भ के अधीन भूमि पर अपने-अपने अधिकार, टाइटल और कब्जा का दावा किया है। जहाँ रैयतों से प्राप्त रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों के आधार पर याचीगण अधिकार और टाइटल का दावा कर रहे हैं, वहीं राज्य और वन विभाग दावा कर रहे हैं कि इन मामलों में अंतर्ग्रस्त भूमि संरक्षित वन का अंश और तद्द्वारा राज्य की भूमि है।

वर्तमान आवेदनों में अंतर्ग्रस्त तथ्य और विवाद की प्रकृति **ब्रजेश कुमार राय (ऊपर)** के मामले में उठाए गए तथ्यों और विवाद के समरुप होने के चलते **ब्रजेश कुमार राय (ऊपर)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित निर्णयाधार पूरी तरह लागू होंगे।

पूर्वोक्त स्थिति में, अधिकार और टाइटल पर वास्तविक विवाद होने के चलते, मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि याचीगण के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही विधि में अपेक्षित नहीं है। अपने वन विभाग सहित राज्य सक्षम अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय के समक्ष अथवा इस न्यायालय के समक्ष लंबित वाद/अपील में उपचार का अनुसरण कर सकते हैं।

13. तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में और ऊपर कथित कारणों से बी॰ एफ॰ केस सं॰ 21 वर्ष 2009, 20 वर्ष 2009, 19 वर्ष 2009 और 22 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 5.11.2009 का संज्ञान का एक ही आदेश और संज्ञान के आदेश के अनुसरण में याचीगण के विरुद्ध अवर न्यायालय के समक्ष लंबित पृथक मामलों के माध्यम से समस्त दांडिक कार्यवाही, जहाँ तक यह वर्तमान मामलों के याचीगण से संबंधित है, एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ इन दांडिक विविध याचिकाओं को तद्नुसार अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

रोहित कुमार एवं एक अन्य

बनाम

श्री राजेश कुमार गुप्ता एवं अन्य

W.P. (C) No. 3791 of 2009. Decided on 13th August, 2010.

बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 15—बेदखली वाद–किराएदारों-याचीगण को वाद संस्थापित किए जाने की तिथि से 50,000/-रु॰ प्रतिमाह की दर से बकाया एवं चालू किराए को जमा करने का निर्देश–वाद व्यतिक्रम, व्यक्तिगत आवश्यकता एवं अभिधृति के निबंधनों के उल्लंघन के लिए दाखिल किया गया था–किराएदार तय किराए का भुगतान करने के दायी हैं न कि HRC द्वारा नियत किराए का–एक लिखित पट्टा समझौता के अंतर्गत संपत्ति को पट्टा पर लेने के उपरांत तय किराए का भुगतान न करने एवं उचित किराए के अभिप्रायित नियतिकरण के लिए HRC के पास जाने में याचीगण का आचरण काफी अनुचित है–आक्षेपित आदेश उपान्तरित। (पैराएँ 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–1999(3) PLJR 120; 1998(2) PLJR 619—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Delip Jerath, Manoj Tandon, For the Petitioners; M/s L. K. Lal, K. K. Ambastha, For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका टाइटल (बेदखली) वाद सं॰ 5 वर्ष 2007 में बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (संक्षेप में बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम) की धारा 15 के अधीन भूस्वामी-प्रत्यर्थीगण की ओर से दाखिल याचिका को अनुज्ञात करते हुए और वाद के संस्थापन की तिथि अर्थात् दिनांक 19.12.2007 से 50,000/-रुपया की प्रतिमाह की दर से किराया का बकाया और वर्तमान किराया जमा करने का निर्देश किराएदारों-याचीगण को देते हुए विद्वान सब-जज VII, राँची द्वारा पारित दिनांक 27.7.2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. किराएदारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री दिलीप जेरथ ने निम्नलिखित निवेदन किया है:

किराएदारों ने दिनांक 7.5.2007 को सब डिविजनल अधिकारी-सह-आवास किराया नियंत्रक, राँची (संक्षेप में एच॰ आर॰ सी॰) के समक्ष प्रश्नगत परिसर के उचित किराया के नियतिकरण के लिए आवेदन दिया था जिसे बी॰ बी॰ सी॰ केस सं॰ 15 वर्ष 2007 के रूप में दर्ज किया गया था जिसमें दिनांक 3.9.2007 के आदेश द्वारा 30,000/-रुपया प्रतिमाह पर किराया नियत किया गया था और दिनांक 23.11.2007 को बी॰ बी॰ सी॰ केस सं॰ 40 वर्ष 2007 में न्यायालय में उक्त किराया जमा करने का निर्देश किराएदारों को दिया गया था जिसे जमा कर दिया गया था। वर्तमान वाद भूस्वामियों द्वारा दिनांक 19.12.2007 को दाखिल किया गया था जिसमें बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 15 के अधीन उक्त आवेदन दाखिल किया गया था जिसमें किराएदारों ने प्रत्युत्तर दाखिल किया था। **अरुण कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम गौरव कृष्ण सहाय एवं अन्य,** 1999 (3) PLJR 120; और **सैय्यद आबिद इमाम बनाम शराफत हुसैन,** 1998 (2) PLJR 619 में प्रकाशित मामलों में निर्णय पर विश्वास करते हुए उन्होंने निवेदन किया कि वाद दाखिल किए जाने के पहले एच॰ आर॰ सी॰ द्वारा नियत उचित किराया अर्थात् 30,000/-रुपया प्रतिमाह को अधिनियम की धारा 15 के निबंधनानुसार 'अंतिम भुगतान किया गया किराया' के रूप में मानना होगा।

3. दूसरी ओर, भूस्वामियों की ओर से उपस्थित श्री लाल ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया। उन्होंने निवेदन किया कि एच॰ आर॰ सी॰ के उक्त आदेश के विरुद्ध अपील सं॰ 35R 15 वर्ष 2007-08 अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि एच॰ आर॰ सी॰ द्वारा उचित किराया के नियतन ने अंतिमता प्राप्त कर ली है और इसलिए उक्त निर्णय इस मामले पर लागू होने योग्य नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से प्रत्येक तीन वर्षों पर 15% वृद्धि के अनुबंध के साथ 50,000/-रुपया प्रतिमाह की दर से तय किराया पर पक्षों के बीच दिनांक 1.6.2005 को पट्टा करार हुआ था। प्रतिभूति/अग्रिम के रूप में किराएदारों द्वारा तीन लाख रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था जिसे नवम्बर 2005 तक के लिए समायोजित किया गया था क्योंकि पट्टा पर संपत्ति लेने के बाद किराएदारों द्वारा किराया का भुगतान नहीं किया गया था। अंतत: व्यतिक्रम, निजी आवश्यकता और किराएदारी के निबंधनों को भंग करने के आधार पर वाद दाखिल किया गया था। उन्होंने बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 15 के अधीन भूस्वामियों की ओर से दाखिल याचिका के प्रति किराएदारों द्वारा दाखिल प्रत्युत्तर के पैराग्राफ-9 और पैराग्राफ-13 के निम्नलिखित अंश को निर्दिष्ट किया:

> *''बी॰ बी॰ सी॰ मामले के लंबित रहने और इस पर एस॰ डी॰ ओ॰, राँची द्वारा अंतिम आदेश पारित करने के दौरान प्रतिवादीगण नियमित रूप से मार्च 2007 से दिसम्बर 2007 तक वाद परिसर के मासिक किराया को एम॰ ओ॰ के माध्यम से वादीगण को भेजते रहे जिसे वादीगण ने स्वीकार करने से निरंतर अस्वीकार किया।''*
>
> *''केवल 50,000/- रुपया प्रतिमाह की दर से वाद परिसर का किराया संग्रहित करने में वादीगण ने 20,000/- रुपया प्रतिमाह की दर से अधिक किराया प्राप्त किया है क्योंकि किराया नियंत्रक द्वारा वाद परिसर का उचित किराया 30,000/- रुपया प्रतिमाह की दर से नियत किया गया है।*
>
> *किराया जमा करने के आदेश के पहले यह विद्वान न्यायालय किराया नियंत्रक द्वारा नियत और प्रत्यर्थीगण द्वारा जमा की गयी आधिक्य राशि को समायोजित करे।''*

श्री लाल ने निवेदन किया कि इस प्रकार किराएदारों ने स्वीकार किया कि 'अंतिम भुगतान किया गया किराया' 50,000/-रुपया प्रतिमाह की दर से था।

4. स्वीकृत रूप से, किराएदारों ने प्रत्येक तीन वर्षों के अवसान पर 15% की वृद्धि के साथ 50,000/-रुपया प्रतिमाह की दर से किराए पर दिनांक 1.6.2005 के प्रभाव के साथ लिखित पट्टा करार के अधीन वाद परिसर पट्टा पर लिया था किन्तु उन्होंने तय किराया का भुगतान नहीं किया था और उचित किराया के नियतन के लिए एच॰ आर॰ सी॰ के पास गए थे जिसे वाद संस्थापित किए जाने के पहले 30,000/-प्रतिमाह की दर पर नियत किया गया था।

5. किराएदारों द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों पर उनके मामले का समर्थन करने के बजाय, उनके विरुद्ध जाता है। दोनों मामलों में, नियत उचित किराया तय किराया से अधिक उच्च था जबकि इस मामले में नियत किराया तय किराया से कम है और वाद संस्थापन के पहले इसने अंतिमता प्राप्त नहीं की थी।

6. अरुण कुमार अग्रवाल (ऊपर) के मामले में, यह भी संप्रेक्षित किया गया है कि ''अंतिम भुगतान किया गया किराया'' जैसा बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 15 में सामने आता है, किराएदार द्वारा भूस्वामी को 'अंतिम वैध रूप से भुगतान योग्य किराया है।

7. अनेक निर्णयों पर विचार करने के बाद **सैय्यद आबिद इमाम (ऊपर)** के मामले में निम्नलिखित कहा गया है:

"10. 1947 के पुराने अधिनियम के अधीन उचित किराया के अवधारण की तुलना में 1982 के अधिनियम में पूर्ण प्रस्थान किया गया है। उचित किराया के नियतन का ढंग बदल दिया गया है और किराया पर दिए गए परिसर का नगरपालिका द्वारा किया गया मूल्यांकन, जो पुराने अधिनियम में मापदंड था, को दरकिनार कर दिया गया था और अब इसका विनिश्चय मुहल्ला में प्रचलित किराया के आधार पर करना होगा। दूसरे शब्दों में, पुराने अधिनियम के अधीन, उचित किराया सदैव सामान्य तय किराया अथवा मुहल्ला में प्रचलित सामान्य किराया से काफी नीचे निश्चित किया जाता था क्योंकि उचित किराया का विनिश्चय संपत्ति का नगरपालिका द्वारा किए गए मूल्यांकन पर आधारित था। अतः उक्त प्रावधान सदैव किराएदार द्वारा भूस्वामी के विरुद्ध यह देखते हुए हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जाता था कि जब कभी भूस्वामी ने किराएदार को बेदखल करने का प्रयास किया, किराएदार उचित किराया के विनिश्चय के लिए नियंत्रक के पास तुरन्त जाता था। विधायन ने भूस्वामी पर किसी अनुचित बोझ/कठिनाई से बचने के लिए धारा 11A (पुराना) में 'अंतिम भुगतान किया गया किराया' शब्दों का प्रयोग किया और किराएदार को यह प्रतिवाद करने से रोका कि उचित किराया और न कि अंतिम भुगतान किया गया किराया ही जमा किया जाना चाहिए था। यह प्रतीत होता है कि विधायिका इस तथ्य के प्रति जागरूक थी कि विधि में इस प्रभाव का संशोधन कि एक ही अथवा समरुप वास सुविधा के लिए मुहल्ला में प्रचलित किराया की दर के आधार पर उचित किराया का विनिश्चय करना होगा, करके उचित किराया को बढ़ाने की आवश्यकता थी। तद्नुसार, 1982 के अधिनियम में अधिनियम की धारा 6 में उक्त मापदंड जोड़ा गया था।''

"14. .....इस चरण पर, मैं भारत संघ बनाम धनवन्ती देवी, (1996 (6) SCC 44) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करूँगा जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने संप्रेक्षित किया था।

अतः, किसी निर्णय के बाध्यकारी बल को समझने और इसका अधिमूल्यन करने के लिए यह देखना सदैव आवश्यक है कि मामले के तथ्य क्या थे जिसमें निर्णय दिया गया था और वह बिन्दु क्या था जिसको विनिश्चित किया जाना था। किसी निर्णय का इस तरह पठन नहीं किया जा सकता है मानों यह संविधि हो। किसी निर्णय में किसी शब्द अथवा खंड अथवा वाक्य को विधि के संपूर्ण प्रतिपादन के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। विधि गतिहीन नहीं बनी रह सकती है और इसलिए पूर्व निर्णयों के प्रयोग में न्यायाधीशों को ज्ञानपूर्ण तकनीक अपनानी होगी।

8. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किराएदार तय किराया का और न कि एच॰ आर॰ सी॰ द्वारा नियत किराया का जो इस अपील में चुनौती के अधीन है, भुगतान करने के दायी हैं। मैं यह संप्रेक्षण करने के लिए मजबूर हूँ कि लिखित पट्टा करार के अधीन संपत्ति को पट्टा पर लेने के बाद तय किराया का भुगतान नहीं करने और उचित किराया के तात्पर्यित नियतन के लिए एच॰ आर॰ सी॰ के पास जाने का याचीगण का आचरण अत्यन्त अनुचित था।

9. किन्तु, आक्षेपित आदेश को उस सीमा तक परिवर्तित किया जाता है कि याचीगण को वाद के संस्थापन की तिथि अर्थात् 19.12.2007 से अगस्त 2010 तक 50,000/-रुपया प्रतिमाह की दर से किराया का बकाया दिनांक 15.9.2010 तक जमा करने का और सितम्बर 2010 से तथा इसके बाद से प्रत्येक आने वाले माह के पंद्रहवें दिन तक किराया का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर उनके प्रतिरक्षा को काटकर हटा दिया जाएगा।

10. परिणामस्वरुप, यह याचिका आक्षेपित आदेश में पूर्वोक्तानुसार परिवर्तन के साथ खारिज की जाती है। किन्तु व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शशिकान्त सी॰ अदेसरा

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. Rev. No. 427 of 2008. Decided on 4th August, 2010.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धाराएँ 406, 420, 467, 468, 471 एवं 120-B/34—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं कूटरचना—विचारण न्यायालय द्वारा उन्मोचित इस आधार पर कि मामला शुद्ध रूप से सिविल प्रकृति का था—दाण्डिक विधि का इस्तेमाल व्यक्तिगत दुश्मनी निकालने के एक युक्ति के तौर पर नहीं किया जाना चाहिए—उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग केवल अन्याय को दूर करने के लिए ही किया जाना चाहिए न कि अवैधताओं को दूर करने के लिए एवं अवर न्यायालय का निष्कर्ष मात्र इस कारण से उलटा नहीं जा सकता है कि एक अन्य दृष्टिकोण संभव था—विवाद सिविल प्रकृति का था—एक युक्तिसंगत आदेश द्वारा उनलोगों को दाण्डिक दायित्व से उन्मोचित करने में मजिस्ट्रेट न्यायोचित थे—याची स्वयं को विवाद से जोड़ने में विफल रहा ताकि उसे दाण्डिक पुनरीक्षण दाखिल करने का एक विधिक अधिकार उसे प्रदान किया जा सके या व्यापक आम जनता का हित दर्शाया जा सके—पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (पैराएँ 11 से 13)

अधिवक्तागण.—M/s Barun Kumar Sinha, Samir Kumar Lal, For the Petitioner; A.P.P., For the State; M/s A. K. Kashyap, K. P Choudhary, A. R. Choudhary, For the O.P. Nos. 2 to 6.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—यह दांडिक पुनरीक्षण सी॰/1-477/2005 में श्री डी॰ सी॰ अवस्थी, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 25.2.2008 के आक्षेपित आदेश के विरूद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/420/465/467/468/471/120B/34 के अधीन अभिकथित अपराधों के लिए यह संप्रेक्षित करते हुए उन्मोचित कर दिया गया था कि मामला, जिसे परिवादी रमेश कुमार रनपारा द्वारा प्रस्तुत किया गया था, शुद्धतः सिविल प्रकृति का मामला था और उनके विरूद्ध पूर्वोक्त धाराओं में आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान नहीं कर सका था, अतः विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक को उन्मोचित कर दिया गया था।

2. इस दांण्डिक पुनरीक्षण का याची परिवाद सं॰ C/1-477/2005 में न तो परिवादी और न ही अभियुक्त विपक्षी पक्षकार था और इस प्रकार वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण दाखिल करने के उसके अधिकार को चुनौती दी गयी है। स्वीकृत रूप से, परिवादी ने कोई पुनरीक्षण दाखिल नहीं किया था और न ही इसमें के याची द्वारा परिवादी को विपक्षी पक्षकार के रूप में अभियोजित किया गया है, जो स्वयं को सहयोगी बनाने में विफल रहा जो आम जनता का हित दर्शाते हुए इस दांडिक पुनरीक्षण को दाखिल करने का कोई विधिक अधिकार उसे प्रदान करता।

3. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि परिवादी रमेश कुमार रनपारा ने स्वयं को श्री जमशेदपुर गुजराती समाज का सचिव होने का दावा किया है जो सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 (इसमें इसके बाद अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के अधीन सम्यक् रूप से रजिस्टर्ड सोसाइटी है, जिसे वर्ष 1922 में स्थापित किया गया था और तत्पश्चात वर्ष 1940 में एक छोटा विद्यालय खोला गया था। विद्यालय अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रेशन सं॰ 82/बिहार/पटना के तहत वर्ष 1972 में रजिस्टर्ड किया गया था। परिवादी ने स्पष्ट किया कि उक्त विद्यालय, जिसे श्री जमशेदपुर गुजराती समाज द्वारा स्थापित किया गया था, वर्ष 1940 से उक्त समाज की प्रबंधक कमिटी द्वारा चलाया जा रहा था और इस प्रकार उक्त विद्यालय का क्रियाकलाप श्री जमशेदपुर गुजराती समाज के स्वामित्व और प्रबंधन में था जिसका ''नरभरन हंसराज गुजराती एम॰ ई॰ विद्यालय''। जमशेदपुर के नाम और शैली के अधीन अपना गठन, नियमावली और विनियमन था जिसे वर्ष 1940 में कार्यपालिका कमिटी के सदस्यों के अनुदेश के अधीन बनाया गया था। बारह सदस्यों से गठित कार्यपालिका कमिटी संस्थानों के क्रियाकलापों की देख-भाल करने के लिए समाज द्वारा प्राधिकृत थी किन्तु परिवादी ने अभिकथन किया कि परिवाद मामला संस्थापित किए जाने तक विगत दस वर्षों से श्री जमशेदपुर गुजराती समाज की कार्यपालिका कमिटि की आम बैठक नहीं बुलायी गयी थी। परिवाद में अभिकथन किया गया था कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 जो स्वयं को गुजराती समाज के पदाधिकारी और विद्यालय के प्रबंधक कमिटि के सदस्य होने का दावा करते थे, को एन॰ एच॰ गुजराती एम॰ ई॰ विद्यालय और एक अन्य विद्यालय डी॰ एन॰ कमानी उच्च विद्यालय से उत्पन्न आय और संपत्ति को हड़पने अथवा दुर्विनियोग करने का अधिकार नहीं था। बाद वाले विद्यालय को डी॰ एन॰ कमानी उच्च विद्यालय के नाम से नामित इस तथ्य के कारण किया गया था कि कमानी परिवार अर्थात विपक्षी पक्षकार के सदस्यगण दाता थे जिन्होंने विद्यालय भवन के निर्माण में योगदान दिया था और इस कारण से वे दोनों विद्यालयों को अपनी निजी संपत्ति मानते थे यद्यपि इन्हें श्री जमशेदपुर गुजराती समाज की प्रेरणा पर सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड किया गया था। परिवादी ने अभिकथन किया कि अपने अपवित्र, अवैध, गैर कानूनी और असद्भावपूर्व लक्ष्यों को साधने के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों द्वारा दिनांक 18.9.2003 को अप्राधिकृत रूप से विद्यालय की प्रबंधक कमिटि बनायी गयी थी और उन्होंने कतिपय दस्तावेजों का विनिर्मित किया था, जो तात्पर्यित रूप से विद्यालय से सरोकार रखने वाले न्यास विलेख थे और अभियुक्तगण (इसमे विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6) संसाधनों से उत्पन्न आय और विद्यालय के व्यय का विवरण नहीं प्रस्तुत कर रहे थे और तद्द्वारा अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए विपुल राशि दुर्विनियोजित कर लिये थे। वि॰ प॰ सं॰ 6 प्रफुल्ल एच॰ गांधी के विरूद्ध खास तौर से अभिकथन किया गया था कि उसने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 5 तक की मिलीभगत से तथाकथित प्रबंध कमिटि के सचिव का पद उपधारित कर लिया था और तद्द्वारा गुजराती समाज के सदस्यों से प्राप्त अभिदान सहित कोष का गबन कर लिया था।

4. विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान परिवादी के गवाहों के परीक्षण के बाद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों के विरूद्ध परिवादी द्वारा प्रस्तावित अपराध की समस्त धाराओं, तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अभिकथित अपराध, पर विस्तारपूर्वक विचार किया और इस निष्कर्ष पर आए कि इसमें वि॰ प॰ सं॰ 2 से 6 तक के विरूद्ध प्रथम द्रष्टया अभिकथित अपराध आकृष्ट नहीं हो सकते थे।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री बरूण कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि पृथक झारखण्ड राज्य के निर्माण के बाद श्री जमशेदपुर गुजराती समाज ने नए रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन दिया और तद्नुसार

सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1860 के अधीन दिनांक 12.7.2004 के रजिस्ट्रेशन सं॰ 129 के तहत उक्त समाज रजिस्टर्ड किया गया था। उसके अनुसरण में, समाज ने अपने फाइल को झारखंड राज्य, राँची की अधिकारिता में अंतरित करने के लिए रजिस्ट्रेशन महानिरीक्षक, बिहार, पटना को सूचित किया। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों ने वर्ष 1972 में और वर्ष 2004 में भी ऐसे रजिस्ट्रेशन के आधार पर मूल गुजराती समाज का सदस्यगण होने का दावा किया और वर्ष 2003-04 के लिए कार्यपालिका कमिटि के सदस्यों को भी निर्वाचित किया। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 के सदस्यों के आचरण की आलोचना करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि श्री जमशेदपुर गुजराती समाज के नियमावली और विनियमन के मुताबिक पाँच सदस्यों को न्यासियों के रूप में बहुमत से निर्वाचित करने के लिए समाज की आम बैठक बुलायी जानी चाहिए थी किन्तु विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 5 जो एक ही परिवार के सदस्यगण थे, ने स्वयं का न्यासी की सदस्यगण होने का दावा किया मानो उन्हें आम बैठक में बहुमत से निर्वाचित किया गया था और व्यक्ति की सदस्यता के नवीकरण के बहाने स्वयं अपने लाभों के लिए समाज के सदस्यों से अभिदान राशि उगाहना शुरू कर दिया।

6. विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन करते हुए ध्यान आकृष्ट किया कि जाँच के दौरान परीक्षित गवाहों के बयान में विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 के सदस्यों के विरूद्ध अभिकथन विनिर्दिष्ट थे और विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने सामग्री के प्रति प्रथम दृष्टया संतुष्ट होने पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/420/465/467/468/471 सह-पठित 120B के अधीन परिवाद के अभियुक्त जो इसमें वि॰ प॰ सं॰ 2 से 6 थे, के विरूद्ध अपराध का संज्ञान लिया किन्तु बाद में याची को आश्चर्यचकित करते हुए अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के इसी संवर्ग पर विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने दिनांक 25.2.2008 के आक्षेपित आदेश द्वारा यह संप्रेक्षित करते हुए कि वर्तमान मामला सिविल प्रकृति का मामला था, विपक्षी पक्षकार के सदस्यों को उन्मोचित कर दिया।

7. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ कश्यप ने उपर किए गए निवेदनों का जोरदार सामना किया और वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण दाखिल करने में इसमें के याची के अधिकार का विवाद्यक उठाया क्योंकि वह परिवाद केस सं॰ C/1-477/2005 में समस्त दांडिक कार्यवाही में न तो सूचक था और न ही गवाह और याची पर कोई प्रतिकूल प्रभाव अथवा अन्याय कारित नहीं हुआ है क्योंकि उसे इस कारण से आक्षेपित आदेश द्वारा व्यथित नहीं कहा जा सकता है कि याची कभी भी श्री जमशेदपुर गुजराती समाज के सदस्य नहीं था जिसे तत्कालीन बिहार राज्य में रजिस्ट्रेशन सं॰ 82/1971-72 के तहत अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड किया गया था और बाद में पृथक झारखंड राज्य के निर्माण के बाद सोसाइटीज के पूर्व रजिस्ट्रेशन के नवीकरण के लिए कहते हुए राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित अधिसूचना के अनुसरण में अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रेशन सं॰ 129/2004-05 के माध्यम से रजिस्टर्ड किया गया था।

8. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ कश्यप ने आगे इंगित किया कि प्रतिद्वंदी समूह द्वारा इसी नाम के एक समानान्तर समाज ने वर्ष 2004 में पहले आवेदन दिया था जिसे झारखंड राज्य के सृजन के बाद अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रेशन सं॰ 129/2004-05 के तहत रजिस्टर्ड किया गया था जो तत्कालीन बिहार राज्य में वर्ष 1972 के किसी अन्य रजिस्ट्रेशन को धारित अथवा निर्दिष्ट नहीं करता था और इस प्रकार रजिस्ट्रेशन सं॰ 129/2004-05 उससे बिल्कुल भिन्न था जिसे प्रतिद्वंदी समूह द्वारा प्राप्त किया गया था और उसका समाज के साथ कोई भी संबंध नही था जिसे तत्कालीन बिहार राज्य में वर्ष 1972 में पहले ही रजिस्टर्ड किया गया था।

9. श्री कश्यप ने प्राख्यान किया कि वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण परोक्ष मंशा से, व्यक्तिगत प्रतिशोध लेने के लिए और विपक्षी पक्षकार के सदस्यों को परेशान करने के असद्भावपूर्ण आशय से याची द्वारा दाखिल किया गया था। इस तरीके से आक्षेपित आदेश जिसे सामग्रियों के आधार पर अभिलिखित किया गया था को विफल करने के लिए याची विधि की प्रक्रिया का दुरूपयोग कर रहा था। विद्वान अधिवक्ता ने दोहराया कि उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण अधिकारिता का अवलंब लेने का अधिकार याची को नहीं था जब उनके दांडिक दायित्व से विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के सदस्यों को उन्मोचित करते हुए आक्षेपित आदेश में कोई गलती, अवैधता अथवा अनौचित्यता नहीं थी।

10. अंत में श्री कश्यप ने निवेदन किया कि टाइटल वाद सं॰ 99 वर्ष 2005 के तहत एक टाइटल वाद पहले से ही लंबित था जिसमें न्यास के सृजन और कई अन्य प्रासंगिक विवाद्यकों को चुनौती दी गयी थी और इसका न्यायनिर्णयन अभी किया जाना शेष था। जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धाराओं 465/467/468/471 सह-पठित 120B और 34 के अधीन अपराध की परिधि, विस्तार और लागू होने का संबंध है, आरोप के विरचित किए जाने के पहले दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान कोई प्रथम दृष्टया सामग्री अभिलेख पर नहीं लायी जा सकी थी जो विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के दांडिक दायित्व की अपेक्षा करती और इस प्रकार गुणागुणरहित होने के कारण दांडिक पुनरीक्षण खारिज किया जा सकता है।

11. याची ने आक्षेपित आदेश, जिसे श्री डी॰ सी॰ अवस्थी, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी द्वारा दिनांक 25.2.2008 को दर्ज किया गया था जिसके द्वारा परिवाद याचिका, जिसे परिवादी रमेश कुमार रनपारा द्वारा लाया गया था, के अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया गया था क्योंकि उनके अर्थात इसमें वि॰ प॰ सं॰ 2 से 6 के विरूद्ध परिवादी द्वारा उठाया गया विवाद शुद्धतः सिविल प्रकृति का विवाद पाया गया था, को अपास्त करने की प्रार्थना के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 397 और 401 के अधीन इस दांडिक पुनरीक्षण को दाखिल किया है। यह स्पष्ट करते हुए कि याची न तो परिवादी था और न ही परिवाद केस सं॰ सी॰/1-477/2005 में अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार था और इस प्रकार वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण दाखिल करने के लिए वह सक्षम पक्ष नहीं था, याची शशिकान्त सी॰ अदेसरा के अधिकार को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 द्वारा निरन्तर रूप से चुनौती दी गयी है। स्वीकृत रूप से परिवादी ने न तो पुनरीक्षण दाखिल किया था और न ही वर्तमान पुनरीक्षण में विपक्षी पक्षकार के रूप में उसे अभियोजित किया गया था। विधि सुनिश्चित है कि निजी प्रतिशोध लेने के लिए दांडिक विधि को उपकरण के रूप में इस्तमाल नहीं किया जा सकता है। व्यापक प्रतिपादन के रूप में पुनरीक्षणीय हस्तक्षेप न्योयाचित हो सकता है जहाँ (a) निर्णय पूर्ण रूप से गलत है, (b) विधि के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है, (c) निर्णय को प्रभावित करता तथ्य का निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित नहीं है, (d) पक्षों के तात्विक साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है और (e) न्यायिक स्वविवेक का प्रयोग मनमाने अथवा अनुचित रूप से किया गया है। यह भी सुनिश्चित विधि है कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षणीय शक्तियों का प्रयोग केवल अन्याय को सुधारने के लिए और न कि अवैधताओं को परिशोधित करने के लिए ही करना होगा और कि अवर न्यायालय के निर्णय को केवल इसलिए पलटा नहीं जा सकता है क्योंकि एक अन्य दृष्टिकोण संभव है।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों द्वारा दिए गए तर्क को ध्यान में रखते हुए मैं विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक के विद्वान वरीय अधिवक्ता के प्रतिवाद में सार पाता हूँ कि यद्यपि अपराध का संज्ञान लिया गया था किन्तु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202 के अधीन जाँच के दौरान संग्रहित सामग्रियों से संतुष्ट होकर विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने संप्रेक्षित किया कि प्रथम दृष्टया अभिकथित अपराध के

लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक की सह-अपराधिता इंगित नहीं करती है और आगे संप्रेक्षित किया कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों ने सुझाया कि विवाद सिविल प्रकृति का था। सकारण आदेश द्वारा उनके दांडिक दायित्व से उनको उन्मोचित करने में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी न्यायोचित थे और मैं इसे मानता और मान्य ठहराता हूँ। याची के विद्वान अधिवक्ता आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता अथवा अनियमितता अथवा ऐसा आदेश देने में न्यायिक दंडाधिकारी की अनौचित्यता दर्शाने में विफल रहे। दिए गए तथ्य और स्थिति में विवाद से असंबंधित, किसी अजनबी को प्रतिशोध लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जब परिवादी स्वयं को आक्षेपित आदेश से व्यथित नहीं पाता है जिसके द्वारा विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 से 6 तक को उनके दांडिक दायित्व से उन्मोचित कर दिया गया था। याची विवाद के साथ स्वयं को जोड़ने में विफल रहा जो उसे इस दांडिक पुनरीक्षण को दाखिल करने का विधिक अधिकार प्रदान कर सकता था अथवा व्यापक जनहित दर्शाते हुए वह इस न्यायालय की असाधारण रिट अधिकारिता का अवलंब ले सकता था। मैं नहीं पाता हूँ कि उन्मोचन का आदेश अभिलिखित करते हुए न्यायिक दंडाधिकारी ने अपने स्वविवेक को मनमाने अथवा अनुचित रूप से प्रयोग किया है विपक्षी पक्षकार के अधिवक्ता ने स्वीकार किया है कि कतिपय विवादों के न्यायनिर्णयण के लिए समुचित न्यायालय के समक्ष पहले ही टाइटल वाद दाखिल किया जा चुका है जिसके न्याय-निर्णयन की संभावना है। आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. अत: मैं मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, इस दांडिक पुनरीक्षण को गुणागुण रहित पाता हूँ और इस प्रकार, यह खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मो॰ शफीक एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Writ Petition (Civil) No. 4470 of 2004. Decided on 31st July, 2010.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908–धारा 71-A–प्रत्यावर्तन–विशेष अधिकारी द्वारा भूमि के प्रत्यावर्तन का आवेदन प्रत्यर्थी के पक्ष में अनुज्ञात किया गया–निष्काषण का आदेश निष्पादित नहीं किया जा सका क्योंकि भूमियों पर याचीगण का कब्जा पाया गया था–अभिधृति विधियों के अंतर्गत एक वैध कृषि पट्टा का सृजन रजिस्टर्ड पट्टा लिखत के द्वारा किया जा सकता है, और अगर ऐसा एक रजिस्टर्ड दस्तावेज का सृजन किया जाता है, पट्टेदार का अभिधान प्रमाणित करने के लिए कब्जे का परिदान अनिवार्य नहीं है–लेकिन, अगर पट्टा रजिस्टर्ड नहीं है तथा अभिधान साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य नहीं है, तो सम्बन्धित अभिधारी के पास सदैव ही यह दर्शाने का विकल्प खुला होगा कि उसने वास्तविक कब्जा तथा भूधारक द्वारा लगान की स्वीकृति के बल पर रैयती हित अभिप्राप्त किया है–याचीगण ने दावाकृत दस्तावेजों तथा साथ ही वास्तविक कब्जे दोनों के आधार पर वैकल्पिक अभिवाकों पर अपना-अपना दावा पेश किया है–1949 में छप्परबंदी बन्दोबस्ती की अभिप्रायित तिथि से ही भूमि पर याचीगण के वास्तविक कब्जे के दावे पर एक निश्चित निष्कर्ष अभिलिखित करना विशेष अधिकारी की ओर से बाध्यकारी था–आक्षेपित आदेश अपास्त–मामला पुनर्विचार हेतु विशेष अधिकारी के पास प्रतिप्रेषित। (पैराएँ 16 से 20)

निर्णयज विधि.—1967 BLJR 574; 1955 BLJR 24; AIR 1868 Patna 302—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. Pratyush Kumar, For the Petitioners; Mr. L. K. Lal, For the Respondents.

आदेश

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.—प्रत्यर्थी सं॰ 6 से 11 पर नोटिसों को तामील किए जाने के बावजूद वे न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुए हैं। प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 5 तक के अधिवक्ता उपस्थित हैं। अत: याचीगण के अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं॰ 1 से 5 तक के अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदनों के आधार पर मामले की सुनवाई की गयी है।

2. याचीगण ने इस रिट आवेदन में सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम, 1908 के एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 129 वर्ष 1986-87 में विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 4) द्वारा पारित दिनांक 28.8.1999 के आदेश को चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन विवादित भूमि के प्रत्यावर्तन को धारा 71A (सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम, 1908) के अधीन निजी प्रत्यर्थी सं॰ 6 से 11 तक के पक्ष में अनुज्ञात किया गया है। केस सं॰ 220R15/1999-2000 में उप-कमिश्नर, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 3) द्वारा पारित दिनांक 3.6.2002 के आदेश (परिशिष्ट-6) को भी चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा विशेष अधिकारी के आक्षेपित आदेश के विरूद्ध याचीगण द्वारा दाखिल अपील को खारिज कर दिया गया था। आगे, एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 97 वर्ष 2003 में कमिश्नर, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 2) द्वारा पारित दिनांक 26.8.2003 के आदेश (परिशिष्ट-7) को भी चुनौती दी गयी है जिसके द्वारा उप-कमिश्नर के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया था।

3. इस मामले के निपटारे के लिए प्रासंगिक तथ्य निम्नलिखित हैं:

अंचलाधिकारी, टाउन अंचल, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा प्रस्तुत रपट के आधार पर 33 डिसमिल माप वाली हिन्दपीरी, राँची अवस्थित खाता सं॰ 34 के अधीन भूखंड सं॰ 759 से संबंद्ध भूमि के संबंध में प्रत्यर्थी सं॰ 6 के विरूद्ध सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन एस॰ ए॰ आर॰ सं॰ 129 वर्ष 1986-87 के तहत कार्यवाही आरंभ की गयी थी। मामले में बेदखली का आदेश पारित किया गया था किन्तु इसे निष्पादित नहीं किया जा सका था क्योंकि उक्त भूमि का दौरा करने पर याचीगण को भूमि के कब्जा में पाया गया था।

4. विशेष अधिकारी द्वारा पारित बेदखली के आदेश के बारे में सूचना दिए जाने पर याचीगण ने इस न्यायालय में सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 955 वर्ष 1993(R) वाली रिट याचिका दाखिल किया। दिनांक 20.1.1994 के आदेश द्वारा इस न्यायालय ने याचीगण और इसमें प्रोफॉर्मा प्रत्यर्थी को कार्यवाही में आवश्यक पक्षों के रूप में जोड़ने की अनुमति देने का निर्देश विशेष अधिकारी (प्रत्यर्थी सं॰ 4) को दिया।

आदेश के अनुसरण में, याचीगण और प्रोफॉर्मा प्रत्यर्थी को कार्यवाही में पक्ष बनाया गया था जो नए सिरे से आरंभ की गयी थी। याचीगण ने विवादित भूमि पर अपने अधिकार, टाइटल और हित का दावा करते हुए कारण बताओं का उत्तर दाखिल किया।

5. याचीगण का मामला, जैसा अभिवचन किया गया है, यह है कि प्रश्नगत भूमि मूलत: अभिलिखित रैय्यतों अर्थात सोमरा ओराँव और मुरला ओराँव को थी। मूल रैय्यतों ने भूमि पूर्व भूस्वामी अर्थात बारालाल कंदर्पनाथ सहदेव को दे दी थी।

6. दिनांक 3.12.1938 को, भूतपूर्व भूस्वामी ने भूमि का कब्जा ले लिया। काफी बाद, दिनांक 13.1.1949 को उसने किसी शेख करामत पुत्र शेख रहीम के पक्ष में भूमि का छप्परबन्दी बन्दोबस्ती प्रदान

किया। अपने पक्ष में बन्दोबस्ती किए जाने के बाद उक्त बन्दोबस्तदार के छप्परबन्दी लगान का निर्धारण भी भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा किया गया था। बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के अधीन मध्यवर्ती अधिकारों के निहित किए जाने पर भूतपूर्व भूस्वामी ने प्रश्नगत भूमि पर छप्परबन्दी अधिकारों के साथ रैय्यत के रूप में बन्दोबस्तदार शेख करामात के नाम की घोषणा करते हुए मुआवजा केस सं॰ 6/55-56 में रिटर्न दाखिल किया। तत्पश्चात, भूमि के संबंध में, बन्दोबस्तदार के नाम पर जमाबन्दी खोली गयी थी और जमाबन्दी खोले जाने के समय से ही बन्दोबस्तदार शेख करामात नियमित रूप से राज्य सरकार को लगान दे रहा था और उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारीगण नियमित रूप से लगान देना जारी रखे हुए थे।

याचीगण का आगे का मामला यह है कि शेख कलीम और शेख मुस्लिम, जो मूल बन्दोबस्तदार के उत्तरजीवी विधिक उत्तराधिकारीगण और प्रतिनिधिगण थे, ने भूमि याचीगण और प्रोफॉर्मा प्रत्यर्थीगण को विभिन्न विक्रय विलेखों, जिन्हें दिसम्बर 1988 और फरवरी 1989 में निष्पादित और पंजीकृत किया गया था, के माध्यम से बेच दिया।

खरीद की तिथि के बाद से ही याचीगण भूमि पर काबिज हो गए और इसके उपर आवासों का निर्माण किया और सभी संबंधित की जानकारी में सार्वजनिक रूप से अपने परिवारों के साथ उसमें निवास कर रहे हैं।

विवादित भूमि पर अधिकार के दावा के समर्थन में याचीगण ने अभ्यर्पण का दस्तावेज, बन्दोबस्ती का दस्तावेज, राज्य सरकार में मध्यवर्ती हित निहित किए जाने पर भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा दाखिल रिटर्न और याचीगण एवं प्रोफॉर्मा प्रत्यर्थीगण के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेखों को दाखिल किया था।

यहा यह ध्यान में लेना आवश्यक है कि विशेष अधिकारी के समक्ष कार्यवाहियों में, प्रत्यर्थी सं॰ 6 से 11 तक उपस्थित नहीं हुए थे अथवा कार्यवाही के किसी चरण पर प्रतिवाद नहीं किया था।

7. विशेष अधिकारी के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से प्रतीत होता है कि याचीगण का दावा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि दस्तावेजों, जिन्हें याचीगण द्वारा अपने मामले के समर्थन में प्रस्तुत किया गया था गैर-रजिस्टर्ड होने के नाते और तात्पर्यित बन्दोबस्तदार के पक्ष में भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा अथवा तात्पर्यित बन्दोबस्तदार के पक्ष में सरकार द्वारा भी जारी लगान रसीदों, यदि हो, को प्रस्तुत करने में याची की विफलता के चलते उक्त दस्तावेज विश्वसनीय नहीं है। यह भी संप्रेक्षित किया गया था कि अंचलाधिकारी के रपट के मुताबिक वर्ष 1969 के पहले रेफरेन्स के अधीन विवादित भूमि पर कोई निर्माण विद्यमान नहीं था और विद्यमान संरचना याचीगण के पक्ष में वर्ष 1988 में विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद ही निर्मित की गयी प्रतीत होती है। विशेष अधिकारी ने इस आधार पर वर्ष 1938 के गैर रजिस्टर्ड अभ्यर्पण विलेख की प्रतियों को स्वीकार करने से इंकार कर दिया कि इसे साक्ष्य अधिनियम के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के अनुरूप दाखिल नहीं किया गया था। विशेष अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि कूटरचित दस्तावेजों के आधार पर और सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 के प्रावधानों के उल्लंघन में वर्ष 1988 में अपने पक्ष में भूमि का अंतरण याचीगण द्वारा प्राप्त किया गया था और इसलिए उन्होंने भूमि से याचीगण की बेदखली का निर्देश दिया।

8. याचीगण ने इस आधार पर विशेष अधिकारी के आक्षेपित आदेश का विरोध किया है कि यह बिल्कुल अनुचित है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के समुचित अधिमूल्यन के बिना है और साक्ष्य अधिनियम के अधीन और सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम के अधीन भी विधि के प्रावधानों के प्रति भ्रम के कारण है।

9. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विशेष अधिकारी ने इस पर विचार नहीं करने की गलती की है कि मूल अभिलिखित रैय्यत अर्थात सोमरा ओराँव और मूरला ओराँव ने दिनांक 3.12.1938 को भूतपूर्व भूस्वामी के पक्ष में स्वेच्छापूर्वक भूमि समर्पित कर दी थी। समय के उस बिन्दु पर प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार अभ्यर्पण के दस्तावेज को रजिस्टर करना अपेक्षित नहीं था। विशेष अधिकारी ने यह अधिमूल्यन नहीं करने में गलती की थी कि सादा हुक्मनामा के फलस्वरूप भूतपर्व भूस्वामी द्वारा बन्दोबस्तदार शेख करामात के पक्ष में की गयी बन्दोबस्ती वस्तुतः बन्दोबस्तदार के पक्ष में वैध अधिकार, टाइटल और हित प्रदान करती हैं जिसने भूतपर्व भूमि स्वामी द्वारा उस को भूमि के रैय्यती कब्जा के अंतरण पर भूमि पर रैयती हित प्राप्त किया था। भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा जारी लगान रसीदों और राज्य सरकार में भूमि निहित किए जाने के बाद राज्य सरकार द्वारा जारी समरूप लगान रसीदों ने याचीगण के विक्रेता को प्रश्नगत भूमि के संबंध में छप्परबन्दी रैय्यती के रूप में मान्यता प्रदान किया था और ये इस तथ्य को भी संपुष्ट करते हैं कि मध्यवर्ती हित को निहित किए जाने के बाद बन्दोबस्तदार शेख करामत ने भूमि पर अपने अधिकारों को पुख्ता किया था। अपने प्रतिवादों को समर्थन देने के लिए, विद्वान अधिवक्ता **मोस्मात उगनी एवं एक अन्य बनाम छोवा महतो एवं अन्य, [AIR 1968 Patna 302],** मामले में पटना उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय को निर्दिष्ट करते हैं और विश्वास करते हैं।

विद्वान अधिवक्ता आगे जोड़ते हैं कि याचीगण में बेदखल करने के लिए छोटानागपुर टीनेन्सी ऐक्ट की धारा 68 के प्रावधानों को गलत रूप से लागू किया गया है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ संपुष्ट करेंगे कि मूल रैयती अभिधारी ने भूतपूर्व भूस्वामी के पक्ष में रैयती भूमि स्वेच्छापूर्वक समर्पित कर दी थी और अभ्यर्पण के दस वर्षों से अधिक के बाद याचीगण के विक्रेता के पिता के पक्ष में भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा भूमि का छप्परबन्दी बन्दोबस्त किया गया था।

10. याचीगण द्वारा दाखिल अपील में पारित उप-कमिश्नर के आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अभिलेख में गलती के आधार पर अपील को यह देखते हुए खारिज कर दिया गया था कि उप-कमिश्नर ने अभ्यर्पण की तिथि और छप्परबन्दी बन्दोबस्ती के बीच केवल 40 दिनों का अंतर गलत रूप से माना था जबकि अंतर 10 वर्षों से अधिक का था। विद्वान अधिवक्ता आगे जोड़ते हैं कि संबंधित प्राधिकारीगण ने इस पर विचार नहीं करने की गलती की है कि भूमि, जिसे छप्परबन्दी भूमि के रूप में बन्दोबस्त किया गया था, सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के प्रावधानों के अध्यधीन नहीं हो सकती थी। इसे अतिरिक्त, भूमि के प्रत्यावर्तन के लिए कार्यवाही का आरंभ किया जाना पोषणीय नहीं था चूँकि इसे उस तिथि, जब याचीगण का विक्रेता भूमि पर कब्जा में आया, के बाद 47 वर्षों के अंतर के बाद आरंभ किया गया था।

11. दूसरी ओर, राज्य के अधिवक्ता, आक्षेपित आदेशों के समर्थन में तर्क करते हुए निम्नलिखित आपत्तियों के आधार पर याचीगण द्वारा उठाए गए आधारों का खंडन करना चाहेंगे:-

(i) भूतपूर्व भूस्वामी के पक्ष में मूल अभिधारी द्वारा किया गया दावा करता विवादित भूमि के तात्पर्यित अभ्यर्पण का दस्तावेज गैर रजिस्टर्ड दस्तावेज है और इसलिए इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

(ii) यह संपुष्ट करने के लिए कि याचीगण के विक्रेता ने भूमियों पर रैयती हित और कब्जा अर्जित कर लिया था, किसी विश्वसनीय साक्ष्य की अनुपस्थिति में याचीगण, जिन्हें स्वीकृत रूप से वर्ष 1988 भूमि के अधिभोग में पाया गया है, छोटानागपुर टीनेन्सी अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों के अधीन भूमि से बेदखल किए जाने के दायी हैं।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और संबंधित प्राधिकारीगण के आक्षेपित आदेशों सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिशीलन के बाद, याचीगण के मामले के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण सामने आते हैं:–

(i) याचीगण का विनिर्दिष्ट दावा यह है कि मूल रैयती अभिधारियों ने वर्ष 1938 में भूतपर्व भूस्वामी के पक्ष में विवादित भूमि समर्पित कर दी थी।

(ii) भूतपूर्व भूस्वामी ने सादा हुकुमनामा निष्पादित करके याचीगण के विक्रेता के पूर्वज के पक्ष में भूमि का छप्परबन्दी बन्दोबस्त किया था।

(iii) इस तरह बन्दोबस्ती किए जाने के बाद भूतपूर्व भूस्वामी ने बन्दोबस्तदारों को लगान रसीदों को प्रदान किया था और बाद में, झारखंड राज्य में भूमि के निहित होने पर और मध्यवर्तियों के निर्वापन पर प्रश्नगत भूमि के संबंध में वर्तमान याचीगण के विक्रेता के पूर्वज को व्यवस्थापित रैयत के रूप में घोषित करते हुए रिटर्नों को प्रस्तुत किया था।

(iv) बाद में राज्य सरकार ने भी बन्दोबस्तदारों के रैयती हित को मान्यता प्रदान किया था और उनको लगान रसीदों को जारी किया था।

(v) विशेष अधिकारी के समक्ष एस० ए० आर० कार्यवाही में याचीगण ने सादा हुकुमनामा और मूल बन्दोबस्तदारों के पक्ष में तात्पर्यित रूप से जारी लगान रसीदों सहित मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया था।

(vi) मूल रैयती अभिधारी के उत्तराधिकारियों अर्थात प्रत्यर्थी सं० 7 से 11 तक को यद्यपि एस० ए० आर० कार्यवाही में भाग लेने के लिए नोटिस तामील किया गया था किन्तु वे कभी उपस्थित नहीं हुए और न ही याचीगण के दावा का कोई प्रतिवाद प्रस्तुत किया था और न ही भूमि पर अधिकार के अपने दावे के समर्थन में याचीगण द्वारा दिए गए और विश्वास किए गए दस्तावेजों की वैधता को विवादित किया था।

(vii) विशेष अधिकारी ने याचीगण के दावे को केवल इस आधार पर अस्वीकार किया है कि याचीगण द्वारा विश्वास किए गए दस्तावेज गैर रजिस्टर्ड दस्तावेज थे।

13. अत: भूमि पर याचीगण का दावा दो वैकल्पिक अभिवचनों पर आधारित है। पहला दावा दस्तावेजों अर्थात सादा हुक्मनामा और छप्परबन्दी बन्दोबस्ती के तात्पर्यित विलेख और लगान रसीदों के आधार पर है। वैकल्पिक अभिवचन यह है कि याचीगण के विक्रेता के पूर्वज वर्ष 1949 में ही भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा किए गए बन्दोबस्ती की तिथि पर भूमि पर वास्तविक रूप से काबिज हुए थे और अपने पक्ष में बंदोबस्ती की तिथि के बाद से ही भूमि पर अपने अधिकार, टाइटल और हित को पुख्ता किया था। इस प्रकार याचीगण का दावा भूमि के वास्तविक कब्जा और भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा स्वीकार किए गए लगान पर आधारित है।

14. विशेष अधिकारी के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि भूमि के वास्तविक कब्जा पर आधारित याचीगण के दावा पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है। विशेष अधिकारी ने केवल इस आधार पर दावा अस्वीकार कर दिया है कि याचीगण द्वारा दिए गए दस्तावेजों के गैर रजिस्टर्ड दस्तावेज होने के नाते ये साक्ष्य में अग्राहय हैं यद्यपि याचीगण ने अभिवाक् किया है कि तिथि अर्थात दिनांक 3.12.1938 पर जब मूल अभिलिखित अभिधारियों अर्थात सोमरा ओराँव और मूरला ओराँव ने भूमि

भूतपूर्व भूस्वामी को स्वेच्छापूर्वक समर्पित कर दिया था, तब प्रचलित रीति-रिवाज रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऐसे दस्तावेजों को रजिस्टर्ड करने आवश्यक नहीं बनाते थे।

15. उप-कमिश्नर के आक्षेपित आदेश के परिशीलन से प्रतीत होता है कि भूतपूर्व भूस्वामी के पक्ष में मूल अभिलिखित अभिधारियों द्वारा किया गया भूमि के अभ्यर्पण का दावा और मूल बन्दोबस्तदारों शेख करामात के पक्ष में भूमि की बन्दोबस्ती का दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया है कि अभ्यर्पण की तिथि और छप्परबन्दी बन्दोबस्ती की तिथि के बीच केवल 40 दिनों का अंतर था और तद्द्वारा संव्यवहार की वास्तविकता के संबंध में संदेह किया गया है। ऐसा निष्कर्ष इस तथ्य की दृष्टि में अभिलेख की गलती प्रतीत होता है कि अभ्यर्पण की तिथि वर्ष 1938 दावित की गयी थी और शेख करामात के पक्ष में की गयी दावित बन्दोबस्ती वर्ष 1949 की है। आक्षेपित आदेशों के पठन पर प्रतीत होता है कि शेख करामात के पक्ष में भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा की गयी दावित छप्परबन्दी बन्दोबस्ती की तिथि से ही भूमि के वास्तविक कब्जा के आधार पर किया गया याचीगण के दावा के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता को दोनों अधिकारियों ने अनदेखा किया है।

16. अभिधृति विधियों के अधीन यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि वैध कृषि पट्टा रजिस्टर्ड पट्टा लिखत द्वारा सृजित किया जा सकता है और यदि ऐसा रजिस्टर्ड दस्तावेज सृजित किया जाता है, पट्टाधारी के टाइटल को सिद्ध करने के लिए कब्जा दिया जाना आवश्यक नहीं है। किन्तु यदि पट्टा रजिस्टर्ड नहीं है और इसलिए टाइटल के साक्ष्य के रूप में अग्राहय है, संबंधित अभिधारी को यह दर्शाने की सदैव छूट रहेगी कि उसने वास्तविक कब्जा और भूस्वामी द्वारा स्वीकार किए गए लगान के बल पर रैयती हित प्राप्त किया है।

विधि का यह भी सुनिश्चित सिद्धान्त है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 91 के प्रावधान केवल किसी दस्तावेज के निबंधनों के अन्य साक्ष्य को अपवर्जित करते हैं किन्तु कब्जा और लगान के भुगतान द्वारा स्थापित भूस्वामी और अभिधारी के संविदा अथवा संबंध के अस्तित्व को अपवर्जित नहीं करते हैं।

बिहार अभिधृति अधिनियम किसी दस्तावेज के निष्पादन के लिए अभिधारी को अधिकार प्रदान करने से स्वत्वधारी के प्रति वर्जना सृजित नहीं करता है। किन्तु ऐसा दस्तावजे नि:संदेह रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा 17(1) (b) के अधीन रजिस्ट्रेशन की अपेक्षा करता है और यदि इसे रजिस्टर्ड नहीं किया गया है, रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा 49 की दृष्टि में टाइटल के साक्ष्य के रूप में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। किन्तु, अधिनियम की धारा 49 के परन्तुक के मुताबिक, गैर रजिस्टर्ड दस्तावेजों का उपयोग सांपार्श्विक उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। यद्यपि गैर रजिस्टर्ड दस्तावेज को अभिनिश्चित करने के उद्देश्य से टाइटल के साक्ष्य को सांपार्श्विक उद्देश्यों के लिए विचारों में लिया जा सकता है। यह दृष्टिकोण **देव शरण साहू बनाम राम दास साहू, 1967 BLJR 574,** मामले में निर्णय और **भागवत राम बनाम छेदीलाल, 1955 BLJR 24**, मामले में पूर्व निर्णय सहित पटना उच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा समर्थन पाता है।

पूर्वोक्त सिद्धान्त के आधार पर, पटना उच्च न्यायालय ने अनेक निर्णयों में अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई व्यक्ति गैर रजिस्टर्ड दस्तावेज पर रैयती हित प्राप्त करने का दावा करता है और आगे प्राख्यान करता है कि वह इसी पर वास्तविक कब्जा में आया और ऐसा कब्जा जारी रहा है और यह कि लगान का उसका भुगतान भूस्वामी द्वारा स्वीकार किया गया है, रैयती हित के प्रति उसके टाइटल को मान्यता देना ही होगा भले ही गैर रजिस्टर्ड पट्टा टाइटल के साक्ष्य के रूप में अग्राह्य हो।

17. मोसमान उगनी एवं एक अन्य (उपर) के मामले में पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने गैर रजिस्टर्ड हुकुमनामा के मूल्य पर विचार करते हुए निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:

''कब्जा की प्रकृति और चरित्रा दर्शाने के लिए गैर रजिस्टर्ड हुकुमनामा, यद्यपि ग्राह्य, पर विचार किया जा सकता था। पट्टा के निबंधनों का मौखिक साक्ष्य ग्राह्य नहीं है, किन्तु हुकुमनामा से स्वतंत्र, स्वयं लगान की रसीदें लगान की दर, क्षेत्र और पट्टाधारी के अधिकार की प्रकृति उपर्शित करेंगे।''

18. उसी निर्णय में न्यायालय ने आगे निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है:

''यह सत्य है कि वैध कृषि पट्टा रजिस्टर्ड लिखत द्वारा सृजित किया जा सकता है और यदि ऐसा रजिस्टर्ड दस्तावेज सृजित किया जाता है, पट्टाधारी के टाइटल को सिद्ध करने के लिए कब्जा दिया जाना आवश्यक नहीं है। किन्तु, यदि पट्टा को रजिस्टर्ड नहीं किया जाता है, और इसलिए, यह टाइटल के साक्ष्य के रूप में अग्राह्य है, संबंधित अभिधारी को यह दर्शाने की सदैव छूट रहेगी कि उसने वास्तविक कब्जा और भूस्वामी द्वारा स्वीकार किए गए लगान के दम पर रैयती हित प्राप्त किया था। दो वैकल्पिक अभिवचनों पर रैयती हित का दावा करने वाले व्यक्ति के प्रति कोई विधिक वर्जना नहीं है। वह पट्टा के लिखित दस्तावेज के आधार पर ऐसे अधिकार का दावा कर सकता है। किन्तु यदि ऐसा दावा इस आधार पर विफल रहता है कि दस्तावेज, अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रेशन योग्य होते हुए भी, रजिस्टर्ड नहीं किया गया था, फिर भी वास्तविक कब्जा के साथ भूस्वामी द्वारा स्वीकार किए गए लगान पर आधारित उसका वैकल्पिक दावा सफल हो सकता है।''

19. जैसा उपर इंगित किया गया है कि याचीगण ने दावित दस्तावेजों पर और वास्तविक कब्जा के आधार पर भी आधारित वैकल्पिक अभिवचनों पर अपना दावा पेश किया है। अत: वर्ष 1949 में छप्परबन्दी बन्दोबस्ती को तात्पर्यित तिथि से ही भूमि पर वास्तविक कब्जा के याचीगण के दावा पर एक निश्चित निष्कर्ष दर्ज करना विशेष अधिकारी की ओर से बाध्यकारी था।

20. इन तथ्यों और परिस्थितियों तथा उपर की गयी चर्चा के आलोक में, मैं इस आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 129 वर्ष 1986-87 में पारित विशेष अधिकारी का आक्षेपित आदेश और पुनरीक्षण प्राधिकारी का आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा विशेष अधिकारी के आक्षेपित आदेश को संपोषित किया गया है, को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। याचीगण द्वारा उठाए गए विवाद्यकों पर पुनर्विचार करने के लिए और अपने निष्कर्षों को फिर से दर्ज करने के लिए मामला विशेष अधिकारी के पास वापस भेजा जाता है। जब तक मामला अंतिम रूप से विशेष अधिकारी द्वारा विनिश्चत नहीं किया जाता है, विवादित भूमि पर याचीगण के कब्जा में कोई छेड़छाड़ नहीं किया जाएगा।

माननीय सुशील हरकौली, कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

दुर्गा ओराँव (4700 में) एवं

अमन मुंडा (2252 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (4700 में) और

भारत संघ एवं अन्य (2252 में)

W.P. (PIL) No. 4700 of 2008 with 2252 of 2009. Decided on 4th August, 2010.

मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002–धारा 45(1A)–भारत का संविधान, 1950–अनुच्छेद 226–जनहित वाद–प्रत्यर्थीगण में से कुछ द्वारा अपनी पदीय हैसियत का दुरूपयोग करके अत्यधिक अवैध धनराशि का अर्जन–पदीय हैसियत का दुरूपयोग करके धन का अर्जित किया जाना भारतीय दण्ड संहिता तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के अधीन एक अपराध होने के कारण सामान्यतया राज्य अन्वेषण एजेन्सियों द्वारा अन्वेषित किया जाता है–लेकिन, अगर अपराध के ऐसे आगमों का अर्जन पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम के अधीन भी आच्छादित होना अभिकथित किया जाता है, तो अन्य एजेन्सियों को अपवर्जित करते हुए प्रवर्तन निदेशालय द्वारा अन्वेषण किया जाना चाहिए–यह धनराशि कई सौ करोड़ रुपयों का होना अभिकथित है–न केवल भारत अपितु विदेशों में भी संपत्ति, शेयरों इत्यादि में निवेश किए जाने का अभिकथन किया गया है–स्पष्ट तौर पर मामले में CBI जैसे विशेषज्ञ निकाय द्वारा व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं विश्लेषित ढंग से अन्वेषण की आवश्यकता है–जहाँ भूतपूर्व मुख्यमंत्री सहित भूतपूर्व मंत्री संलिप्त हैं, वहाँ CBI जैसे एक स्वतंत्र एजेन्सी को अन्वेषण सुपुर्द करने की आवश्यकता है–अन्वेषण को प्रवर्तन निदेशालय से CBI को हस्तान्तरित करने के लिए अधिनियम की धारा 45(1A) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने का विकल्प केन्द्र सरकार के पास खुला होगा। (पैराएँ 10, 12, 13, 17, 22, 23, 25, 29 से 33)

निर्णयज विधि.–(2010) 2 SCC 200—Relied on.

अधिवक्तागण.–None, For the Petitioner; Mr. R. S. Mazumdar, For the State; Mr. Binod Poddar, For the Respondent No. 14; Mr. Deepak Roshan, For the Income Tax Dept.; Mr. M.M. Khan, For Union of India; Mr. Anil Kr. Sinha, For the Respondents 16 & 17; Mr. S.B. Gadodia, For the Respondents 18 to 20; Mr. R. Venkataramani, For the Respondent No. 22; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent No. 23; Mr. A. K. Kashyap, For State Vigilance; Mr. Amit Kr. Das, For Enforcement Directorate.

आदेश

पिछली तिथि अर्थात् दिनांक 29 जुलाई, 2010 को हमने यह परीक्षण करने के लिए अपने पहचान के प्रमाण के साथ याची को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने को कहा था कि क्या इस मुकदमा के संबंध में प्रत्यर्थीगण के प्रतिनिधि और याची के अधिवक्ता के बीच किया जा रहा धनीय मोल-भाव को दर्शाते हुए इस पी॰ आई॰ एल॰ के प्रत्यर्थीगण में से एक के प्रतिनिधि द्वारा संचालित बताया गया 'स्टिंग ऑपरेशन' सही है या नहीं।

2. आज इस आधार पर स्थगन इप्सित किया गया है कि याची के विद्वान अधिवक्ता अस्पताल में भर्ती हैं। अतः हमने उक्त तिथि पर दिनांक 29 जुलाई, 2010 के आदेश का अनुपालन करने के लिए याची को सक्षम बनाने के लिए दिनांक 16 अगस्त, 2010 को मामला सुनवाई के लिए नियत किया था।

3. किन्तु लंबा समय, जो बीत चुका है पर विचार करते हुए हमारा मत है कि इसके पहले कि साक्ष्य गायब हो जाय अथवा समय बीत जाने से विनष्ट हो जाय, इस मामले में अंतर्ग्रस्त इस मुख्य विवाद्यक का परीक्षण करना आवश्यक है अर्थात् यह कि दांडिक मामलों में अन्वेषण को अन्वेषण अथवा अतिरिक्त अन्वेषण अथवा पुनर्अन्वेषण के लिए केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए या नहीं।

4. अभिकथन, जैसा समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया है और रिट याचिका में भी उल्लिखित किया गया है, अपने आधिकारिक हैसियत के दुरुपयोग द्वारा प्रत्यर्थीगण में से कुछ के द्वारा अवैध धन की अभूतपूर्व धनराशि अर्जित करने को लेकर है जो भारतीय दंड संहिता के अनेक प्रावधानों के अधीन

और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन भी अपराध है। अवैध साधन द्वारा इस तरह अभिकथित रूप से अर्जित किए गए धन के निवेश में कुछ अन्य निजी प्रत्यर्थीगण ने अभिकथित रूप से सहायता की है।

5. कुछ मामले मनी लॉन्ड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 (इसमें इसके बाद पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के अधीन प्रवर्तन निदेशालय के अन्वेषण के अधीन है। कुछ मामलों का अन्वेषण राज्य अन्वेषण एजेन्सी अर्थात् झारखंड राज्य के निगरानी विभाग द्वारा किया जा रहा है। आयकर विभाग भी अपने उद्देश्यों के लिए मामला का अन्वेषण कर रहा है।

6. आधिकारिक हैसियत के दुरुपयोग द्वारा धन अर्जित किया जाना, भारतीय दंड संहिता के अनेक प्रावधानों के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अपराध होने के चलते, सामान्यत: राज्य अन्वेषण एजेन्सियों द्वारा अन्वेषित किया जाना चाहिए। किन्तु यदि अपराध के ऐसे आगम का अर्जन पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम की धारा 3 के अधीन आच्छादित अभिकथित किया जाता है, पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम की धारा 45 (1A) की दृष्टि में अन्य एजेन्सियों को अपवर्जित करते हुए प्रवर्तन निदेशालय द्वारा ही अन्वेषण किया जाना होगा। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा ऐसा अन्वेषण भी केन्द्र सरकार के सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा अन्य एजेन्सियों को अंतरित किया जा सकता है। त्वरित संदर्भ के लिए धारा 45 (1A) नीचे उद्धत किया जाता है:–

"45. अपराधों का संज्ञेय एवं अजमानतीय होना,

xxx xxx xxx

(1A) दण्ड–प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में या इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी पुलिस अधिकारी इस अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध का अन्वेषण नहीं करेगा, जबतक कि किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा केन्द्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से प्राधिकृत न किया गया हो, तथा ऐसी शर्तों के अध्यधीन जो विहित किए जा सकेंगे।''

7. अपराध मनी लॉन्ड्रिंग का है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या अपराध (अथवा पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम की अनुसूची में उल्लिखित अपराध) का आग्रम अकलंकित संपत्ति के रूप में दिखाया गया है।

8. शब्दों ''अकलंकित संपत्ति के रूप में दिखाया जाना'' के अर्थ की व्याख्या करने की आवश्यकता है। हमें ऐसे शब्दों की व्याख्या पर किसी अथॉरिटी को दर्शाया नहीं गया है। किन्तु, पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम का 'लक्ष्यों और कारणों का वक्तव्य'' इन शब्दों के अर्थ के बारे में कुछ उपदर्शन देता है। लक्ष्यों और कारणों का उक्त वक्तव्य दर्शाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ का स्वापक वस्तुओं के अवैध व्यापार के विरुद्ध कनवेंशन औषधि अपराधों और अन्य संबंधित गतिविधियों के आगम के शोधन के निवारण की अपेक्षा करता है। उक्त निर्णय के अनुसरण में पी॰ एम॰ एल॰ बिल वर्ष 2002 में लाया गया था जो वर्ष 2005 में प्रभाव में आया था। बाद में, संशोधन अधिनियम सं॰ 21 वर्ष 2009 द्वारा अधिनियम की अनुसूची में अपराधों की सूची का विस्तार किया गया था।

9. प्रथम दृष्टया, यह प्रतीत होता है कि विनिर्दिष्ट अपराधों के अवैध आगम को यह दिखाते हुए कि अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों से वापस आता धन अकलंकित धन था जिसका निवेश देश में किया जा रहा था, अंतर्राष्ट्रीय चैनलों के माध्यम से वापस आने से रोका जाए।

10. वर्तमान मामले में, मुख्य अभिकथन इस राज्य के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सहित अनेक भूतपूर्व मंत्रियों द्वारा अवैध धन जमा किया जाना है। अभिकथित रूप से इस प्रकार की अर्जित किया गया धन

अभूतपूर्व राशि है। किन्तु, ऊपर उल्लिखित अर्थ में इसके शोधन के बारे में अब तक कोई स्पष्ट अभिकथन नहीं है। किन्तु न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी संपत्ति, शेयरों, आदि में इसके निवेश का अभिकथन है।

11. अत:, यह विनिश्चित करने के लिए मूल अन्वेषण की आवश्यकता है कि क्या आधिकारिक हैसियत के दुरुपयोग द्वारा धन अर्जित किया गया है जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन और भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराध है, व्यक्तिगण जिनके द्वारा यह किया गया है, धन की राशि जो इस प्रकार अर्जित की गयी है और स्थान जहाँ इसका निवेश किया गया है।

12. राशि अभिकथित रूप से करोड़ों रुपयों की बतायी जाती है। अभी तक हुआ अन्वेषण अभिकथित करता है कि एक मामले में खोजी गयी राशि डेढ़ करोड़ है और दूसरे मामले में साढ़े छह करोड़ है जो कि हिमशैल का केवल ऊपरी छोर प्रतीत होगा। झारखंड राज्य के बाहर इस देश के अनेक राज्यों में ही नहीं बल्कि कुछ अन्य देशों में किए गए निवेश का अर्थ है कि किया जा रहा अन्वेषण बहुराज्यीय ही नहीं बहुदेश्यीय भी है।

13. यह मामला प्रत्यक्षत: सी॰ बी॰ आई॰ जैसे विशेषज्ञ एजेन्सी द्वारा व्यवस्थित, वैज्ञानिक और विश्लेषित अन्वेषण की अपेक्षा करता है। प्रवर्तन निदेशालय (एफ॰ इ॰ एम॰ ए॰ और पी॰ एम॰ एल॰ ए॰) सब जोनल कार्यालय पटना, बिहार में सहायक निदेशक द्वारा दाखिल शपथ पत्र में कुछ अंतर्ग्रस्त कंपनियों की सूची दी गयी है। ये कम्पनियाँ निम्नलिखित हैं:–

(1) मेसर्स मोनेट व्यापार प्रा० लि०, कोलकाता

(2) मेसर्स गांधीपति ट्रेडर्स एण्ड क्रेडिट्स प्रा० लि०, कोलकाता

(3) मेसर्स वासुदेव ट्रेडिंग कं० प्रा० लि०, कोलकाता

(4) मेसर्स सुमिन क्रेडिट कम्पनी प्रा० लि०, कोलकाता

(5) मेसर्स एकान्त एम्पोरियम प्रा० लि०, कोलकाता

(6) मेसर्स जुबली डीलर्स प्रा० लि०, कोलकाता

(7) मेसर्स जलसागर कोम्मोडील प्रा० लि०, कोलकाता

(8) मेसर्स सनकिस्ड एजेन्सीज प्रा० लि०, कोलकाता

(9) मेसर्स अरिहन्त ताराकॉम प्रा० लि०, कोलकाता

(10) मेसर्स केजरीवाल फिनवेस्ट प्रा० लि०, कोलकाता

(11) मेसर्स एकमे प्रा० लि०, कोलकाता

(12) मेसर्स जुबली डीलर्स प्रा० लि०, कोलकाता

(13) मेसर्स प्राशन कोम्मोट्रेड प्रा० लि०, कोलकाता

(14) मेसर्स गिरधर सिन्टेक्स प्रा० लि०, कोलकाता

(15) मेसर्स सेवेनसी विनकॉम प्रा० लि०, कोलकाता

(16) मेसर्स प्राशन कोम्मोट्रेड प्रा० लि०, कोलकाता

(17) मेसर्स सलासर सप्लायर प्रा० लि०, कोलकाता

(18) मेसर्स जे० एम० टेक्सटाइल्स प्रा० लि०, कोलकाता

(19) मेसर्स श्रद्धा व्यापार प्रा० लि०, कोलकाता

(20) मेसर्स अंजता मर्चेंट्स प्रा० लि०, कोलकाता

(21) मेसर्स मेजिस्टीक सेल्स प्रोमोशन प्रा० लि०, कोलकाता

(22) मेसर्स हनु रंग विन्मय प्रा० लि०, कोलकाता

(23) मेसर्स श्री विवेक ट्रेडिंग एण्ड क्रेडिट्स, प्रा० लि०, कोलकाता

(24) मेसर्स कारबेल मर्केन्टाइल प्रा० लि०, कोलकाता

(25) मेसर्स कोल्हन ट्रेडिंग प्रा० लि०, कोलकाता

(26) मेसर्स यशमान दीपक प्रा० लि०, कोलकाता

(27) मेसर्स विनायक फाईलीज प्रा० लि०, कोलकाता

(28) मेसर्स डोयन मार्केटिंग प्रा० लि०, कोलकाता

(29) मेसर्स लकी प्रोजेक्ट्स प्रा० लि०, कोलकाता

(30) मेसर्स क्रियेटिव फिस्कल सर्विसेज प्रा० लि०, कोलकाता

(31) मेसर्स सुमित क्रेडिट प्रा० लि०, कोलकाता

(32) मेसर्स इंडिया कार्स एण्ड मोटर्स प्रा० लि० कोलकाता।

14. निम्नलिखित उन देशों में से कुछ है जिनमें अवैध रूप से अर्जित धन का अभिकथित रूप से निवेश किया गया है;

(i) बैंकाक (थाइलैंड),

(ii) दुबई (यू० ए० ई०),

(iii) जकार्ता (इंडोनेशिया),

(iv) स्वीडेन और

(v) लाइबेरिया।

15. हमें यह भी इंगित किया गया है कि रॉयल किंगडम ऑफ थाइलैंड के कानून के अधीन निगमित मेसर्स ब्लू टेक्नो प्रोजेक्ट्स कम्पनी लिमिटेड (संजय कुमार चौधरी, प्रबंध निदेशक) जैसी अनेक कम्पनियाँ हैं जिसमें बेईमानी से धन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों द्वारा (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उल्लंघन में) अभिकथित रूप से विशाल निवेश किया गया है। कम से कम एक दर्जन ऐसी विदेशी कंपनियाँ है जिनमें अभियुक्तगण द्वारा करोड़ों रुपयों का निवेश किया गया है। ये कम्पनियाँ हैं:

(i) सूर्यम जेम्स एण्ड ज्वेलरी, दुबई (यू० ए० ई०),

(ii) के० जी० एम० जेम्स, ज्वेलरी, दुबई (यू० ए० ई०)

(iii) बालाजी होल्डिंग्स

(iv) ब्लू स्टार होल्डिंग, यू० ए० ई०।

16. इसी प्रकार से यह तर्क किया गया है कि अन्य देशों में अनेक कम्पनियाँ है जिनमें अभियुक्त द्वारा अथवा सह-अपराधियों की सहायता से विदेशों में विशाल निवेश किया गया है। ऊपर दिए गए देशों एवं कम्पनियों की सूचियाँ उपदर्शित करेगी कि प्रथम दृष्टया अंतर्ग्रस्त राशि कुछ करोड़ मात्र नहीं हो सकती थी किन्तु यह कुछ सौ करोड़ों के निकट होगी। चूँकि अब तक जो भी अभिकथित रूप से सामने लाया गया है, मात्र कुछ करोड़ है, यह प्रकट करेगा कि अब तक किया गया अन्वेषण प्रथम दृष्टया अपर्याप्त

था। अत: आवश्यक प्रकृति की निपुणता और अनुभव रखने वाली और झारखंड राज्य के पूर्व कैबिनेट में उच्च हैसियत वाले भूतपूर्व मुख्यमंत्री और उसके अन्य सहयोगी मंत्रियों द्वारा प्रभावित न होने वाली एजेन्सी द्वारा अन्वेषण करने की आवश्यकता है।

17. राज्य की अन्वेषण एजेन्सी को, केन्द्रीय जाँच ब्यूरो की तुलना में, न तो इस प्रकार के अन्वेषण की निपुणता है और न ही अनुभव। इसके अतिरिक्त, अंतर्ग्रस्त व्यक्ति राज्य सरकार में उच्च पदों को धारित करते थे और निकट भविष्य में उनके इस पद को वापस पाने की संभावना सदैव बनी रहती है जो निश्चय ही राज्य अन्वेषण एजेन्सी के अधिकारियों द्वारा निष्पक्ष, भयरहित, समुचित और संपूर्ण अन्वेषण की राह में स्पष्टत: रूकावट बनी रहेगी।

18. आगे, हम शपथ पत्रों के आदान-प्रदान से पाते हैं कि आयकर विभाग और प्रवर्तन निदेशालय सहित अन्वेषण एजेन्सियों जो अब तक मामले का अन्वेषण कर रही है, बार-बार प्रयास के बावजूद इतना समय बीत जाने के बाद भी, अभियुक्तगण में से कुछ की उपस्थिति प्राप्त करने में विफल रही हैं।

19. इन सारी परिस्थितियों पर विचार करते हुए हमारा मत है कि वृहत जनहित को ध्यान में रखते हुए किसी ऐसी एजेन्सी, जो राज्य सरकार से स्वतंत्र है द्वारा समग्र, समुचित और संपूर्ण अन्वेषण कराया जाना समुचित होगा।

20. रुबाबुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2010)2 SCC 200, में प्रकाशित मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आरोप-पत्र दाखिल किए जाने के बाद और विचारण के जारी रहते हुए भी अन्वेषण सी॰ बी॰ आई॰ प्राधिकारी को सौंपा जा सकता है। उस मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि चूँकि उच्च पुलिस अधिकारीगण अभियुक्तगण के रूप में अंतर्ग्रस्त थे, अत: यदि स्थानीय पुलिस प्राधिकारीगण द्वारा अन्वेषण किए जाने की अनुमति दी जाती है, मृतक के संबंधियों सहित समस्त संबंधित व्यक्तिगण महसूस कर सकते हैं कि अन्वेषण समुचित नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, किसी समुचित मामले में, जब न्यायालय महसूस करता है कि पुलिस प्राधिकारीगण द्वारा किया जा रहा अन्वेषण समुचित दिशा में नहीं है और मामले में संपूर्ण न्याय करने के लिए, आरोप-पत्र दाखिल किए जाने के बाद भी सी॰ बी॰ आई॰ जैसी स्वतंत्र एजेन्सी को अन्वेषण सौंपने की छूट न्यायालय को सदैव थी।

21. वर्तमान मामले में, जहाँ भूतपूर्व मुख्यमंत्री सहित भूतपूर्व मंत्रीगण अंतर्ग्रस्त है, राज्य अन्वेषण एजेन्सी द्वारा किया जा रहा अन्वेषण उसी समस्या से पीड़ित रहता है जैसा **रुबाबुद्दीन शेख (ऊपर)** मामले में था। अत: हम महसूस करते हैं कि सी॰ बी॰ आई॰ जैसी स्वतंत्र एजेन्सी को अन्वेषण सौंपना आवश्यक है।

22. हमने समस्त प्राईवेट प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, केन्द्र सरकार और सी॰ बी॰ आई॰ दोनों का प्रतिनिधित्व कर रहे सहायक सॉलिसिटर-जेनरल, प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता, झारखंड राज्य के विद्वान महाधिवक्ता को आज लगभग दिन भर सुना है। वर्तमान अन्वेषण पर विश्वास करते हुए जो, जैसा ऊपर इंगित किया गया है, हिमशैल के ऊपरी छोर के अलावा कुछ भी सामने लाने में सक्षम नहीं हुआ है, सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा जाँच कराए जाने के विरुद्ध प्रतिरोध इस धारणा को पुनर्प्रबलित करता है कि सी॰ बी॰ आई॰ जैसी स्वतंत्र एजेन्सी द्वारा किया जाने वाला अन्वेषण कुछ अधिक ही सामने लाएगा। सी॰ बी॰ आई॰ को अन्वेषण अंतरित किए जाने के प्रति प्रतिरोध के लिए प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई अन्य स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

23. सामान्यत: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन अन्वेषण का आदेश देते हुए अभियुक्त अथवा संभाव्य अभियुक्त को सुने जाने का अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त, कोई अभियुक्त एजेन्सी, जो मामले का अन्वेषण करेगी जहाँ अन्वेषण उक्त एजेन्सी की सक्षमता के अंतर्गत है, के संबंध में निहित अधिकार होने का दावा नहीं कर सकता है। अभियुक्त का हित अथवा आशंका केवल अन्वेषण के लंबित रहने के दौरान गिरफ्तारी के संबंध में हो सकती है। प्रत्यर्थीगण में से कुछ की ओर से जो पहले से ही जेल में हैं यह तर्क किया गया है कि इस पी॰ आई॰ एल॰ के लंबित रहने के कारण और इसमें पारित आदेशों के कारण जमानत के लिए उनकी प्रार्थना पर विचार किए जाने को प्रभावित किया जा सकता है। इस संदेह को दूर करने के लिए, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है, फिर भी हम स्पष्ट करते हैं कि अंतर्ग्रस्त अथवा अंतर्ग्रस्त पाए जाने वाले व्यक्ति द्वारा जमानत अथवा अग्रिम जमानत की कोई प्रार्थना पर इस पी॰ आई॰ एल॰ के लंबित रहने के दौरान अथवा इसमें पारित आदेशों में से किसी में इस न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों में से किसी के द्वारा अथवा इस तथ्य कि इस पी॰ आई॰ एल॰ में किसी व्यक्ति को मूलत: अथवा बाद में अभियोजित किया गया है, के द्वारा किसी तरीके से प्रभावित हुए बिना समुचित न्यायालय द्वारा केवल इसके गुणागुणों पर विचार किया जाएगा।

24. वर्तमान में, हमें यह संदेह करने का कोई कारण नहीं दर्शाया गया है कि सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा अन्वेषण समुचित और निष्पक्ष नहीं होगा जबकि ऊपर दिए गए कारणों से आम जनता में युक्तियुक्त आशंका होने की संभावना है कि राज्य एजेन्सियों द्वारा अन्वेषण को अनेक कारकों द्वारा प्रभावित किए जाने की संभावना है जैसा हमने ऊपर इंगित किया है। इसके अतिरिक्त, जैसा पहले ही कहा जा चुका है, सी॰ बी॰ आई॰ को अन्वेषण अंतरित किए जाने में अग्रेतर विलम्ब के कारण साक्ष्य को गायब अथवा विनष्ट किया जा सकता है।

25. सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा अन्वेषण जहाँ अभिकथित रूप से इतनी वृहत राशि दुर्विनियोजित की गयी है और विपुल संपत्ति जमा की गयी है, अपराधों में सटीक और सही आरोप-पत्र की ओर ले जाएगा। निर्दोष व्यक्तियों को सही अन्वेषण के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। अंतत:, ऐसी अन्वेषण विचारण संचालित कर रहे न्यायालय की मदद के सिवाए कुछ भी नहीं है। यदि साधनयुक्त और निष्पक्ष अन्वेषण अधिकारियों द्वारा समुचित अन्वेषण किया जाता है, यह सटीक और त्वरित विचारण की ओर ले जाएगा। अभिकथनों के प्रकार और अभिकथित रूप से अंतर्ग्रस्त व्यक्ति वृहत लोक हित में इसे आवश्यक बनाते हैं कि अन्वेषण सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा किया जाए। सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा अन्वेषण दंड नहीं है। अत: निजी प्रत्यर्थीगण द्वारा मचाया गया शोर इस चरण पर अनुचित और अनपेक्षित है।

26. अत: हम निर्देश देते हैं कि निम्नलिखित मामलों का अन्वेषण तुरन्त सी॰ बी॰ आई॰ को अंतरित किया जाए। समग्र, संपूर्ण और ठोस अन्वेषण संचालित करने के लिए विद्यमान अन्वेषण एजेन्सियों द्वारा संग्रहित सामग्रियों का प्रभार सी॰ बी॰ आई॰ लेगी:

(i) निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2008 दिनांक 26.11.2008 और

(ii) निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 9 वर्ष 2009 दिनांक 1.7.2009।

27. यह तर्क भी किया गया है कि इस न्यायालय को केवल समाचार पत्रों के रपटों और रिट याचिका में अभिकथित रूप से अस्पष्ट अभिकथनों पर अन्वेषण अंतरित करने पर विचार करना ही नहीं चाहिए।

28. यद्यपि हम प्रथम दृष्टया सहमत हैं कि अन्वेषण आदेशित करने के लिए अथवा अन्वेषण अंतरित करने के लिए मात्र मीडिया रपट पर्याप्त नहीं हो सकते हैं किन्तु वर्तमान मामले में हम पाते है

कि अब तक किए गए अन्वेषण द्वारा, जिन्हें ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, मीडिया रपट, कम से कम अंशत:, संपुष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा ऊपर कथन किया गया है कि अब तक किया गया अन्वेषण उस प्रकार की संपत्ति को सामने लाता प्रतीत नहीं होता है जो इतना अधिक विदेशी निवेश के लिए आवश्यक होगा। अब तक किए गए अन्वेषण में जो कुछ प्रकट किया गया है, हमें सी॰ बी॰ आई॰ जैसी स्वतंत्र एजेन्सी द्वारा मामले में समग्र और संपूर्ण अन्वेषण करवाने को प्रेरित करता है।

29. प्रत्यर्थीगण में से कुछ की ओर से प्रति शपथ पत्र के रूप में अपना बचाव करने का प्रयास किया गया है। प्रथमत: यह बचाव परीक्षित किए जाने योग्य होता यदि अन्वेषण और विचारण पर साक्ष्य पूरा हो जाता। इस चरण पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि कौन अन्य सामग्री अन्वेषण के दौरान सामने लायी जाएगी। इस चरण पर यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि कौन अभियुक्त तद्द्वारा अन्वेषण के दौरान संग्रहित अन्य सामग्री को संपुष्ट करते हुए इकबाली साझी हो जाएगा और इसलिए इस चरण पर प्रतिरक्षा का परीक्षण नहीं किया जा सकता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जो अंतरित किया जा रहा है, वह अपराध में किया जानेवाला अन्वेषण, न कि यह किसी अभियुक्त विशेष से संबंधित है। यह संभव है कि अन्वेषण के दौरान प्रत्यर्थीगण में से कुछ को दोषी नहीं पाया जा सकता है और यह भी बराबर रूप से संभव है कि अन्वेषण के दौरान कुछ व्यक्ति, जो हमारे समक्ष प्रत्यर्थीगण नहीं हैं, को अंतर्ग्रस्त पाया भी जा सकता है। अत: हम इस चरण पर बचाव पर विचार करने से इंकार करते हैं।

30. जहाँ तक प्रवर्तन निदेशालय के अन्वेषण के अनन्य अधिकार के बारे में बचाव का संबंध है, यह कहना पर्याप्त है कि इस चरण पर इस बारे में कि कितने अपराध आगम को 'अकलंकित रूप में दिखाया गया है; सकारात्मक निष्कर्ष देना न तो संभव है और न ही वांछनीय। अत: यहाँ अतिव्याप्ति का क्षेत्र है और इसे अन्वेषण में सुराख करने के लिए अभियुक्त के हाथों में साधन बनने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

31. समय, जो पहले ही बीत चुका है, अभिकथनों, जिन्हें किया गया है की प्रकृति और अंतर्ग्रस्त वृहत जनहित पर विचार करते हुए हम सी॰ बी॰ आई॰ से, उस सीमा तक जहाँ तक सी॰ बी॰ आई॰ के संसाधनों को ध्यान में रखते हुए संभव है, इस मामले में शीघ्रातिशीघ्र अन्वेषण करने की अपेक्षा करते हैं।

32. इस आदेश की प्रति 48 घंटों के भीतर सी॰ बी॰ आई॰, जिसका प्रतिनिधित्व भारत के विद्वान सहायक सॉलिसिटर-जनरल द्वारा किया गया था, को संसूचित करने के लिए विद्वान सहायक सॉलिसिटर जनरल को शुल्क रहित दिया जाएगा। इसी प्रकार, इस आदेश की प्रति इसी अवधि के भीतर राज्य निगरानी विभाग को संसूचित करने के लिए विद्वान महाधिवक्ता को दी जाएगी।

33. प्रवर्तन निदेशालय से सी॰ बी॰ आई॰ को अन्वेषण अंतरित करने के लिए अधिनियम की धारा 45 (1A) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने की छूट केन्द्र सरकार को होगी। यदि केन्द्र सरकार द्वारा ऐसा आदेश पारित नहीं किया जाता है, अन्वेषण के दौरान सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा पायी गयी सामग्री, जो पी॰ एम॰ एल॰ अधिनियम के भीतर मनी लॉन्ड्रिंग के निष्कर्ष की ओर ले जाती है, प्रवर्तन निदेशालय को ऐसी कार्रवाई करने के लिए सक्षम बनाने हेतु सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा प्रवर्तन निदेशालय के साथ समय-समय पर शेयर की जाएगी।

माननीय एन॰ एन॰ तिवारी, न्यायमूर्ति

प्रीतम सिंह (अब वयस्क)

बनाम

अर्जुन सिंह (अब वयस्क) एवं एक अन्य

S. A. No. 543 of 2003. Decided on 18th August, 2010.

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XIV, नियम 2—परिसीमा अधिनियम, 1963—अनुच्छेद 59—दत्तक ग्रहण विलेख के रद्दकरण के लिए वाद–तीन वर्षों के अवसान के बाद दाखिल वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित था–परिसीमा के विवाद्यक पर निर्णय आदेश XIV, नियम 2 के विपरीत नहीं है। (पैरा 11)

(ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXII, नियम 1—प्रतिस्थापन–केवल वाद में अग्रसर होने के उद्देश्य के लिए मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि को प्रतिस्थापित करने के लिए सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXII के प्रावधान बताए गए हैं–विधिक प्रतिनिधि के रूप में किसी व्यक्ति के प्रतिस्थापन को उत्तराधिकार के विवाद्यक पर अंतिम निर्णय नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Kaushalendra Prasad, For the Appellant; xxxxx, For the Respondents.

आदेश

यह परिसीमा की विधि द्वारा वाद को वर्जित अभिनिर्धारित करते हुए विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के समवर्ती निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध वादी की दूसरी अपील है। मूल वादी-कोदो सिंह ने टाइटल वाद सं॰ 43 वर्ष 1990 दाखिल किया जिसमें अन्य बातों के साथ साथ यह घोषणा करने के लिए कि प्रतिवादी सं॰ 1 वादी का वैधपूर्वक दत्तक ग्रहण किया गया पुत्र नहीं है और दत्तक ग्रहण के रजिस्टर्ड विलेख सं॰ 58, दिनांक 3.6.1982 के रद्दकरण के लिए प्रार्थना की गयी है।

2. वादी का मामला यह था कि यद्यपि प्रतिवादी सं॰ 1 को उसके पुत्र के रूप में दत्तक ग्रहण करते हुए दत्तक ग्रहण विलेख को उसके द्वारा निष्पादित बताया जाता है, परन्तु उसे उक्त दत्तक ग्रहण विलेख के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

3. प्रतिवादीगण ने अन्य बातों के साथ साथ यह कथन करते हुए वाद का प्रतिवाद किया कि प्रतिवादी सं॰ 1 को 'लेन-देन' की रीतियों का पालन करते हुए अपनाया गया था जिसे बाद में दिनांक 19.3.1982 के दत्तक ग्रहण विलेख में दर्ज किया गया था। कुछ समय बाद, उक्त कोदो सिंह को हितबद्ध व्यक्ति द्वारा मिला लिया गया था और उसने दिनांक 19.9.1987 को उक्त दत्तक ग्रहण के रद्दकरण विलेख को निष्पादित और रजिस्टर्ड किया था। प्रतिवादीगण के अनुसार, वाद पूर्णत: झूठा और द्वेषपूर्ण है और यह प्रकटत: परिसीमा द्वारा वर्जित है। अभिवचन के आधार पर, प्रतिवादीगण ने परिसीमा के विवाद्यक को प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में सुने जाने के लिए प्रार्थना की है।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षों को सुनने के बाद, परिसीमा के उक्त प्रारंभिक विवाद्यक पर विचार किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाद अन्य बातों के साथ साथ दत्तक ग्रहण के रजिस्टर्ड विलेख सं॰ 58 दिनांक 3.6.1982 को रद्दकरण की डिक्री के लिए था। विलेख के रद्दकरण के लिए परिसीमा की अवधि, जैसा भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 59 द्वारा विहित किया गया है, जानकारी की तिथि से तीन वर्ष है। यह कथन किया गया है कि चूँकि मूल वादी कोदो सिंह ने स्वयं दिनांक 19.3.1982 के दत्तक ग्रहण के उक्त विलेख का निष्पादन किया था और इसे रजिस्टर्ड करवाया था, अत: उसे उक्त विलेख की जानकारी थी। उक्त कोदो सिंह ने बाद में दिनांक 19.9.1987

को रद्दकरण के विलेख को तात्पर्यित रूप से रजिस्टर्ड किया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि उसे उक्त दत्तक ग्रहण विलेख और दिनांक 19.9.1987 के रद्दकरण विलेख के विषय वस्तुओं की पूर्ण जानकारी थी। दिनांक 19.9.1987 के रद्दकरण की उक्त तिथि से भी तीन वर्षों के अवसान के बाद वाद दाखिल किया गया था और वाद स्पष्टत: परिसीमा द्वारा वर्जित था। अत: विद्वान विचारण न्यायालय ने उक्त विवाद्यक वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया और वाद खारिज कर दिया।

5. उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध, मूल वादी की मृत्यु के बाद प्रतिस्थापित उत्तराधिकारी ने जिला न्यायाधीश, दुमका के न्यायालय में अपील दाखिल किया।

6. अंतरित किए जाने पर, प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, दुमका द्वारा उक्त अपील सुनी और निपटायी गयी थी।

7. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने पक्षों को सुनने के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों पर विचार करने के बाद समवर्ती रूप से अभिनिर्धारित किया कि वादी को दिनांक 19.3.1982 के दत्तक ग्रहण विलेख के बारे में जानकारी थी। उसने स्वयं दिनांक 19.9.1987 को रद्दकरण का विलेख निष्पादित और रजिस्टर्ड किया था और किसी भी सूरत में, उक्त कोदो सिंह को स्वीकृत रूप से जानकारी थी जब उसने दिनांक 19.9.1987 के रजिस्टर्ड विलेख द्वारा दत्तक ग्रहण विलेख को रद्द किया था। वाद को दिनांक 19.12.1990 को तीन वर्षों के अवसान के बाद लाया गया था और स्पष्टत: वाद को दिनांक 19.9.1987 के रद्दकरण विलेख के निष्पादन के बाद ही तीन वर्षों के परे दाखिल किया गया था। अत: विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अभिपुष्ट किया और मान्य ठहराया और अपील को खारिज कर दिया।

8. इस द्वितीय अपील में, आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध दो बिन्दुओं को उठाया गया है। प्रथम यह प्रतिवाद किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने वाद में विरचित अनेक विवाद्यकों में से एक को चुनने की विधि की गंभीर गलती की थी और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV, नियम 2 के प्रावधानों के विरुद्ध परिसीमा के एक आरंभिक विवाद्यक के आधार पर संपूर्ण विवाद को विनिश्चित किया था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि मूल वादी कोदो सिंह की मृत्यु के बाद इस न्यायालय के आदेश द्वारा प्रीतम सिंह (वर्तमान अपीलार्थी) को उसके स्थान पर प्रतिस्थापित किया गया था। अपीलार्थी के प्रतिस्थापन की दृष्टि में, उत्तराधिकार का विवाद्यक अंतिम रूप से निष्कर्षित होता है। विद्वान अवर न्यायालयों द्वारा विनिश्चित किया जाने वाला कोई विवाद्यक शेष नहीं है।

9. मैंने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों एवं सामग्रियों के आलोक में निवेदनों पर विचार किया है।

10. यद्यपि सी० पी० सी० के आदेश XIV का नियम 2(1) समस्त विवाद्यकों पर वाद के निर्णय हेतु प्रावधान करता है, फिर भी यह उपनियम (2) के अधीन है। उप नियम (2) उक्त सामान्य नियम से अपवाद सृजित करता है और किसी प्रारंभिक विवाद्यक के विनिश्चय का प्रावधान करता है जो न्यायालय की अधिकारिता अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा सृजित वाद के वर्जन से संबंधित है।

11. वर्तमान मामले में वाद, जिसे प्रारंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित किया गया है, परिसीमा की विधि द्वारा सृजित वाद के वर्जन से संबंधित है। विद्वान विचारण न्यायालय ने और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने भी पाया है कि दत्तक ग्रहण का विलेख वादी कोदो सिंह द्वारा दिनांक 19.3.1982 को निष्पादित और रजिस्टर्ड किया गया था और रद्दकरण के लिए बाद को उस तिथि के तीन वर्षों के अंतर्गत लाया जाना चाहिए था। उक्त कोदो सिंह ने स्वयं दिनांक 19.3.1982 के दत्तक ग्रहण के रजिस्टर्ड विलेख को तात्पर्यित रूप से रद्द करते हुए रद्दकरण के विलेख को बाद में निष्पादित और रजिस्टर्ड किया था और किसी भी सूरत में, उक्त स्वीकृत तिथि से दिनांक 19.9.1990 को तीन वर्ष बीत चुके थे और वाद को तीन वर्षों के अवसान के बाद दिनांक 19.12.1990 को दाखिल किया गया था और स्पष्टत: वाद परिसीमा की विधि द्वारा वर्जित था। मैं उक्त निष्कर्ष में कोई गलती नहीं पाता हूँ और न ही मैं पाता हूँ कि परिसीमा के विवाद्यक पर निर्णय सी० पी० सी० के आदेश XIV, नियम 2 के विपरीत था।

12. जहाँ तक दूसरे बिन्दु का संबंध है, मैं अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में कोई सार नहीं पाता हूँ कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXII के प्रावधानों के अधीन किसी व्यक्ति का उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिस्थापन उत्तराधिकार और विरासत के विवाद्यक को अंतिम रूप से विनिश्चित करता है। सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXII के प्रावधान केवल वाद में अग्रसर होने के उद्देश्य से मृतक पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि के प्रतिस्थापन के लिए बने हैं और विधिक प्रतिनिधि के रूप में किसी व्यक्ति का प्रतिस्थापन विरासत अथवा उत्तराधिकार के विवाद्यक पर अंतिम निर्णय नहीं कहा जा सकता है।

13. आगे, वर्तमान मामले में, वादी ने अन्य बातों के साथ साथ दत्तक ग्रहण के विलेख के रद्दकरण के लिए वाद दाखिल किया था जिसे विद्वान अवर न्यायालयों द्वारा समय वर्जित अभिनिर्धारित किया गया है। विरासत अथवा उत्तराधिकार का कोई विवाद्यक नहीं था। अत: इस चरण पर अपीलार्थी द्वारा उठाया गया दूसरा बिन्दु संदर्भ के प्रति प्रासंगिक नहीं है।

14. अत:, मैं इस दूसरी अपील में विधि के किसी सारवान प्रश्न को विरचित और विनिश्चित किए जाने के लिए कोई आधार बनाया गया नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

बिजय लकरा

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Revision No. 13 of 2010. Decided on 9th August, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 376 एवं 313—बलात्संग–उन्मोचन आवेदन की खारिजी–याची जिसने अंतत: उसके साथ विवाह करने से इंकार कर दिया, के साथ अपने ग्यारह वर्षों के लम्बे संबंध के दौरान अभियोक्त्री को अनेक बार गर्भपात करवाना पड़ा–दोनों पक्ष दस वर्षों से अधिक समय तक पति-पत्नी के रूप में साथ-साथ रहे थे और पंचायत के पहले लोटा-पानी समारोह भी संपन्न की गयी थी–यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने उसकी सहमति के बिना सूचक के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किया है–याची ने धारा 376 के अधीन कोई अपराध नहीं किया है–इसी प्रकार, अभियोक्त्री ने गर्भपातों के तुरन्त बाद कोई परिवाद दर्ज नहीं किया था–याची के विरुद्ध धारा 313 के अधीन भी कोई अपराध निर्मित नहीं होता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.–2003(4) SCC 46—Relied on; (2009) 4 Eastern CC 490 (Jhr.); 2010(1) Eastern CC 476 (Jhr.)—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Gaurav Priyadarshi; For the Petitioner; Mr. Pankaj Kumar; For the Opp. Parties.

आदेश

वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण दिनांक 26.11.2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 376 एवं 313 के अधीन अपराध के आरोप से उसे उन्मोचित करने के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 227 के अधीन दाखिल याची के आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया है।

2. मामले के तथ्य ये हैं कि सूचक/अभियोक्त्री और अभियुक्त-याची ने दिनांक 5.6.1998 को दोनों पक्षों के परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में लोटा-पानी समारोह संपन्न किया गया था और गाँव वालों द्वारा

और पंचायत के पंचों द्वारा भी उक्त समारोह को देखा गया था। तत्पश्चात्, वे फरवरी, 2009 तक पति-पत्नी के रूप में रहे और इन 11 वर्षों में उनका यौन संबंध भी हुआ। प्राथमिकी में अभिकथन किया गया है कि उक्त 11 वर्षों के भीतर सूचक ने अनेक गर्भपातों को कारित किया और तत्पश्चात् याची ने उसके साथ विवाह करने से इंकार कर दिया। इस अभिकथन पर, सूचक/अभियोक्त्री ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन याची के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज किया।। अन्वेषण के बाद, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 376 एवं 313 के अधीन वर्तमान याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्राथमिकी दर्ज करने में आत्यधिक विलम्ब अर्थात् लगभग 11 वर्षों का विलम्ब हुआ है, जिसे प्राथमिकी में स्पष्ट नहीं किया गया है। डॉक्टर, जिसने पीड़ित का परीक्षण किया, का मत है कि उसके परीक्षण के समय पीड़िता की आयु 30-35 वर्ष थी और यौन संभोग का कोई साक्ष्य नहीं पाया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे इंगित किया कि वर्ष 1998 से याची और सूचक दोनों पति-पत्नी के रूप में रह रहे थे जो स्वयं स्पष्टत: दर्शाता है कि सूचक शुरू से ही यौन संभोग के कृत्य का सहमत पक्ष थी और इसलिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन याची के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाया जा सकता है। जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपराध का संबंध है, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से सूचक/अभियोक्त्री ने याची की प्रेरणा पर अनेक बार गर्भपात कारित किया था, किन्तु उसने ऐसे गर्भपात, यदि यह उसकी इच्छा के विरुद्ध था, के तुरन्त बाद कोई परिवाद अथवा प्राथमिकी कभी भी दाखिल नहीं किया था। इसके विपरीत, 11 वर्षों के बीत जाने के बाद उसने उसके साथ विवाह करने से इंकार करने पर याची के विरुद्ध यह मामला दर्ज किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में **2009 (4) Eastern Criminal Cases 490 (Jhr.) (राणा राजेन्द्र कुमार सिंह बनाम झारखंड राज्य)** एवं **2010 (1) Eastern Criminal Cases 476 (Jhr.) (अर्जुन टोप्पो बनाम झारखंड राज्य)** में प्रकाशित हमारे उच्च न्यायालय के दो निर्णयों को उद्धृत किया है। दोनों मामलों में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियोक्त्री को उस कृत्य, जिसके प्रति वह सहमत थी और जिसकी प्रेरणा और विवाह के वादा पर शारीरिक संबंध स्थापित किया, के महत्व और नैतिकता को समझने का पर्याप्त विवेक होने के चलते यह भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के परिधि के भीतर नहीं आ सकता है।

5. सर्वोच्च न्यायालय ने **2003 (4) SCC 46 (उदय बनाम कर्नाटक राज्य)** में प्रकाशित निर्णय में अभिनिर्धारित किया:-

> *''अभियोक्त्री और अपीलार्थी के बीच असीम प्रेम था। वे अक्सर मिला करते थे और यह प्रतीत होता है कि अभियोक्त्री ने उसे सारी स्वतंत्रताएँ दी जो केवल उस व्यक्ति को दी जा सकती है जिसके प्रति गहरा प्रेम है। यह भी महत्वहीन नहीं है कि अभियोक्त्री अपीलार्थी के साथ रात्रि बारह बजे चोरी-छिपे निर्जन स्थल पर गयी थी। ऐसे मामलों में यह प्रायः होता है कि दो नौजवान व्यक्ति, जो आपस में अत्यधिक प्रेम करते हैं, एक-दूसरे को अनेक बार वादा करते हैं कि चाहे कुछ भी हो, वे विवाह करेंगे। जैसा अभियोक्त्री द्वारा कथन किया गया है, अपीलार्थी ने भी अनेक अवसरों पर ऐसा वादा किया था। ऐसी परिस्थितियों में, वादा सारा महत्व खो बैठता है, विशेषतः जब वे अनुभूतियों और आवेगों के हावी हो जाने पर वे अपने को ऐसी स्थितियों और परिस्थितियों में पाते हैं जहाँ कमजोर क्षणों में वे यौन संबंध के प्रलोभन के शिकार हो जाते हैं। इस मामले में ऐसा ही हुआ प्रतीत होता है और अभियोक्त्री ने स्वेच्छापूर्वक*

अपीलार्थी जिससे वह गहरा प्रेम करती थी, के साथ यौन संभोग की सहमति दी, इसलिए नहीं कि उसने विवाह का दावा किया था बल्कि इसलिए कि वह भी इच्छुक थी।''

6. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 (सूचक) के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि केस डायरी में यह दर्शाने के लिए पर्याप्त सामग्री है कि याची ने अभियोक्त्री के साथ यौन संभोग किया है। आगे प्रतिवाद किया गया है कि जब कभी भी सूचक ने विरोध किया, उसकी हत्या कर देने की धमकी दी गयी थी और इस लंबी अवधि के दौरान अभियोक्त्री की इच्छा के विरुद्ध याची द्वारा पाँच बार गर्भपात कारित किया गया था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि केस डायरी के पैराग्राफ-2 और 3 में आई॰ ओ॰ ने लोटा-पानी समारोह और पंचनामा के बारे में उल्लेख किया है। केस डायरी के पैराग्राफों 5, 10, 11, 12, 34, 35 और 38 में गवाहों ने भी उक्त लोटा-पानी समारोह का समर्थन किया है।

7. दोनों पक्षों के निवेदनों पर विचार करने के बाद और आक्षेपित आदेश के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि यह स्वीकृत अवस्था है कि दोनों पक्ष दस वर्षों से अधिक समय तक पति-पत्नी के रूप में साथ-साथ रहे थे और पंचायत कराये जाने के पहले लोटा-पानी समारोह भी आयोजित किया गया था। अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने उसकी सहमति के बिना सूचक के साथ शारीरिक संबंध स्थापित किया है। डॉक्टर के अनुसार, वर्ष 2009 में अर्थात् उसके परीक्षण की तिथि पर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की आयु लगभग 30-35 वर्ष थी और अभिकथित अपराध के समय अर्थात् दिनांक 5.6.1998 से 9.5.2009 तक वह 18 वर्ष से अधिक आयु की थी जैसा प्राथमिकी में प्रतीत होता है। अत:, उसे उस कृत्य, जिसके प्रति वह याची को सहमति दे रही थी, के महत्व और नैतिकता को समझने का पर्याप्त विवेक था। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन कोई अपराध किया है।

8. जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपराध का संबंध है, चूँकि सूचक-अभियोक्त्री ने गर्भपातों के तुरन्त बाद प्राथमिकी अथवा परिवाद दर्ज नहीं किया था और केवल तब ही, जब याची ने उसके साथ विवाह करने से इंकार कर दिया था, इतना लंबा समय बीतने के बाद प्राथमिकी दर्ज किया था, अत: इस प्रक्रम पर यह नहीं कहा जा सकता है कि याची ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन कोई अपराध कारित किया और वह गर्भपात का जिम्मेवार है। इसके अतिरिक्त, यह अभिलेख पर आया है कि अभिकथित गर्भपातों के बाद उसने याची के साथ अनेक बार और अनेक वर्षों तक यौन संभोग किया था। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अपराध बनने का मुख्य अवयव यह है कि संबंधित महिला का गर्भपात उसकी सहमति के बिना हो। अत: वर्तमान मामले में याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है।

9. परिणामस्वरुप, यह पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया जाता है कि एस॰ टी॰ सं॰ 635 वर्ष 2009 में अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 26.11.2009 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

माननीय एन॰ एन॰ तिवारी, न्यायमूर्ति

सुहेजान बीबी एवं अन्य

बनाम

अजीज अंसारी एवं एक अन्य

S. A. No. 350 of 2005. Decided on 20th September, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 145—वाद भूमि पर अधिकार, टाइटल, हित एवं कब्जा को लेकर विवाद–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में पारित आदेश सिविल न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है, जिसे अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री एवं साक्ष्यों के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर आने की सक्षमता और अधिकारिता है–अवर न्यायालयों के निर्णयों और डिक्रियों में कोई गलती नहीं है जिन्होंने तथ्यों के अपने समवर्ती निष्कर्षों को दर्ज किया है और वादी के पक्ष में वाद विनिश्चित किया है–अपील खारिज। (पैराएँ 16 एवं 17)

अधिवक्तागण.–Mr. S. N. Das, For the Appellants; Mr. R. C. P. Sah, For the Respondent No.1.

आदेश

यह द्वितीय अपील विद्वान अवर न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों और निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. मूल अपीलार्थी–अब्दुल सत्तार अंसारी टाइटल वाद सं॰ 88 वर्ष 1997 में प्रतिवादी सं॰ 1 था।

3. उक्त टाइटल वाद–प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा यह घोषणा करने वाले डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए दाखिल किया गया था कि वादी को वाद–पत्र के अनुसूची–A में पूर्णत: वर्णित मौजा डूमरो, पी॰ एस॰ मरफारी, जिला बोकारो में 10 डिसमिल क्षेत्र के माप वाली खाता सं॰ 17, 15 और 42 के अधीन भूखंड सं॰ 1101, 1099 और 1100 का अंश होने के नाते वाद भूमि पर अधिकार, टाइटल, हित और कब्जा है। उसने यह घोषणा करवाने के लिए कि प्रतिवादी सं॰ 1 को वाद भूमि पर किसी भी तरीके का अधिकार, टाइटल, हित और कब्जा नहीं है, डिक्री और वाद भूमि पर वादी के शांतिपूर्ण कब्जा में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादी सं॰ 1 को निर्बंधित करते हुए स्थायी व्यादेश की प्रार्थना की है।

4. प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा उक्त वाद का प्रतिवाद किया गया था और अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया था कि प्रश्नगत भूखंड उसके कब्जा में है और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 144 के अधीन कार्यवाही में उसका कब्जा घोषित भी किया गया था। वह वाद भूमि सहित 30 डिसमिल भूमि पर काबिज है। प्रतिवादी ने वाद की पोषणीयता से संबंधित अन्य आपत्तियों को भी उठाया था।

5. दोनों पक्षों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया था।

6. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अनेक विवाद्यकों को विरचित किया गया था। उन्होंने प्रत्येक विवाद्यक पर विस्तारपूर्वक चर्चा की और पक्षों के साक्ष्यों का सूक्ष्म संवीक्षण और आकलन किया।

7. विद्वान विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि पर्चा, प्रदर्श–9, वाद भूमि के संबंध में वादी के नाम में जारी किया गया था। उक्त पर्चा सहायक निदेशक, कार्मिक भूमि पुनर्वास, बोकारो स्टील लिमिटेड द्वारा प्रदान किया गया था। वादी वाद भूमि पर काबिज था और घर का निर्माण किया था। तत्पश्चात, वादी ने भूमि, जिस पर उसने घर बनाया था, के व्यवस्थापन के लिए आवेदन दिया था। सम्यक् जाँच के बाद और वाद भूमि पर उसके कब्जा के आधार पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा पर्चा जारी किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि वादी ने वाद भूमि पर अपना अधिकार, टाइटल और कब्जा सिद्ध किया था और वादी का वाद डिक्री किया।

8. विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादी ने जिला न्यायाधीश, बोकारो के न्यायालय में टाइटल अपील सं॰ 45 वर्ष 2003 दाखिल किया था।

9. विद्वान जिला न्यायाधीश ने तथ्यों और साक्ष्यों पर समग्रता से विचार किया और उसपर विस्तारपूर्वक चर्चा और आकलन करने के बाद इस निष्कर्ष पर आए कि वादी ने संबंधित प्राधिकारी द्वारा

वैध आबंटन पाया है और यद्यपि प्रतिवादी को वाद भूमि के बगल में भूमि आबंटित की गयी थी, वाद भूमि पर उसका कोई वैध दावा, अधिक अथवा टाइटल नहीं है। दूसरी ओर, वादी के पास वैध अधिकार, टाइटल है और वह वाद भूमि पर काबिज रहा है। इस प्रकार, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्ष पर सहमति दी और अपील खारिज कर दिया।

10. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एस॰ एन॰ दास ने निवेदन किया कि वादी के अधिकार, टाइटल और कब्जा के संबंध में विद्वान अवर न्यायालयों के निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के वजन के विपरीत है। विद्वान अवर न्यायालय यह अधिमूल्यन करने में विफल रहे हैं कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में प्रतिवादी सं॰ 1–अपीलार्थी को वाद भूमि पर काबिज पाया गया था और विद्वान अवर न्यायालयों को कार्यपालक दंडाधिकारी द्वारा की गयी ऐसी घोषणा को अधिमान देना चाहिए था। वादी का दावा कि वह शांतिपूर्ण कब्जा में था और भूमि उसके पक्ष में व्यवस्थापित की गयी थी, को आधारहीन अभिनिर्धारित करना चाहिए था। विद्वान अवर न्यायालय उक्त महत्वपूर्ण पहलू को विचार में लेने में विफल रहे और गलत निष्कर्ष पर आए। आक्षेपित निर्णय और डिक्रियाँ गलत है और असंपोषणीय है।

11. दूसरी ओर, वादी–प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ सी॰ पी॰ साह ने निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालयों ने पक्षों द्वारा दिए गए तथ्यों और साक्ष्यों पर समग्र रूप से चर्चा की है और समवर्ती रूप से अभिनिर्धारित किया है कि विद्वान निदेशक कार्मिक भूमि पुनर्वास (डी॰ पी॰ एल॰ आर॰) जो इसके लिए सक्षम प्राधिकारी थे, द्वारा वाद भूमि वादी–प्रत्यर्थी के पक्ष में व्यवस्थापित की गयी थी। अवर न्यायालयों ने पाया है कि व्यवस्थापन वैध और कानूनी था। व्यवस्थापन के दस्तावेज में, यह स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि वादी को भूमि पर काबिज पाया गया था और उसने वाद भूमि पर अपना आवासीय गृह भी बनाया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में कार्यपालक दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश पूर्णत: आधारहीन था। किन्तु कार्यपालक न्यायालय द्वारा ऐसा कोई आदेश सिविल न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं है। विद्वान अवर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर आए हैं कि वादी को भूमि पर काबिज पाया गया है जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसके पक्ष में व्यवस्थापित किया गया था। विद्वान अवर न्यायालय दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में पारित आदेश द्वारा बंधे हुए नहीं है।

12. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और उनके निवेदनों पर विचार किया है। मैंने विद्वान अवर न्यायालयों के निर्णयों को भी बारीकी से परिशीलन किया है।

13. विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षों के अभिवचनों के आधार पर, नौ विवाद्यकों को विरचित किया। उन्होंने प्रत्येक विवाद्यक पर विचार किया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और साक्ष्यों का संवीक्षण किया और समस्त सारवान विवाद्यकों को वादी के पक्ष में विनिश्चित किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया है कि वाद भूमि के संबंध में वादी ने वैध व्यवस्थापन पाया था। भूमि बोकारो स्टील लिमिटेड की थी और कार्मिक भूमि पुनर्वास निदेशक, जो सक्षम प्राधिकारी थे, ने वाद भूमि पर उसके शांतिपूर्ण कब्जा के आधार पर वादी के पक्ष में वाद भूमि के संबंध में पर्चा जारी किया था। वादी ने वाद भूमि पर अपने आवासीय गृह का निर्माण भी किया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि वादी वाद

भूमि पर अपना अधिकार, टाइटल और कब्जा सिद्ध करने में सक्षम रहा है। उन्होंने वादी के वाद को डिक्री किया और वाद भूमि पर वादी के कब्जा में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादी सं॰ 1 को निर्बंधित किया।

14. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का भी परीक्षण किया और समवर्ती रूप से पाया कि वाद भूमि वैध रूप से वादी के पक्ष में आबंटित की गयी थी और उसे वाद भूमि पर काबिज पाया गया था। उन्होंने आगे पाया कि प्रतिवादी को वाद संपत्ति के बगल में एक अन्य भूमि आबंटित की गयी थी, किन्तु वाद भूमि पर उसका कोई अधिकार, टाइटल अथवा सरोकार नहीं है, जिसे कार्मिक भूमि पुनर्वास निदेशक, बोकारो स्टील लिमिटेड द्वारा वादी के पक्ष में आबंटित किया गया था। अत: विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अपील खारिज कर दिया और विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को मान्य ठहराया।

15. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कार्यपालक न्यायालय द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन पारित आदेश पर काफी जोर दिया जिसके द्वारा प्रतिवादी सं॰ 1 को भूमि पर काबिज दर्शाया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि चूँकि कार्यपालक न्यायालय द्वारा प्रतिवादी सं॰ 1 का कब्जा घोषित किया गया था जो ऐसा करने के लिए सशक्त था, अत: इसे अवर न्यायालयों द्वारा हल्के रूप से दरकिनार नहीं किया जाना चाहिए था। चूँकि कार्यपालक न्यायालय द्वारा प्रतिवादी सं॰ 1 को काबिज पाया गया था, अत: विद्वान अवर न्यायालयों को अभिनिर्धारित करना चाहिए था कि वादी के कब्जा के आधार पर किया गया बताया हुआ अभिकथित व्यवस्थापन किसी वैध आधार के बिना था।

16. अवर न्यायालयों में इसी निवेदन को किया गया था। अवर न्यायालयों ने अपनी सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए समस्त प्रासंगिक पहलूओं पर समग्रतापूर्वक विचार किया और वादी का अधिकार, टाइटल और कब्जा पाया और अभिनिर्धारित किया। निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों और सामग्री पर आधारित है। निष्कर्षों के समर्थन में विधिक कारणों को दर्ज किया गया है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में पारित आदेश सिविल न्यायालयों पर बाध्यकारी नहीं है जिन्हें अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और साक्ष्यों के आधार पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर आने की सक्षमता और अधिकारिता है।

17. मैं विद्वान अवर न्यायालयों के निर्णयों और डिक्रियों में कोई गलती नहीं पाता हूँ, जिन्होंने समवर्ती रूप से तथ्यों के अपने निष्कर्षों को दर्ज किया है और वादी के पक्ष में वाद विनिश्चित किया है। अत: दूसरी अपील में विरचित और विनिश्चित किए जाने के लिए विधि के किसी सारवान प्रश्न की ओर ले जाता हुआ कोई आधार इस प्रकार निर्मित नहीं किया गया है।

18. तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

रंजीत राम

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Revision 486 of 2010. Decided on 20th August, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण—याची-पति को वि॰ प॰ को 2000/- रुपया मासिक भरण-पोषण का तथा भरण-पोषण भत्ता के बकाया के रूप में भी 2000/-रुपया का भुगतान करने का निर्देश कुटुम्ब न्यायालय द्वारा दिया गया—याची, वि॰ प॰ के साथ अपने

विवाह से इंकार कर रहा है–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन याची को दोषसिद्ध किया गया–अवर न्यायालय के इस निष्कर्ष कि वि॰ प॰ याची के साथ वैध रूप से विवाहित है, में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है–विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर की गयी भरण-पोषण राशि पूर्णतः न्यायोचित है–पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Kumar, For the Petitioner; Mr. Shailendra Jit, For the Opp. Party.

आदेश

याची ने भरण-पोषण केस सं॰ 141 वर्ष 2006 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 31.3.2010 के उस आदेश के विरुद्ध यह पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया है, जिसके द्वारा उन्होंने याची-पति को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अर्थात् सुमित्रा देवी को वर्तमान भरण-पोषण भत्ता के तौर पर 2000/-रुपया प्रतिमाह की राशि और भरण-पोषण भत्ता के बकाया के तौर पर 2000/-रुपया की अतिरिक्त राशि, कुल राशि 4000/-प्रतिमाह, के भुगतान का भरण-पोषण के बकाया के संपूर्ण भुगतान होने तक भुगतान करने का निर्देश दिया है।

2. आवेदक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने अपने मासिक भरण-पोषण भत्ता के तौर पर 12,500/- रु॰ के भुगतान के लिए याची रंजीत राम के विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन दाखिल किया था। संक्षेप में, उसका मामला यह है कि दिनांक 16.5.1993 को हिन्दु रीति-रिवाजों के अनुसार उसका विवाह याची के साथ हुआ था। तत्पश्चात् उसने अपने दांपत्य गृह में याची के साथ पति-पत्नी के रूप रहना शूरू किया। अभिकथन किया गया है कि विवाह के कुछ समय बाद याची और उसके परिवार के सदस्यों ने दहेज के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को यातना देना शुरू किया। उन्होंने उससे कहा कि वे उसे अपने घर में नहीं रखेंगे और अंततः दिनांक 21.12.1998 को उसे उसके दांपत्य गृह से बाहर निकाल दिया गया था और तब से वह अपने माता-पिता के साथ रह रही है। जनवरी 1999 में, याची को राजपुर गाँव की एक अन्य महिला रंजू देवी के साथ विवाह करता अभिकथित किया गया है और वे याची के घर में पति-पत्नी के रूप में रह रहे हैं। आगे कथन किया गया है कि याची इंदिरा गांधी हृदय रोग संस्थान, पटना में कार्यरत सरकारी सेवक है और प्रतिमाह 15,000/-रुपया से अधिक पा रहा है। यह कथन भी किया गया है कि उसका व्यवसाय भी है जिससे वह 15,000/-रुपया प्रतिमाह कमा रहा है। दिनांक 27.4.2000 को पक्षों के बीच करार निष्पादित किया गया था और करार के निबंधनों और शर्तों के मुताबिक याची अपने वेतन का आधा विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को भुगतान करने के लिए सहमत हुआ क्योंकि वह तब एक अस्थायी कर्मचारी था और केवल 4500/-प्रतिमाह पा रहा था। उसने अक्टूबर, 2002 से अगस्त, 2004 तक आवेदक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को उसके जीवन यापन के लिए 2000/-रुपया प्रतिमाह भुगतान किया। तत्पश्चात, उसने किसी भी राशि का भुगतान रोक दिया। चूँकि याची के पिता-माता अत्यन्त गरीब है और कोई साधन नहीं होने के कारण लंबे समय तक उसकी देखभाल करने की स्थिति में नहीं हैं, अतः विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दिसम्बर, 2006 में याची को उसे कुछ धन देने को कहा, किन्तु याची ने उसके भरण-पोषण के लिए कोई धन नहीं दिया। इसी कारण उसने उससे भरण-पोषण का दावा करते हुए वर्तमान मामला दर्ज किया है।

3. याची उपस्थित हुआ और समस्त अभिकथनों से इंकार करते हुए दिनांक 15.3.2007 को कारण पृच्छा दाखिल किया। उसने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ अपने विवाह से इंकार किया। कारण पृच्छा में कथन किया गया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को ब्लैकमेल करने के उद्देश्य से झूठे अभिकथनों पर लोगों को आलिप्त करने की आदत है। यह कथन किया गया है कि उसने एक बार किसी सुरेन्द्र राम के साथ विवाह किया था जिसे उसने कुछ वर्षों के बाद छोड़ दिया था। यह कथन किया गया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन याची

और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दांडिक मामला दर्ज किया था। उक्त मामले में अभिकथित घटना का तरीका दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन दाखिल उसकी याचिका में उसके द्वारा किए गए अभिकथनों से बिल्कुल भिन्न है।

4. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से स्वयं उसके सहित सात गवाहों का परीक्षण किया गया है। याची ने स्वयं सहित तीन गवाहों का परीक्षण किया। पक्षों द्वारा अनेक दस्तावेजों और प्रदर्शों को दाखिल किया गया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ अपने विवाह से इंकार किया है और वह याची के साथ अपना विवाह सिद्ध नहीं कर सकी थी। अत: वह याची से भरण-पोषण पाने की हकदार नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया है कि यद्यपि याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और उसके द्वारा दाखिल दांडिक अपील भी खारिज कर दी गयी थी किन्तु उसने इस न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण दाखिल किया है, जो अंतिम न्यायनिर्णयण के लिए लंबित है, जिसमें याची को जमानत पर निर्मुक्त किया गया है। उसने आगे तर्क किया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के अनुसार किसी नागेशर पंडित, जिसने विवाह संपन्न करवाया था, का परीक्षण विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा नहीं किया गया है क्योंकि उसके अनुसार उसकी मृत्यु 20 वर्ष पहले हो चुकी थी। चूँकि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के अनुसार विवाह दिनांक 16.5.1993 को संपन्न हुआ था और उक्त नागेशर पंडित की मृत्यु 20 वर्ष पहले हो चुकी थी, यह स्वयं वर्ष 1993 में विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ याची के विवाह पर संदेह डालता है।

6. आक्षेपित आदेश में, यह आया है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 ने रामेश्वर ठाकुर (नापित) जिसने विवाह के कुछ विधियों को संपन्न किया था, का परीक्षण किया है। उसने पक्षों द्वारा संपन्न विवाह के बारे में कथन किया है। इसके अतिरिक्त, अन्य गवाहों अर्थात् ए॰ डब्ल्यू॰ 2, 3, 4, 5 और 6 ने भी पक्षों के बीच विवाह के तथ्य को सिद्ध किया है। आक्षेपित आदेश में यह भी आया है कि याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और छह माह के कारावास का दंडादेश दिया गया है जिसे अपीलीय न्यायालय द्वारा संपुष्ट किया गया है। ए॰ डब्ल्यू॰ 7 ने एकरारनामा प्रदर्श-1 के निष्पादन के बारे में भी कहा है जिसके बारे में गवाह ने कहा है कि यह करार विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा और वर्तमान याची द्वारा भी निष्पादित और हस्ताक्षरित किया गया था। जब याची अभिरक्षा में था, जमानत प्रदान करने के लिए पक्षों के बीच विवाह का तथ्य भी स्वीकार किया गया था। आक्षेपित आदेश में यह आया है कि प्रदर्श 6 (दिनांक 23.8.2004 का आदेश) दर्शाता है कि याची ने स्वीकार किया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 उसकी पत्नी है और उसने न्यायालय में वचन बंध दाखिल किया था जिसके आधार पर उसे विपक्षी पक्षकार सुमित्रा देवी के साथ रहने की अनुमति दी गयी थी। आक्षेपित आदेश से आगे पता चलता है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन याची का परीक्षण किया गया था जिसमें उसने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ विवाह के तथ्य से इंकार नहीं किया था। इस पृष्ठभूमि में मैं अवर न्यायालय के इस निष्कर्ष कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 वर्तमान याची की विधिपूर्वक विवाहित पत्नी है, में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं पाता हूँ।

7. अब भरण-पोषण के तथ्य के प्रश्न पर आते हुए यह विनिश्चित किया जाना है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 के भरण-पोषण के लिए कितनी राशि पर्याप्त है। पक्षों में से किसी के द्वारा याची की आमदनी के संबंध में अवर न्यायालय के समक्ष कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। वि॰ प॰ सं॰ 2 के अनुसार, याची इंदिरा गांधी हृदय रोग संस्थान, पटना में सेवारत सरकारी सेवक है जहाँ वह प्रतिमाह 15000/-रुपया पा रहा है। वह अपने व्यवसाय से भी कुछ राशि अर्जित कर रहा है। याची ने अपने कारण पृच्छा में इंकार नहीं किया है कि वह सरकारी सेवक है जैसा कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दं॰ प्र॰ सं॰

की धारा 125 के अधीन अपने आवेदन में कथन किया है। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा परीक्षित किए गए गवाहों ने भी विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि याची सरकारी नौकरी में है और 15000/-रु॰ प्रति माह पा रहा है।

8. आक्षेपित आदेश, जिसमें विचारण न्यायालय ने याची की आमदनी के संबंध में साक्ष्य पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है, के परिशीलन के बाद और पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करने के बाद, मैं नहीं पाता हूँ कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान की गयी भरण-पोषण राशि, जो केवल 2000/-रुपया प्रतिमाह है, अयुक्तियुक्त अथवा अत्यधिक है। मेरे मत में विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान की गयी भरण-पोषण राशि पूर्णत: न्यायोचित है। तद्नुसार, यह पुनरीक्षण आवेदन गुणागुणरहित होने के कारण खारिज किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

बी॰ नारायण उर्फ विश्वनाथ नारायण

बनाम

झारखंड राज्य सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr. Appeal No. 29 of 2003. Decided on 1st November, 2010.

आर॰ सी॰ केस सं॰ 13 (A) वर्ष 1994 (R) में सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-विशेष न्यायाधीश (सी॰ बी॰ आई॰), राँची द्वारा पारित दिनांक 19 दिसम्बर, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धारा 13 (2)—प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अधीन धन की निर्मुक्ति के लिए अवैध पारितोषण की मांग एवं इसे स्वीकार किया जाना–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–याची बैंक का शाखा प्रबंधक था–याची ने तर्क किया कि उसके द्वारा वसूला गया धन सूचक द्वारा जमा किया गया मार्जिन धन था–मंजूरी तक शाखा प्रबंधक की कोई भूमिका नहीं थी और उसके द्वारा रिश्वत मांगने का प्रश्न नहीं था क्योंकि कर्ज पहले ही उद्योग विभाग द्वारा मंजूर किया जा चुका था–परिवाद को सत्यापित किए बिना जाल बिछाया गया था–सम्पूर्ण अभियोजन मामला जल्दबाजी में दर्ज किया गया था–यदि अपीलार्थी ने इसे मार्जिन धन समझते हुए अगले दिन इसे जमा करने के लिए इसको अपने टेबल के दराज में रखा था, यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने रिश्वत स्वीकार किया था–उसे संदेह का लाभ देते हुए अपीलार्थी को दोषमुक्त किया गया–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 14 एवं 15)

अधिवक्तागण.–Mr. B. Mukherjee, For the Appellant; Mr. Md. Khan, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता और सी॰ बी॰ आई॰ के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह अपील आर॰ सी॰ सं॰ 13(A) वर्ष 1994 (R) में श्री देवेन्द्र कुमार लाल, सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-विशेष न्यायाधीश (सी॰ बी॰ आई॰), राँची द्वारा पारित दिनांक 19 दिसम्बर, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा उन्होंने एकमात्र अपीलार्थी बी॰ नारायण को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (2) के अधीन दोषी पाया था।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि विचारण न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहा कि सूचक से 2500/-रुपया मांगने का अवसर अपीलार्थी के पास नहीं था क्योंकि प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अधीन सरकार द्वारा 1,00,000/-रुपयों का कर्ज मंजूर किया गया था जिसमें पंजाब नेशनल बैंक, किशोरगंज, राँची का शाखा प्रबंधक होने के नाते याची की कोई भूमिका नहीं थी। नियम के मुताबिक, धन निर्मुक्त किए जाने के पहले यह देखना प्रबंधक का कर्तव्य है कि कर्जदार मार्जिन धन जमा कर दे जो 1,00,000/-रु॰ के लिए 5000/-रुपया है और चूँकि राशि उसके पक्ष में मंजूर की गयी थी, शाखा प्रबंधक द्वारा उसे इसे जमा करने का निर्देश दिया गया था और घटना के दिन सूचक 2,500/-रुपये के साथ आया था जो मार्जिन धन का अंश भुगतान था और इसे मंजूर किए गए कर्ज का 5% होने के नाते सूचक द्वारा जमा किया गया था और चूँकि वह कार्यालय में देर से आया था और उसी दिन इसे जमा करने का अवसर नहीं था, इसलिए उसने उसे अगले दिन जमा करने के लिए धन को रखने के लिए कहा था किन्तु छापामार दल द्वारा इसे बरामद किया गया था। यह रिश्वत की मांग का मामला नहीं है और इस प्रकार अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. दूसरी ओर, निगरानी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह एक सुस्पष्ट मामला है जिसमें अपीलार्थी-शाखा प्रबंधक के कब्जे से बरामदगी की गयी थी और इस प्रकार उसे सही प्रकार से दोषसिद्ध किया गया है।

5. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेखों के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि अभियोजन मामला परिवादी संजय कुमार सिन्हा द्वारा दर्ज प्राथमिकी के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया है कि वह किशोरगंज, राँची का निवासी है और मैट्रिकुलेशन में उत्तीर्ण हुआ है और उसने वर्ष 1993 में प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अधीन 1,00,000/-रुपए कर्ज के लिए पंजाब नेशनल बैंक, किशोरगंज शाखा में आवेदन दिया था और उसके साक्षात्कार के बाद, उसका आवेदन अग्रसर किया गया था। बाद में, डी॰ आई॰ सी॰ में उसके प्रशिक्षण के लिए शाखा प्रबंधक बी॰ नारायण ने उसे अनुशंसित किया था एवं उसने 27.4.1994 से प्रशिक्षण ले रहा था और जब उसका प्रशिक्षण पूरा होने के निकट था, वह शाखा प्रबंधक बी॰ नारायण से मिला जिन्होंने उसे 5,000/-रुपया लाने को कहा, तब उसे कर्ज राशि प्राप्त होगी। दिनांक 6 मई, 1994 को जब वह उनसे मिला, उन्होंने पुनः उसे 5000/-रुपया लाने को कहा किन्तु उसने कहा कि वह केवल 2,500/-रुपए का प्रबंध कर सकता है और शेष 2500/- रुपया वह बाद में देगा, तब उन्होंने उसे 2500/-रुपया के साथ आने को कहा। उसने सी॰ बी॰ आई॰ को आवेदन दिया कि वह एक गरीब व्यक्ति है, वह 2500/-रुपयों का प्रबंध नहीं कर सकता है, जिसे शाखा प्रबंधक द्वारा रिश्वत के रूप में मांगा जा रहा है। अतः उसका परिवाद प्राप्त करने के बाद, सी॰ बी॰ आई॰ ने श्री पी॰ के॰ पाणिग्रही, इंस्पेक्टर, सी॰ बी॰ आई॰ को मामले को सत्यापित करने का निर्देश दिया। सी॰ बी॰ आई॰ के उक्त इंस्पेक्टर ने परिवादी से परिप्रश्न किया, जिसने उनहें कर्ज राशि की मंजूरी से संबंधित श्री बी॰ नारायण द्वारा जारी दिनांक 13.4.1994 का पत्र दिखाया। अतः उसने सूचना दी कि परिवादी के परिप्रश्न से प्रकट होता है कि अवैध परितोषण की मांग के बारे में श्री बी॰ नारायण के विरुद्ध उसके द्वारा किए गए अभिकथन सत्य और सही है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन मामला दर्ज करने की अनुशंसा करते हुए श्री पी॰ के॰ पाणिग्रही की रिपोर्ट के आधार पर सी॰ बी॰ आई॰ के इंस्पेक्टर श्री डी॰ बी॰ सिंह द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। बाद में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन श्री बी॰ नारायण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। पूर्वोक्तानुसार, विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची द्वारा मामले का विचारण किया गया था, जिन्होंने अपीलार्थी को दोषी पाया।

6. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में, अभियोजन ने आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 मदन मोहन वर्मा, जो पंजाब नेशनल बैंक, पटना के वरीय प्रबंधक हैं, ने न्यायालय में कथन किया कि घटना के समय वह पंजाब नेशनल बैंक, राँची के क्षेत्रीय कार्यालय में वरीय प्रबंधक के रूप में पदस्थापित थे और उन्होंने सूचक संजय कुमार सिन्हा के कर्ज आवेदन को किशोरगंज शाखा के प्रबंधक को अग्रसारित किया था। उन्होंने अग्रसारण पत्र पर अपना हस्ताक्षर प्रमाणित किया।

7. अ॰ सा॰ 2, प्रेम लाल मदन, पंजाब नेशनल बैंक, कोलकाता के जोनल प्रबंधक हैं। उन्होंने कथन किया कि वर्ष 1993-94 में वह पंजाब नेशनल बैंक के पटना जोन में सहायक जोनल प्रबंधक के रूप में पदस्थापित थे और उन्होंने शाखा प्रबंधक बी॰ नारायण के अभियोजन की मंजूरी दी थी और उन्होंने प्रदर्शों 1 और 1/1 के रूप में मंजूरी पत्र पर अपना हस्ताक्षर सिद्ध किया।

8. अ॰ सा॰ 3, शैलेन्द्र सिंह सी॰ सी॰ एल॰ के वरीय अधिकारी हैं। उन्होंने कथन किया कि दिनांक 9.5.1994 को वह सी॰ सी॰ एल॰, दरभंगा हाऊस में फायर इंजीनियर के रूप में पदस्थापित थे और वरीय सुरक्षा अधिकारी श्री डी॰ पी॰ झा के मौखिक निर्देश पर वह सी॰ बी॰ आई॰ इंस्पेक्टर के साथ पंजाब नेशनल बैंक की किशोरगंज शाखा के शाखा प्रबंधक के कार्यालय गए थे क्योंकि उन्हें इंस्पेक्टर द्वारा बताया गया था कि परिवादी संजय कुमार सिन्हा द्वारा अभिकथन किया गया है कि कर्ज देने के लिए शाखा प्रबंधक 5000/-रुपया मांग रहे हैं। उन्होंने कथन किया कि इंसपेक्टर ने 100/-रुपयों के 25 नोटों को इकट्ठा किया और तत्पश्चात इनपर फेनोलप्थैलीन पाउडर छिड़का और उन्होंने इनपर अपना हस्ताक्षर प्रदर्शों 2/2, 2/3 और 2/6 के रूप में सिद्ध किया। बाद में, उसी दिन सायं लगभग 4.10 बजे वह परिवादी और सी॰ बी॰ आई॰ दल के साथ शाख प्रबंधक के चैम्बर में गए। प्रबंधक अपने कमरे में बैठे हुए थे और परिवादी ने कमरे में प्रवेश किया और कहा कि उसने उनके निर्देश का अनुपालन किया है और 14-15 दिनों बाद वह 2500/-रुपया देगा जैसा उन्होंने मांगा है। प्रबंधक ने उससे धन ले लिया और गिनने के बाद उन्होंने इसको अपने टेबल के दाएँ हिस्से में रखा। तत्पश्चात्, वह अन्य इंस्पेक्टर के साथ प्रबंधक के चैम्बर में घुसे और उससे इसको बरामद किया। तत्पश्चात्, नोटों को धोया गया था। जो गुलाबी हो गए और तरल पदार्थ को बोतल में रखा गया जिसे प्रदर्श 5 के रूप में चिन्हित किया गया था जिस पर उन्होंने अपना हस्ताक्षर किया और अपने हस्ताक्षर को प्रदर्श 2/8 के रूप में सिद्ध किया। अपने प्रति-परीक्षण में उन्होंने कथन किया कि उस समय जब परिवादी द्वारा धन दिया जा रहा था, वह चैम्बर के बाहर था और चूँकि चैम्बर के चारों ओर शीशा लगा हुआ था, वह अंदर हो रही कार्यवाहियों को देख सकता था।

9. अ॰ सा॰ 4 गोपी चन्द राम सी॰ सी॰ एल॰ का एक अन्य इंस्पेक्टर है जो छापामार दल के साथ गए थे और उन्होंने इसे अर्थात् लिफाफा में रखे गए धन की बरामदगी, जिसे शाखा प्रबंधक के टेबुल से बरामद किया गया था, को भी सिद्ध किया है। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 7 पर उन्होंने कथन किया कि जाल बिछाए जाने के पहले वह वहाँ उपस्थित नहीं थे और प्रबंधक के चैम्बर के बाहर थे और उन्होंने कुछ भी नहीं सुना था। उन्होंने मेमोरेन्डम पर हस्ताक्षर किया जो पोस्ट-ट्रेप मेमोरेन्डम है।

10. अ॰ सा॰ 5 कृष्ण चंद्र लाल दास है जिन्होंने कथन किया कि दिनांक 14.7.1992 से सितम्बर 1998 तक वह जिला उद्योग विभाग, राँची में महाप्रबंधक के रूप में पदस्थापित थे और चूँकि याची मैट्रिकुलेट था और उसकी आय विगत तीन वर्षों में 24,000/-रुपये वार्षिक से कम थी, उसके शपथ पत्र और अन्य दस्तावेजों के आधार पर जवाहर रोजगार योजना के अधीन उसका आवेदन स्वीकार किया गया था। आवेदन को सम्यक् रूप से सत्यापित किया गया था और श्री रामजी प्रसाद सिंह, उद्योग विकासकर्ता, द्वारा प्रोजेक्ट रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था जिसे प्रदर्श 4 के रूप में सिद्ध किया गया था। उन्होंने मंजूरी आदेश को प्रदर्श 5 के रूप में सिद्ध किया। अपने प्रति-परीक्षण में उन्होंने निवेदन किया कि टास्क फोर्स

की अनुशंसा पर कर्ज मंजूर किए जाने के बाद इसकी संसूचना बैंक के शाखा प्रबंधक को दी जाती है और जब बैंक द्वारा इसे प्राप्त किया जाता है, केवल तब ही कर्ज प्रदान किया जाता है। इस मामले में दिनांक 17.4.1994 को शाखा प्रबंधक को मंजूरी की संसूचना दी गयी थी। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा-7 में उन्होंने कथन किया कि जब कर्ज के लिए 1,00,000/-रुपयों की अनुशंसा की जाती है, तब पाने वाले को बैंक में अपने नाम का खाता खोलने के लिए 5000/-रुपया जमा करना होगा और 5000/-रुपया जमा करने और खाता खुलने के बाद ही उसको कर्ज राशि निर्गत की जाएगी अन्यथा बैंक मंजूरी के बाद भी कर्ज राशि का भुगतान करने से इंकार कर देगा। उन्होंने यह भी कथन किया कि कर्ज राशि वितरित किए जाने के पहले उसे जिला उद्योग केन्द्र में 15 दिनों का प्रशिक्षण पूरा करना होगा और उसे जिला उद्योग केन्द्र द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना होगा कि उसने प्रशिक्षण पूरा कर लिया है, केवल तब ही धन जमा किया जाएगा। उन्होंने कथन किया कि वह नहीं कह सकते हैं कि परिवादी ने अपना प्रशिक्षण पूरा किया है या नहीं और 5000/-रुपया जमा किया है या नहीं।

11. अ॰ सा॰ 6 उमेश प्रकाश सिन्हा, स्टेनो-सह-टंकक, पंजाब नेशनल बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, ने कथन किया है कि वर्ष 1994 में वह क्षेत्रीय कार्यालय में पदस्थापित था और उसके क्षेत्रीय प्रबंधक श्री एम॰ एम॰ वर्मा थे और दिनांक 11.2.1994 को उसने अग्रेषण पत्र टंकित किया था जिस पर वरीय प्रबंधक श्री एम॰ एम॰ वर्मा द्वारा हस्ताक्षर किया गया था और उन्होंने इसे प्रदर्श-6 के रूप में सिद्ध किया।

12. अ॰ सा॰ 7 परिवादी संजय कुमार सिन्हा है। उसने कथन किया कि वह बेरोजगार मैट्रिकुलेट है और गेहूँ और मसाला पिसाई केन्द्र खोलने के लिए उसने दिनांक 30.11.1993 को जवाहर रोजगार योजना के अधीन 1,00,000/-रुपया कर्ज के लिए आवेदन दिया था। उसने अपना आवेदन प्रदर्श-7 के रूप में सिद्ध किया। उसने यह निवेदन भी किया कि प्रोजेक्ट रिपोर्ट प्रदर्श-8 के रूप में चिन्हित की गयी है। उसने कथन किया कि उक्त कर्ज मंजूर किया गया था और मंजूरी के बाद, इसे जिला अधिकारी द्वारा पंजाब नेशनल बैंक के किशोरगंज शाखा को भेजा गया था और वह किशोरगंज शाखा के प्रबंधक श्री बी॰ नारायण के पास गया था और तब उन्होंने उसे रिश्वत के रूप में 5000/-रुपया के साथ आने को कहा था। तब उसने दिनांक 9.5.1994 को सी॰ बी॰ आई॰ कार्यालय में लिखित रिपोर्ट दिया था, तब सी॰ बी॰ आई॰ के इंस्पेक्टर श्री पाणिग्रही उससे मिले थे और उसके दावा के बारे में उससे पूछ-ताछ की थी और तब उसे दिनांक 9.5.1994 को धन के साथ आने के लिए कहा गया था। तत्पश्चात, धन को सीलबंद किया गया था और फेनोलप्थैलीन पाउडर छिड़का गया था और नोटों का मेमोरैन्डम, आदि तैयार किया गया था जिस पर उसके द्वारा हस्ताक्षर किया गया था। तत्पश्चात, वह छापामार दल के साथ गया था और प्रबंधक बी॰ नारायण को 2500/-रुपयों की पूर्वोक्त राशि को दिया था जिन्होंने इसे स्वीकार किया था और तब इसे उससे बरामद किया गया था। तत्पश्चात, मेमोरैन्डम तैयार किया गया था और उसने समस्त दस्तावेजों पर अपने हस्ताक्षरों को सिद्ध किया था। अपने प्रति-परीक्षण में, पैरा-9 में इस गवाह ने स्वीकार किया कि दिनांक 9.5.1994 जब प्रबंधक के चैम्बर से धन बरामद किया गया था, के पहले उसने किसी गवाह की उपस्थिति में कोई रिश्वत नहीं मांगा था। उसने रिश्वत की मांग के बारे में किसी से कोई शिकायत नहीं की है। प्रति-परीक्षण के पैरा-16 में उसने स्वीकार किया कि कर्ज लेने के पहले उसे बैंक में 5% मार्जिन धन का भुगतान करना था और चूँकि उसका कर्ज 50,000/-रुपयों तक घटा दिया गया था, उसे 2500/-रुपया मार्जिन धन के रूप में जमा करना था। अपने प्रति परीक्षण के पैरा-17 में उसने यह भी स्वीकार किया कि घटना की तिथि पर उसने प्रबंधक को स्पष्ट नहीं किया था कि 2500/-रुपया मार्जिन धन था अथवा यह रिश्वत था।

13. अ॰ सा॰ 8 सी॰ बी॰ आई॰ के इंस्पेक्टर प्रसन्न कुमार पाणिग्रही है, जिन्होंने न्यायालय में कथन किया कि वह मामले के अन्वेषण अधिकारी हैं। उन्होंने आगे कथन किया कि उन्होंने दिनांक 13.5.1994 को संजय कुमार सिन्हा द्वारा उसे दिए गए परिवाद पर मामला संस्थापित किया था और सी॰ बी॰ आई॰

एस॰ पी॰ श्री ढूंढियाल द्वारा उसे अभिकथन की सत्यता को अभिनिश्चित करने के लिए कहा गया था। उसने एस॰ पी॰ के आदेश को परिशिष्ट–12 के रूप में सिद्ध किया और तद्नुसार, आवश्यक दस्तावेजों को देखने के बाद परिवादी से मामला सत्यापित करवाया और दिनांक 9.5.1994 को उसने सत्यापन रिपोर्ट दाखिल किया। उन्होंने अपने सत्यापन रिपोर्ट को प्रदर्श 3 के रूप में सिद्ध किया। उसके सत्यापन रिपोर्ट के बाद, एस॰ पी॰ ने मामला दर्ज करने का निर्देश दिया, तब इंस्पेक्टर श्री बी॰ डी॰ सिंह द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और तब परिवादी को धन के साथ आने के लिए कहा गया था ताकि अभियुक्त को धन लेते हुए रंगे हाथों पकड़ा जा सके। तद्नुसार, धन अभियुक्त शाखा प्रबंधक को दिया गया था और बाद में, इसे उससे बरामद किया गया था और तब उसके हाथों को धोया गया था और बोतल में गुलाबी जल रखा गया था और गवाहों के हस्ताक्षर लिए गए थे। बरामदगी का मेमोरैन्डम तैयार किया गया था और उसने उन समस्त दस्तावेजों को सिद्ध किया था। प्रति परीक्षण में, उसने स्वीकार किया कि बैंक में कोई अधिग्रहण सूची तैयार नहीं की गयी थी। उसने यह भी स्वीकार किया कि योजना के अधीन अधिकतम 1,00,000/-रु॰ कर्ज दिया जा सकता था। उसने पैरा–35 में यह भी स्वीकार किया कि कोई गवाह नहीं था कि अप्रैल में अथवा दिनांक 6.5.1995 के पहले संजय कुमार सिन्हा बैंक गया था। उसने उसके बैंक जाने के संबंध में कोई मौखिक अथवा दस्तावेजी साक्ष्य सत्यापित अथवा संग्रहित नहीं किया था। उसने पैरा–29 में यह भी स्वीकार किया कि उम्मीदवार को मार्जिन धन का पाँच प्रतिशत अर्थात 1,00,000/- रुपये के लिए 5000/-रुपया बैंक में जमा करना होगा, केवल तब ही बैंक द्वारा कर्ज लेने वाले को 95,000/- रुपये के लिए 5000/-रुपया बैंक में जमा करना होगा, केवल तब ही बैंक द्वारा कर्ज लेने वाले को 95,000/- रु॰ निर्गत किया जाएगा। पैरा 30 में उसने यह भी स्वीकार किया कि घटना की तिथि पर संजय कुमार सिन्हा ने प्रशिक्षण पूरा नहीं किया है और 5000/-रुपयों का मार्जिन धन जमा नहीं किया है। उसने पैरा–32 में यह भी स्वीकार किया कि उसने कभी नहीं सुना था कि रिश्वत मांगी गयी थी अथवा संजय कुमार सिन्हा और बैंक प्रबंधक के बीच रिश्वत की बात हुई थी। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने परिवादी के बयान को किसी गवाह द्वारा संपुष्ट नहीं करवाया था।

14. अत: साक्ष्यों के परिशीलन के बाद, यह प्रतीत होता है कि यह एक ऐसा मामला है जहाँ परिवादी–कर्ज लेने वाले ने जवाहर रोजगार योजना के अधीन 1,00,000/-रुपया कर्ज के लिए आवेदन दिया था और योजना के अधीन उसने इसके लिए जिला प्राधिकारी अर्थात् महाप्रबंधक, जिला उद्योग विभाग, राँची के समक्ष आवेदन दिया था और अ॰ सा॰ 5 कृष्ण चन्द्र लाल दास के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि उसके आवेदन और उसके प्रोजेक्ट रिपोर्ट के सत्यापन के बाद, जिसे कर्ज की मंजूरी की अनुशंसा करते हुए विभागीय विस्तारक अधिकारी और टास्क फोर्स द्वारा प्रमाणित किया गया, उसका कर्ज मंजूर किया गया था और इसे पंजाब नेशनल बैंक के किशोर गंज शाखा के पास भेजा गया था। परिवादी ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि जब उसे अ॰ सा॰ 7 के रूप में परीक्षित किया गया था, वह दिनांक 6.5.1994 को प्रबंधक से मिला था और अभियुक्त प्रबंधक बी॰ नारायण ने उससे 5000/-रुपया जमा करने को कहा था और जब उसने कहा कि वह 5000/-रुपयों का प्रबंध नहीं कर सकता है और वह केवल 2500/-रुपया जमा करेगा, तब उसे 2500/-रुपया के साथ आने के लिए कहा गया था चूँकि वह उक्त धन रिश्वत के रूप में देने के लिए तैयार नहीं था, अत: उसने सी॰ बी॰ आई॰ के समक्ष परिवाद दर्ज किया, किन्तु अपने प्रति–परीक्षण में उसने स्वीकार किया कि कर्ज राशि 50,000/-रुपयों तक घटा दी गयी थी और 50,000/-रु॰ का पाँच प्रतिशत केवल 2500/- रुपया था और स्वाभाविक तौर पर उसे केवल 2500/-रुपया जमा करने के लिए कहा गया था। पुलिस को किए गए परिवाद में, जो प्राथमिकी प्रदर्श–14 का आधार है, उसने अपनी कलम से स्पष्टत: लिखा था कि उसके कर्ज की मंजूरी के बाद प्रबंधक श्री बी॰ नारायण ने जिला उद्योग केन्द्र में उसके प्रशिक्षण की अनुशंसा की और वह अप्रैल 1994 में प्रशिक्षण ले रहा था और जब वह प्रशिक्षण पूरा करने के निकट था, वह प्रबंधक से मिला था जिसने उसे 5000/-रुपया जमा करने को कहा था और केवल तब ही कर्ज राशि दी जाएगी जो दर्शाता है कि मांग 5000/-रुपयों के मार्जिन धन के लिए थी जिसे, गवाहों के अनुसार, जमा करना आवश्यक था यदि

उसे 1,00,000/-रुपयों का कर्ज लेना था और चूँकि कर्ज राशि 50,000/-रुपया तक घटा दी गयी थी, उसे 2500/-रुपया जमा करना था। महाप्रबंधक, जिला उद्योग केन्द्र ने अपने प्रति-परीक्षण के पैरा-7 में कथन भी किया है कि 1,00,000/-रुपया लेने के लिए 5000/-रुपया बैंक में जमा करना होगा अन्यथा बैंक द्वारा कर्ज राशि निर्गत नहीं की जाएगी। स्वीकृत रूप से, मंजूरी तक शाखा प्रबंधक की कोई भूमिका नहीं थी और उसके द्वारा रिश्वत मांगे जाने का प्रश्न नहीं था क्योंकि उद्योग विभाग द्वारा पहले ही कर्ज मंजूर किया जा चुका था और जैसा जिला उद्योग विभाग के महाप्रबंधक द्वारा निवेदन किया गया है कि 1,00,000/-रुपया कर्ज को पाने के लिए सूचक को 5000/-रुपया जमा करना था जिसे अन्य गवाहों अर्थात् स्वयं अ॰ सा॰ 8 प्रसन्न कुमार पाणिग्रही, आई॰ ओ॰ द्वारा स्वीकार किया गया है जिन्होंने अपने प्रति परीक्षण में पैरा-30 पर स्वीकार किया कि संजय कुमार सिन्हा ने 5% मार्जिन धन अर्थात् 5000/-रुपया जमा नहीं किया है। उन्होंने आगे स्वीकार किया है कि उसने कभी समुचित रूप से सत्यापित नहीं किया कि रिश्वत मांगी गयी थी या नहीं। उन्होंने स्वीकार किया कि अपना सत्यापन रिपोर्ट दाखिल करने के पहले भी उसने सत्यापित नहीं किया कि शाखा प्रबंधक मार्जिन धन अथवा रिश्वर मांग रहे थे। संजय कुमार सिन्हा ने भी कथन किया है कि उसने प्रबंधक के समक्ष नहीं कहा था कि उसने उन्हें मार्जिन धन दिया है या रिश्वत। मामले के उस दृष्टिकोण में, मैं पाता हूँ कि समस्त अभियोजन मामला जल्दबाजी में दर्ज किया गया है। अ॰ सा॰ 8 आई॰ ओ॰ को एस॰ पी॰ द्वारा परिवाद को सत्यापित करने का निर्देश दिया गया था किन्तु परिवाद का सत्यापन किए बिना केवल उद्योग विभाग के मंजूरी आदेश को देखने के बाद, उसने बिना यह सत्यापित किए कि प्रबंधक मार्जिन धन मांग रहे थे या रिश्वत, जाल बिछाया और स्वीकृत रूप से यदि 1,00,000/-रुपयों का कर्ज मंजूर किया जाता है, प्रबंधक तब तक धन निर्गत नहीं कर सकता है जब तक 1,00,000/-रुपयों के लिए 5000/-रुपया जमा नहीं किया जाता है अथवा 50,000/-रुपया के लिए 2500/-रुपया जमा नहीं किया जाता है। परिवादी ने स्वयं स्वीकार किया कि उसकी कर्ज राशि 50,000/-रुपया तक घटा दी गयी थी और इस प्रकार केवल 2500/-रुपया जमा करने की अपेक्षा उससे की जाती थी और जब वह घटना के दिन 2500/-रुपया जमा करने के लिए सायं 4.00 बजे शाखा प्रबंधक के चैम्बर में गया, बैंक का संव्यवहार बंद हो चुका था और धन उसी दिन जमा नहीं किया जा सकता था और इसलिए प्रबंधक ने इसे मार्जिन धन मानते हुए इसे अगले दिन जमा करने के लिए अपने टेबल दराज में रखा और इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने रिश्वत स्वीकार किया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, अभियोजन मामला संदेहास्पद है और अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाता है और समस्त आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है।

15. परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और आर॰ सी॰ केस सं॰ 13 (A) वर्ष 1994 (R) में सप्तम अपर न्यायिक कमिश्नर-सह-विशेष न्यायाधीश (सी॰ बी॰ आई॰), राँची द्वारा पारित दिनांक 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त किया जाता है। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसे जमानत बंध पत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

महाबीर सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (S) No. 4464 of 2010. Decided on 5th October, 2010.

सेवा विधि–दंड–बोर्ड विविध नियमावली, 1958—नियम 168—दीन दयाल योजना के अधीन घरों के आबंटन के लिए व्यक्तियों को चुनने के आरोप का दोषी पाए जाने के बाद संचयी प्रभाव से दो वेतन वृद्धियों का रोका जाना और दो वर्षों के लिए प्रोन्नति से वर्जित किया जाना–यदि बड़ा दंड अधिनिर्णीत किया जाता है, तब संवैधानिक आज्ञापकता की दृष्टि में दंड दिए जाने के मामले में अपचारी को अपनी बात रखने का हक है–याची को द्वितीय कारण बताओ तामील नहीं किया गया था–याची को दिया गया बड़ा दंड संवैधानिक आज्ञापकता के विरुद्ध है और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 3 से 7)

निर्णयज विधि.–1991 Supp (1) SCC 504; 1997 (2) PLJR 421—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. R. Krishna, For the Petitioner; J.C. to G.P. I, For the State.

आदेश

याची झारखण्ड प्रशासनिक सेवा का एक सदस्य है, जबकि वह प्रखंड विकास पदाधिकारी, तोपचाँची (धनबाद) के रूप में पदस्थापित था, विधान सभा के पूर्व सदस्य ने योजनाओं अर्थात् इंदिरा आवास योजना, दीन दयाल आवास योजना, आदि में की गयी अनियमितताओं के संबंध में उप-कमिश्नर, धनबाद के समक्ष उसके विरुद्ध परिवाद दर्ज किया। तत्कालीन उपकमिश्नर, धनबाद ने परिवाद पाने पर अपर जिला दंडाधिकारी (विधि एवं व्यवस्था, धनबाद) द्वारा मामले का जाँच करवाया जिन्होंने अभिकथन को प्रथम दृष्टया सत्य पाया। तदुपरान्त, याची से पूर्वोक्त अभिकथन पर स्पष्टीकरण इप्सित किया गया था, जिसने अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया किन्तु इसे संतोषजनक नहीं पाया गया था और इसलिए, उप-कमिश्नर, धनबाद ने याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ करने की अनुशंसा की। उस पर, सरकार ने दिनांक 9.8.2006 के अपने संकल्प सं॰ 4186 के तहत सिविल सेवाएँ (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली के नियम 55 के अधीन याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ करने का निर्णय लिया जिसके द्वारा कमिश्नर, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन, राँची को संचालन अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था जिन्होंने जाँच संचालित करने के बाद याची को दीन दयाल योजना के अधीन घरों के आबंटन के लिए व्यक्तियों को चुनने के आरोप का दोषी पाया यद्यपि वे उक्त योजना के अधीन घर पाने के पात्र नहीं थे। अनुशासनिक प्राधिकारी ने रिपोर्ट से संतुष्ट होकर दिनांक 29.5.2010 के अपने संकल्प सं॰ 3154 के तहत निम्नलिखित दंड अधिनिर्णीत किया:

(i) संचित प्रभाव के साथ दो वेतनवृद्धियों को रोक दिया गया था।

(ii) देय तिथि से अगले दो वर्षों के लिए याची को प्रोन्नति से वर्जित किया गया था।

2. दिनांक 29.5.2010 की अधिसूचना/मेमो सं॰ 3154 में अंतर्विष्ट उक्त आदेश (परिशिष्ट-10) का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया गया है कि संचित प्रभाव से दो वेतनवृद्धियों को रोके जाने का उक्त दंड बड़ा दंड होने के नाते जाँच रिपोर्ट की प्रति को तामील किए बिना और दंड से संबंधित मामले में उसको अपनी बात रखने का अवसर दिए बिना बड़ा दंड नहीं दिया जा सकता है।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ कृष्णा ने **कुलवन्त सिंह गिल बनाम पंजाब राज्य, [1991 Supp. (1) SCC 504]** में प्रकाशित मामले में और **रंग नाथ राय एवं अन्य**

बनाम बिहार राज्य, [1997(2) PLJR 421] में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि संचित प्रभाव के साथ दो वेतनवृद्धियों को रोका जाना बड़ा दंड होने के नाते द्वितीय कारण बताओ नोटिस दिए बिना अथवा दूसरे शब्दों में मामले में याची को अपनी बात रखने का अवसर दिए बिना ऐसा दंड नहीं दिया जा सकता है और इसलिए उक्त आदेश पूर्णत: अवैध होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य है।

4. एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें बोर्ड विविध नियमावली के नियम 168 को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिवाक् किया गया है कि वेतनवृद्धि को रोके जाने का दण्ड लघु दंड होने के नाते अपचारी को कारण बताओ नोटिस दिए बिना दिया जा सकता है।

5. बोर्ड विविध नियमावली के नियम 168 में अंतर्विष्ट प्रावधान के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि यह सरलत: अनुबंधित करता है कि निन्दा, वेतन वृद्धि और प्रोन्नति के रोके जाने का दंड पूर्वोक्त दंड दिए जाने के मामले में अपचारी को अपनी बात रखने का अवसर दिए बिना पारित किया जा सकता है।

6. यह ध्यान में लिया जाए कि यह ऊपर उल्लिखित अन्य दंड के अतिरिक्त वेतनवृद्धि रोके जाने के बारे में कहता है किन्तु यह संचित प्रभाव के साथ वेतनवृद्धि रोके जाने के बारे में कभी नहीं कहता है जो **कुलवन्त सिंह गिल बनाम पंजाब राज्य (ऊपर)** के मामले में और **रंग नाथ राय एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (ऊपर)** के मामले में अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में एक बड़ा दंड है और इसलिए यदि बड़ा दंड अधिनिर्णीत किया जाता है, तब संवैधानिक आज्ञापकता की दृष्टि में दंड दिए जाने के मामले में अपचारी को अपनी बात रखने का हक है। दूसरे शब्दों में, बड़ा दंड दिए जाने से पहले, द्वितीय कारण बताओ नोटिस तामील किया जाना चाहिए ताकि अपचारी मामले में अपनी बात रख सके। किन्तु स्वीकृत रूप से वर्तमान मामले में, याची को द्वितीय कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था और फिर भी दंडों, जिसमें से एक मुख्य दंड है, को अधिनिर्णीत किया गया है जो संवैधानिक आज्ञापकता के विरुद्ध है और इसलिए दिनांक 29.5.2010 के मेमो सं॰ 3154 में अंतर्विष्ट आदेश (परिशिष्ट-10) एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। किन्तु, याची को सम्यक् अवसर देने के बाद विधि के अनुरुप दंड अधिनिर्णीत करने के मामले में प्राधिकारी को अग्रसर होने की स्वतंत्रता होगी।

7. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

मंटू उर्फ मंटू कुमार पासवान

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 82 of 2003. Decided on 7th October, 2010.

श्री जनक कुमार नाथ तिवारी, 11वें अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा एस॰ टी॰ सं॰ 363 वर्ष 1994 में पारित दिनांक 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं 24.12.2002 के दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 366—अवयस्क बालिका का अपहरण–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–पीड़ित बालिका ने शोर नहीं मचाया जब याची उसे अपने मित्र के घर ले गया–किन्तु,

यह एक स्वीकृत मामला है कि उसे बलपूर्वक ले जाया गया था और उसे घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं दी गयी थी–धारा 366 के अधीन दोषसिद्धि संपुष्ट–किन्तु, अपीलार्थी और पीड़िता दोनों मित्र थे और एक ही विद्यालय में शिक्षा पा रहे थे और केवल उसके मित्र को समझाने-बुझाने की दृष्टि से उसे उसके मित्र के घर ले जाया गया था–अपीलार्थी पहले ही लगभग चार माह तक अभिरक्षा में रहा है–दंडादेश पहले भुगती जा चुकी अवधि तक घटाया गया–अपील खारिज। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. A. S. Dayal, For the Appellant; Mr. Prem Prakash, For the Respondent (State).

न्यायालय द्वारा.–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान अपील एस॰ टी॰ सं॰ 363 वर्ष 1994 में श्री जनक कुमार नाथ तिवारी, 11वें अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 19.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 24.12.2002 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उन्होंने अपीलार्थी मंटू उर्फ मंटू कुमार पासवान को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन दोषी पाया और भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन सात वर्षों का कठोर दंडादेश दिया।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि पीड़ित बालिका के अपहरण का कोई साक्ष्य नहीं है। उसने स्वयं कथन किया कि वह अपनी इच्छा से अपीलार्थी के साथ गयी थी। उसने उसके साथ जबरदस्ती नहीं की थी और बाद में घर में रहने वालों द्वारा उसे पुलिस थाना भेजा गया था जब मामला दर्ज किया गया था। उसने आगे तर्क किया कि चिकित्सीय रिपोर्ट दर्शाती है कि पीड़ित बालिका अवयस्क नहीं थी। चिकित्सीय रिपोर्ट के अनुसार, डॉक्टर ने उसकी आयु 17-18 वर्ष निर्धारित की थी और इस प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन उसकी दोषसिद्धि विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया और निवेदन किया कि अभियोक्त्री के साक्ष्य से प्रकट है कि उसे अभियुक्त द्वारा बलपूर्वक उसके मित्र के घर ले जाया गया था जहाँ उसे बन्द रखा गया था और घर के बाहर जाने की अनुमति नहीं दी गयी थी। मामले के उस दृष्टिकोण में, विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने पीड़िता की आयु लगभग 15 वर्ष निर्धारित किया था और उसकी माता ने भी कथन किया कि पीड़ित बालिका की आयु लगभग 14-15 वर्ष थी और इस प्रकार वह अवयस्क बालिका थी।

5. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि अभियोजन मामला दिनांक 21.8.1992 को सूचक शारदा देवी (अ॰ सा॰ 2) द्वारा दिए गए फर्दबयान के आधार पर शुरू किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि लगभग 13-14 वर्ष की आयु वाली उसकी पुत्री पार्वती कुमारी रामलखन सिंह यादव विद्यालय, कोकर में अष्टम वर्ग की छात्रा थी। दिनांक 18.8.1992 को वह विद्यालय गयी थी और शाम तक घर वापस नहीं आयी थी। तब सूचक विद्यालय गयी जहाँ उसे पता चला कि उसकी पुत्री मध्याह्न के पहले विद्यालय से चली गयी थी। तत्पश्चात्, उसने उसे यहाँ-वहाँ खोजा, किन्तु उसका पता नहीं लगा सकी। उसने उसके गायब होने की सूचना पुलिस थाना को दिया। दिनांक 21.8.1992 को उसे पता चला कि किसी सूरज सिंह और मंटू ने बुरी नीयत से उसकी अवयस्क पुत्री का बलपूर्वक अपहरण कर लिया था।

6. उक्त फर्दबयान के आधार पर, पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 363 और 366A के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 363, 366A और 376

के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया। चूँकि मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, अत: संज्ञान लेने के बाद विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और बाद में विद्वान 11वें अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा मामले का विचारण किया गया था, जिन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपीलार्थी को दोषी पाया।

7. यह प्रतीत होता है कि विचारण के क्रम में, अभियोजन ने कुल मिलाकर पाँच गवाहों का परीक्षण किया है।

अ॰ सा॰ 1 पार्वती कुमारी पीड़ित बालिका है।

अ॰ सा॰ 2 शारदा देवी मामले की सूचक और पीड़ित बालिका की माता है।

अ॰ सा॰ 3 देवेन्द्र झा उस विद्यालय के शिक्षक हैं जहाँ पीड़ित बालिका पढ़ाई करती थी।

अ॰ सा॰ 4 डॉ॰ रीता लाल एक डॉक्टर है।

अ॰ सा॰ 5 नागेश्वर राम एक औपचारिक गवाह है।

बचाव पक्ष ने भी दो गवाहों का परीक्षण किया है।

ब॰ सा॰ 1 प्रमोद कुमार।

ब॰ सा॰ 2 राजेन्द्र राम है।

अ॰ सा॰ 1 पार्वती कुमारी, पीड़ित बालिका ने न्यायालय में कथन किया कि दिनांक 18.8.1992 को जब वह विद्यालय से लौट रही थी और अपने घर के निकट पहुँची, उसे रास्ते में मंटू मिला और मंटू ने किसी लड़की पुष्पा को पत्र लिखने के लिए उससे कहा। इंकार करने पर मंटू उसे अपने मित्र के घर ले गया जहाँ उसे दो-चार दिनों तक रखा गया था। जब अभियुक्त को पुलिस थाना में दर्ज की गयी प्राथमिकी के बारे में पता चला, उसने उसे किसी अनजान व्यक्ति के साथ पुलिस थाना भेजा। तत्पश्चात्, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अपना बयान देने के लिए दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। उसने अपना हस्ताक्षर प्रदर्श-1 के रूप में सिद्ध किया। प्रति-परीक्षण में, उसने कथन किया कि उसकी आयु 15-16 वर्ष है। वह मंटू के साथ अपनी इच्छा से नहीं गयी थी। उसने यह भी कथन किया कि उसने शोर नहीं मचाया था और कोई आपत्ति भी नहीं की। तत्पश्चात्, उसने कथन किया कि वह उस घर के परिवार के बच्चों में से किसी का नाम नहीं बता सकती है जहाँ उसे बन्द रखा गया था। उसने यह कथन भी किया कि यद्यपि अभियुक्त ने उसे कमरे में बन्द नहीं किया था, किन्तु दिन में उसे बाहर जाने की अनुमति नहीं थी।

अ॰ सा॰ 2 शारदा देवी मामले की सूचक है और पीड़ित बालिका की माता है, जिसने अभियोजन मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि कुछ साल पहले उसकी पुत्री विद्यालय से नहीं लौटी थी और उसने उसे खोजा था और जब वह उसका पता नहीं लगा सकी तब उसने सदर पुलिस थाना में मामला दर्ज किया था और बालिका को बरामद किया गया था। उसने यह कथन भी किया कि उसे मंटू द्वारा छुरे की नोक पर ले जाया गया था।

अ॰ सा॰ 3 देवेन्द्र झा, उस विद्यालय के शिक्षक जहाँ पीड़ित बालिका पढ़ती थी, एक औपचारिक गवाह है।

अ॰ सा॰ 4 डॉ॰ रीता लाल एक डॉक्टर है, जिन्होंने दिनांक 24.8.1992 को पीड़ित बालिका का परीक्षण किया था और उसके गुप्तांग अथवा शरीर के किसी अन्य भाग पर उपहति का कोई चिन्ह नहीं पाया था, किन्तु पाया था कि हाल-फिलहाल के यौन संभोग का चिन्ह था और पीड़िता 18 वर्ष से कम आयु की थी।

अ॰ सा॰ 5 नागेश्वर राम, एक औपचारिक गवाह है।

8. अत: मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन के बाद, मैं पाता हूँ कि यद्यपि पीड़ित बालिका ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया कि उसने शोर नहीं मचाया था और उसने कथन किया कि याची उसे अपने मित्र के घर ले गया था किन्तु उसने शोर नहीं मचाया था, किन्तु यह एक स्वीकृत मामला है कि उसे बलपूर्वक ले जाया गया था और उसे घर के बाहर जाने की अनुमति नहीं दी थी। मामले के उस दृष्टिकोण में, मैं भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन दोषसिद्धि के निष्कर्ष को संपुष्ट करता हूँ किन्तु मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी और पीड़िता दोनों मित्र थे और एक ही विद्यालय में शिक्षा ले रहे थे और केवल उसके मित्र को समझाने-बुझाने की दृष्टि से उसे उसके मित्र के घर ले जाया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, चूँकि अपीलार्थी लगभग चार माह तक पहले ही अभिरक्षा में रह चुका है, अत: अपीलार्थी के विरुद्ध दंडादेश परिवर्तित किया जाता है और कारावास की अवधि की सीमा अर्थात् लगभग 4 माह तक घटाया जाता है जिसे अपीलार्थी पहले ही विचारण के दौरान भुगत चुका है और उसे पर्याप्त रूप से दंडित किया जा चुका है। इस तथ्य की दृष्टि में कि मामला वर्ष 1992 से लंबित है और अपीलार्थी विचारण और अपील के दौरान लंबे समय तक कारावास भुगत चुका है।

9. दंडादेश में पूर्वोक्त परिवर्तन के साथ, अपील खारिज की जाती है। चूँकि अपीलार्थी जमानत पर है, उसे जमानत के बंधन से निर्मुक्त किया जाता है।

माननीय एन॰ एन॰ तिवारी, न्यायमूर्ति

मेसर्स वैद्यनाथ ग्लास वर्क्स (प्रा॰) लि॰, देवघर

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (L) No. 5316 of 2004. Decided on 6th July, 2010.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–सेवा समाप्ति–श्रम न्यायालय ने याची को संबंधित कर्मकार को ड्यूटी इन्चार्ज के मूल पद पर अनुज्ञेय संपूर्ण बकाया मजदूरी और अन्य लाभों के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया–श्रम न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि किसी औचित्य के बिना पदावनत कर दिया गया था और प्रबंधन द्वारा सेवा छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था–कर्मकार का कोई बयान नहीं है कि सेवा समाप्ति के बाद वह लाभकर रोजगार में नहीं था–यह दर्शाने के लिए कि वह लाभप्रद रोजगार में था, प्रबंधन ने अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया है–बकाया मजदूरी के भुगतान के लिए अधिनिर्णय का अंश किसी तर्कपूर्ण सामग्री पर आधारित नहीं है–बकाया मजदूरी के 50% का भुगतान न्याय के हित में होगा–आक्षेपित अधिनिर्णय तद्नुसार परिवर्तित किया गया। (पैराएँ 4, 5, 10, 11 एवं 12)

निर्णयज विधि.–(2005) 5 SCC 591; (2009) 1 SCC 20; (2009) 5 SCC 705—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. B. K. Pandey, For the Petitioner; Mr. K.P. Deo, For the Respondent No.2; J.C. to S.C. III, For the State.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने संदर्भ केस सं॰ 2 वर्ष 1997 में विद्वान पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, देवघर द्वारा दिए गए दिनांक 16 जनवरी, 2004 को अधिनिर्णय के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा प्रबंधक-याची को संबंधित मजदूर को ड्यूटी इन्चार्ज के मूल पद पर कर्मकार को अनुज्ञेय संपूर्ण बकाया मजदूरी और अन्य लाभों के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया है।

2. याची ने अधिनिर्णय को इस आधार पर चुनौती दी है कि कर्मकार के दावा के समर्थन में अभिलेख पर कोई भी साक्ष्य अथवा सामग्री नहीं है और अधिनिर्णय बेबुनियाद और विकृत है। कर्मकार यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं लाया है कि वह अपनी सेवा समाप्ति के बाद लाभप्रद रोजगार में नहीं था किन्तु विद्वान श्रम न्यायालय ने किसी आधार के बिना संपूर्ण बकाया मजदूरी और अन्य लाभों को भी अधिनिर्णीत किया है।

3. संबंधित कर्मकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री देव ने इस याचिका का विरोध किया और निवेदन किया कि संबंधित कर्मकार को गैर कानूनी रूप से पदावनत किया गया था और बाद में किसी कारण के बिना उसकी सेवा को समाप्त कर दिया गया था। इसे विद्वान श्रम न्यायालय के समक्ष विधिक साक्ष्यों द्वारा स्थापित किया गया है। विद्वान श्रम न्यायालय ने सारे प्रासंगिक पहलूओं पर विचार किया है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर सम्यक् चर्चा के बाद इस निष्कर्ष पर आया है कि किसी न्यायोचित कारण के बिना कर्मकार को पदावनत किया गया था और तत्पश्चात 'ड्यूटी इन्चार्ज' के रूप में कार्य करने की अनुमति नहीं दी गयी थी। अंतत: उसे अपना रोजगार छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था। उक्त निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों एवं सामग्री पर आधारित है और अधिनिर्णय में कोई अवैधता अथवा विकृति नहीं है। किन्तु, विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि कर्मकार की ओर से कोई साक्ष्य नहीं है कि वह पदावनति के बाद लाभप्रद रोजगार में नहीं था। प्रबंधन की ओर से भी कोई विपरीत साक्ष्य नहीं है। विद्वान श्रम न्यायालय ने पाया है कि पदावनति और रोजगार छोड़ने के लिए मजबूर किया जाना औचित्यरहित है और यह विधि के प्रावधानों के विपरीत है। विद्वान श्रम न्यायालय ने सही प्रकार से बकाया मजदूरी और अन्य लाभों का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

4. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों एवं सामग्रियों पर विचार किया है। मैंने आक्षेपित अधिनिर्णय का भी परिशीलन किया है। मैं पाता हूँ कि गैर-कानूनी पदावनति के बिन्दु पर विद्वान श्रम न्यायालय ने विस्तारपूर्वक चर्चा की है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर आया है कि किसी औचित्य के बिना मजदूर को पदावनत किया गया था और प्रबंधन द्वारा सेवा छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था। उक्त निष्कर्ष पर पूरी तरह चर्चा और विचार किया गया है। मैं उक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता अथवा विकृति नहीं पाता हूँ।

5. जहाँ तक बकाया मजदूरी के अधिनिर्णय का संबंध है, मैं याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में सार पाता हूँ कि अधिनिर्णय का उक्त अंश अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित नहीं है।

6. पी॰ वी॰ के॰ डिस्टिलरी लिमिटेड बनाम महेन्द्र राम, (2009)5 SCC 705 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णयों और अन्य अनुचिंतनों को ध्यान में लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि समय बीतने के साथ यह महसूस करते हुए कि किसी उद्योग को उस अवधि के लिए कर्मकार को मजदूरी देने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है जिसके दौरान उसने प्रकटत: अत्यन्त कम अथवा कुछ भी योगदान नहीं किया और/अथवा उस अवधि के लिए जिसे अनउत्पादित रूप से बिताया गया था, मामले के प्रति व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। इसके परिणामस्वरुप नियोक्ता को उस स्थिति में लौटने के लिए मजबूर करना होगा जब मजदूर की छँटनी की गयी थी। आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि इस प्रश्न को विनिश्चित करते हुए कि क्या पुनर्बहाली की तिथि तक कर्मचारी को संपूर्ण बकाया मजदूरी और अन्य लाभों के साथ क्षतिपूर्ति दिया जाना चाहिए, अधिकरणों और न्यायालयों को विधि में सेवा समाप्ति को अवैध घोषित किए जाने पर भी यर्थाथ वादी होना चाहिए क्योंकि संपूर्ण बकाया मजदूरी का अधिकार संपूर्ण नहीं है।

7. कानपुर विद्युत आपूर्त्ति कम्पनी लिमिटेड बनाम शमीम मिर्जा, (2009)1 SCC 20 में बकाया मजदूरी के भुगतान पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने विनिर्णय किया कि पुनर्बहाली प्राप्त करने की कर्मचारी की हकदारी पूर्ण अथवा आंशिक बकाया मजदूरी के भुगतान में आवश्यकत: परिणत नहीं होती है जो पुनर्बहाली से स्वतंत्र है। बकाया मजदूरी की प्रार्थना पर विचार करते हुए तात्थिक परिदृश्य साम्या और सच्ची अंतरात्मा और अन्य अनेक तथ्यों जैसे चयन का तरीका, नियुक्ति की प्रकृति, अवधि जिसके लिए कर्मचारी ने काम किया है, को ध्यान में रखना होगा।

8. यद्यपि बकाया मजदूरी का अनुतोष अधिनिर्णीत करने के लिए कोई सर्वमान्य फार्मूला नहीं है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि बकाया मजदूरी का आदेश यांत्रिक रूप से पारित नहीं किया जाना चाहिए। **हरियाणा रोडवेज बनाम रुधन सिंह, (2005)5 SCC 591** में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

9. पुनर्बहाली के अधिनिर्णय के साथ पूर्ण बकाया मजदूरी अधिनिर्णीत करने की प्रकृति पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनुचिन्तनों में से एक यह होना चाहिए कि क्या मजदूर अपनी सेवा समाप्ति के बाद लाभप्रद रूप से नियोजित था। आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि यह सिद्ध करने की मुख्य जिम्मेदारी मजदूर की है कि वह लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था। तत्पश्चात् यह स्थापित करने की वह लाभप्रद रूप से नियोजित था, के प्रमाण का भार प्रबंधन पर आ जाता है।

10. वर्तमान मामले में, कर्मकार का कोई बयान नहीं है कि वह अपनी सेवा समाप्ति के बाद लाभप्रद रूप से नियोजित नहीं था। किन्तु प्रबंधन भी यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर किसी साक्ष्य अथवा सामग्री को नहीं लाया है कि वह लाभप्रद रूप से नियोजित था। किन्तु अभिलेख पर उपलब्ध किसी आधार के बिना विद्वान श्रम न्यायालय ने संबंधित मजदूर की पुनर्बहाली का निर्देश देते हुए अन्य लाभों के साथ पूर्ण बकाया मजदूरी के भुगतान का निर्देश भी दिया है। बकाया मजदूरी के भुगतान के लिए अधिनिर्णय का वह अंश अभिलेख पर उपलब्ध किसी तर्कपूर्ण सामग्री पर आधारित नहीं है। यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है और असंपोषणीय है।

11. किन्तु, चूँकि प्रबंधन यह दर्शाने के लिए कि वह लाभप्रद रूप से नियोजित था अथवा यह दर्शाने के लिए, कि किसी अन्य परिस्थिति के अधीन मजदूर आंशिक बकाया मजदूरी का हकदार भी नहीं है, अभिलेख पर कुछ भी लाने में सक्षम नहीं हुआ है और यह भी कि उसकी सेवा समाप्ति को अन्यायोचित और मनमाना अभिनिर्धारित किया गया है, मेरा दृष्टिकोण यह है कि 50% बकाया मजदूरी के भुगतान के निर्देश के साथ अधिनिर्णय के अंश का परिवर्तन न्याय के हित में होगा।

12. उक्त चर्चा की दृष्टि में, आक्षेपित आदेश, जहाँ तक इसने संबंधित कर्मकार को मूल पद पर पुनर्बहाल करने के लिए निर्देशित किया, को मान्य ठहराते हुए किन्तु 50% की सीमा तक बकाया मजदूरी के भुगतान के संबंध में, जैसा आक्षेपित अधिनिर्णय में है, अधिनिर्णय को परिवर्तित करते हुए यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

प्रवीण कुमार गगराई

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 4343 of 2010. Decided on 5th October, 2010.

सेवा विधि–दंड–बोर्ड विविध नियमावली, 1958—नियम 168—निर्देश के बावजूद नियमित रूप से न्यायालय कार्य नहीं करने के लिए संचयी प्रभाव के साथ दो वेतनवृद्धि का रोका जाना–यह एक मुख्य दंड है जिसे नियमित विभागीय कार्यवाही के बिना नहीं दिया जा सकता है–याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही कभी नहीं की गयी थी–फिर भी, मुख्य दंड अधिनिर्णीत करना संवैधानिक आज्ञापकता के विरुद्ध है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात।
(पैराएँ 4 से 6)

निर्णयज विधि.–1991 Supp (1) SCC 504; 1997 (2) PLJR 421—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. R. Krishna, For the Petitioner; J.C. to G.P. I, For the State.

आदेश

याची जब अनुमंडलाधिकारी, रामगढ़ के रूप में पदस्थापित था, नियमित रूप से न्यायालय कार्य नहीं करने के लिए उसके विरुद्ध कुछ परिवाद किया गया था। ऐसा परिवाद प्राप्त करने पर उप-कमिश्नर, रामगढ़ ने अपने पत्र सं॰ 778 दिनांक 22.11.2008 के तहत याची को नियमित रूप से न्यायालय कार्य करने का निर्देश दिया किन्तु याची ने अभिकथित तौर पर उस आदेश का अनुपालन नहीं किया। इस पर उपकमिश्नर, रामगढ़ ने दिनांक 1.12.2008 के अपने पत्र के तहत याची को कारण बताने के लिए नोटिस जारी किया कि पूर्व आदेश का अनुपालन क्यों नहीं किया गया था जिसका, प्रत्यर्थीगण के मामला के अनुसार, उत्तर एक अत्यन्त अनुशासनविहीन तरीके से दिया गया था जिसमें यह कथन किया गया था कि न्यायालय कार्य करना अनुमंडलाधिकारी की व्यक्तिगत जिम्मेदारी है और इसलिए मामले में कोई भी निर्देश अनपेक्षित है। किन्तु याची ने द्वितीय कारण बताओ प्रस्तुत करते हुए अपने कारण बताओ दाखिला करने में की गयी अपनी गलती को अभिव्यक्त किया। इस पर, उपकमिश्नर ने कर्तव्य की अवहेलना के लिए और उच्चतर प्राधिकारी के आदेश की अवज्ञा के लिए अनुशासनिक कार्रवाई करने की अनुशंसा की। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी सं॰ 3 संयुक्त सचिव, कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग, झारखंड राज्य ने रिपोर्ट, जिसकी प्रति पत्र के साथ संलग्न की गयी थी, पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए उसे कहते हुए याची को दिनांक 5.5.2009 को पत्र जारी किया। उसके अनुसरण में, याची ने अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इंकार करते हुए अपना स्पष्टीकरण दाखिल किया जिसे उपकमिश्नर, रामगढ़ के समक्ष उनके मत के लिए अग्रसारित किया गया था जिन्होंने स्पष्टीकरण पर विचार करने के बाद स्पष्टीकरण को असंतोषजनक पाया। तदुपरांत, स्पष्टीकरण को असंतोषजनक पाते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक 30.4.2010 की अधिसूचना संख्या 2504 में अंतर्विष्ट अपने आदेश के तहत संचयी प्रभाव के साथ दो वेतनवृद्धियों को रोकने का आदेश पारित किया जिस आदेश को इस रिट याचिका के जरिए इस आधार पर चुनौती देना इप्सित किया गया है कि संचयी प्रभाव के साथ दो वेतनवृद्धियों को रोकने का उक्त दंड मुख्य दंड होने के नाते नियमित विभागीय कार्यवाही किए बिना नहीं दिया जा सकता है और इसलिए, परिशिष्ट- 5 में अंतर्विष्ट दिनांक 30.4.2010 की आदेश/अधिसूचना सं॰ 2504 अपास्त किए जाने योग्य है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ कृष्णा ने **कुलवन्त सिंह गिल बनाम पंजाब राज्य, [1991 Supp. (1) SCC 504]** में प्रकाशित मामले में और **रंग नाथ राय एवं अन्य बनाम बिहार राज्य,** [1997 (2) PLJR 421] में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णयों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि संचयी प्रभाव के साथ दो वेतनवृद्धि को रोका जाना मुख्य दंड होने की दृष्टि में ऐसा दंड नियमित कार्यवाही किए बिना नहीं दिया जा सकता है और इसलिए उक्त आदेश गैरकानूनी होने के नाते अपास्त करने योग्य है।

3. बोर्ड विविध नियमावली के नियम 168 को निर्दिष्ट करते हुए प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है और यह अभिवाक् किया गया है कि वेतनवृद्धि का रोका जाना लघु दंड होने के नाते नियमित कार्यवाही किए बिना अपचारी को दिया जा सकता है।

4. बोर्ड विविध नियमावली के नियम 168 में अंतर्विष्ट प्रावधान का परिशीलन करके, मैं पाता हूँ कि यह सरलत: अनुबंधित करता है कि निन्दा, वेतनवृद्धि और प्रोन्नति को रोके जाने का दंड नियमित विभागीय कार्यवाही किए बिना अभिकथन के मामले में अपनी बात कहने का सम्यक अवसर अपचारी को देने के बाद पारित किया जा सकता है।

5. यह ध्यान में लिया जाए कि यह ऊपर उल्लिखित अन्य दंडों के अतिरिक्त वेतनवृद्धि रोकने के बारे में कहता है किन्तु यह संचित प्रभाव के साथ वेतनवृद्धि को रोकने के बारे में कभी नहीं कहता है जो **कुलवन्त सिंह गिल बनाम पंजाब राज्य (ऊपर)** मामले में और **रंग नाथ राय एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (ऊपर)** मामले में अधिकथित निर्णयाधार की दृष्टि में एक मुख्य दंड है और इसलिए नियमित विभागीय कार्यवाही किए बिना किसी को मुख्य दंड नहीं दिया जा सकता है। स्वीकृत रूप से वर्तमान मामले में याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही कभी नहीं की गयी थी और फिर भी दंडों जिसमें से एक मुख्य दंड है, को अधिनिर्णीत किया गया है जो संवैधानिक आज्ञापकता के विरुद्ध है और इसलिए मेमो सं॰ 2504 दिनांक 30.4.2010 (परिशिष्ट-5) में अंतर्विष्ट आदेश एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। किन्तु आरोपों से संबंधित मामले में प्राधिकारी को विधि के अनुरुप अग्रसर होने की स्वतंत्रता होगी।

6. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

बोधन साव एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 80 of 2003. Decided on 6th October, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 179 वर्ष 1978 में श्री बी॰ के॰ गौतम, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय सं॰ II, पलामू, डालटेनगंज द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 324/34, 354 और 509—घोर उपहति तथा लज्जा भंग करने का प्रयास—दोषसिद्धि एवं दंडादेश—गवाहों ने प्राथमिकी में विरोधाभासी साक्ष्य दिया है—मामले के आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया था—पीड़ित की पत्नी विरोधाभासी बयान दे रही है—संपूर्ण अभियोजन मामला संदेहास्पद—अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ दिया गया और उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया गया—अपील अनुज्ञात।

(पैराएँ 16 से 18)

अधिवक्तागण.—Mr. Abhishek Kumar Dubey, For the Appellants; Mr. Shekhar Sinha, For the State.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील सत्र विचारण सं॰ 179 वर्ष 1998 में श्री बी॰ के॰ गौतम, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ II, डालटनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिस निर्णय द्वारा उन्होंने दोनों अपीलार्थीगण को

भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन दोषी पाया और उनको तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और अभियुक्त-अपीलार्थी सं॰ 2 अर्थात् आशीष साव को धारा 354 के अधीन 2 वर्षों की अवधि के लिए कठोर कारावास भुगतने का पृथक दंडादेश दिया गया है और आगे भारतीय दंड संहिता की धारा 509 के अधीन अपराध के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए सरल कारावास भुगतने का दंडादेश दिया है।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि कोई साक्ष्य नहीं है कि इन दोनों अपीलार्थीगण ने सूचक राजकुमार राम पर प्रहार करने में भाग लिया और गवाहों के बयान एक-दूसरे के विरोधी है और इस प्रकार अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि और दंडादेश विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है और अपास्त करने योग्य है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है किन्तु स्वीकार किया है कि प्रहार करने के संबंध में गवाहों के साक्ष्य विरोधाभासी है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद मैं पाता हूँ कि अभियोजन मामला लिखित रपट, जिस पर सूचक राज कुमार राम का एल॰ टी॰ आई॰ लिया गया था, के आधार पर शुरू किया गया था, जिसमें कथन किया गया था कि उसी दिन अर्थात् दिनांक 12.5.96 को प्रातः 11 बजे इस तथ्य के कारण झगड़ा हुआ था कि उसकी कजन रंजू कुमारी और उसकी दोस्त को अभियुक्त अपीलार्थी सं॰ 2 आशीष साव द्वारा छेड़ा जा रहा था जिस पर उन्होंने आशीष साव को पकड़ लिया और शोर मचाया। हल्ला सुनने पर सूचक और उसका छोटा भाई घर के बाहर आया और अभियुक्त आशीष साव को पकड़ लिया जो साखी राम के घर में घुस गया था और सूचक को आशीष साव के पिता के पास भेजा गया था जिस पर उसका पिता अभियुक्त, बोधन साव और उसका पुत्र दिलीप साव गड़ासा और लाठी से लैस होकर आए और अचानक आशीष साव ने दिलीप साव के हाथ से गड़ासा ले लिया और सूचक के मस्तक पर प्रहार किया और उपहति कारित की जिससे वह बेहोश हो गया और गिर गया।

5. उक्त लिखित रपट के आधार पर पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 341/323/324/307/114/509 के अधीन मामला दर्ज किया और अन्वेषण के बाद मामले में आरोप-पत्र दाखिल किया।

6. चूँकि, मामला अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारण योग्य था, इसे सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया और बाद में द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, डालटनगंज, पलामू द्वारा आरोपों को विरचित किया गया जिन्होंने मामला का विचारण किया और पूर्वोक्तानुसार अपीलार्थीगण को दोषी पाया।

7. विचारण के क्रम में अभियोजन ने कुल मिलाकर आठ गवाहों का परीक्षण किया है।

8. अ॰ सा॰ 1 पारा देवी ने कथन किया है कि ''हल्ला'' सुनने पर वह घर के बार आयी, उसने अभियुक्त आशीष साव को अपने पति सूचक राजकुमार राम के मस्तक पर गड़ासा से वार करते देखा।

9. अ॰ सा॰ 2 निरंजन कुमार ने कथन किया है कि हल्ला सुनने पर वह घर से बाहर आया और उसने अभियुक्त बोधन साव को उसके पुत्र दिलीप साव के साथ गड़ासा और लाठी से लैस आते हुए देखा। तब अभियुक्त दिलीप साव को सूचक-घायल के हाथ पर गड़ासा से वार किया और तत्पश्चात् अभियुक्त आशीष साव ने दिलीप साव के हाथ से गड़ासा छीना और घायल राज कुमार राम के मस्तक पर गड़ासा से वार किया।

10. अ० सा० 3, राज कुमार राम (सूचक) ने कथन किया कि अभियुक्त आशीष साव ने दिलीप साव के हाथ से गड़ासा छीना और उस पर गड़ासा से वार किया।

11. अ० सा० 4, सेवक साव, जो इस घटना के चश्मदीद गवाहों में से एक है, ने कथन किया कि घायल राज कुमार राम पर दिलीप साव द्वारा लाठी से प्रहार किया गया था और दिलीप साव को छोड़ कर किसी ने झगड़ा में भाग नहीं लिया।

12. अ० सा० 5, रंजू कुमारी ने कथन किया कि उसके कजन भाई-सूचक राज कुमार राम पर अभियुक्त आशीष साव द्वारा प्रहार किया गया था।

13. अ० सा० 6, धानो देवी को पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

14. अ० सा० 7, डॉ० अवध किशोर उपाध्याय ने घायल, सूचक का परीक्षण किया और घायल व्यक्ति पर निम्नलिखित उपहतियों को पाया:

(i) जख्म से रक्त बहता हुआ, मस्तक के दाएँ हिस्से पर 3" x 1/8" x त्वचा तक गहरा गहरा चीरा हुआ जख्म,

(ii) बाएँ गाल पर 1/2" x 1/8" का खरोंच;

(iii) बाएँ अगली बाँह पर 1/2" x 1/4" का खरोंच।

सभी उपहतियाँ सरल प्रकृति की हैं।

15. अ० सा० 8, रवि किशोर तिवारी ने प्रभारी-अधिकारी की लिखावट में औपचारिक प्राथमिकी प्रदर्श-2 को सिद्ध किया है।

16. यह ध्यान में लेना महत्वपूर्ण है कि मामले में आई० ओ० का परीक्षण नहीं किया गया था। गवाहों को साक्ष्य से प्रतीत होता है कि उन्होंने प्राथमिकी में विरोधाभासी साक्ष्य दिया है। प्राथमिकी में सूचक ने कथन किया कि आशीष साव ने दिलीप साव के हाथ से गड़ासा छीना और उसके मस्तक पर वार किया। उसकी पत्नी जो, चश्मदीद गवाह है, ने कथन किया कि आशीष साव ने उसके पति के मस्तक पर गड़ासा से वार किया। अ० सा० 2 निरंजन कुमार ने कथन किया कि दिलीप साव ने लाठी से, न कि गड़ासा से, वार किसा था और दिलीप साव को छोड़कर किसी ने भी घायल पर प्रहार नहीं किया था। मामले के उस दृष्टिकोण में घटना का संपूर्ण तरीका, जैसा गवाहों द्वारा बताया गया है, एक-दूसरे का विरोधाभासी है। इसके अतिरिक्त सूचक की पत्नी ने पैरा-15 पर कथन किया कि उपहतियाँ प्राप्त करने के बाद उसका पति घटना के बाद तीन घंटों तक बेहोश रहा। मामले के उस दृष्टिकोण में, कैसे उसी दिन उसके एल० टी० आई० के साथ लिखित रपट ली गयी थी जब वह बेहोश था।

17. मामले के इस दृष्टिकोण में, संपूर्ण अभियोजन मामला संदेहास्पद बन जाता है और अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ दिया जाता है और उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से उन्हें दोषमुक्त किया जाता है।

18. सत्र विचारण सं० 179 वर्ष 1998 में श्री बी० के० गौतम, अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं० II, डालटनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 21.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त किया जाता है। अपील अनुज्ञात की जाती है।

19. अपीलार्थीगण जमानत पर हैं, उन्हें उनके जमानत बंधपत्र के बंधनों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

कासिम मियाँ

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 504 of 2009. Decided on 29th October, 2010.

किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धाराएँ 7A एवं 12—झारखंड किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2003—नियम 22 (5)—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 376, 302 एवं 201—बलात्कार और हत्या–विचारण न्यायालय द्वारा किशोरावस्था का अभिवचन अस्वीकार किया गया–अपीलीय न्यायालय द्वारा अभियुक्त-वि॰ प॰ को किशोर घोषित किया गया–चिकित्सा बोर्ड द्वारा किए गए आकलन के मुताबिक उसे निम्नतर पक्ष पर एक वर्ष का लाभ देने के बाद भी घटना की तिथि पर याची 18 वर्ष से अधिक आयु का था–विचारण न्यायालय ने विस्तारपूर्वक चर्चा के बाद वि॰ प॰ सं॰ 2 द्वारा दाखिल दस्तावेजों पर विश्वास नहीं किया और अपीलीय न्यायालय ने न तो कोई अपना स्पष्ट निष्कर्ष दिया है और न ही उक्त दस्तावेजों पर विश्वास किया है–इस चरण पर दस्तावेजों की वास्तविकता पर विचार करना आवश्यक नहीं है जब उनको किशोर बोर्ड द्वारा त्याग दिया गया है–अपीलीय न्यायालय द्वारा याची की आयु के आकलन और अवधारण में स्पष्ट गलती है–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 13 से 17)

अधिवक्तागण.–M/s. R. S. Mazumdar, Rajesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Ravi Prakash, For the State; Mr. Lina Shakti, For the O.P. No.2.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–याची के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता, एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन दांडिक विविध अपील सं॰ 71 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 30.5.2009 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया है जिसके द्वारा विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को किशोर घोषित किया गया है।

3. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 12.4.2008/13.4.2008 को प्रात: लगभग 1 बजे सूचक कासिम मियाँ, जो इस मामले में याची है, अपने घर में परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सो रहा था। उसकी पुत्री हिना खातून अपनी दादी ओसरा बीबी के साथ बरामदा में सो रही थी। रात्रि लगभग 1 बजे ओसरा बीबी जागी, उसने हिना खातून को उक्त बरामदा में सोते नहीं पाया। तब उसने सूचक को सूचित किया और सूचक अपनी पुत्री को खोजने लगा। प्रात: लगभग 5 बजे किसी दुर्गादासी ने सूचक को सूचित किया कि उसकी पुत्री नग्नावस्था में सड़क किनारे खेत में पड़ी हुई है। तत्पश्चात्, सूचक उस स्थान की ओर भागा और अपनी पुत्री को नग्नावस्था और घायल दशा में पाया और उसके मस्तक से रक्त बह रहा था। तत्पश्चात्, सूचक सह-ग्रामीणों की सहायता से अपनी पुत्री को उसके उपचार के लिए मोहल पहाड़ी ले गया किन्तु चूँकि उसकी दशा गंभीर थी, चिकित्सीय उपचार के लिए उसे बर्द्धवान अस्पताल निर्दिष्ट किया गया। कुछ समय बाद, सूचक की पुत्री का देहान्त हो गया। तद्नुसार, सूचक ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 376, 302/201 के अधीन अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध मामला दर्ज किया।

4. अन्वेषण पूरा करने के बाद, पुलिस ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अर्थात् रंजीत गोस्वामी उर्फ राजीव रंजन गोस्वामी सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया।

5. विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने दिनांक 13.6.2008 को अवर न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण किया और दिनांक 17.6.2008 को किशोरावस्था का अभिवचन और यह कथन करते कि चूँकि उसकी जन्मतिथि 10.5.1991 है, अत: वह किशोर है, आवेदन दाखिल किया।

6. मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, दुमका ने किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रावधान के अनुसार विपक्षी पक्षकार सं० 2 की आयु का निर्धारण करवाने के लिए प्रधान दंडाधिकारी, किशोर न्याय बोर्ड, दुमका को निर्देशित किया। तत्पश्चात् उसकी आयु के निर्धारण के संबंध में विपक्षी पक्षकार सं० 2 का मामला चिकित्सा बोर्ड को निर्दिष्ट किया गया था और चिकित्सा बोर्ड ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 की आयु को 20 वर्ष निर्धारित किया। तदनुसार, प्रधान दंडाधिकारी, किशोर न्याय बोर्ड, दुमका ने दिनांक 27.3.2009 के अपने आदेश द्वारा उसको किशोर घोषित करने के लिए विपक्षी पक्षकार सं० 2 द्वारा दाखिल आवेदन को अस्वीकार कर दिया।

7. दिनांक 27.3.2009 के पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 52 के अधीन अपील दाखिल किया जिसे दांडिक विविध अपील सं० 71 वर्ष 2009 के रूप में दर्ज किया गया था। विपक्षी पक्षकार सं० 2 के मामला पर विचार करने के बाद, अपीलीय न्यायालय ने उसके पूर्वोक्त अपील को अनुज्ञात किया और उसे किशोर घोषित किया और अपर सत्र न्यायाधीश, पंचम (एफ० टी० सी०) दुमका के न्यायालय से सत्र मामला वापस ले लिया और इसे दिनांक 30.5.2009 के अपने आदेश द्वारा सी० जे० एम०, दुमका के माध्यम से जे० जे० बोर्ड को भेज दिया।

8. याची (सूचक) के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि किशोर न्याय बोर्ड ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 की आयु के निर्धारण के लिए मामला चिकित्सा बोर्ड को निर्दिष्ट किया। चिकित्सा बोर्ड सिविल सर्जन, सी० एम० ओ०, दुमका की अध्यक्षता में तीन डॉक्टरों अर्थात् डॉ० ए० एन० सोरेन, डॉ० सी० पी० सिन्हा और डॉ० ए० के० सिन्हा से गठित था, जिन्होंने विपक्षी पक्षकार सं० 2 का परीक्षण किया और परीक्षण के बाद और एक्सरे निष्कर्ष पर विचार करने के बाद भी उक्त चिकित्सा बोर्ड का मत है कि विपक्षी पक्षकार सं० 2 की आयु लगभग 20 वर्ष है।

9. आगे प्रतिवाद किया गया है कि चिकित्सा बोर्ड ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 की आयु लगभग 20 वर्ष निर्धारित किया है जैसा यह दिनांक 18.2.2009 पर था जब कि घटना की तिथि दिनांक 12.4.2008 है, अत: अपीलीय न्यायालय ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 को किशोर घोषित करने में पूरी गलती की है।

10. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया है कि विपक्षी पक्षकार सं० 2 द्वारा दाखिल जन्म प्रमाण-पत्र दर्शाता है कि इसे पंचायत सेवक द्वारा जारी किया गया था और जब प्रावधान के मुताबिक उक्त जन्म प्रमाण पत्र सिद्ध करने के लिए पंचायत सेवक को समन किया गया था, वह अपने अभिसाक्ष्य में सिद्ध करने में विफल रहा कि उसने प्रावधान के मुताबिक उक्त जन्म प्रमाण पत्र जारी किया था। इसके अतिरिक्त विपक्षी पक्षकार सं० 2 का विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र प्राथमिक विद्यालय बिनागरिया द्वारा दिनांक 10.4.2004 को जारी किया गया था और इसे भी प्रस्तुत किया गया था जो विपक्षी पक्षकार सं० 2 की जन्मतिथि 10.5.1991 और प्रवेश की तिथि 20.2.1997 और वर्ग-VI में उक्त विद्यालय छोड़ने की तिथि 10.4.2004 दर्शाता है। अन्य दस्तावेज, जो विद्यालय प्रवेश रजिस्टर, प्रदर्श A/1, की निकाली गयी प्रासंगिक प्रति है, क्रमांक सं० 19 पर विपक्षी पक्षकार सं० 2 का नाम राजीव रंजन गोस्वामी के रूप में दर्शाता है और उसकी जन्मतिथि 10.4.1990 है। यद्यपि विपक्षी पक्षकार सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता

द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि दोनों दो भिन्न व्यक्ति है, किन्तु विचारण न्यायालय ने उक्त दस्तावेजों पर विश्वास नहीं किया और मामला चिकित्सा बोर्ड को निर्दिष्ट कर दिया। चिकित्सा बोर्ड ने दिनांक 18.2.2009 को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की आयु 20 वर्ष होने का मत दिया और अभिकथित घटना की तिथि 12.4.2008 है। इस प्रकार यह बहुत स्पष्ट है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 अभिकथित घटना की तिथि पर किशोर नहीं था।

11. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलीय न्यायालय ने उसकी जन्मतिथि के संबंध में विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल प्रमाण पत्रों पर विचार करने के बाद और चिकित्सा बोर्ड के मत पर भी विचार करने के बाद सही प्रकार से विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को किशोर घोषित किया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यह सुस्थापित विधि है कि आयु के बारे में मेडिकल मत लगभग दो वर्ष आगे-पीछे होना चाहिए। अत: यदि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 दिनांक 18.2.2009 को 20 वर्ष है और घटना की तिथि दिनांक 12.4.2008 है, घटना की अभिकथित तिथि पर अपीलार्थी की आयु लगभग 17 वर्ष होनी चाहिए।

12. झारखंड किशोर नयाय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) नियमावली, 2003 का नियम 22 (5) स्पष्टत: अधिकथित करता है कि कैसे किसी व्यक्ति, जो किशोरावस्था का दावा करता है, की आयु का विनिश्चय किया जा सकता है जो निम्नलिखित है:-

22(5) "किशोर अथवा बालक से संबंधित प्रत्येक मामला में बोर्ड को-

(i) निगम अथवा नगरपालिका प्राधिकारी द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र;

(ii) नाम लिखाए गए प्रथम विद्यालय से जन्म प्रमाण पत्र की तिथि;

(iii) मैट्रिकुलेशन अथवा समतुल्य प्रमाणपत्रों, यदि उपलब्ध हो; और

(iv) उक्त (i) से (iii) तक की अनुपस्थिति में, ऐसे मेडिकल बोर्ड द्वारा सुयोग्य मामलों में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए एक वर्ष के मार्जिन के अधीन सम्यक रूप से गठित मेडिकल बोर्ड का मेडिकल मत (जब ऐसे साक्ष्य, जो उपलब्ध हो सकते हैं, अथवा मेडिकल मत जैसा भी मामला हो, को विचार में लेने के बाद उसकी आयु के संबंध में और ऐसे मामले में आदेशों को पारित करते हुए उसकी आयु के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करना होगा, प्राप्त करना होगा)।''

13. चूँकि एक वर्ष के मार्जिन के अंतर्गत न्यूनतर स्तर पर उसकी आयु पर विचार करते हुए बालक अथवा किशोर को लाभ देने के लिए पूर्वोक्त अधिनियम स्पष्टत: कथन करता है, अत: अभिकथित घटना की तिथि पर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को किशोर मानने का प्रश्न ही नहीं है। मेडिकल बोर्ड के रिपोर्ट के अनुसार, दिनांक 18.2.2009 को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की आयु 20 वर्ष है। अत:, न्यूनतर स्तर पर एक वर्ष का लाभ देने के बाद भी उसकी आयु 18 वर्ष से अधिक थी।

14. विचारण न्यायालय ने विस्तारपूर्वक चर्चा के बाद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दाखिल दस्तावेजों पर अविश्वास किया और उसकी आयु विनिश्चित करने के लिए मामला मेडिकल बोर्ड को निर्दिष्ट कर दिया। किन्तु अपीलीय न्यायालय ने न तो अपना स्पष्ट निष्कर्ष दिया है और न ही उक्त दस्तावेजों पर विश्वास किया है, व्यवहारत: उनका निर्णय मेडिकल बोर्ड के रिपोर्ट पर आधारित है और उक्त रिपोर्ट की संवीक्षा के बाद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को किशोर घोषित किया गया था।

15. मामले के उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं नहीं समझता हूँ कि इस चरण पर दस्तावेजों की वास्तविकता पर विचार करने की आवश्यकता है जब प्रधान न्यायाधीश, जे॰ जे॰ बोर्ड द्वारा पहले उनको त्याग दिया गया है और अपीलीय न्यायालय ने इस विवाद्यक पर कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं दिया है।

16. दोनों पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करते हुए और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करते हुए और झारखंड किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) नियमावली, 2003 के नियम 22 में अधिकथित प्रक्रिया के संबंध में उक्त की गयी चर्चा पर मैं अपीलीय न्यायालय द्वारा याची की आयु के निर्धारण और विनिश्चय में स्पष्ट गलती पाता हूँ।

17. तद्नुसार, मैं यह पुनरीक्षण आवेदन स्वीकार करता हूँ और दांडिक विविध अपील सं॰ 71 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 30.5.2009 का आदेश अपास्त करता हूँ और जी॰ आर॰ केस सं॰ 577 वर्ष 2008, जाँच सं॰ 79 वर्ष 2009 और शिकारीपारा पी॰ एस॰ केस सं॰ 33 वर्ष 2008 के संबंध में प्रधान दंडाधिकारी, जे॰ जे॰ बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 27 मार्च, 2009 के आदेश को संपुष्ट करता हूँ।

18. कार्यालय को संबंधित न्यायालय को अवर न्यायालय अभिलेख तुरन्त वापस भेजने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय एन॰ एन॰ तिवारी, न्यायमूर्ति

संजय कुमार उपाध्याय

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय एवं अन्य

WPL No. 2139 of 2005. Decided on 23rd July, 2010.

झारखंड दुकान एवं स्थापन अधिनियम, 1953—धाराएँ 26 (2) एवं 2 (4)—परिवाद इस आधार पर खारिज किया गया कि याची-परिवादी धारा 2(4) के अधीन एक कर्मचारी नहीं है—परिवादी कम्पनी के प्रबंधन कैडर में था—धारा 2 (4) ने प्रबंधन के कर्मचारी अथवा कर्मकार को सुभिन्न नहीं किया है—कारखाना में सेवारत कोई भी व्यक्ति, जो कर्मकार नहीं है, अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत कर्मचारी है—धारा 2 (4) में वर्णित अपवाद के अर्थ के अंतर्गत याची एक कर्मचारी है—आक्षेपित आदेश अपास्त—गुणागुण पर मामला फिर से सुने जाने के लिए वापस श्रम न्यायालय को भेजा गया। (पैराएँ 13, 14, 16 एवं 17)

निर्णयज विधि.—1978 BLJ 187—Distinguished; 1996 (1) PLJR 297; 1999(2) BLJR 1110—Referred to.

अधिवक्तागण.—Mr. Vishal Kumar Tiwari, For the Petitioner; Mr. Rohit Roy, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने बी॰ एस॰ केस सं॰ 6/2002 में पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, राँची द्वारा पारित दिनांक 23.7.2004 के निर्णय/आदेश को अपास्त करने के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा उन्होंने अभिनिर्धारित किया है कि याची बिहार (अब झारखंड) दुकान एवं स्थापन अधिनियम, 1953 (इसके बाद उक्त अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 2(4) के प्रावधान के अधीन कर्मचारी नहीं है और उक्त अधिनियम की धारा 26 (2) के अधीन अपनी बर्खास्तगी के विरुद्ध उसका परिवाद पोषणीय नहीं है।

2. उक्त आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि आदेश विकृत एवं मनमाना है। श्रम न्यायालय ने याची को अपने दावा के समर्थन में साक्ष्य देने का अवसर दिए बिना पोषणीयता को आरंभिक विवाद्यक के रूप में विनिश्चित किया है। विद्वान श्रम न्यायालय ने तीन दस्तावेजों को निर्दिष्ट किया है

जिनकी यह विवाद्यक कि क्या अपीलार्थी उक्त अधिनियम की धारा 2(4) की परिधि के अंतर्गत कर्मचारी है–विनिश्चित करने में कोई प्रासंगिकता नहीं है। इन पर यह अभिनिर्धारित करने के लिए विश्वास किया गया है कि परिवादी कम्पनी के प्रबंधन कैडर में था और वह उक्त अधिनियम की धारा 2 (4) के अधीन 'कर्मचारी' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है।

3. याची के अनुसार, वह कम्पनी में फील्ड अधिकारी का पद धारण कर रहा था। वह अचानक दिनांक 25.10.2001 को बेगूसराय में बीमार हो गया। डॉक्टर ने उसे पूर्ण विश्राम का परामर्श दिया। याची उस परिस्थिति में दिनांक 7.1.2002 तक हिल नहीं सकता था और कर्तव्य का पालन नहीं कर सकता था। याची ने बीमारी के संबंध में क्षेत्रीय प्रबंधक, पटना को दूरभाष पर और लिखित रूप से भी सूचना दी थी। उसने दिनांक 8.1.2002 को फिर से अपना कर्तव्य संभाल लिया था। उसने चिकित्सीय प्रमाण पत्र भी दाखिल किया था। अचानक उसने दिनांक 11.1.2002 को दिनांक 26.10.2001 के प्रभाव के साथ अर्थात् भूतलक्षी प्रभाव से अर्थात् 26.10.2001 से सेवा समाप्त करने वाला पत्र प्राप्त किया जो इस आधार पर था कि वह 26.10.2001 से अपने ड्यूटी पर हाजिर नहीं हो रहा था। यह कथन किया गया है कि छुट्टी से अधिक रुकने के लिए अथवा ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के लिए सेवा से बर्खास्तगी का दंड अधिनिर्णीत करने के लिए ऐसी कोई सेवा शर्त नहीं थी और वह भी किसी कार्यवाही को आरंभ किए बिना और उसको अभ्यावेदन देने का अवसर दिए बिना।

4. अत: याची ने उक्त आदेश को वापस लेने के लिए कम्पनी से प्रार्थना करते हुए अभ्यावेदन दिया था किन्तु इस पर ध्यान नहीं दिया गया था। तत्पश्चात, उसने अधिनियम की धारा 26 (2) के अधीन श्रम न्यायालय, राँची में परिवाद दाखिल किया।

5. विपक्षी पक्षकार-प्रबंधन ने याचिका का प्रतिवाद किया और अन्य बातों के साथ कथन किया कि दुकान एवं स्थापन अधिनियम की धारा 26 (2) के अधीन याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि विपक्षी पक्षकार उक्त अधिनियम की धारा 2(4) के प्रावधान के अंतर्गत कर्मचारी नहीं है। वह प्रबंधन कैडर का पद धारण कर रहा था।

6. विद्वान श्रम न्यायालय ने उक्त आरंभिक बिन्दु को ग्रहण किया और प्रश्न विरचित किया कि क्या परिवादी बिहार दुकान एवं स्थापन अधिनियम की धारा 2 (4) के मुताबिक कर्मचारी था।

7. उक्त अप्रारम्भिक विवाद्यक को विनिश्चित करते हुए विद्वान श्रम न्यायालय ने विपक्षी पक्षकार-कम्पनी द्वारा परिवादी को संबोधित दिनांक 11.1.2002 के पत्र को ध्यान में लिया जिसमें कथन किया गया था कि कोई कार्यपालक अपने निकटतम उच्चतर अधिकारी के लिखित अनुमोदन के बिना अनुपस्थित नहीं रहेगा।

8. यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि ड्यूटी से अनुपस्थिति के लिए किसी कार्यपालक की सेवा बर्खास्त करने योग्य है। दिनांक 21.1.2002 का दस्तावेज, जो हायर-परचेज सेवा समाप्ति नोटिस है, दर्शाता है कि परिवादी कम्पनी का प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता था और उसे हायर-परचेज करार की समाप्ति का निर्णय लेने प्राधिकार था।

9. उक्त दस्तावेज के आधार पर, विद्वान श्रम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि परिवादी विपक्षी पक्षकार की कम्पनी के प्रबंधन कैडर में था और बी॰ एस॰ अधिनियम की धारा 2(4) के मुताबिक 'कर्मचारी' नहीं था। उन्होंने आगे अभिनिर्धारित किया कि बी॰ एस॰ अधिनियम की धारा 26(2) के अधीन परिवाद पोषणीय नहीं था। अत: विद्वान श्रम न्यायालय ने परिवाद खारिज कर दिया।

10. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा प्राप्त किया गया निष्कर्ष आधार रहित है। विद्वान श्रम न्यायालय ने उक्त अधिनियम की धारा 2(4) में दी

गयी 'कर्मचारी' की परिभाषा की गलत व्याख्या की और परिवादी को साक्ष्य देने का अवसर दिए बिना उक्त अप्रारम्भिक विवाद्यक को विनिश्चित किया।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि चूँकि याची प्रबंधन सम्बन्धी पद धारित कर रहा था, वह उक्त अधिनियम के अधीन 'कर्मचारी' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है। विद्वान श्रम न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि परिवाद याचिका पोषणीय नहीं है और इसे अपोषणीय अभिनिर्धारित करते हुए याचिका को खारिज कर दिया। उन्होंने **मेसर्स रोहतास इंडस्ट्रीज लि॰ बनाम राम लखन सिंह एवं अन्य (1978 BLJ 187)** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया और उस पर विश्वास किया।

12. झारखंड दुकान एवं स्थापन अधिनियम की धारा 2 (4) 'कर्मचारी' की निम्नलिखित परिभाषा देता है:–

> *[(4) 'कर्मचारी का अर्थ है किसी स्थापन में और इससे संबंधित वेतन, पुरस्कार अथवा कमीशन सहित भाड़े पर अंशतः अथवा पूर्णतः सेवारत कोई व्यक्ति, और यह 'एप्रेन्टिस' को सम्मिलित करता है किन्तु नियोक्ता के परिवार के सदस्य को नहीं सम्मिलित करता है। यह किसी कारखाना में सेवारत व्यक्ति को भी सम्मिलित करता है जो कारखाना अधिनियम, 1948 (1948 का 63) के अर्थ के अंतर्गत मजदूर नहीं है और इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही के उद्देश्य से उस कर्मचारी को सम्मिलित करता है जिसे किसी भी कारण से बर्खास्त, उन्मोचित अथवा छाँटा गया है।''*

13. उक्त परिभाषा के कोरे पठन पर, यह स्पष्ट है कि एप्रेन्टिस् सहित कोई व्यक्ति जो किसी स्थापन में और उससे संबंधित वेतन, पुरस्कार अथवा कमीशन सहित भाड़े पर अंशत: अथवा पूर्णत: सेवारत है, अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत कर्मचारी है। यह आगे किसी कारखाना में सेवारत व्यक्ति को सम्मिलित करता है जो कारखाना अधिनियम, 1948 के अर्थ के अंतर्गत मजदूर नहीं है और जो इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही के उद्देश्य से किसी भी कारण से बर्खास्त, उन्मोचित अथवा छाँटा गया है, वह भी कर्मचारी है।

14. अधिनियम की धारा 12 (4) ने प्रबंधन कर्मचारी अथवा कर्मकार को सुभिन्न नहीं किया है। विद्वान श्रम न्यायालय ने **1999 (2) BLJR 1110 (गौतम बनर्जी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य); 1996 (1) PLJR 297 (मेसर्स आई॰ टी॰ सी॰ लिमिटेड बनाम बिहार राज्य)** में प्रकाशित पटना उच्च न्यायालय के निर्णय और **मेसर्स रोहतास इंडस्ट्रीज लिमिटेड, 1978 BLJ 187** में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया और इस निष्कर्ष पर आए कि याची फील्ड अधिकारी का पदधारण कर रहा था जो एक कार्यपालक पद है और उसे कम्पनी के प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में हायर–परचेज करार की समाप्ति का निर्णय लेने का प्राधिकार था और इस प्रकार वह बी॰ एस॰ अधिनियम की धारा 2 (4) के अधीन कर्मचारी नहीं है।

15. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन करने के लिए **मेसर्स रोहतास इंडस्ट्रीज लिमिटेड (ऊपर)** के निर्णय पर भारी विश्वास किया है।

16. उक्त निर्णय का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि उक्त मामले के तथ्य पूर्णत: भिन्न थे और वर्तमान मामले के संदर्भ में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है। उक्त अधिनियम की धारा 2 (4) के अधीन परिभाषा का सरल पठन सुझाता है कि किसी कारखाना में सेवारत कोई व्यक्ति भी जो मजदूर नहीं है, अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत 'कर्मचारी' है। किन्तु ऐसे व्यक्तियों की कोटि से दो अपवादों को काढ़ कर निकाला गया है अर्थात (1) जो कारखाना अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत काम नहीं कर रहे हैं, वैसे मजदूर 'कर्मचारी' शब्द की अंतर्हित परिभाषा के अंतर्गत आते हैं और (2) जो नियोक्ता के परिवार के सदस्य

है। अत: कहा जा सकता है कि किसी कारखाना में सेवारत व्यक्ति भी और जो कारखाना अधिनियम के अंतर्गत मजदूर नहीं है, उक्त अधिनियम की धारा 2 (4) के अधीन कर्मचारी होगा भले ही वह प्रबंधन हैसियत से कार्य कर रहा है। उक्त निर्दिष्ट मामला में व्यक्ति पेपर कारखाना में सेवारत था जबकि वर्तमान मामला में यह किसी का मामला नहीं है कि परिवादी किसी कारखाना में सेवारत था। इस प्रकार, याची उक्त अधिनियम की धारा 2 (4) में उल्लिखित अपवाद के अर्थ के अंतर्गत कर्मचारी है। चूँकि आक्षेपित आदेश उक्त निर्णय पर आधारित है जो वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू होने योग्य नहीं है, अत: यह पूर्णत: विकृत और असंपोषणीय है। तद्नुसार विद्वान श्रम न्यायालय का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

17. तथापि, याची का मामला गुणागुण पर विनिश्चित नहीं किया गया है और अन्य विवादों को विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा विनिश्चय के लिए नहीं लिया गया था, मामला सारे विवाद्यकों, जो मामले में उद्भूत हो सकते हैं, पर गुणागुण पर विधि के अनुरुप नए सिरे से सुनवाई के लिए श्रम न्यायालय को वापस भेजा जाता है। चूँकि मामला काफी पुराना है, श्रम न्यायालय को इसे शीघ्रातिशीघ्र निपटाने का निर्देश दिया जाता है ताकि यह इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर समाप्त किया जा सके।

18. इस आदेश की प्रति श्रम न्यायालय, राँची को भेजी जाए।

19. तद्नुसार, उक्त निबंधनों में यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

राज्य आरक्षी अधीक्षक, सी॰ बी॰ आई॰, राँची के माध्यम से

बनाम

एम॰ एल॰ पॉल

Govt. Appeal No. 06 of 2001 with Cr. Revision No. 366 of 2001.
Decided on 26th October, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420, 467, 468 एवं 471—छल एवं कूटरचना–दोषसिद्धि एवं दंड–कारावास के दंडादेश में कतिपय परिवर्तन के साथ दांडिक अपील की खारिजी–प्रत्यर्थी ने नकली दस्तावेजों के आधार पर नियुक्ति सुरक्षित की और अनेक बार प्रोन्नति भी पायी–इस मामला के चलते प्रत्यर्थी अपनी सेवा पहले ही खो चुका है–मामला 14 वर्षों से भी अधिक पुराना है–आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता अथवा दुर्बलता नहीं है–पुनरीक्षण आवेदन को खारिज किया गया। (पैराएँ 7 से 11)

निर्णयज विधि.–1980 Cr.LJ 1312 (SC); 1999(5) SCC 732—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s. Rajesh Kumar, Deepak Bharti, For the Petitioner; M/s. Anil Kumar Sinha, Sameer Saurabh, For the Opp. Party.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–वर्तमान सरकारी अपील दिनांक 8.6.2001 को अपीलार्थी राज्य द्वारा आरक्षी अधीक्षक, सी॰ बी॰ आई॰, राँची के माध्यम से विशेष न्यायिक दंडाधिकारी (सी॰ बी॰ आई॰) सह-एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 14.12.2000 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है। अपीलार्थी के अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार निवेदन करते हैं कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी अर्थात् एम॰ एल॰ पॉल ने पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध षष्ठम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची के न्यायालय में अपील (दांडिक अपील सं॰ 4 वर्ष 2001)

दाखिल किया था जिन्होंने पक्षों को सुनने के बाद दिनांक 6.6.2001 के अपने निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत कारावास के दंड में कतिपय परिवर्तन के साथ अपील को खारिज कर दिया। आगे निवेदन किया गया है कि वर्तमान अपीलार्थी ने अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 6.6.2001 के पूर्वोक्त निर्णय के विरुद्ध दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 366 वर्ष 2001 भी दाखिल किया है।

2. अभिलेख से, मैं पाती हूँ कि अपीलार्थी ने विशेष न्यायिक दंडाधिकारी (सी॰ बी॰ आई॰) सह-एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ राँची द्वारा पारित दिनांक 14.12.2000 के निर्णय के विरुद्ध दिनांक 8.6.2001 को इस सरकारी अपील को दाखिल किया है। अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार ने पूर्वोक्त निर्णय के विरुद्ध षष्ठम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची के समक्ष दांडिक अपील सं॰ 4 वर्ष 2001 दाखिल किया और वर्तमान अपीलार्थी उपस्थित भी हुआ है और उक्त दांडिक अपील का प्रतिवाद किया है और अंतत: दंडादेश में कतिपय परिवर्तन के साथ दिनांक 6.6.2001 को उक्त दांडिक अपील निपटा दी गयी थी। अत: यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलार्थी ने दांडिक अपील सं॰ 4 वर्ष 2001 में षष्ठम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 6.6.2001 के पूर्वोक्त निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 366 वर्ष 2001 दाखिल किया है, सरकारी अपील अब निष्फल हो गयी है। तद्नुसार सरकारी अपील का निष्फल होने के कारण खारिज किया जाता है।

3. याची (राज्य आरक्षी अधीक्षक सी॰ बी॰ आई॰ राँची के माध्यम से) ने षष्ठम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 6.6.2001 के उस निर्णय के विरुद्ध वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया है जिसके द्वारा अपीलीय न्यायालय ने अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार को अधिनिर्णीत कारावास के दंडादेश में कतिपय परिवर्तन के साथ दांडिक अपील को खारिज कर दिया है।

4. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सी॰ बी॰ आई॰ ने यह सूचना मिलने पर अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार एम॰ एल॰ पॉल के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज किया जिसमें अभिकथन किया गया कि एम॰ एल॰ पॉल ने वर्ष 1982 के दौरान सी॰ एम॰ पी॰ डी॰ आई॰ एल॰ राँची में अभियन्ता की नौकरी के लिए आवेदन दिया था और उसमें यह दर्शाते हुए कि वह वर्ष 1973 में बंगाल इंजीनियरिंग कॉलेज से बी॰ ई॰ (मेक) में उत्तीर्ण हुआ था अपने आवेदन के साथ अनेक प्रमाण पत्रों को दाखिल किया। उस प्रमाण पत्र और अंक पत्र के आधार पर उसे वर्ष 1982 में सी॰ एम॰ पी॰ डी॰ आई॰ एल॰, राँची में अभियन्ता के रूप में नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात् अनेक बार उसे प्रोन्नत किया गया था। प्राथमिकी में अभिकथन किया गया था कि निगरानी विभाग ने जाँच संचालित की थी और पाया था कि वह न तो बंगाल इंजीनियरिंग कॉलेज का छात्र था और न ही वह कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी॰ ई॰ (मेक) में उत्तीर्ण हुआ था। उक्त प्राथमिकी के आधार पर उसके विरुद्ध सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा मामला दर्ज किया गया था। अन्वेषण के बाद सी॰ बी॰ आई॰ ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 420/467/468/471 के अधीन अपराधों के लिए आरोप-पत्र दाखिल किया।

5. विचारण के दौरान सी॰ बी॰ आई॰ ने दस गवाहों का परीक्षण किया था। तत्पश्चात् अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार ने उसमें यह कथन करते हुए याचिका दाखिल किया कि प्रमाण पत्र की कूटरचना के इसी आरोप पर विभाग द्वारा पहले ही उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है और इस प्रकार उसने अपने दोष को संस्वीकार किया और दंडादेश अधिनिर्णीत करने के मामला में दया की प्रार्थना की। विचारण न्यायालय ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उसका बयान, जिसमें उसने अपना दोष संस्वीकार किया, दर्ज करने के बाद उसे दोषसिद्ध किया और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 के अधीन एक माह के कठोर कारावास और 2500/-रु॰ जुर्माना का दंडादेश दिया और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में उसे 15 दिनों के अतिरिक्त कठोर कारावास का दंडादेश दिया। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 420/467 एवं 468 के अधीन कोई पृथक दंडादेश

अधिनिर्णीत नहीं किया गया था किन्तु भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए 2500/- रुपया का जुर्माना और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 467 के अधीन अपराध के लिए 2500/-रु॰ का जुर्माना अधिरोपित किया गया था और इसके व्यतिक्रम में 15 दिनों का अलग-अलग कठोर कारावास भुगतने का दंड दिया गया था। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 468 के अधीन अपराध के लिए कोई महत्वपूर्ण दंडादेश अथवा जुर्माना अधिनिर्णीत नहीं किया गया था।

6. अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार ने विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत पूर्वोक्त दोषसिद्धि एवं दंडादेशों के विरुद्ध दांडिक अपील सं॰ 4 वर्ष 2001 दाखिल किया। उक्त अपील की सुनवाई के दौरान सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने माना और स्वीकार किया कि इस मामला के कारण एम॰ एल॰ पॉल पहले ही अपनी सेवा गवाँ चुका है। अत: दंडादेश अधिनिर्णीत करने में अपीलीय न्यायालय नरमी बरत सकता है।

7. अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष के प्रासंगिक अंश को उद्धृत करना लाभदायक होगा जो निम्नलिखित है:

''अवर न्यायालय के अभिलेख से, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया है जो कारावास का दंडादेश और जुर्माना विहित करता है। उसे भा० दं० सं० की धारा 420 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और 2500/-रुपया के जुर्माना का भुगतान करने का दंडादेश दिया गया है। अवर न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन उपदर्शित करता है कि भा० दं० सं० की धारा 467 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध पृथक आरोप विरचित किया गया था जिसके अधीन भी अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया है और 2500/-रु० जुर्माना के भुगतान का दंडादेश दिया गया है। भा० दं० सं० की धारा 467 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध कारावास का दंडादेश नहीं पारित किया गया है। अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 467 के अधीन आरोपित किया गया है और भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी को एक माह का कठोर कारावास भुगतने और 2500/-रुपया जुर्माना का भुगतान करने का भी जिसके व्यतिक्रम में 15 दिनों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। इस प्रकार अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन अपराध के लिए केवल जुर्माना का भुगतान करने का दंडादेश दिया गया है जो मुख्य अपराध है। अत: मैं महसूस करता हूँ कि भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन आरोप, जो एक आनुषंगिक अपराध है, के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध पारित एक माह के कारावास के दंडादेश का आदेश अयुक्तियुक्त, अवैध और अत्यधिक है क्योंकि अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 467 के अधीन दंडनीय मुख्य अपराध के लिए किसी कारावास का दंडादेश नहीं दिया गया है। भा० दं० सं० की धारा 420 के अधीन आरोप के लिए भी अपीलार्थी को किसी कारावास का दंडादेश नहीं दिया गया है यद्यपि धारा 420 के अधीन कारावास का दंडादेश पारित करना दंडाधिकारी के लिए अनिवार्य है। भा० दं० सं० की धारा 468 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी को किसी जुर्माना अथवा कारावास का दंडादेश नहीं दिया गया है। चूँकि इस न्यायालय को दं० प्र० सं० की धारा 386 (B) (iii) के अधीन प्रावधान के मुताबिक दंड बढ़ाने की शक्ति नहीं है, अत: भा० दं० सं० की धारा 420 के अधीन आरोप के लिए 2500/-रुपया जुर्माना भुगतान और भा० दं० सं० की धारा 467 के अधीन आरोप के लिए जुर्माना का भुगतान करने के दंडादेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इस तथ्य की दृष्टि में कि अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 467, 468 अथवा 420 के अधीन अपराध के लिए किसी कारावास का दंड नहीं दिया गया है, अपीलार्थी के विरुद्ध अधिरोपित भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन एक माह का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश अवैध, अयुक्तियुक्त और अत्यधिक प्रतीत होता है और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथनों से मैं महसूस करता हूँ कि भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 467 के अधीन अपराध के लिए

अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप विरचित नहीं किया जाना चाहिए था बल्कि भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन आरोप अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित किया जाना चाहिए था। अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथन यह है कि उसने रोजगार पाने के लिए कूट रचित प्रमाण पत्र का प्रयोग वास्तविक प्रमाण पत्र के रूप में किया है। 1980 Criminal Law Journal 1312 Supreme Court में प्रकाशित निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रवेश लेने के उद्देश्य से कूटरचित प्रमाण पत्र का प्रयोग वास्तविक प्रमाण पत्र के रूप में करने के लिए भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन आरोप विरचित किया जाना चाहिए और भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 467 के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित नहीं किया जाना चाहिए। अतः विद्वान दंडाधिकारी को भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित करना चाहिए था और अपीलार्थी को दोषसिद्ध करना चाहिए था क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, भा० दं० सं० की धारा 471 पृथक दंड विहित नहीं करती है बल्कि भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन यही दंड दिया जाना होगा जो ऐसे दस्तावेज की कूटरचना के लिए विहित है। शैक्षणिक प्रमाण पत्र को बहुमूल्य प्रतिभूति नहीं कहा जा सकता है। अतः अपीलार्थी के विरुद्ध भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन अपराध के लिए आरोप विरचित किया जाना चाहिए था और अपीलार्थी को भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 467 के अधीन अपराध के लिए आरोपित और दोषसिद्ध नहीं किया जाना चाहिए था। अतः भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 467 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि को एतद् द्वारा भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन दोषसिद्धि में परिवर्तित किया जाता है। भा० दं० सं० की धारा 465 कहती है कि जो कोई भी कूटरचना करता है, उसे उस अवधि के लिए कारावास जिसकी अवधि दो वर्षों तक बढ़ायी जा सकती है, अथवा जुर्माना अथवा दोनों के साथ दंडित किया जाएगा। अतः भा० दं० सं० की धारा 465 के अधीन दंडाधिकारी केवल जुर्माना का दंडादेश पारित करने के लिए सशक्त है। वर्तमान मामला में, जैसा विशेष पी० पी० द्वारा भी स्वीकार किया गया है, अपीलार्थी पहले ही अपनी सेवा गवाँ चुका है जिसे उसने कूटरचित प्रमाण पत्र का उपयोग वास्तविक प्रमाण पत्र के रूप में करके पाया था। अतः अपीलार्थी को पहले ही उसके द्वारा की गयी गलती अथवा अपराध के लिए दंडित किया जा चुका है। अतः विद्वान विशेष दंडाधिकारी के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन आरोप के लिए कारावास का दंडादेश पारित करना अनिवार्य अथवा आवश्यक नहीं था विशेषतः तब जब विद्वान दंडाधिकारी ने भा० दं० सं० की धाराएँ 420, 467 और 468 के अधीन कारावास का दंडादेश नहीं पारित किया था जो कारावास और जुर्माना अथवा दोनों का दंडादेश विहित करता है। इसके अतिरिक्त, विद्वान विशेष दंडाधिकारी को विचार करना चाहिए था कि अपीलार्थी ने यह कहते हुए कि समरुप आरोप के लिए उसे पहले ही बर्खास्त किया जा चुका है अपना दोष स्वेच्छापूर्वक संस्वीकार किया है। Criminal Law Journal 1980 page 1312 Supreme Court में प्रकाशित निर्णय के मुताबिक भा० दं० सं० की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन अपराध का दोषसिद्ध को दं० प्र० सं० की धारा 360 का लाभ दिया जा सकता है। विद्वान दंडाधिकारी को यह विचार में लेना चाहिए था कि अपीलार्थी ने शारीरिक और मानसिक यातना और वित्तीय खर्चा सहते हुए पाँच वर्षों तक विचारण का सामना किया है। उक्त तथ्यों पर विचार करते हुए मैं महसूस करता हूँ कि न्याय के हित में भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन आरोप के लिए अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए एक माह का कठोर कारावास का दंडादेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है किन्तु अपीलार्थी के विरुद्ध भा० दं० सं० की धारा 471 के अधीन आरोप के लिए 2500/-रुपया जुर्माना और इसके व्यतिक्रम में 15 दिनों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश एतद् द्वारा संपुष्ट किया जाता है। भा० दं० सं० की धाराएँ 420,

467 और 468 के अधीन आरोप के लिए अपीलार्थी के दंडादेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। ऊपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, मेरा दृष्टिकोण यह है कि इस दांडिक अपील में कोई गुणागुण नहीं है। इसलिए, जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है, कारावास के दंडादेश में परिवर्तन के साथ यह दांडिक अपील खारिज की जाती है।

8. याची की ओर से उपस्थित श्री राजेश कुमार ने निवेदन किया कि अपीलीय न्यायालय ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 375 खंड बी॰ के प्रावधान पर विचार नहीं किया है और इसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत कारावास के दंडादेश को अपास्त नहीं करना चाहिए था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 सह-पठित धारा 467 के अधीन दंडादेश पारित करने में विचारण न्यायालय ने कोई अवैधता नहीं की है। अपीलीय न्यायालय ने इसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन परिवर्तित करने में पूर्ण गलती की है जब विचारण न्यायालय के समक्ष दोषी होने का अभिवचन करते हुए अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार ने पूर्वोक्त आरोप के प्रति कोई आपत्ति नहीं उठायी थी।

9. विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित वरीय अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार सिन्हा ने निवेदन किया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 386 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए यह अभिनिर्धारित करते हुए कि शैक्षणिक प्रमाण पत्र बहुमूल्य प्रतिभूति नहीं है, आरोप को परिवर्तित कर दिया और **1980 Cr. LJ Page 1312 (SC) (बाबू साहब कालू पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य)** में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:-

''.....हम नहीं समझतें हैं कि पुना विश्वविद्यालय से संबद्ध कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय में प्रवेश लेने के लिए कूटरचित पाए गए अपीलार्थी के दो प्रमाण पत्रों को बहुमूल्य प्रतिभूति के रूप में वर्णित किया जा सकता है जैसा इस अभिव्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 30 में परिभाषित किया गया है। अतः हम पूर्वोक्त धाराओं के अधीन दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 471 सह-पठित धारा 465 के अधीन दोषसिद्धि में परिवर्तित करते है.....''

10. अभियुक्त विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित श्री सिन्हा ने आगे प्रतिवाद किया कि अभियुक्त विपक्षी पक्षकार को दिनांक 8.11.1995 को उसकी सेवा से पहले ही बर्खास्त किया जा चुका है और मामला 14 वर्षों से भी अधिक पुराना है। उन्होंने **1999 (5) SCC Page 732, कर्नाटक राज्य बनाम मुदप्पा** में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है।

''.....हम इतना समय बीतने के बाद इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए उस आदेश में कोई दुर्बलता नहीं पाते है विशेषतः अब कुछ भी इंगित नहीं किया गया है कि क्या अभियुक्त ने किसी भी तरीके से उसे परिवीक्षा अनुज्ञात करने के निबंधनों और शर्तों का उल्लंघन किया है.....''

11. दोनों पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करते हुए और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करते हुए और ऊपर उद्धृत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संप्रेक्षणों को दृष्टि में रखते हुए और मामला पर संपूर्ण रूप से विचार करते हुए, मैं हस्तक्षेप करने लायक आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता अथवा दुर्बलता नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, यह पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है। अभियुक्त-विपक्षी पक्षकार अर्थात् एम॰ एल॰ पॉल, जो जमानत पर है, को उसके जमानत बंध-पत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

धीरेन्द्र नाथ बारिक एवं अन्य (3737 में)

विजय कुमार महतो (3227 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (C) Nos. 3737 of 2009 with 3227 of 2010.
Decided on 25th November, 2010.

बिहार व्यापारिक वस्तु (अनुज्ञप्ति एकीकरण) आदेश, 1984—खंड 11—आदेश, 1984 के अभिकथित उल्लंघन के लिए पी॰ डी॰ एस॰ लाइसेन्स का रद्दकरण–उनको नोटिसें को जारी करने और उनके कारण-पृच्छा पर विचार करने के बाद एस॰ डी॰ ओ॰ ने अनेक डीलरों के लाइसेन्सों को रद्द कर दिया–एकीकरण आदेश के अधीन अपील को अस्वीकार करने वाले ऐसे आदेशों के विरुद्ध कमिश्नर के समक्ष केवल पुनरीक्षण को दाखिल किया जा सकता था और पुनर्विलोकन के लिए प्रावधान नहीं है–वैध आधारों पर लाइसेन्सों को रद्द किया गया था–अनुज्ञप्तिधारीगण भेद-भाव अथवा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन का परिवाद नहीं कर सकते हैं–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Sahani (in 3737), Mr. A. Anand (in 3227), For the Petitioners; Mr. Rajesh Shankar (in both), For the Respondent.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. <u>डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 3737 वर्ष 2009</u>

अनुमंडलाधिकारी, सरायकेला ने जवाहर रोजगार योजना के अधीन उनको आपूर्त्ति किए गए अनाजों के दुरुपयोग के संबंध में और लाइसेन्सों के निबंधनों और पी॰ डी॰ एस॰ दुकानों के करारों के उल्लंघन के लिए कारण बताने के लिए याचीगण सहित अनेक जन वितरण प्रणाली (पी॰ डी॰ एस॰) दुकान डीलरों को नोटिसों को जारी किया था। उनको अवसर देने के बाद, अनुमंडलाधिकारी ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि बिहार व्यापारिक वस्तु (अनुज्ञप्ति एकीकरण एवं नियंत्रण) आदेश, 1984 (इसमें इसके बाद एकीकरण आदेश के रूप में निर्दिष्ट) का और पी॰ डी॰ एस॰ दुकानों को चलाने के लिए करार के निबंधनों का उल्लंघन किया गया है, उनके लाइसेन्सों को रद्द कर दिया।

अनुमंडलाधिकारी द्वारा पारित उक्त आदेशों के विरुद्ध याची सं॰ 8–भगीरथ पंडा ने उप-कमिश्नर के समक्ष अपील दाखिल किया। दिनांक 8.11.2001 के आदेश द्वारा उप-कमिश्नर ने गुणागुण पर उक्त अपील को खारिज कर दिया। चार वर्षों बाद अन्य याचीगण ने उप-कमिश्नर के समक्ष विविध याचिकाओं को दाखिल किया। उत्तरजीवी उपकमिश्नर ने पूर्ववर्ती उपकमिश्नर द्वारा पारित आदेशों को मुख्यत: इस आधार पर उलट दिया कि डीलरों को दांडिक मामलों में जमानत प्रदान किया गया था और लाइसेन्सों को पुनर्स्थापित किया गया था। किसी संत कुमार साहू ने अपने लाइसेन्स के पुनर्स्थापना के लिए रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 7816 वर्ष 2006 दाखिल किया। उक्त रिट याचिका में पारित अनुपालन आदेश में उपकमिश्नर ने कार्यवाही आरम्भ किया। रिट याचीगण की शिकायत यह है कि उनको कोई नोटिस दिए बिना और उनकी अनुपस्थिति में याचीगण सहित अनेक डीलरों के लाइसेन्सों को रद्द करते हुए दिनांक 30.8.2010 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

3. <u>डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ 3227 वर्ष 2010</u>

पूर्वोक्तानुसार अन्य डीलरों के साथ-साथ 'इन रिट याचीगण के लाइसेन्सों को भी अनुमंडलाधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया है। पूर्वोक्तानुसार अन्य अनुज्ञप्तिधारकों के लाइसेन्सों को पुनर्स्थापित किए जाने के बाद, रिट याचीगण ने समरुप आदेशों को पारित किए जाने के लिए उपकमिश्नर के समक्ष विविध याचिका दाखिल किया। उपकमिश्नर ने उक्त विविध याचिका को खारिज कर दिया। जिसके विरुद्ध, याचीगण ने रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 3857 वर्ष 2007 दाखिल किया, जिसे यह विचार करने के लिए कि क्या सम अवस्थित डीलरों के बीच भेदभाव किया गया है, उपकमिश्नर को मामला वापस भेजते हुए दिनांक 3.12.2008 को निपटाया गया था। तद्नुसार, उपकमिश्नर ने इस रिट याचिका में आक्षेपित दिनांक 20.3.2009 का आदेश पारित किया।

रिट याचीगण की शिकायत यह है कि पूर्वोक्त रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 3737 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 11.9.2009 के अंतरिम आदेश के निबंधनानुसार अन्य डीलर अपनी पी॰ डी॰ एस॰ दुकानों को चला रहे हैं।

4. इस प्रकार, यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या उत्तरजीवी उपकमिश्नर पूर्ववर्ती उपकमिश्नर, जिन्होंने गुणागुण पर पी॰ डी॰ एस॰ डीलरों द्वारा दाखिल अपीलों को खारिज कर दिया था, द्वारा पारित आदेशों का पुनर्विलोकन कर सकता है अथवा इन्हें उलट सकता है; और क्या डीलरों में से कुछ के द्वारा दाखिल पुनर्विलोकन/विविध याचिकाओं के स्वयं पोषणीय नहीं होने के नाते उपकमिश्नर ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि उत्तरजीवी-उपकमिश्नर द्वारा उसपर पारित आदेश आरंभ से ही शून्य है और राज्य पर बाध्यकारी नहीं है और ऊपर ध्यान में लिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, डीलर भेदभाव और न्याय के नैसर्गिक सिद्धांतों के उल्लंघन की शिकायत कर सकते हैं।

5. निर्विवादत:, अनुमंडलाधिकारी ने उनको नोटिसें जारी करने और उनके कारण बताओ पर विचार करने के बाद अनेक डीलरों के लाइसेन्सों को रद्द कर दिया। अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि डीलरों ने जवाहर रोजगार योजना के अधीन उनको आपूर्त्ति किए गए अनाजों का दुरुपयोग किया है और अनुज्ञप्तियों के निबंधनों और पी॰ डी॰ एस॰ दुकान के करार का उल्लंघन किया है। डीलरों में से कुछ ने उपकमिश्नर के समक्ष उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलों को दाखिल किया, जिन्होंने डीलरों को सुनने के बाद गुणागुण पर अपीलों को खारिज कर दिया, और अन्य बातों के साथ-साथ अभिनिर्धारित किया कि अनुमंडलाधिकारी ने प्रक्रिया का अनुसरण करने के बाद, और कारण बताओ पर विचार करने के बाद लाइसेन्स को रद्द किया था और लाइसेन्सों को रद्द करने के लिए वह पूर्णत: सक्षम थे और कि डीलरों ने जवाहर रोजगार योजना के अधीन उनको दिए गए अनाजों का दुरुपयोग किया था।

6. यहाँ यह ध्यान में लिया जा सकता है कि एकीकरण आदेश के अधीन अपीलों को अस्वीकार करते हुए ऐसे आदेशों के विरुद्ध केवल कमिश्नर के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल किया जा सकता है और पुनर्विलोकन का प्रावधान नहीं है। किन्तु आश्चर्यजनक रूप से डीलरों में से कुछ ने लगभग चार वर्षों बाद पुनर्विलोकन/विविध याचिकाओं को दाखिल किया है जब उपकमिश्नर बदल गए और उत्तरजीवी उपकमिश्नर श्री अगपित सोरेन ने अपने पूर्ववर्ती द्वारा पारित आदेश का पुनर्विलोकन किया/उलट दिया और मुख्यत: इस आधार पर लाइसेन्सों को पुनर्स्थापित किया कि अनुज्ञप्तिधारकों को दांडिक मामलों में जमानत दिया गया था। अनुज्ञप्तिधारकों में से कुछ ने अपने लाइसेन्स के पुनर्स्थापन के समरुप आदेशों को पारित करने के लिए विविध याचिकाओं को दाखिल किया। उपकमिश्नर, जिन्होंने श्री सोरेन के बाद कार्य संभाला, ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्ववर्ती उपकमिश्नर श्री सोरेन द्वारा पारित आदेश आरंभ से शून्य थे और राज्य पर बाध्यकारी नहीं थे और यह कि पुनर्विलोकन/विविध याचिकाएँ पोषणीय नहीं थी और यह कि लाइसेन्सों को वैध आधार पर रद्द किया गया था, आक्षेपित आदेशों द्वारा

ऐसी याचिकाओं को सही प्रकार से खारिज कर दिया। संबंधित अनुज्ञप्तिधारकों की ऐसी कार्रवाई को सद्भावपूर्ण नहीं कहा जा सकता है और वे भेदभाव अथवा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन की शिकायत नहीं कर सकते हैं। तद्नुसार, पैराग्राफ-4 में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है।

7. ऊपर ध्यान में ली गयी तथ्यों एवं परिस्थितियों में और पूर्वोक्त कारणों से, मैं इन रिट याचिकाओं में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ, जिन्हें तद्नुसार खारिज किया जाता है। किन्तु व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय सुशील हरकौली एवं जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्तिगण

अशोक कुमार सिन्हा

बनाम

आयकर अधिकारी

Tax Appeal No. 63 of 2008. Decided on 3rd December, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 41, नियम 27—आयकर अधिनियम, 1961—धारा 260A (7)—अतिरिक्त साक्ष्य–सामान्यतः, अतिरिक्त साक्ष्य के लिए प्रार्थना सदैव लिखित आवेदन के जरिए की जाती है और यदि अतिरिक्त साक्ष्य दस्तावेज है, इसकी प्रति आवेदन के साथ संलग्न की जाती है–निर्धारिती ने अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए आवेदन दिया है–तथ्य, जो आवश्यक और प्रारंभिक थे, को ए॰ ओ॰ अथवा सी॰ आई॰ टी॰ के समक्ष अभिकथित और सिद्ध नहीं किया गया है–इसे आई॰ टी॰ ए॰ टी॰ के समक्ष अपील के ज्ञापन में नहीं लिया गया था–अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए आधार सृजित करने के लिए निर्धारिती द्वारा मनगढ़ंत प्रकथनों को किया गया है–अपील खारिज। (पैराएँ 5 से 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Biren Poddar, For the Appellants; J.C. to G.P. III, For the Respondents.

आदेश

हमने अपीलार्थी के वरीय अधिवक्ता, श्री बिरेन पोद्दार को विस्तारपूर्वक सुना है और विभाग के विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक रोशन को भी सुना है।

2. निर्धारण अधिकारी, तत्पश्चात सी॰ आई॰ टी॰ और तत्पश्चात अधिकरण तीन फोरम थे जहाँ निर्धारिती द्वारा इस मामले का प्रतिवाद किया गया था। अभिलेख से, यह प्रतीत होता है कि निर्धारिती पूर्णतः अवगत था कि एन॰ आर॰ आई॰ के रूप में उसकी आय को केवल वही अंश आयकर से मुक्त था जिसे भारत के बाहर अर्जित किया गया था। निर्धारिती स्वयं को वेतनभोगी कर्मचारी होने का दावा करता है जो प्रासंगिक लेखा वर्ष के दौरान लगभग 206 दिनों के लिए भारत से बाहर रहा था और 159 दिनों के लिए भारत में रहा था। निर्धारिती का बैंक खाता बैंक ऑफ इंडिया में था जिसमें प्रासंगिक लेखा वर्ष के दौरान कतिपय राशियों को जमा किया गया था। निर्धारिती को यह दर्शाने और सिद्ध करने के लिए ऐसे डिपोजिटों का समुचित लेखा देना था कि इन डिपोजिटों का कौन सा अंश भारत से बाहर अर्जित आय के संबंध में था और इन डिपाजिटों का कौन सा अंश भारत के अंदर अर्जित आय से संबंधित था।

3. पूर्वोक्त तीन पारियों (ए॰ ओ॰, सी॰ आई॰ टी॰ और आई॰ टी॰ ए॰ टी॰ के समक्ष जाने) के बावजूद निर्धारिती द्वारा अथवा निर्धारिती के अधिवक्ता द्वारा इन सरल तथ्यों जो प्रारंभिक प्रकृति के थे, को करने और ऐसे लेखाओं/खातों के समर्थन में प्रमाण प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था।

4. इस अपील में निर्धारिती ने आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 260A (7) के कारण सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 27, जैसा इस मामले में लागू होने योग्य है, के अधीन अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए आवेदन दाखिल किया है।

5. साक्ष्य देने के लिए दिया गया आधार सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 27 के खंडों में से किसी के अन्तर्गत नहीं आता है। निर्धारिती ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 27 के अधीन दिए गए आवेदन के पैराग्राफ सं॰ 2 में यह कहते हुए प्रकथन किया है कि यद्यपि अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए निर्धारिती ने अधिकरण के समक्ष लिखित आवेदन नहीं दिया था किन्तु तर्कों के दौरान निर्धारिती के अधिवक्ता द्वारा ऐसी कुछ मौखिक प्रार्थना की गयी थी जिसपर आपत्ति की गयी थी और इसलिए कोई अतिरिक्त साक्ष्य नहीं दिया गया था।

6. प्रकथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसका प्राथमिक कारण यह है कि हमारे समक्ष उपस्थित निर्धारिती अपीलार्थी की सहायता अधिवक्ता द्वारा की गयी थी। तथ्य, जो आवश्यक और प्रारंभिक था, को ए॰ ओ॰ के समक्ष अथवा सी॰ आई॰ टी॰ के समक्ष अभिकथित और सिद्ध नहीं किया गया था। आई॰ टी॰ ए॰ टी॰ के समक्ष अपील के मेमो में इसे नहीं लिया गया था। सामान्यत:, अतिरिक्त साक्ष्य की प्रार्थना सदैव लिखित आवेदन के जरिए की जाती है, और यदि अतिरिक्त साक्ष्य दस्तावेजी है जैसा इस मामले में है, इसकी छाया प्रतिलिपि आवेदन के साथ संलग्न की जाती है।

7. अत: हम समझते हैं कि पैरा 2 में इन प्रकथनों को अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए आधार सृजित करने के लिए निर्धारिती द्वारा गढ़ा गया है। इसके अतिरिक्त, हमें कुछ अंतरस्थ हेतु का भी बोध होता है जिसके कारण इस मुकदमें की तीन पूर्व पारियों के दौरान सरल साक्ष्य नहीं दिया गया था।

8. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि निर्धारिती को साक्ष्य देने का मौका देने के लिए मामले को वापस भेज देना चाहिए। हमें चिंता है कि हमारी ओर से दिया गया ऐसा निर्णय एक बहुत ही खराब पूर्ववृत स्थापित करेगा। अक्षमता और घोर उपेक्षा यदि जानबूझकर किया गया, रिष्टि नहीं भी कहा जाए, को पुरस्कृत करने की कोटि में आने के अतिरिक्त हम महसूस करते हैं कि ऐसा दृष्टिकोण अपनाना प्रत्येक बेईमान निर्धारिती को मामलों का समुचित प्रतिवाद नहीं करने के लिए और इस आधार कि मामले का समुचित रूप से प्रतिवाद नहीं किया गया था, पर रिमान्ड इप्सित करने के लिए प्रलोभित कर सकता है।

10. इन परिस्थितियों में, हम सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 27 के अधीन आवेदन आई॰ ए॰ सं॰ 1845 वर्ष 2008 को अस्वीकार करते हैं और प्रार्थना को स्वीकार करने से इंकार करते हैं।

10. इस अपील को आई॰ टी॰ ए॰ टी॰ द्वारा इस आधार पर दर्ज शुद्ध तथ्य के निष्कर्ष पर विनिश्चित किया गया है कि निर्धारिती अपना बोझ वहन करने में विफल रहा जो वह आसानी से वहन कर सकता था और जैसा उसे करना चाहिए था और जो इतनी प्रारंभिक प्रकृति का था कि आयकर विधि के मूल विचार से अवगत किसी व्यक्ति ने बैंक डिपोजिटों की ओर ले जाते आमदनी के स्रोत का तात्थिक स्पष्टीकरण दिया होता और निर्धारण अधिकारी के समक्ष अथवा आई॰ टी॰ ए॰ टी॰ के समक्ष कम से कम अपील में पहली बार में ही तथ्यों के समर्थन में दस्तावेजों को दिया होता।

11. तद्नुसार, तथ्यों के निष्कर्षों से निष्कर्षित होने के नाते यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

बिनोद राय एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (SJ) No. 1510 of 2005. Decided on 20th November, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 307/149 एवं 323—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 320—हत्या का प्रयास–गंभीर चोट–दोषसिद्धि–पक्षों के बीच समझौता के आधार पर दोषसिद्धि के निलंबन के लिए प्रार्थना–यदि अपराध गंभीर है, न्यायालय द्वारा हल्के रूप में दोषसिद्धि को निलंबित नहीं करना चाहिए और इसे यदा कदा निलंबित करना चाहिए–जब अपराध शमनीय नहीं है जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 और इसकी अनुसूची के अधीन प्रावधानित है, तब अपराध को शमनित नहीं किया जा सकता है–धारा 307/149 के अधीन अपराध शमनीय नहीं है–अपीलार्थी की दोषसिद्धि निलंबित नहीं की जा सकती है। (पैराएँ 11 से 13)

निर्णयज विधि.–(2008) 8 SCC 549; 2007(1) JLJR 233; (2009) 5 SCC 787—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. P. P. N. Rai, For the Appellants; Addl. P.P., For the Respondent.

आदेश

आई॰ ए॰ सं॰ 2501/2010 वाला अंतर्वर्ती आवेदन एस॰ टी॰ सं॰ 187/1999 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰–IX गिरीडीह द्वारा दिए गए दिनांक 2.12.2005 को दर्ज क्रमशः अपीलार्थी सं॰ 3 और 4 अर्थात् अनन्त कुमार राय और अशोक राय के दोषसिद्धि के आदेश के निलंबन के लिए इस न्यायालय के विचारार्थ दाखिल किया गया है। उक्त निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील सं॰ 1510 वर्ष 2005 में चुनौती दी गयी है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थीगण को क्रमशः सात वर्षों और एक वर्ष की अवधि के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307/149 और धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है।

2. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अपीलार्थी सं॰ 3 और 4 हो रहे पंचायत चुनाव में धनवार प्रखंड के अधीन गुन्द्री से लड़ने का आशय रखते हैं जिसमें अपीलार्थी सं॰ 3 पंचायत सदस्य के पद के लिए चुनाव लड़ना चाहता है जबकि अपीलार्थी सं॰ 4 जिला परिषद् के सदस्य का चुनाव लड़ना चाहता है आगे अभिकथित किया गया है कि उक्त चुनाव के लिए अधिसूचना पहले ही चुनाव आयोग द्वारा जारी कर दी गयी है। अपीलार्थीगण को अपील के लंबित रहने के दौरान दोषसिद्धि के स्थगन का आदेश प्रस्तुत करना है और नामांकनों का संवीक्षण अभी भी किया जाना है।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान आगे निवेदन करते हैं कि अपीलार्थी सं॰ 3 और 4 ने आई॰ ए॰ सं॰ 2500/2010 के जरिए इस न्यायालय के समक्ष सुलह याचिका को दाखिल किया है और सूचक को भी भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन प्रति मामले में विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था और अपील में मामले को शमनित कर दिया गया है। चूँकि पक्षों द्वारा मामले को पहले ही सुलझा लिया गया है, दोषसिद्धि निलंबित की जा सकती है।

4. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क का खण्डन किया और प्रतिवाद किया कि सुलह को विचार में केवल तब ही लिया जा सकता है जब शमनीय अपराध है और यदि अपराध शमनीय नहीं है, तब न्यायालय को सुलह ग्रहण करने की शक्ति नहीं है और उस आधार पर दोषसिद्धि को अपास्त नहीं किया जा सकता है।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **नवजोत सिंह सिद्धु बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य,** 2007 (1) JLJR 233 में प्रकाशित और **केन्द्रीय जाँच ब्यूरो, नयी दिल्ली बनाम एम॰ एन॰ शर्मा, (2008)8 SCC 549** में प्रकाशित निर्णयों पर विश्वास किया। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने भी

(2009)5 SCC 787 (संजय दत्त बनाम महाराष्ट्र राज्य, सी॰ बी॰ आई॰, बॉम्बे के माध्यम से) में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया।

6. नवजोत सिंह सिद्धू के मामले (ऊपर) में माननीय न्यायाधीश जी॰ पी॰ माथुर और माननीय न्यायाधीश आर॰ वी॰ रविन्द्रन से गठित माननीय सर्वोच्च न्यायालय की माननीय पीठ ने संप्रेक्षित किया है कि अपीलीय न्यायालय दोषसिद्धि को निलंबित कर सकता है किन्तु दोषसिद्धि का स्थगन इप्सित करते व्यक्ति को परिणामों, जो उद्‌भुत हो सकते है यदि दोषसिद्धि को स्थगित नहीं किया जाता है, के प्रति अपीलीय न्यायालय का ध्यान विनिर्दिष्टत: आकृष्ट करना चाहिए। जब तक न्यायालय का ध्यान विनिर्दिष्ट परिणामों, जो दोषसिद्धि के कारण अनुसरित होंगे, के प्रति आकृष्ट नहीं किया जाता है एवं दोषसिद्ध, दोषसिद्धि के स्थगन का आदेश प्राप्त नहीं कर सकता है और मामले के विशेष तथ्यों पर निर्भर होते हुए विरल मामलों में उक्त दोषसिद्धि का सहारा लिया जा सकता है।

7. संजय दत्त (ऊपर) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नवजोत सिंह सिद्धू मामले (ऊपर)** पर भी विचार किया है और यह संप्रेक्षित किया गया था कि अपीलार्थी संसद का निवर्तमान सदस्य (सांसद) था और वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8 (4) की दृष्टि में अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश के बाद भी एफ॰ पी॰ के रूप में बना रह सकता था। **नवजोत सिंह सिद्धू** मामले में याची ने त्याग पत्र दे दिया और चुनाव लड़ने की अपनी इच्छा अभिव्यक्त की। वस्तुत: वह एक ऐसा मामला था जहाँ विचारण न्यायालय ने याची को दोषमुक्त कर दिया था और उच्च न्यायालय ने इसे पलटते हुए याची को दोषी पाया। इन विशेष परिस्थितियों में, दोषसिद्धि को निलंबित किया गया था।

8. संजय दत्त (ऊपर) मामले में माननीय न्यायाधीश के॰ जी॰ बालाकृष्णन, मुख्य न्यायाधीश, माननीय न्यायाधीश पी॰ सथासिवम और माननीय न्यायाधीश आर॰ एम॰ लोढ़ा, न्यायमूर्तिगण से गठित पीठ ने पैराग्राफों 10, 11 और 12 में स्पष्टत: अधिकथित किया है जो निम्नलिखित है:

> *"10. हमने याची द्वारा किए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। याची को गंभीर अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है। निश्चय ही, उसकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपील में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी है। यद्यपि हमारा ध्यान विशेष न्यायाधीश द्वारा दर्ज अनेक निष्कर्षों और अभियोजन द्वारा दिए गए साक्ष्य की प्रकृति के प्रति आकृष्ट किया गया था, हम इस चरण पर इन तथ्यों पर विचार करना प्रस्तावित नहीं करते हैं क्योंकि यह पक्षों में से किसी के प्रति गंभीर प्रतिकूलता कारित कर सकता है जब इस न्यायालय द्वारा याची द्वारा दाखिल किए गए अपील पर विचार किया जा रहा है।*
>
> *11. याची एक सुप्रसिद्ध सिनेमा कलाकार है और कला एवं सिनेमा में उसके योगदान के कारण संपूर्ण देश में और विदेश में उसके प्रशंसकों की बृहत संख्या है। उसके पिता भी एक विख्यात फिल्म अभिनेता थे और राजनीति में भी गहन रूप से अंतर्ग्रस्त थे। समय के एक बिन्दु पर याची के पिता केन्द्रीय कैबिनेट मे मंत्री थे। याची आदतवश अपराधी नहीं है और न ही हमारे ध्यान में यह लाया गया है कि वह किसी अन्य दांडिक मामले में अंतर्ग्रस्त रहा था।*
>
> *12. इन सारी अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद हम नहीं समझते हैं कि यह एक सुयोग्य मामला है जहाँ दोषसिद्धि और दंडादेश को निलंबित किया जा सकता है ताकि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8 (3) के अधीन वर्जना याची के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं होगी। विधि किसी व्यक्ति जिसे किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और दो वर्षों से अन्यून के कारावास का दंडादेश दिया गया है, चुनाव लड़ने से प्रतिषिद्ध करती है और ऐसे व्यक्ति को उसकी निर्मुक्ति से छह वर्षों की अवधि के लिए*

अनर्हित किया जाएगा। ऐसे प्रावधान की दृष्टि में, केवल आपवादिक परिस्थितियों के अधीन दं० प्र० सं० की धारा 389 के अधीन न्यायालय की शक्ति का प्रयोग किया जाएगा।''

9. जैसा ऊपर संप्रेक्षित किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गुणागुण पर मामले पर विचार नहीं किया है और केवल यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि अपराध गंभीर है, दोषसिद्धि को न्यायालय द्वारा हल्के रूप से निलंबित नहीं किया जाना चाहिए और इसे यदा कदा ही निलंबित करना चाहिए।

10. संजय दत्त के मामले में, अभियुक्त को आयुध अधिनियम की धारा 3 और 7 सह-पठित धारा 25 (1A) और 25 (1B) के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और छह वर्षों के कठोर कारावास का दंडादेश दिया गया था और अपीलार्थी ने विशेष न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील दाखिल किया था।

11. वर्तमान मामले में, अभियुक्त अपीलार्थी को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 सह-पठित धाराओं 149, 147 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 निश्चय ही एक गंभीर अपराध है किन्तु अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि पक्षों के बीच सुलह हो गया है, अत: मामले को गंभीर नहीं कहा जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों की श्रृंखला में विधि की प्रतिपादना को सुनिश्चित किया गया है कि यदि अपराध धारा 320 और इसकी अनुसूची के प्रावधानानुसार शमनीय है, अपराध को शमनित किया जा सकता है और न्यायालय अपीलार्थी अथवा अभियुक्त, जैसा भी मामला हो, के विरुद्ध दोषमुक्ति दर्ज करेगा। जब अपराध शमनीय नहीं है, जैसा धारा 320 और इसकी अनुसूची के अधीन प्रावधानित किया गया है, तब अपराध को शमनित नहीं किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय अपने निर्णय द्वारा विधि के प्रावधान को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। निर्णयों की श्रृंखला में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि गैर शमनीय अपराध में अपराध को शमनित किया जाता है, दोषसिद्धि को अपास्त नहीं किया जा सकता है किन्तु दंडादेश को घटाया जा सकता है।

12. आगे स्वीकार किया गया है कि वर्तमान मामले में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 सह-पठित धारा 149 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और धारा 320 के अधीन अपराध शमनीय नहीं है और यदि सुलह को विचार में लिया भी जाता है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला की दृष्टि में दोषसिद्धि को अपास्त नहीं किया जा सकता है और दंडादेश को केवल घटाया जा सकता है।

13. जैसा ऊपर कहा गया है, तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि को निलंबित नहीं किया जा सकता है और इसलिए अंतर्वर्ती आवेदनों में की गयी प्रार्थना संपोषणीय नहीं है।

14. तद्नुसार, आई॰ ए॰ सं॰ 2500 और 2501 वर्ष 2010 को निपटाया जाता है।

15. इस आदेश में दिए गए निष्कर्ष इस अपील की सुनवाई के समय इस मामले के गुणागुण को प्रभावित नहीं करेंगे।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

प्रकाश साहा

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Contempt Case (Civil) No. 393 of 2009. Decided on 20th November, 2010.

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971—धारा 20—उसी कृत्य के लिए द्वितीय अवमान आवेदन की पोषणीयता–तिथि, जिस पर अवमान किया गया अभिकथित किया गया है, से एक वर्ष के अवसान के बाद इसके अपने प्रस्ताव अथवा अन्यथा पर अवमान के लिए आवेदन पर कोई नोटिस जारी नहीं की जा सकती है और न ही कोई कार्यवाही आरंभ की जा सकती है–याची द्वारा कोई प्राख्यान नहीं किया गया है कि विपक्षी पक्षकार पर नोटिस तामील किया गया था और उसने जानबूझकर अभ्यावेदन पर निर्णय नहीं लिया था–वर्तमान अवमान आवेदन समय के काफी परे है–पूर्व अवमान आवेदन वर्ष 2003 में खारिज किया गया था–स्वयं परिसीमा के प्रश्न पर अवमान आवेदन खारिज किए जाने का दायी है। (पैराएँ 6 से 9)

निर्णयज विधि.–AIR 1975 All. 48; AIR 2002 SC 1405—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s J. P. Jha, Prakash Jha, For the Petitioner; J.C. to S.C. (Mines), For the Opp. Parties.

आदेश

याची के कनीय अधिवक्ता, श्री एस॰ पी॰ झा, कनीय अधिवक्ता के साथ श्री जे॰ पी॰ झा, वरीय अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकारों की ओर से स्थायी अधिवक्ता (खनन) के कनीय अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची के पिता द्वारा एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 933 वर्ष 2002 दाखिल किया गया था जिसे विपक्षी पक्षकारों को इस आदेश को उनके ध्यान में लाए जाने की तिथि से 45 दिनों के भीतर याची के मामले पर विचार करने और उसके अभ्यावेदन पर निर्णय करने के निर्देश के साथ दिनांक 5 मार्च, 2002 को निपटाया गया था। आगे प्रतिवाद किया गया है कि याची के पिता ने अभ्यावेदन दाखिल किया जिसे लंबित रखा गया था और इसलिए अवमान (सिविल) केस सं॰ 401 वर्ष 2003 दाखिल किया गया गया था। उक्त अवमान दिनांक 25 जून, 2004 के आदेश के तहत व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया था।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता कथन करते हैं कि चूँकि अवमान अधिनियम के अधीन पुनर्स्थापना के लिए कोई प्रावधान नहीं है, अत: पुनर्स्थापन याचिका दाखिल नहीं की गयी थी। एक अन्य रिट याचिका **डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 519 वर्ष 2003, सहदेव साहा एवं शिव रामजी मिश्रा बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** दाखिल की गयी थी। दिनांक 26 मार्च, 2003 के आदेश के तहत यह रिट याचिका इस संप्रेक्षण के साथ खारिज कर दी गयी थी कि यदि पूर्व रिट याचिका में दिए गए निर्देश के अनुरुप अभ्यावेदन को विनिश्चित नहीं किया जाता है, याची को उपलब्ध समुचित उपचार अवमान याचिका दाखिल करना है और इसलिए द्वितीय रिट याचिका पोषणीय नहीं है। पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में, वर्तमान अवमान आवेदन वर्ष 2009 में दाखिल किया गया है। एस॰ सी॰ (खनन) द्वारा उसमें यह कथन करते हुए कारण बताओ दाखिल किया गया है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नेपाल हाऊस, डोरन्डा, राँची के निदेशक डॉ॰ अरुण कुमार जो प्रासंगिक समय पर निदेशक के रूप में कार्यरत थे, द्वारा दिनांक 27 जनवरी, 2010 के आदेश के तहत अभ्यावेदन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नेपाल हाऊस, डोरण्डा, राँची द्वारा विनिश्चित किया गया है और इसलिए अवमान, यदि हो, का मार्जन कर दिया गया।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने जोरदार शब्दों में जोर दिया है कि चूँकि अभ्यावेदन 7 (सात) वर्षों के अवसान के बाद विनिश्चित किया गया था, यह घोर अवमान के कृत्य की कोटि में आता है क्योंकि उसने न्यायालय के विनिर्दिष्ट निर्देशों की अवज्ञा की है और वह अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने का दायी है। अभ्यावेदन को बहुत देर से विनिश्चित किया गया था अर्थात् सात वर्षों बाद और परिणामस्वरुप

विहित अवधि के भीतर अभ्यावेदन विनिश्चित करने के आदेश की अवज्ञा विपक्षी पक्षकार को अवमान के लिए दायी बनाता है। विपक्षी पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस तथ्य को यह कहते हुए विवादित किया गया है कि चूँकि अवमान के कृत्य का मार्जन कर दिया गया है जैसा याची द्वारा अभिकथित किया गया है, केवल इस आधार पर अवमान आवेदन खारिज किए जाने का दायी है।

5. मैंने अधिवक्ताओं को ध्यान से सुना है और संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया है। आदेश, जिसका उल्लंघन किया जाता कहा गया है, दिनांक 5 मार्च, 2002 को पारित किया गया था, वर्ष 2003 में दाखिल किया गया अवमान याचिका अभियोजन के अभाव में दिनांक 25 जून, 2004 को खारिज कर दिया गया था और तत्पश्चात् लंबे समय तक कुछ भी नहीं किया गया था।

6. द्वितीय अवमान आवेदन केवल वर्ष 2009 में ही दाखिल की गयी थी। प्रथम प्रश्न जो उद्भूत होता है वह यह है कि क्या उसी कृत्य के लिए दाखिल द्वितीय अवमान याचिका पोषणीय है या नहीं। द्वितीयत: न्यायालय अवमान अधिनियम की धारा 20 परिसीमा की अवधि प्रावधानित करता है। यह सुनिश्चित है कि तिथि, जिस पर अवमान किया अभिकथित किया गया है, से एक वर्ष के अवसान के बाद स्वयं अपने प्रस्ताव अथवा अन्यथा पर अवमान के लिए आवेदन पर कोई नोटिस जारी नहीं किया जा सकता है और कोई कार्यवाही आरंभ नहीं की जा सकती है। यह मामला **हरि नन्दन बनाम एस० एन० पंडित, AIR 1975 All 48** मामले में सुनिश्चित किया जा चुका है जिसे सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला में अनुमोदित भी किया गया है।

7. तृतीयत:, चूँकि यह अवमान आवेदन अभी तक ग्रहण नहीं किया गया है और डॉ० अरुण कुमार, जिन्होंने अभ्यावेदन विनिश्चित किया, वह व्यक्ति नहीं थे जिन पर समय के किसी बिन्दु पर आदेश की प्रति तामील की गयी थी; याची द्वारा कोई भी प्राख्यान नहीं किया गया है कि आदेश विपक्षी पक्षकार पर तामील किया गया था और उसने जानबूझकर अभ्यावेदन विनिश्चित नहीं किया था जिसके द्वारा यह निर्देश के अननुपालन के लिए 'जानबूझकर की गयी अवज्ञा' अथवा न्यायालय को दिए गए वचन बंध के भंग की कोटि में आता है। विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क सारहीन है। **अनिल रतन सरकार बनाम हीरक घोष, AIR 2002 SC 1405,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय के आदेश की मात्र अवज्ञा सिविल अवमान की कोटि में आने के लिए पर्याप्त नहीं है, 'इच्छा' का तत्व अधिनियम के भीतर आरोप सिद्ध करने के लिए अनिवार्य आवश्यकता है।

8. मैंने ऊपर कहे गये इन समस्त पहलूओं पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर आयी हूँ कि वर्तमान अवमान आवेदन समय के अत्यन्त परे हैं; द्वितीयत: आदेश का अनुपालन पहले ही किया जा चुका है और यह शिकायत कि अभ्यावेदन सात वर्षों के बाद विनिश्चित किया गया था, साररहित है चूँकि स्वयं अवमान आवेदन को वर्ष 2002 में पारित आदेश की अभिकथित अवज्ञा के लिए वर्ष 2009 में दाखिल किया गया था; पूर्व अवमान को वर्ष 2003 में खारिज कर दिया गया था, विद्वान वरीय अधिवक्ता के तर्क को सही उपधारित करते हुए कि पुनर्स्थापना का कोई प्रावधान नहीं है, फिर भी अधिवक्ता आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, यदि द्वितीय अवमान आवेदन दाखिल करना था, इसे स्वयं वर्ष 2003 में ही तुरन्त दाखिल करना चाहिए था। इसके बजाय, याची ने स्वयं छह वर्षों की अवधि तक प्रतीक्षा की अत: यदि अभ्यावेदन सात वर्षों के बाद विनिश्चित किया गया था, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि विपक्षी पक्षकार को इस न्यायालय के आदेश के बारे में जानकारी थी अथवा उसके द्वारा वचनबंध को भंग किया गया था और, इसलिए, विपक्षी पक्षकार को किसी कृत्य के लिए दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है जो आम जनता की निगाह में न्यायालय की प्रतिष्ठा को नीचे गिराने की कोटि में आ सकता था।

9. अवमान आवेदन ग्रहण किए जाने के लिए सूचीबद्ध है। अभी तक नोटिसों को जारी नहीं किया गया है किन्तु चूँकि मामला विस्तारपूर्वक सुना गया था, मेरे मत में, अवमान आवेदन स्वयं परिसीमा के प्रश्न पर खारिज किए जाने का दायी है और यह कहना आवश्यक नहीं है कि ऊपर किए गए संप्रेक्षण यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वर्तमान अवमान आवेदन में गुणागुण नहीं है। जानबूझकर की गयी अवज्ञा का मामला नहीं बनता है।

10. तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

सुनील कुमार

बनाम

मेसर्स टेलको लि॰

L.P.A. No. 475 of 2010. Decided on 22nd November, 2010.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–दंड–याची के कब्जे में चुरायी गयी औषधियाँ पायी गयी–अपीलार्थी ने कोई प्रभावकारी स्पष्टीकरण नहीं दिया कि उसके स्कूटर की डिक्की में दवाएँ कैसे आयी–यह स्थापित करने के लिए किसी तीसरे व्यक्ति का हेतु अभिलेख पर नहीं लाया गया है कि अपीलार्थी के स्कूटर की डिक्की में किसी अन्य द्वारा दवाओं को रखा गया था–अपीलार्थी को एक अन्य मामले में पहले भी दवाओं की चोरी करता पाया गया था और यह उसका द्वितीय अवचार था–अपील खारिज। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–M/s. Shivajee Pandey, S. K. Ugal, Rakesh Kumar, For the Appellant/Petitioner; None, For the Respondent.

आदेश

अपीलार्थी के अधिवक्ता को सुना गया।

2. हमारे समक्ष अपीलार्थी फॉर्मासिस्ट के रूप में कर्मचारी था। उसे अपने स्कूटर की डिक्की में रखे हुए कतिपय दवाओं पर काबिज पाया गया था जिसके संबंध में उसके पास कोई स्पष्टीकरण नहीं था। उसका मामला यह था कि इन दवाओं, जिन्हें उसके स्कूटर की डिक्की से पाया गया था जिसे उसके अपने पॉकेट से चाबी निकालने के बाद खोला गया था, को उसके द्वारा नहीं रखा गया था। अपीलार्थी द्वारा दावा किया गया था कि इन्हें किसी अन्य द्वारा रखा गया था। इस स्पष्टीकरण द्वारा कर्मचारी यह कहना चाहता था कि वह अपने स्कूटर की डिक्की में दवाओं को रखने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति नहीं है। विभागीय कार्यवाही में उसका विचारण किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह इन्हें विभाग जिसमें वह काम कर रहा था से चुराने का दोषी है और उसे दंडित करने का आदेश दिया गया था।

3. मामला श्रम न्यायालय द्वारा सुना गया था और श्रम न्यायालय ने अधिनियम की धारा 11A के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग के बाद इस निष्कर्ष पर आते हुए मामले को निपटाया कि जाँच द्वारा प्राप्त किए गए निष्कर्ष दूषित नहीं हैं। श्रम न्यायालय के आदेशों को इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश के समक्ष चुनौती दी गयी थी और विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि श्रम न्यायालय के निर्णय में कोई गलती नहीं है और इसके द्वारा प्राप्त किए गए निष्कर्ष बिल्कुल सही थे।

4. पूर्वोक्त आदेशों को इस एल॰ पी॰ ए॰ में हमारे समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गयी है कि अपीलार्थी के प्रेरणा पर बरामद की गयी दवाओं का स्वामित्व श्रम न्यायालय में स्थापित नहीं किया गया था। विनिर्दिष्टत: यह पूछे जाने पर कि क्या, उस समय पर जब विवाद्यकों को विरचित किया जा रहा था, अपीलार्थी द्वारा कोई प्रश्न उठाया गया था कि स्वामित्व के संबंध में विवाद्यक विरचित किए जाने की अपेक्षा की गयी थी, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं थे। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि इस पहलू को श्रम न्यायालय के समक्ष रखा गया था कि इस विवाद्यक को विरचित किए जाने की आवश्यकता है। इस तथ्य की दृष्टि में कि यह प्रश्न बाद के चरण पर अधिवक्ता के दिमाग में आया है और इसे समुचित चरण पर पेश नहीं किया गया था, हम नहीं कह सकते हैं कि दवाओं का स्वामित्व वह प्रश्न था जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता थी। अपीलार्थी का कोई प्रभावकारी स्पष्टीकरण नहीं था कि दवाएँ उसके स्कूटर की डिक्की में कैसे आयी। केवल यह प्राख्यान करना कि दवाएँ उसके स्कूटर में किसी अन्य द्वारा रखी गयी थी, इस प्रकार का स्पष्टीकरण है जिसका कोई समर्थनीय साक्ष्य नहीं है। किसी तीसरे व्यक्ति का हेतु यह स्थापित करने के लिए अभिलेख पर नहीं लाया गया है अथवा पेश नहीं किया गया है कि किसी अन्य द्वारा अपीलार्थी के स्कूटर की डिक्की में दवाओं को रखा गया था। यदि यह तथ्य कि दवाएँ किसी अन्य द्वारा उसके स्कूटर की डिक्की में रखी गयी थी, किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं पाया जाता है, तब कर्मचारी का मात्र यह प्राख्यान कि इसे किसी अन्य द्वारा रखा गया था, किसी मूल्य का नहीं कहा जा सकता है। दवाएँ उसके सचेत कब्जे में नहीं पायी गयी थी, इस पर विवाद नहीं किया जा सकता है। जब एक बार यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि इन्हें अपीलार्थी के कब्जे में पाया गया था, अन्यथा सिद्ध करने की जिम्मेदारी अपीलार्थी पर है और इनका स्वयं उसकी संपत्ति होने का दावा नहीं किया गया था, तब यह अभिकथन कि इन्हें चुराया गया था, आधार रहित नहीं कहा जा सकता है।

5. पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में, यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी कि कैशमेमो, आदि प्रस्तुत करके इन दवाओं को विभाग द्वारा खरीदा गया था। यह कहा जा सकता है कि यह उस प्रकार का विचारण था जिसमें इसकी आवश्यकता नहीं थी। विभागीय कार्यवाही में, अपीलार्थी ने अभिकथन से इंकार मात्र किया था। विभाग द्वारा पर्याप्त साक्ष्य दिए गए थे। साक्ष्य के नियम कठोर अर्थ में विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं होते हैं। किसी भी सूरत में, विद्वान अधिवक्ता का तर्क कि इस प्रश्न का उत्तर श्रम न्यायालय द्वारा दिया जाना चाहिए था, विधि या किसी तथ्य के समर्थन नहीं पाता है। अगर श्रम न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न को उठाने का कोई प्रयास नहीं किया गया था, आक्षेपित आदेश में कोई गलती नहीं पायी जा सकती है। विवाद्यकों को संशोधित करवाने के लिए अपीलार्थी ने कभी कोई शिकायत नहीं की थी। यह ध्यान देने योग्य है कि अपीलार्थी को एक अन्य मामले में पहले भी दवाओं को चुराते पाया गया था और यह उसका द्वितीय अपचार था। हम नहीं समझते हैं कि अवर न्यायालयों द्वारा कोई अवैधता की गयी है।। इस अपील में कोई बल नहीं है, जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

देव नन्दन प्रसाद एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (S.J.) No. 264 of 2001. Decided on 26th October, 2010.

सत्र केस सं॰ 228 वर्ष 1997 में सत्र न्यायाधीश, साहिबगंज द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 18 अप्रैल, 2001 और 19 अप्रैल, 2001 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश से उद्भूत।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 363/34 और 366/34—अवयस्क बालिका का अपहरण–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–पीड़ित बालिका ने स्वयं अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया–उसने सह-अभियुक्त के साथ विवाह कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक रह रही है–प्राथमिकी में किए गए अभिकथन अपीलार्थीगण के विरुद्ध किसी अपराध को गठित नहीं कर सकते थे–अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने में सफल नहीं रहा है–आक्षेपित निर्णय अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5, 6 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Verma, For the Appellant; Mr. Binod Singh, For the Respondent.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–दोनों पक्षों को सुना गया।

अपीलार्थीगण ने इस अपील को सत्र केस सं॰ 228 वर्ष 1997 के संबंध में सत्र न्यायाधीश, साहेबगंज द्वारा पारित दिनांक 18 अप्रैल, 2001 के निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया है जिसके द्वारा दोनों अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 366A/34 और 363/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 363 के अधीन सात वर्षों का कारावास भुगतने और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 366 के अधीन दस वर्षों का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है और दोनों दंडादेश साथ-साथ चलेंगे।

2. संक्षेप में, सूचक लखीराम हंसदा के फर्दबयान (प्रदर्श 3) के आधार पर अभियोजन का मामला यह है कि अपीलार्थी सं॰ 1 देवनन्दन प्रसाद और अपीलार्थी सं॰ 2 उसकी पत्नी अनीता कुमारी का सूचक के साथ मिलना-जुलना था। यह अभिकथित किया गया है कि दिनांक 7.6.1996 को पूर्वोक्त दोनों व्यक्तियों ने सूचक की 16 वर्षीया बहन मेरी हंसदा और सात वर्षीया बहन मनि हंसदा का अपहरण कर लिया। खोज करने पर सूचक को पता चला कि उसकी बहनों को पूर्वोक्त दोनों अपीलार्थीगण और पूर्वोक्त अपीलार्थी सं॰ 1 के साला/बहनोई टुनटुन कुमार के साथ बस में जाते देखा गया था। आगे अभिकथित किया गया है कि कुछ समय बाद सूचक की छोटी बहन मनि हंसदा वापस अपने घर आयी और प्रकट किया कि देवनन्दन प्रसाद की पत्नी अनीता कुमारी ने उसे अपने घर वापस भेज दिया। मामला दाखिल किए जाते समय तक बड़ी बहन मेरी हंसदा का अभी भी अता-पता नहीं था। आगे कथित किया गया है कि विवाह अथवा अवैध संभोग के उद्देश्य से टुनटुन कुमार के साथ पूर्वोक्त व्यक्तियों द्वारा मेरी हंसदा का अपहरण कर लिया गया था।

3. उक्त फर्दबयान के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। अन्वेषण के बाद पुलिस ने आरोप-पत्र दाखिल किया। संज्ञान लिया गया था और मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था।

4. अभियोजन ने पीड़िता (अ॰ सा॰ 3), सूचक (अ॰ सा॰ 1), अन्वेषण अधिकारी (अ॰ सा॰ 8), पीड़िता की माता अर्थात् सोमा सोरेन (अ॰ सा॰ 2), मृत्युंजय कुमार सिन्हा (अ॰ सा॰ 4), मुंशी किस्कू (अ॰ सा॰ 6) और मानिक गोराई (अ॰ सा॰ 5) जो स्वतंत्र गवाह हैं और पीड़िता के पिता (अ॰ सा॰ 7) सहित कुल मिलाकर आठ गवाहों का परीक्षण किया।

दूसरी ओर, बचाव ने दो गवाहों का परीक्षण किया है। ब॰ सा॰ 1 तरेश साह है और ब॰ सा॰ 2 नरेश साह है।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ वर्मा निवेदन करते हैं कि अन्य सह-अभियुक्त अर्थात् टुनटुन कुमार का विचारण वर्तमान अपीलार्थीगण के विचारण से पृथक कर दिया गया था। उक्त

टुनटुन कुमार को एस॰ सी॰ केस सं॰ 105 वर्ष 2004 में अपर सत्र न्यायाधीश, राजमहल द्वारा दिनांक 12 जनवरी, 2010 के निर्णय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है। इस संबंध में, अपीलार्थीगण ने उक्त शपथ पत्र में परिशिष्ट-2 के रूप में पूर्वोक्त निर्णय को उपाबद्ध करते हुए पूरक शपथ पत्र दाखिल किया है। उन्होंने आगे प्रतिवाद किया है कि सह-अभियुक्त अर्थात् टुनटुन कुमार को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया है। उक्त विचारण में, अ॰ सा॰ 3 मेरी हंसदा, पीड़ित बालिका ने स्वयं अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। उसने अपने बयान में अभिसाक्ष्य दिया है कि उसका पिता किसी वृद्ध व्यक्ति के साथ उसका विवाह संपन्न करना चाहता था और इसलिए वह अपने घर से भाग गयी थी और टुनटुन कुमार के साथ विवाह कर लिया था। बचाव पक्ष द्वारा उसके प्रति परीक्षण में उसने स्पष्ट किया है कि उसकी जन्मतिथि 16 मार्च, 1977 है जो उसके विद्यालय परित्याग प्रमाण पत्र में उल्लिखित है और इस प्रकार अभिकथित घटना की तिथि पर वह 19 वर्ष की थी। उसने अपने साक्ष्य में आगे कहा है कि उसने उक्त सह-अभियुक्त अर्थात् टुनटुन कुमार के साथ विवाह कर लिया है और अब उक्त विवाह से जन्मे छह संतानों के साथ वे प्रसन्नतापूर्वक रह रहे हैं।

पीड़ित बालिका के बयान पर विचार करते हुए विचारण न्यायालय ने सह-अभियुक्त टुनटुन कुमार को दोषमुक्त कर दिया है।

6. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री वर्मा ने आगे प्रतिवाद किया है कि जब मुख्य अभियुक्त टुनटुन कुमार को पहले ही दोषमुक्त किया जा चुका है और पीड़ित बालिका उक्त विवाह संबंध से जन्मे छह संतानों के साथ उक्त सह-अभियुक्त टुनटुन कुमार के साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रही है, वर्तमान अपीलार्थीगण के दोषसिद्धि एवं दंडादेश को बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं है। मेरी हंसदा के संबंध में प्राथमिकी में किया गया अभिकथन वर्तमान अपीलार्थीगण के विरुद्ध कोई अपराध गठित नहीं कर सकता है क्योंकि उक्त बालिका प्राथमिकी दर्ज किए जाने के पहले तुरन्त लौट गयी और उसने स्वयं कथन किया है कि दोनों अपीलार्थीगण ने ही उसे उसके घर वापस भेजा था जो तथ्य प्राथमिकी में आया था और अ॰ सा॰ 2 (मनि हंसदा) और अ॰ सा॰ 1 (सूचक) के साक्ष्य में भी आया है। अत: दोनों अपीलार्थीगण पर पारित दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त किए जाने योग्य है।

7. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री बिनोद सिंह ने विरोध किया किन्तु उन्होंने अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथित तथ्यों को विवादित नहीं किया है।

8. पूर्वोक्त निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर भी विचार करते हुए और इस तथ्य कि टुनटुन कुमार और मेरी हंसदा अपने उक्त विवाह संबंध से जन्मे छह संतानों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रहे हैं, पर मुख्यत: विचार करते हुए मेरे मत में अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे पूर्वोक्त अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। अत:, मैं सत्र केस सं॰ 228 वर्ष 1997 में सत्र न्यायाधीश, साहिबगंज द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 18.4.2001 और 19.4.2001 के निर्णय को अपास्त करती हूँ। तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और दोनों अपीलार्थीगण को, चूँकि वे जमानत पर हैं, उनके जमानत बंधपत्रों के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

राजीव कुमार

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Civil Review No. 45 of 2009. Decided on 26th November, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 114—पुनर्विलोकन–याची उस आदेश जिसके द्वारा अनुच्छेद 311 (2) की कसौटी पर उसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गयी थी, का पुनर्विलोकन इप्सित कर रहा है–याची केवल एक तदर्थ कर्मचारी था जिसकी भर्ती तदर्थ अस्थायी योजना पर की गयी थी क्योंकि वह विज्ञापित पद के लिए अर्हित होने में विफल रहा था–उसकी सेवाएँ संतोषजनक नहीं थी–याची सिद्ध नहीं कर सका था कि अभिलेख पर प्रकट रूप से गलती थी–याची का तर्क कि निर्णय कपट के व्यपदेशन पर आधारित है, निर्मित नहीं किया गया है–याचिका खारिज। (पैराएँ 16, 17 एवं 22)

निर्णयज विधि.–(2005) 4 SCC 741—Relied on; (2000) 6 SCC 359; (2000)1 SCC 666; (2003) 8 SCC 361—Distinguished; (1996) 5 SCC 550; (2000) 3 SCC 581; (2007) 4 SCC 221—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeev Kumar (In Person), For the Petitioner; M/s Sohail Anwar, Nilesh Kumar, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान पुनर्विलोकन याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2529 वर्ष 2006 में दिनांक 20.3.2007 को इस न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर याची द्वारा दाखिल की गयी है। वर्तमान निर्णय, जिसके विरुद्ध पुनर्विलोकन दाखिल किया गया है, का विरोध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल विशेष अनुमति याचिका में भी किया गया था। याची द्वारा दाखिल विशेष अनुमति याचिका को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित शब्दों में खारिज कर दिया गया था:–

''अधिवक्ता को सुनने पर न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित कियाः–

विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।''

2. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विशेष अनुमति याचिका की खारिजी के बावजूद वह पुनर्विलोकन याचिका दाखिल करने का हकदार है क्योंकि पूर्वोक्त आदेश, जैसा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, सकारण आदेश नहीं है और इस प्रकार वर्तमान पुनर्विलोकन पोषणीय है। वर्तमान पुनर्विलोकन याचिका उस निर्णय के संबंध में दाखिल की गयी है। जिसे रिट याचिका में दिया गया था जिसमें याची ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रार्थना की थी:–

कि वर्तमान रिट आवेदन उत्प्रेषण रिट अथवा उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए प्रत्यर्थी सं० 2 की अनुशंसा पर झारखंड के राज्यपाल के आदेशों द्वारा प्रत्यर्थी सं० 1 द्वारा जारी दिनांक 11.3.06 की अधिसूचना के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जहाँ तक इसका संबंध ऐसे निष्कर्ष पर आने के लिए कारण के प्रति सुनवाई का अवसर दिए बिना प्रतिकूल टिप्पणी ''सेवा असंतोषजनक पायी गयी'' के लांछन से है। यद्यपि याची ने चार वर्षों की संपूर्ण अवधि के लिए चार वर्षों से अधिक अकलंकित सेवा दान की है और

जी० पी० एफ०, वेतन का बकाया, अवकाश वेतन देय, जिनका भुगतान नहीं किया गया है, के भुगतान के लिए दाखिल की गयी है।

3. पूर्वोक्त प्रार्थना स्पष्टतः प्रदर्शित करती है कि याची ने केवल टिप्पणी ''सेवा असंतोषजनक पायी गयी'' को काटने के लिए प्रार्थना की है और उसने अपनी सेवा समाप्ति के आदेश को अपास्त करने के लिए नहीं कहा है। किन्तु, अन्य प्रार्थनाएँ अधिक महत्व की नहीं है क्योंकि तर्क करते हुए, याची का एकमात्र जोर सेवा समाप्ति के आदेश से निम्नलिखित निबंधनों में की गई टिप्पणी काटने पर था।

4. याची, जो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ है, का तर्क यह है कि आदेश मनमाना है क्योंकि आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए कोई नींव नहीं रखी गयी थी क्योंकि असंतोषजनक सेवा को ऐसी चीज नहीं कहा जा सकता है जिसे संपूर्ण जाँच किए बिना विनिश्चित किया जा सकता है। अनुच्छेद 311 (2) के आज्ञानुसार ऐसी जाँच नहीं किए जाने पर यह अर्थ लगाया जाना चाहिए कि आक्षेपित आदेश मनमाना है और इसलिए, अपास्त किए जाने योग्य है।

5. याची का आगे तर्क यह है कि उसकी नियुक्ति अपर जिला न्यायाधीश के नियमित पद के लिए किए गए चयन के अनुसरण में की गयी थी। किन्तु, उसे नियमित अपर जिला न्यायाधीश के पद पर पदस्थापित नहीं किया गया था, बल्कि फास्ट ट्रैक न्यायालय के तदर्थ अस्थायी पद पर पदस्थापित किया गया था। किन्तु जारी किए गए विज्ञापन के अनुसरण में कतिपय व्यक्तियों को तदर्थ अपर जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया था जो अर्हित नहीं थे और उनकी नियुक्ति नियमावली के नियम 18 के विरुद्ध थी। मामले के उस दृष्टिकोण में, याची नियमित रूप से नियुक्त किए जाने योग्य था। ऐसा नहीं किए जाने पर, सेवा समाप्ति असद्भावपूर्व है। क्योंकि याची ने की गयी गलत नियुक्ति का विरोध किया है, इसलिए याची की सेवा समाप्ति का आदेश विधिक असद्भाव का कृत्य है।

6. याची ने आगे प्रतिवाद किया है कि उच्च न्यायालय की ओर से दाखिल किया गया शपथ पत्र गलत प्रकथनों को अंतर्विष्ट करता है और वे प्रकथन असद्भावपूर्ण आशय से किए गए थे। गलत प्रकथनों के साथ दाखिल किया गया शपथ पत्र दर्शाता है कि याची के विरुद्ध उच्च न्यायालय प्रशासन पूर्वाग्रह ग्रस्त था और, इस प्रकार, पुनर्विलोकन के अधीन निर्णय शक्तियों के छद्म प्रयोग में पारित निर्णय है।

7. याची ने आगे आग्रह किया है कि उसे प्रतिष्ठा का अधिकार है जो संविधान में प्रतिष्ठापित अनुच्छेद 21 द्वारा आच्छादित मौलिक अधिकार है और समाचार पत्रों ने ऐसे समाचारों को छापा है तद्द्वारा उसकी प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचा है क्योंकि दाखिल किए गए शपथ पत्र में गलत तथ्यों को उल्लिखित किया गया है। निर्णय ऐसे गलत अभ्यावेदनों पर आधारित है। उच्च न्यायालय अभिलेख का न्यायालय होने के नाते, अपनी गलती को सुधारने की बाध्यता के अधीन है जैसी आज्ञा अनुच्छेद 215 के अधीन दी गयी है और इसलिए याची का जोर इस बात पर था कि अनुच्छेद 215 की आज्ञा के अनुसरण में न्यायालय को अपना अभिलेख सुधारना चाहिए और टिप्पणी काट देनी चाहिए जैसी प्रार्थना की गई है।

8. याची ने आगे प्राख्यान किया है कि न्यायालय ने विधि और महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में नहीं लिया है और इसलिए इन्हें सुधारे जाने की अपेक्षा की जाती है और अधिकारिता के सुधारात्मक प्रयोग में पुनर्विलोकन को अनुज्ञात किया जाना चाहिए। याची ने आगे प्राख्यान किया है कि यद्यपि उसकी नियुक्ति तदर्थ अस्थायी आधार पर की गयी बतायी जाती है, किन्तु इसे परिवीक्षा के रूप में माना जाना चाहिए और परिवीक्षा अवधि दो वर्षों की होने के नाते, जैसा नियमावली में प्रावधानित किया गया है, उसे संपुष्ट किया गया माना जाना चाहिए था और अनुच्छेद 311 (2) की आज्ञा का अनुसरण किए बिना, उसे सीधे तौर पर घर जाने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए था। अपनी कार्यावधि के दौरान, उसे बार-बार स्थानांतरित किया गया था और बार-बार स्थानांतरण उस भाव को दर्शाता है जो न्यायालय में उसके विरुद्ध उसकी सेवा समाप्ति का आदेश पारित करते समय प्रचलित था।

9. समानांतर स्तंभ में, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची का संपूर्ण तर्क भ्रामक है और गलत उपधारणाओं पर आधारित है। यद्यपि चयन के बाद याची को नियुक्त किया गया था, किन्तु उस चयन को नियमित अपर जिला न्यायाधीशों के लिए किया गया था और याची को मेधा रहित पाए

जाने के चलते विज्ञापित पद पर नियुक्त किए जाने के लिए उपयुक्त नहीं पाए जाने के कारण नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार नहीं माना जा सकता था। जब अपर जिला न्यायाधीश फास्ट ट्रैक का पद रिक्त हुआ, शेष उम्मीदवारों की सूची प्रवर्तित हुई और इसलिए उसकी नियुक्ति को किसी भी रूप में ऐसी नियुक्ति नहीं कहा जा सकता है जो नियमित नियुक्ति थी। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे प्रतिवाद किया गया था कि उसकी नियुक्ति का उद्देश्य एक योजना, जो स्वयं एक सीमित अवधि के लिए थी, के अंतर्गत सीमित अवधि के लिए थी। ऐसी अवस्था होने के कारण एक व्यक्ति, जिसे कैडर पद के विरुद्ध नियुक्त नहीं किया गया था, उक्त पद पर बने रहने का दावा नहीं कर सकता है यदि उसकी कार्यकुशलता संतोषजनक नहीं पायी जाती है। यदि उसकी सेवा संतोषजनक नहीं पाए जाने के कारण समाप्त कर दी जाती है, वह विशेष दर्जा का दावा नहीं कर सकता है। पारित किए गए आदेश का अर्थ यह नहीं है कि यह कलंक कारित करता है और दुष्परिणामों को याची पर थोपता है। मामले के उस दृष्टिकोण में, यह नहीं कहा जा सकता है कि याची की सेवा समाप्ति विधि के सिद्धांतों के विरुद्ध थी।

10. इस न्यायालय को अपने आदेश, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी संपुष्ट किया गया है, के पुनर्विलोकन के लिए कहना न्यायोचित होगा। विधि अथवा तथ्य की ऐसी कोई त्रुटि याची द्वारा उपदर्शित नहीं की गयी है जिसे ध्यान में लेने की आवश्यकता है। प्रतिवाद यह किया गया है कि शपथ पत्र में प्रत्यर्थीगण की ओर से गलत प्रकथनों को किया गया है। यह कहना सही नहीं है कि शपथ पत्र में किन्हीं गलत तथ्यों को दिया गया है। शपथ पत्र में उल्लिखित तथ्य वे तथ्य हैं जो अभिलेख पर उपलब्ध हैं। यदि याची महसूस करता है कि उसके मत में वे गलत हैं, यह उक्त तथ्यों को गलत नहीं बनाता है। मामले के उस दृष्टिकोण में, याची का अभिकथन कि आदेश असद्भावपूर्व है, असंपोषणीय है।

11. प्रतिष्ठा का अधिकार, जैसा प्रतिवाद किया गया है, का अवलम्ब यहाँ नहीं लिया जा सकता है। याची उन उपचारों का अवलम्ब ले सकता है जो विधि में उपलब्ध है यदि उन रिपोर्टों की प्रकृति किसी भी तरीके से वैसे चरित्र की है जो ऐसे समाचारपत्रों के रिपोर्टों को प्रकाशित करने के लिए जिम्मेवार व्यक्ति के विरुद्ध उसे प्रतिष्ठा का अधिकार प्रदान करती है।

12. याची दावा करता है कि नियमित अपर जिला न्यायाधीशों के पद पर नियुक्ति नियमों के विपरीत थी और इसलिए उसे हटाया गया है जिसके प्रति ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जाए क्योंकि ऐसा निष्कर्ष निकाला ही नहीं जा सकता है क्योंकि वह मेधा सूची में नहीं आया था और इसलिए उसे विज्ञापित पद पर नियुक्त नहीं किया गया था। उसे अपर जिला न्यायाधीश फास्ट ट्रैक न्यायालय के अस्थायी तदर्थ पद पर नियुक्त किया गया था और यह उसे उस पद का कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है।

13. जहाँ तक आदेश के आधार का संबंध है, सामग्री का परिशीलन करना न्यायालय का काम था, जिसका परिशीलन न्यायालय द्वारा संपूर्ण अभिलेखों को मंगाने के बाद किया गया था और न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया था जिसे अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री द्वारा समर्थित किया गया है कि याची की सेवाएँ संतोषजनक नहीं थी और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि आदेश को कोई आधार नहीं हैं।

14. याची ने अपने तर्कों के समर्थन में यह आग्रह करते हुए कि पुनर्विलोकन के अधीन आदेश कपट द्वारा प्राप्त किया गया था, निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास किया है:–

(i) ***(2007)4 SCC 221 [ए० वी० पप्पूया शास्त्री एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य]***

(ii) ***(2000)3 SCC 581 [यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं० लि० बनाम राजेन्द्र सिंह एवं अन्य]***

(iii) ***(1996)5 SCC 550 [इंडियन बैंक बनाम सत्यम फाइबर्स (इंडिया) प्रा० लि०]***

15. पूर्वोक्त निर्णयों में कपट से सम्बन्धित विधि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से कथित की गयी है। यदि विधि, जिस पर याची ने विश्वास किया है, पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाता है, यह उल्लिखित करना सुयोग्य होगा कि तथ्य, जिन्हें कपट निर्मित करता माना गया है, वैसे नहीं हैं जिन्हें इस चरित्र का कहा जा सकता है जो याची के तर्क को संपोषणीय बनाएगा और मामले के उस दृष्टिकोण में यह तर्क कि कपट किया गया है, में कोई सार नहीं है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थीगण के उत्तर शपथ पत्र का चरित्र ऐसा था जहाँ यह कहा जा सकता है कि कपट किया गया है। जमानत प्रदान करने के तथ्य से इंकार नहीं किया गया है और ऐसी स्थिति होने के कारण अभिकथनों में कपट का कोई अंतर्निहित प्रकथन नहीं है और इसलिए, याची का तर्क कि कपट किया गया है, मात्र ऐसे चरित्र का है जहाँ यह कहा जा सकता है कि याची ने इस संबंध में तर्कों के प्रति थोड़ी अधिक संवेदनशीलता ही दर्शायी थी।

16. उत्तर शपथपत्र में तीन पैराग्राफों को कपट के अभिकथनों का आधार बनाया गया है, अर्थात्, पैराग्राफ 11 जिसमें चर्चा परिवीक्षा अवधि के संबंध में है। याची के परिवीक्षा में होने के संबंध में प्रश्न परिणामविहीन है क्योंकि उसे एक्स-कैडर पद पर तदर्थ अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था और उसका नाम नियमित उम्मीदवारों के चयन सूची में नहीं आया था। पैराग्राफ 14 में तथ्य प्राथमिकी में अभियुक्त को नामित किए जाने के संबंध में है जिसे तथ्यों पर विवाद का विषयवस्तु बनाया जा सकता है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया था। वस्तुत: उसे नामित किया गया है जैसा न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है। याची ने विस्तारपूर्वक तर्क किया कि नाम उस तरह कथित नहीं किया गया है जैसा अपेक्षित है किन्तु उसका चरित्र ऐसा नहीं है जिसे कपट किया जाता कहा जा सकता है। तीसरा उपदर्शित पैराग्राफ, पैराग्राफ 18 है, जो मध्य अवधि में उसके स्थानांतरण और थोड़े से धन के अग्रिम निकासी और मंजूरी के बिना अवकाश पर रहने से संबंधित है। ये वैसे तथ्य भी नहीं है जिन्हें संपूर्णत: ऐसे चरित्र का कहा जा सकता है जिसके फलस्वरुप यह कहा जा सकता है कि ये आधारहीन हैं। यदि किसी तथ्य को असत्य सिद्ध करने की आवश्यकता है, तब उन तथ्यों को गलत चरित्र स्थापित करने के लिए यदि तर्कों की आवश्यकता है, तब यह स्व-स्थापित तथ्य नहीं हो सकता है। कपट को प्रकटत: ध्यान में लिया जाना होगा। अत: याची के तर्क को किसी भी परिणाम का नहीं कहा जा सकता है और इसलिए यह कहते हुए कि निर्णय कपट के व्यपदेशन पर आधारित है, निर्णय के पुनर्विलोकन का मामला नहीं बनता है।

17. याची ने उक्त निर्णयों के अतिरिक्त **बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया एवं एक अन्य बनाम नेताजी क्रिकेट क्लब एवं अन्य, (2005)4 SCC 741** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अपने निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए पश्चातवर्ती घटनाओं, यदि हो, को विचार में लिया जाना चाहिए और उस दृष्टिकोण में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है:–

> *90. अतः न्यायालय की ओर से की गयी गलती, जो परिवचन की प्रकृति की गलती को सम्मिलित करेगा, भी आदेश के पुनर्विलोकन का आह्वान कर सकती है। पुनर्विलोकन के लिए आवेदन भी पोषणीय होगा यदि इसके लिए पर्याप्त कारण विद्यमान हैं। पर्याप्त कारण किससे गठित होगा, वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस संहिता के आदेश 47, नियम 1 में शब्द ''पर्याप्त कारण'' न्यायालय अथवा*

वकील द्वारा तथ्य अथवा विधि के भ्रम को सम्मिलित करने के लिए पर्याप्त रूप से व्यापक है। इस सिद्धान्त ''न्यायालय के कार्य से किसी की हानि नहीं होती है'' का अवलम्ब लेते हुए पुनर्विलोकन के आवेदन को आवश्यकतः दिया जा सकता है।

18. किन्तु यदि पूर्वोक्त विधि को विचार में लिया भी जाता है, कोई ऐसी स्थिति उपदर्शित नहीं की गयी है जो दर्शा सकती है कि पश्चातवर्ती घटनाओं ने इसे ध्यान में लिया जाना आवश्यक बनाया क्योंकि सेवा समाप्ति के बाद किसी भी तरीके से ऐसा कुछ भी घटित नहीं हुआ है जो इस न्यायालय को अपने आदेश के पुनर्विलोकन के लिए प्रेरित करेगा। अत: याची के इस तर्क और विश्वास की गयी विधि को तथ्यों के प्रति प्रयोज्य नहीं होने के कारण त्यक्त किया जाता है।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय का अगला निर्णय, जिस पर याची द्वारा विश्वास किया गया है, **बिहार राज्य बनाम लालकृष्ण आडवाणी एवं अन्य, (2003)8 SCC 361** के मामले में है और उसने आग्रह किया है कि प्रतिष्ठा का अधिकार जीवन के अधिकार का एक पहलू है जैसा अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित किया गया है। हम नहीं समझते हैं कि इस टिप्पणी से कि सेवाएँ असंतोषजनक थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि आदेश पारित करने में प्रत्यर्थीगण ने याची की प्रतिष्ठा को किसी प्रकार का नुकसान कारित किया है। याची द्वारा दिया गया तर्क और विश्वास की गयी विधि याची के लिए परिणामहीन है और इसलिए उन्हें त्यक्त किया जाता है।

20. चूँकि हमने याचिका के गुणागुणों को ग्रहण किया है, इस प्रश्न पर विचार करने का कोई लाभ नहीं होगा कि क्या विशेष अनुमति याचिका की खारिजी पुनर्विलोकन आवेदन पर विचार किए जाने के लिए वर्जन है और इसलिए उन्हें **कुन्हे अम्मेद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं एक अन्य, (2000)6 SCC 359** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कथित विधि पर टिप्पणी नहीं की गयी है।

21. याची ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित मामले **एम॰ एम॰ थॉमस बनाम केरल राज्य एवं एक अन्य, (2000)1 SCC 666** में प्रकाशित मामले पर आगे जोर दिया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:–

17. यदि स्वयं अपने अभिलेख को सुधारने की शक्ति उच्च न्यायालय को देने से इंकार किया जाता है, तब जब यह प्रकट गलतियों को ध्यान में लेता है, इसका परिणाम यह होगा कि उच्च न्यायालय का उच्चतर दर्जा खत्म हो जाएगा। अतः यह सोचना समुचित है कि उच्च न्यायालय की सर्वांगीण शक्तियाँ अभिलेख पर प्रकट गलतियों से संबंधित पुनर्विलोकन की शक्ति को सम्मिलित करेगी।

22. पुनर्विलोकन की शक्ति, जैसा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परिभाषित किया गया है, न्यायालय को उपलब्ध शक्ति है, किन्तु तब हम अभिलेख पर प्रकट गलती को पाने में सक्षम नहीं हुए हैं और याची के दूसरे तर्क ने भी हमें कायल नहीं किया है क्योंकि वह केवल तदर्थ कर्मचारी था जिसे तदर्थ अस्थायी योजना पर भर्ती किया गया था क्योंकि वह विज्ञापित पद के लिए अर्हित होने में विफल रहा था। उसकी तदर्थ नियुक्ति फास्ट ट्रैक न्यायालय की एक विशेष योजना के लिए थी और अभिलेखों से इस न्यायालय ने पाया कि उसकी सेवाएँ संतोषजनक नहीं थी, याची द्वारा की गयी मेहनत हमें यह निष्कर्षित करने के लिए कायल करने के लिए पर्याप्त नहीं थी कि अभिलेख पर प्रकट गलती थी और इसलिए, हम पाते हैं कि आदेश के पुनर्विलोकन के लिए याची के दावा में कोई बल नहीं था और, इसलिए, कोई गुणागुण नहीं होने के कारण हम इस याचिका को खारिज करते हैं।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

रथीन्द्र नाथ महन्ती

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 5401 of 2010. Decided on 1st December, 2010.

(क) सेवा विधि–संप्रत्यावर्तन–याची को ए॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰ के प्रबंध निदेशक के अपने प्रतिनियुक्ति पद से अपने मूल विभाग (पी॰ ए॰ आर॰ डी॰) में पदग्रहण करने का निर्देश दिया गया–अधिनियम के अधीन सृजित आदित्यपुर औधोगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (ए॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰) के प्रबंध निदेशक का पद कैडर पद नहीं है जिसे संगठन के आरंभ से ही प्रशासनिक सेवाओं के सदस्यों द्वारा संभाला जा रहा है–संबंधित व्यक्ति को सदैव और किसी भी समय विभागों में से किसी की प्रेरणा पर उसमें उसके अधिष्ठायी पद पर सेवा देने के लिए मूल विभाग संप्रत्यावर्तित किया जा सकता है और लंबे समय तक प्रतिनियुक्ति पर बने रहने अथवा उस विभाग जिसमें उसे प्रतिनियुक्त किया गया था, में आमेलित होने के लिए ऐसे व्यक्ति में कोई निहित अधिकार नहीं है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 9, 10, 11, 15 एवं 16)

(ख) सेवा विधि–स्थानान्तरण–असद्भाव–असद्भाव सिद्ध करने का बोझ उस व्यक्ति पर है जो ऐसे अभिकथनों को लगा रहा है–इसे अपेक्षित सामग्रियों द्वारा, और न कि कोरे कथनों द्वारा समर्थित करना ही होगा–असद्भाव का मामला बनाने के लिए याची कोई सामग्री अथवा साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा–स्थानांतरण के आदेश का विरोध करने के लिए असद्भाव का आधार मान्य नहीं है। (पैराएँ 13 से 15)

निर्णयज विधि.–(2000)5 SCC 362; (2004)11 SCC 402—Relied on; 1991(1) PLJR 61 (SC); 2005(3) JLJR 97; 2008(2) JCR 306 (Jhr.)—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. P. K. Prasad, For the Petitioner; Mr. A.K. Sinha, For the State.

आदेश

यह रिट आवेदन दिनांक 21.10.2010 की अधिसूचना सं॰ 6301 के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा याची, जिसे आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (ए॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰) के प्रबंध निदेशक के पद पर प्रतिनियुक्त किया गया था, को अपने मूल विभाग अर्थात् कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग, झारखंड सरकार, राँची में पदग्रहण करने का निर्देश दिया गया है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि ए॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰ के प्रबंध निदेशक के पद पर स्थानांतरण के आदेश के फलस्वरूप याची ने पद ग्रहण किया किंतु उसके पदग्रहण के मात्र 40 दिनों बाद आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जो दो गणनाओं पर दोषपूर्ण है।

3. विद्वान अधिवक्ता ने इस संबंध में निवेदन किया कि याची ने पदग्रहण करने के बाद पाया कि उद्योग स्थापित करने के लिए भूमि के आबंटन के बावजूद लंबे समय तक ऐसा नहीं किया गया है, उन भूमि की शिनाख्त के लिए कदमों को उठाया जा रहा था ताकि आबंटन रद्द किया जाए और अन्य व्यक्तियों को भूमि दी जाए जो उद्योग स्थापित कर सकते हैं और याची की इस कार्रवाई ने याची को अनैतिक उद्योगपतियों की आँख का काँटा बना दिया जिन्होंने याची को पद से स्थानांतरित करवाने के लिए बड़े लोगों को राजनीतिक रूप से प्रभावित किया और अपने प्रयासों में वे कामयाब हुए और इस प्रकार जब स्थानांतरण का आदेश असद्भाव से कलंकित है और मामला पीड़ित करने वाला प्रतीत होता है, यह अपास्त किए जाने योग्य है।

4. विद्वान अधिवक्ता ने इस संबंध में **नवीन कुमार सिंह बनाम झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड अपने अध्यक्ष के माध्यम से,** [2005 (3) JLJR 97] मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

5. स्थानान्तरण के आदेश का विरोध करने के लिए लिया गया अन्य आधार यह है कि स्थानान्तरण का आदेश स्थापन कमिटि की अनुशंसा पर पारित किया है जबकि स्थानान्तरण की नीति के अधीन, जैसा दिनांक 25.10.1980 को सरकार द्वारा अधिसूचित किया गया था, किसी को कैबिनेट के अनुमोदन द्वारा इसके सत्यापन स्थापन कमिटि के आदेश के अधीन स्थानान्तरित किया जा सकता है और यदि स्थानान्तरण का आदेश उक्त नियम के अनुरुप नहीं है, यह दोषपूर्ण है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने इस संबंध में **उत्तम कुजूर बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य,** [2008(2) JCR 306 (Jhr)] के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

7. इसके विरुद्ध विद्वान महाधिवक्ता ने निवेदन किया कि आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (ए॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰) के प्रबंध निदेशक का पद कैडर पद नहीं है जिस पद को उक्त संगठन के आरंभ से ही भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी द्वारा संभाला जा रहा है और मूल विभाग अथवा कैबिनेट की किसी अनुशंसा के बिना उसके अभ्यावेदन पर बिहार प्रशासनिक सेवा के सदस्य याची को पदस्थापित किया गया है बल्कि उसे व्यवस्थापन अधिकारी, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर के रूप में पदस्थापित करने के लिए याची के अभ्यावेदन पर प्रस्ताव किया गया था किन्तु अगले आदेश तक उसे आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (ए॰ आई॰ ए॰ डी॰ ए॰) के प्रबंध निदेशक के रूप में उसे पदस्थापित करने के लिए आदेश पारित किया गया था, यद्यपि याची को संयुक्त सचिव की श्रेणी का होने के नाते उसे प्रबंध निदेशक के रूप में पदस्थापित नहीं किया जा सकता है और, इसलिए, जब यह गलती विभाग के ध्यान में आयी, आक्षेपित आदेश के जरिए याची को अपने मूल विभाग में अपना पदग्रहण करने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया गया है और इस प्रकार, यह प्रतिनियुक्ति का, न कि स्थानांतरण का मामला है और इसलिए यदि प्रतिनियुक्त को मूल विभाग में अपना पदग्रहण करने को कहा गया है, प्राधिकार द्वारा कोई अवैधता नहीं किया गया है।

8. विद्वान महाधिवक्ता ने इस संबंध में **कुणाल नन्दा बनाम भारत संघ एवं एक अन्य, [(2000)5 SCC 362]** के मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

9. विद्वान महाधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि यह सुस्थापित नियम रहा है कि स्थानान्तरण योग्य पद धारित करते हुए सरकारी सेवक को किसी एक अथवा अन्य स्थान पर पदस्थापित बने रहने का कोई निहित अधिकार नहीं है और इसलिए माननीय सर्वोच्च यायालय ने अनेक बार यह अभिनिर्धारित किया है कि जनहित में और/अथवा प्रशासनिक कारणों से किए गए स्थानान्तरण में न्यायालय को तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक स्थानान्तरण आदेश किसी आज्ञापक, सांविधिक नियम के उल्लंघन में अथवा असद्भाव के आधार पर नहीं है और कि **श्रीमती शिल्पी बोस एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** [1991(1) PLJR 61 (SC)] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय अभिनिर्धारित करने की सीमा तक गया है कि यदि स्थानान्तरण आदेश अपने कार्यपालक अनुदेश अथवा आदेशों के उल्लंघन में पारित भी किया जाता है, न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, बल्कि प्रभावित पक्ष को संबंधित विभाग के उच्चतर प्राधिकारीगण के पास जाने के लिए कहना चाहिए। इस प्रकार, यह निवेदन किया गया था कि आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप कभी भी अपेक्षित नहीं है।

10. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने पर और अभिलेख के परिशीलन पर, यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकरण (AIADA) के प्रबंध निदेशक का पद कैडर पद नहीं है जिस पद को, विद्वान महाधिवक्ता के अनुसार, संगठन के आरंभ से ही प्रशासनिक सेवा के सदस्यों द्वारा संभाला जा रहा है यद्यपि दिनांक 8.9.2010 की अधिसूचना के फलस्वरुप याची को उस पद पर स्थानान्तरित किया गया है किन्तु, वस्तुत: उसे प्रबंध निदेशक के पद पर प्रतिनियुक्त किया गया कहा जा सकता है और प्रतिनियुक्ति का आदेश अगले आदेश तक था और अब परिशिष्ट-4 में अंतर्विष्ट आदेश के फलस्वरुप उसे मूल विभाग में पदग्रहण करने का निर्देश दिया गया है जिसे दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रतिनियुक्त की सेवाएँ समय के किसी भी बिन्दु पर मूल विभाग को संप्रत्यावर्तित की जा सकती है।

11. इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कुणाल नन्दा बनाम भारत संघ एवं एक अन्य (ऊपर)** के मामले में संप्रेक्षित किया कि प्रतिनियुक्ति का मूल सिद्धांत स्वयं यह है कि संबंधित व्यक्ति को सदैव और किसी भी समय विभागों में से किसी की प्रेरणा पर उसमें उसके मूलपद पर सेवा देने के लिए उसके मूल विभाग में संप्रत्यावर्तित किया जा सकता है और लंबे समय तक प्रतिनियुक्ति पर बने रहने अथवा उस विभाग जिसमें उसे प्रतिनियुक्त किया गया है में आमेलित होने के लिए ऐसे व्यक्ति में कोई अधिकार निहित नहीं है।

12. मामले के इस दृष्टिकोण में, परिपत्र जिसका किसी नियम जैसा कोई प्रभाव नहीं है के प्रति अननुषक्ति के संबंध में याची की ओर से किया गया निवेदन अपनी प्रासंगिकता खो देता है। इसी समय पर, आदेश का विरोध करने के लिए असद्भाव का अन्य आधार भी गुणागुण रहित है क्योंकि असद्भाव का अभिकथन बिलकुल अस्पष्ट है क्योंकि याची किसी व्यक्ति के नाम के साथ आगे नहीं आया है जिसकी प्रेरणा पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

13. यह कहना होगा कि प्राख्यान अथवा कोरा कथन मात्र असद्भाव का तथ्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गोवर्धन लाल, [(2004)11 SCC 402]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्थानान्तरण के मामले पर विचार करते हुए संप्रेक्षित किया कि असद्भाव के अभिकथनों के बारे में न्यायालय को विश्वास दिलाना चाहिए और केवल इसके कहे जाने पर अथवा अटकलों अथवा अनुमानों के अनुचिन्तनों पर इसे ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए और मजबूत और कायल कर देने वाले कारणों को छोड़कर, सामान्यत: स्थानान्तरण के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

14. आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि असद्भाव सिद्ध करने का बोझ ऐसे अभिकथनों को लगाने वाले व्यक्ति पर है और यह बोझ भारी है जो किसी विधिक अस्पष्टता को स्वीकार नहीं करता है। प्राख्यान अथवा कोरा कथन मात्र इस भारी बोझ से बचाने के लिए पर्याप्त नहीं है जो विधि असद्भाव के अभिकथनों को लगाने वाले व्यक्ति पर अधिरोपित करती है; इसे अपेक्षित सामग्रियों द्वारा सर्मथित होना चाहिए।

15. वर्तमान मामले में, याची ने कोरे कथन को छोड़कर असद्भाव का मामला बनाने के लिए किसी सामग्री अथवा साक्ष्य को प्रस्तुत नहीं किया है। तद्नुसार स्थानान्तरण के आदेश का विरोध करने के लिए असद्भाव का आधार मान्य नहीं है।

16. परिस्थितियों के अधीन, जैसा ऊपर कहा गया है, मैं इस रिट आवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

माननीय सुशील हरकौली एवं डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्तिगण

तुरम सुन्डी

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 83 of 2000 (R). Decided on 29th November, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 64 वर्ष 1996 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 22.1.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302 सह-पठित धारा 84—हत्या—भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषमुक्ति—मानसिक उन्मत्तता का अभिवचन—दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उससे पूछे गए प्रश्नों का अभियुक्त द्वारा दिया गया उत्तर युक्तियुक्त रूप से सुबोध्य था और कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर यह निष्कर्षित किया जा सकता है कि अपराध किए जाते समय अभियुक्त इस सीमा तक विकृत चित्त था कि ऐसी विकृतचित्तता के कारण वह कृत्य की प्रकृति को जानने अथवा यह जानने में अक्षम था कि जो वह कर रहा था गलत अथवा विधि के विपरीत था—मामला धारा 84 के अधीन आच्छादित नहीं किया जा सकता है—अभियुक्त को झूठा आलिप्त करने के लिए सूचक सहित चश्मदीद गवाहों का कोई हेतु नहीं था—घटना की प्रकृति, उपहतियों की संख्या और पीड़ितों की संख्या निजी बचाव के सिद्धान्त को खारिज करते हैं—दोषसिद्धि एवं दंडादेश को मान्य ठहराया गया—अपील खारिज। (पैराएँ 13 से 18)

अधिवक्तागण.—Mr. R. C. Khatri, For the Appellant; A.P.P., For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील सत्र विचारण सं॰ 64 वर्ष 1996 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा के दिनांक 22.1.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय और आजीवन कारावास के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. एकमात्र अभियुक्त (अपीलार्थी) को किसी केशरी सुन्डी एवं एक अन्य कप्तान सिरका की हत्या और रमई सुन्डी नामक एक अन्य व्यक्ति को घायल करने के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302/307/324 के अधीन अपराध के लिए विचारित किया गया था।

3. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराधों का दोषी पाया और भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषरहित अभिनिर्धारित किया। परिणामस्वरुप, अभियुक्त भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन दोषमुक्त कर दिया गया था।

4. अभियोजन मामला यह है कि अ॰ सा॰ 2 महती दास, जो गाँव का डाकु था, और तीन-चार अन्य गाँव वालों द्वारा अभियुक्त को सूचक के घर लाया गया था जहाँ उसे बंधी अवस्था में रखा गया था क्योंकि यह रिपोर्ट किया गया था कि अभियुक्त अपना मानसिक संतुलन खो बैठा था और गाँव वालों का पीछा कर रहा था। यह दिनांक 9.12.1985 की रात को घटित हुआ था।

5. अगली सुबह दिनांक 10.12.1995 को अभियुक्त तुरम सुन्दी ने स्वयं को बंधनों से मुक्त कर लिया और भागने लगा। सूचक सनातन सुन्डी का भाई अर्थात् केशरी सुन्डी, जो गाँव का मुंडा था, और अ॰ सा॰ 2 महती दास जो गाँव का डाकु था, तीन-चार अन्य गाँव वालों के साथ अभियुक्त की खोज में निकला। अभियुक्त को पकड़ने का प्रयास करते हुए केशरी सुन्डी पर अभियुक्त द्वारा चाकू और पत्थरों

से प्रहार किया गया था। जिसके बाद अभियुक्त पुनः भाग गया। तत्पश्चात् रमई सुन्डी और कप्तान सिरका अभियुक्त को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। पकड़ने के लिए किए गए दूसरे प्रयास पर अभियुक्त ने चाकू से रमई सुन्डी और कप्तान सिरका पर प्रहार किया। इस समय तक अनेक गाँव वाले वहाँ एकत्रित हो गए थे और अभियुक्त पर तीर चलाने लगे थे। एक तीर अभियुक्त के पेट में लगा किन्तु वह जंगल में भाग गया।

6. इसे दिनांक 10.12.1995 को घटित हुआ अभिकथित किया जाता है।

7. अपराध की सूचना मिलने पर, पुलिस इंस्पेक्टर घटनास्थल की ओर रवाना हुआ जहाँ उसने दिनांक 10.12.1995 को सायं लगभग 5 बजे सनातन सुन्डी (अ॰ सा॰ 1) का फर्दबयान (प्रदर्श 6) दर्ज किया। इन्सपेक्टर ने सूचक का बयान दर्ज किया, घटनास्थल का निरीक्षण किया, मृतकों केशरी सुन्डी और कप्तान सिरका के मृत शरीरों को पाया, और मृत्यु समीक्षा (प्रदर्श 8 और 8/1) तैयार किया। उसने गवाहों का बयान दर्ज किया, अभियुक्त, जिसे घायल अवस्था में पाया गया था, को गिरफ्तार किया, अभियुक्त के इकबालिया बयान दर्ज किया, और उपचार के लिए उसे अस्पताल भेजा। इंसपेक्टर ने रमई सुन्डी को भी उपचार के लिए उसी अस्पताल में भेजा। इंसपेक्टर ने प्रदर्श 7 के तहत मृतक कप्तान सिरका पर किए गए प्रहार के स्थल से रक्त रंजित मिट्टी को संग्रहित किया। उसने प्रदर्श 7/1 के तहत मृतक केशरी सुन्डी पर किए गए प्रहार के स्थल से रक्तरंजित मिट्टी और रक्त रंजित दो पत्थरों को भी संग्रहित किया। अन्वेषण बाद में एक अन्य अन्वेषण अधिकारी को हस्तान्तरित किया गया था और अंततः एकमात्र अभियुक्त के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 302/307/324 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया था।

8. इस बीच, अस्पताल से छुट्टी किए जाने पर अभियुक्त को दिनांक 20.12.1995 को न्यायिक अभिरक्षा में भेज दिया गया था।

9. अभियोजन ने सूचक सनातन सुन्डी को अ॰ सा॰ 1 के रूप में, गाँव के डकुआ महती दास को अ॰ सा॰ 2 के रूप में, सरपंच बुधन सिंह सुन्डी को अ॰ सा॰ 3 के रूप में, डॉ॰ अरुण कुमार गुप्ता जिन्होंने दोनों मृतकों का शव परीक्षण किया था, को अ॰ सा॰ 4 के रूप में, डॉ॰ जवाहर खान का, जिन्होंने अ॰ सा॰ 5 के रूप में घायल रमई सुन्डी का परीक्षण किया था और अभियुक्त का भी परीक्षण किया। पुलिस इंसपेक्टर इंदु पाल ओराँव को अ॰ सा॰ 6 के रूप में परीक्षित किया गया था, अ॰ सा॰ 7 के रूप में सोहन सिंह कुमार का जो अत्यन्त तात्विक नहीं है, बीर सिंह सुन्डी को चश्मदीद गवाह होने के नाते अ॰ सा॰ 8 के रूप में, और अ॰ सा॰ 9 के रूप में किसी निलेश कुमार, जो भी बहुत तात्विक नहीं है, को परीक्षित किया गया था।

10. घायल रमई सुन्डी को गवाह के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है यद्यपि अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ जवाहर खान ने रमई सुन्डी की चिकित्सीय परीक्षा करने पर उपहतियों, जो उन्होंने पाया था, के बारे में परिसाक्ष्य दिया है। विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि रमई सुन्डी के अप्रस्तुतीकरण को तर्कों के दौरान यह कहते हुए स्पष्ट करना इप्सित किया गया था कि उसकी उपस्थिति सुनिश्चित नहीं की जा सकी थी; किन्तु प्रकटतः रमई सुन्डी के उक्त अप्रस्तुतीकरण के कारण विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया है। ऐसी दोषमुक्ति दर्ज करते हुए विचारण न्यायालय उपहतियों, जैसा डॉ॰ जवाहर खान (अ॰ सा॰ 5) द्वारा रिपोर्ट किया गया था, पर संदेह करने के लिए तर्कपूर्ण और अ॰ सा॰ 8 बीर सिंह सुन्डी, जो रमई सुन्डी पर प्रहार किए जाने का चश्मदीद गवाह था, पर अविश्वास करने के लिए भी कोई तर्कपूर्ण कारण नहीं देता है। किन्तु, चूँकि दोषमुक्ति के विरुद्ध कोई अपील अथवा पुनरीक्षण नहीं है, उस प्रश्न पर आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

11. हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है।

12. अपीलार्थी के बचाव में पहला तर्क अभियुक्त के विकृतचित्तता के संबंध में अभियोजन गवाहों पर आधारित है।

13. प्रथमत: भारतीय दंड संहिता की धारा 84 के अधीन विकृतचित्तता का बचाव केवल तब ही है जहाँ यह उस सीमा और प्रकृति का है जिसके कारण अपराध किए जाते समय अभियुक्त कृत्य की प्रकृति के बारे में जानने अथवा यह जानने कि अभियुक्त जो कर रहा है, वह गलत अथवा विधि के विपरीत है, के सिलसिले में अक्षम है। प्रति परीक्षण अथवा किसी गवाह को सुझाव के जरिए अथवा बचाव साक्ष्य के जरिए अथवा विचारण न्यायालय के समक्ष तर्कों के दौरान ऐसा कोई बचाव नहीं लिया गया है। इसके अतिरिक्त, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उससे पूछे गए प्रश्नों का अभियुक्त द्वारा दिया गया उत्तर युक्तियुक्त रूप से सुबोध्य प्रतीत होता है और इसलिए कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर निष्कर्षित किया जा सकता है कि अभियुक्त इस सीमा तक विकृत्तचित्त था कि ऐसी विकृतचित्तता के कारण वह कृत्य की प्रकृति को जानने अथवा यह जानने कि जो वह कर रहा है गलत अथवा विधि के विपरीत है, के लिए अक्षम था। अत: मामले को भारतीय दंड संहिता की धारा 84 के अधीन आच्छादित नहीं कहा जा सकता है।

14. विचारण न्यायालय के समक्ष और इस अपील में भी अभियुक्त का बचाव घटना से पूर्ण इंकार का था।

15. किन्तु विचारण न्यायालय के समक्ष अथवा हमारे समक्ष यह दर्शाया नहीं गया है कि क्यों सूचक सहित चश्मदीद गवाह के पास इस मामले में अभियुक्त को झूठा आलिप्त करने का कोई संभव हेतु होगा।

16. घटना की प्रकृति, उपहतियों की संख्या और पीड़ितों की संख्या अपीलार्थी की ओर से तर्क किए गए प्रयास में निजी बचाव के किसी सिद्धांत को खारिज करते हैं। अभियुक्त के शरीर पर उपहति अर्थात् अ॰ सा॰ 5 द्वारा अभियुक्त के पेट में चुभा पाया गया एक मात्र तीर भी अभियोजन द्वारा स्पष्ट किया गया है और स्पष्टीकरण बिल्कुल स्वाभाविक है, अर्थात् कि जब अभियुक्त को पकड़ने के प्रयासों के दौरान अभियुक्त द्वारा चाकू और पत्थरों से तीन व्यक्तियों को गंभीर रूप से घायल कर दिया गया था, अन्य गाँव वालों जो वहाँ एकत्रित हुए थे, ने अभियुक्त पर तीर चलाना शुरू किया जिसमें से एक अभियुक्त के पेट में लगा जिस पर वह जंगल में भाग गया।

17. हमने गवाहों के बयानों का परिशीलन किया है और हम उनके मुख्य परीक्षण अथवा प्रति-परीक्षण में कुछ भी नहीं पाते हैं जो इन गवाहों के परिसाक्ष्य पर कोई गंभीर संदेह उत्पन्न करेगा। हम दोषसिद्धि अथवा दंडादेश में हस्तक्षेप करने का कोई भी कारण नहीं पाते हैं।

18. परिणामस्वरुप, अपील खारिज की जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

केशरी कुमार मिश्रा एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 664 of 2010. Decided on 26th November, 2010.

सेवा विधि–आमेलन–प्रतिनियुक्ति के विभाग में सेवा के आमेलन के लिए दावा–याचीगण, जो विभिन्न निगमों और बोर्डों में काम कर रहे थे, को भविष्य निधि निदेशालय में प्रतिनियुक्त किया गया था और इसी प्रकार अन्य व्यक्तियों, जो विभिन्न निगमों और बोर्डों में काम कर रहे

थे, को राष्ट्रीय बचत विभाग में और कैबिनेट चुनाव विभाग में भी प्रतिनियुक्त किया गया था और व्यक्तियों, जिन्हें राष्ट्रीय बचत विभाग में और कैबिनेट चुनाव विभाग में भी प्रतिनियुक्त किया गया था, की सेवाओं को पहले ही आमेलित कर लिया गया है–किन्तु, याचीगण की सेवाएँ अभी भी आमेलित नहीं की गयी है–याचीगण वर्ष 1977 से प्रतिनियुक्ति पर कार्य कर रहे थे और इन समस्त अवधियों के दौरान वहाँ कोई नयी नियुक्ति नहीं की गयी है–भविष्य निधि निदेशालय में याची के आमेलन के मामले में निर्णय लेने के लिए प्रधान सचिव को निर्देश दिया गया। (पैराएँ 4, 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mrs. Ritu Kumar, For the Petitioners; J.C. to S.C. I, For the State.

आदेश

याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि दिनांक 12.4.2010 के आदेश के अनुसरण में एक अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 1887 वर्ष 2010 दाखिल किया गया है जिसमें याचीगण के नियोक्ता को प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 16 तक के रूप में पक्ष बनाने की प्रार्थना की गयी है।

2. प्रार्थना अनुज्ञात की जाती है। उन व्यक्तियों को प्रत्यर्थीगण सं॰ 5 से 16 तक के रूप में पक्षकार बनाया जाए।

पूर्वोक्त आई॰ ए॰ निपटाया जाता है।

3. मामले के गुणागुण पर याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि तत्कालीन निदेशक, भविष्य निधि निदेशालय, बिहार द्वारा किए गए अनुरोध पर वर्ष 1997 में, इन याचीगण जो विभिन्न निगमों और बोर्ड में कार्यरत थे, को भविष्य निधि निदेशालय में प्रतिनियुक्त किया गया था और इसी प्रकार, अन्य व्यक्तियों, जो विभिन्न निगमों और बोर्ड में कार्यरत थे, को राष्ट्रीय बचत विभाग में और कैबिनेट चुनाव विभाग में भी प्रतिनियुक्त किया गया और उन व्यक्तियों, जो राष्ट्रीय बचत विभाग में और कैबिनेट चुनाव विभाग में भी प्रतिनियुक्त थे, की सेवाओं को पहले ही आमेलित कर लिया गया है और केवल यही नहीं, उन व्यक्तियों, जो बिहार राज्य में भविष्य निधि निदेशालय में प्रतिनियुक्त थे, की सेवाओं को भी आमेलित कर लिया गया है किन्तु इन 25 याचीगण की सेवाओं को अभी तक आमेलित नहीं किया गया है, यद्यपि वे वर्ष 1997 से प्राधिकारीगण के पूर्ण संतोषानुसार कार्यरत है और पूरे समय तक संतोषजनक सेवाओं को देने के बावजूद, जब याचीगण की सेवाओं को आमेलित नहीं किया गया था, याचीगण ने प्राधिकारीगण के समक्ष अभ्यावेदन दिया था किन्तु याचीगण के आमेलन के संबंध में अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया गया है।

5. राज्य की ओर से एक प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि सरकारी विभाग में आमेलित किए जाने का अधिकार याचीगण को नहीं है और याचीगण ने भी शपथ पत्रों को दाखिल करके इस स्थिति को स्वीकार किया है।

6. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि उन व्यक्तियों, जो विभिन्न निगमों और बोर्डों में कार्यरत थे, की सेवाएँ तत्कालीन निदेशक, भविष्य निधि निदेशालय द्वारा वर्ष 1997 में इस शर्त पर तलब

की गयी थी कि व्यक्तियों, जिन्हें प्रतिनियुक्त किया गया था, को निदेशालय में रिक्तियों को भरे जाने तक अथवा उनके आमेलन के लिए सरकार द्वारा निर्णय लिए जाने तक रखा जाएगा और शायद इस पहलू पर विचार में लेते हुए, इन याचीगण ने निदेशालय में प्रतिनियुक्ति का विकल्प चुना और तद्द्वारा समस्त याचीगण को वर्ष 1997 में भविष्य निधि निदेशालय में वर्ष 1997 में प्रतिनियुक्त किया गया था और वे तब से कार्यरत हैं। याचीगण का मामला यह भी है कि इन समस्त अवधियों के दौरान निदेशालय में कोई नयी नियुक्ति नहीं की गयी है और यह कि वर्ष 2006 में याचीगण से विकल्प भी मांगा गया था कि क्या वे विभाग में आमेलित किए जाने के इच्छुक हैं और इसके अनुसरण में समस्त याचीगण ने आमेलन का विकल्प चुना किन्तु अभी भी मामले में सरकार द्वारा निर्णय नहीं लिया गया है।

7. इस स्थिति में, प्रधान सचिव, वित्त विभाग, झारखंड राज्य, प्रत्यर्थी सं॰ 2 को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर भविष्य निधि निदेशालय में याचीगण के आमेलन के मामले में निर्णय लेने के निर्देश के साथ इस रिट आवेदन को निपटाया जाता है।

माननीय सुशील हरकौली एवं डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्तिगण

सोल हेमब्रम

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal (Jail) Appeal No. 186 of 2006. Decided on 26th November, 2010.

सत्र केस सं॰ 150 वर्ष 2003 में विद्वान तृतीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, (एफ॰ टी॰ सी॰), दुमका द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 30 नवम्बर, 2005 और 1 दिसम्बर, 2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–अभियोजन मामला अभियोजन साक्षियों के अभिसाक्ष्यों द्वारा और साथ ही चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा भी पूर्णतः समर्थित–अभियोजन द्वारा घटनास्थल भी सिद्ध किया गया–घटना के पीछे हेतु भी सिद्ध किया गया–जादू-टोना करने के संदेह पर मृतक की हत्या की गयी थी–अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से पर्याप्त अपराधिक मनःस्थिति है–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग I अथवा भाग II के अधीन दंडनीय अपराध में परिवर्तित करने का इच्छुक न्यायालय नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. A. S. Dayal *(Amicus Curiae),* For the Appellant; None, For the State.

डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति के मुताबिक.–वर्तमान अपील सत्र केस सं॰ 150 वर्ष 2003 में विद्वान तृतीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, (एफ॰ टी॰ सी॰), दुमका द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 30 नवम्बर, 2005 और 1 दिसम्बर, 2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थी अर्थात् सोल हेमब्रम को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है।

तथ्यात्मक मैट्रिक्स:

1. अभियोजन का मामला यह है कि दुमका जिला के अंतर्गत रामगढ़ पुलिस थाना में दिनांक 17 दिसम्बर, 2002 को दोपहर 12 बजे रहोरा हेमब्रम (सूचक अ॰ सा॰ 7) द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी थी कि दिनांक 16 दिसम्बर, 2002 को वह घर पर था क्योंकि उसके हाइड्रोसिल में दर्द था और उसकी माता मुनि बेसरा (मृतका) बगल के कमरें में सो रही थी। उस दिन दोपहर 1 बजे उसका कजिन भाई अर्थात् सोल हेमब्रम (अपीलार्थी) अपने हाथ में कुल्हाड़ी लिए आया और अभिकथन करने लगा कि सूचक की माता मुनि बेसरा ''डाइन'' है और उसने उसके पुत्र का प्राण ले लिया है और तत्पश्चात उसकी माता के मस्तक पर कुल्हाड़ी का वार किया। सूचक ने आगे कथन किया घटना की तिथि पर उसकी पुत्री अर्थात् बाले हेमब्रम (अ॰ सा॰ 1) भी घटना स्थल पर थी। सूचक द्वारा आगे कथन किया गया है कि उसकी माता की हत्या करने पर सोल हेमब्रम (अपीलार्थी) आंगन में कुल्हाड़ी फेंकने के बाद भाग गया। सूचक मृतक का पुत्र है।

2. तत्पश्चात्, अन्वेषण किया गया था, आरोप-पत्र दाखिल किया गया था और सुपुर्दगी के बाद मामले को सत्र विचारण सं॰ 150 वर्ष 2003 सख्यांकित किया गया था और अभियोजन गवाहों के साक्ष्यों के आधार पर और आंगन से बरामद की गयी लकड़ी के हैंडल वाली रक्त रंजित कुल्हाड़ी जैसे अभिग्रहित सामग्रियों के आधार पर और अन्य दस्तावेजी साक्ष्यों पर अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था और दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश एवं दंडादेश के विरुद्ध वर्तमान अपील दाखिल की गयी है।

कारण:

1. हमने अभिलेखों और विचारण न्यायालय की कार्यवाहियों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है और अभिलेख पर उपलब्ध अभियोजन गवाहों के अधार पर साक्ष्यों के परिशीलन पर प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 1 बाले हेमब्रम घटना की चश्मदीद गवाह है, जिसने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्ट कथन किया है कि घटना की तिथि पर वह बीमार थी और इसलिए वह घर पर थी और उसकी दादी (मृतका) भी घर में सो रही थी। अभियुक्त अपने हाथ में कुल्हाड़ी लिए उसके घर आया और उसकी दादी के आँखों के निकट उसके मस्तक पर कुल्हाड़ी से प्रहार किया। अ॰ सा॰ 1 द्वारा यह कथन भी किया गया है कि उसकी दादी, अर्थात् मुनि बेसरा की मृत्यु घटना स्थल पर हो गयी। तत्पश्चात अभियुक्त ने कुल्हाड़ी फेंका और कहा कि अब वह जेल जाएगा। अ॰ सा॰ 1 द्वारा यह कथन भी किया गया है कि घटना के दो दिन पहले अभियुक्त के पुत्र की मृत्यु हो गयी थी।

उसके प्रति-परीक्षण को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त के पक्ष में कुछ भी नहीं आया है। यद्यपि अ॰ सा॰ 1 भोली गवाह है, उसने घटना के बारे में न्यायालय के समक्ष किसी अतिशयोक्ति के बिना स्पष्ट अभिसाक्ष्य दिया है। घर में उसकी उपस्थिति स्वभाविक है। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 विश्वास योग्य और विश्वसनीय गवाह है।

2. अ॰ सा॰ 7 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए, जो मृतका का पुत्र है और वर्तमान मामले में सूचक है, प्रतीत होता है कि इस गवाह ने भी कथन किया है कि घटना के दो दिन पहले अभियुक्त के पुत्र का देहावसान हो गया था और अभियुक्त सूचक की माता को ''डाइन'' कह रहा था। अभियुक्त द्वारा सूचक की माता को धमकी भी दी गयी थी। अ॰ सा॰ 7 ने शपथ पर कथन किया है कि दिनांक 16 दिसम्बर,

2002 को जब वह घर आया, उसके हाइड्रोसिल में दर्द था। उसकी माता घर में सो रही थी। उसका कजिन भाई जो अभियुक्त है, अर्थात्, सोल हेमब्रम ने सूचक की माता (मुनि बेसरा) के मस्तक के बाएँ हिस्से पर कुल्हाड़ी से प्रहार किया और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात, अभियुक्त ने आंगन में कुल्हाड़ी फेंक दी और भाग गया। अत: मृतक की हत्या करने के लिए इस गवाह द्वारा मंशा भी अभिकथित किया गया है। स्वयं अपने घर में इस गवाह की उपस्थिति स्वाभाविक है।

इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 9 अन्वेषण अधिकारी के अभिसाक्ष्य को देखते हुए न तो कोई अतिशयोक्ति है और न ही कोई लोप अथवा विरोधाभास है। इस गवाह (अ॰ सा॰ 7) ने स्पष्ट अभिसाक्ष्य दिया है और, इस प्रकार, वह विश्वास योग्य और विश्वसनीय गवाह है। वह वर्तमान मामले में सूचक भी है और अ॰ सा॰ 1 के अभिसाक्ष्य का समर्थन किया है।

3. अन्य अभियोजन गवाहों विशेषत: अ॰ सा॰ 8 (डॉ॰ अनन्त कुमार झा) जो सदर अस्पताल, दुमका में चिकित्सा अधिकारी थे, के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि उन्होंने दिनांक 18 दिसम्बर, 2002 को मृतक का शव परीक्षण किया था और निम्नलिखित मृत्युपूर्व उपहतियों को इंगित किया है:–

(i) क्रेनियल कैविटी तक गहरी और 3½" x 2" माप वाली बांए भौंह से अग्रमस्तक के बाएँ हिस्से पर कटे हुए जख्म थे। आगे चीड़-फाड़ किए जाने पर ब्रेनमैटर्स को लैसिरेटेड पाया गया और क्रेनियल कैविटि खून से भरा था।

डॉक्टर के मत के अनुसार, पूर्वोक्त मस्तक उपहति के कारण था जिसे कठोर और भारी औजार द्वारा किया गया था। मृत्यु के समय से बीता समय 72 घंटा के भीतर था।

4. अत: अ॰ सा॰ 8 के अभिसाक्ष्य को देखते हुए और प्रदर्श-3 पर शव परीक्षण नोट को भी देखते हुए प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 7 के अभिसाक्ष्यों का पर्याप्त संपुष्टिकरण है। उपहति की प्रकृति को देखते हुए प्रतीत होता है कि प्रकृति के सामान्य क्रम में मृतक की मृत्यु कारित करने के लिए यह पर्याप्त था। उपहति कठोर और भारी औजार द्वारा कारित की गयी है जैसा डॉक्टर (अ॰ सा॰) द्वारा कथित किया गया है।

5. अ॰ सा॰ 9 जो अन्वेषण अधिकारी हैं के अभिसाक्ष्य को देखते हुए प्रतीत होता है कि मृत शरीर सूचक के घर में पाया गया था। इसी प्रकार, लकड़ी के हैंडल वाली रक्तरंजित कुल्हाड़ी को आंगन से बरामद किया गया था और गाँव बरमसिया पुलिस थाना-रामगढ़, जिला-दुमका से सूचक के घर के दक्षिणी हिस्से से रक्तरंजित मिट्टी भी बरामद की गयी थी। रसिक सोरेन (अ॰ सा॰ 3) की उपस्थिति में अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी जिसने अभिग्रहण सूची को सिद्ध भी किया है।

6. अन्य अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 7 के अभिसाक्ष्यों की पर्याप्त संपुष्टि की गयी है।

7. इस प्रकार, अभिलेख के समस्त साक्ष्यों को देखते हुए, विशेषत: अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 7 के अभिसाक्ष्यों को देखते हुए प्रतीत होता है कि अभियोजन ने युक्तियुक्त संदेह के परे अपराध सिद्ध किया है जिसे अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा किया गया था। इस प्रकार, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों का अधिमूल्यन करने में मृतका मुनि बेसरा की हत्या करने के लिए अपीलार्थी-अभियुक्त को दंड देने में विचारण न्यायालय द्वारा कोई गलती नहीं की गयी है।

8. इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 7 के अभिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 8 और अ॰ सा॰ 9 के अभिसाक्ष्यों से पर्याप्त संपुष्टि पा रहे हैं। चिकित्सीय साक्ष्य भी अभियोजन के मामले का समर्थन कर रहा है। अभियोजन द्वारा घटनास्थल भी सिद्ध किया गया है और अ॰ सा॰ 9 और अ॰ सा॰ 3 की सहायता से अभिग्रहण सूची के प्रमाण द्वारा पर्याप्त संपुष्टि है। रक्त रंजित कुल्हाड़ी सूचक के घर के आंगन से बरामद की गयी थी। इस प्रकार, अपीलार्थी ने ही कुल्हाड़ी से मस्तक पर उपहति कारित करते हुए मृतका मुनि बेसरा की हत्या की है। मंशा भी इंगित किया गया है कि घटना के दो दिन पहले अपीलार्थी-अभियुक्त के पुत्र की मृत्यु हो गयी थी और इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त मृतका को डाइन कह रहा था।

9. अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त कुल्हाड़ी के साथ केवल मृतका की हत्या करने की दृष्टि से सूचक के घर आया था। इस प्रकार, अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से पर्याप्त आपराधिक मन:स्थिति है और अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा किया गया कृत्य सुविचारित और सुनियोजित था। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त का हत्या करने का आशय नहीं था और इसलिए हम भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग-I अथवा भाग-II के अधीन दंडनीय अपराध में परिवर्तित करने के इच्छुक नहीं हैं।

10. पूर्वोक्त तथ्यों की दृष्टि में, हमारा दृष्टिकोण है कि अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने और उसे आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देने में विद्वान विचारण न्यायालय ने कोई गलती नहीं की है। अत: इस दांडिक अपील में कोई सार नहीं है, जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

रेवा लाल मुण्डा उर्फ रेवा मुण्डा

बनाम

सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ एवं अन्य

W.P.(S) No. 74 of 2009. Decided on 24th November, 2010.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–अनुकम्पा पर नियुक्ति–दावा की अस्वीकृति–याची का दावा इस कारण से अस्वीकार किया गया कि उसका नाम मृत कर्मचारी के रोजगार से संबंधित दस्तावेजों में से किसी में उल्लिखित नहीं किया गया था–आक्षेपित आदेश लगभग इस तथ्य से इंकार की कोटि का है कि याची मृत कर्मचारी का पुत्र है जो याची की सामाजिक हैसियत को प्रभावित करता है–मामले में जाँच करना समुचित होगा ताकि याची की हैसियत अभिनिश्चित की जा सके–याची को कोई अवसर दिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया था और तद्नुसार अपास्त किया जाता है–उच्च स्तरीय कमिटि को मामले की जाँच करने का निर्देश।

(पैराएँ 8 से 10)

निर्णयज विधि.–2008(4) JCR 26 (Jhr.)—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the C.C.L.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 4081 वर्ष 2010 पर सुना गया जिसके द्वारा आदेश, जिसके अधीन अनुकम्पा

के आधार पर नियुक्ति के लिए याची का दावा अस्वीकार कर दिया गया है, का अभिखंडन इप्सित किया गया है। अंतर्वर्ती आवेदन में की गयी प्रार्थना को एतद् द्वारा अनुज्ञात किया जाता है। अंतर्वर्ती आवेदन को मुख्य रिट आवेदन का अंश निर्मित करने दिया जाए।

2. मामले के गुणागुण पर याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची के पिता स्व॰ भदवा मुण्डा की मृत्यु कार्यरत रहते हो गयी जब वह मेसर्स सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ के स्थापन की सेवा में था। अत:, याची ने मृतक का पुत्र होने के नाते अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल किया किन्तु जब उस आवेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया था, याची शिकायत दूर किए जाने के लिए इस न्यायालय के पास आया।

4. आगे निवेदन किया गया है जब मामला लंबित था, उसके साथ दिनांक 7.9.2002 का आदेश संलग्न करते हुए प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया था जिसके द्वारा यह जाना जा सकता था कि याची का दावा अस्वीकार कर दिया गया है और इसलिए परिशिष्ट-A में अंतर्विष्ट उस आदेश का अभिखंडन इप्सित किया गया है।

5. उक्त आदेश का विरोध करने के लिए यह निवेदन किया गया था कि याची का दावा सरलत: इस कारण से अस्वीकार कर दिया गया था, क्योंकि प्रत्यर्थीगण के अनुसार उसका नाम मृत कर्मचारी के रोजगार से संबंधित दस्तावेजों में से किसी में उल्लिखित नहीं पाया गया था और तद्द्वारा प्राधिकारी ने अप्रत्यक्षत: अभिनिर्धारित किया कि याची मृत कर्मचारी का उत्तराधिकारी नहीं है और यदि उक्त आदेश का प्रभाव वैसा होगा, तब निश्चय ही उस निष्कर्ष पर आने से पहले प्राधिकारी को जाँच करना चाहिए था।

6. विद्वान अधिवक्ता ने **संतोष कुमार बनाम सेंट्रल कोलफील्ड्स लि॰ [2008 (4) JCR 26 (Jhr)]** के मामले में दिए गए निर्णय को यह दर्शाने के लिए निर्दिष्ट किया है कि समरुप स्थिति में प्राधिकारी को मामले में अपनी बात रखने का पर्याप्त अवसर याची को देते हुए जाँच करने के लिए निर्देशित किया गया है। अन्यथा भी एक विस्तृत जाँच किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि एल॰ टी॰ सी॰, नियोक्ता के पास मौजूद सेवा उद्धरण और अन्य दस्तावेज जैसे संबंध प्रमाण पत्र से संबंधित कतिपय दस्तावेज और अन्य दस्तावेज दर्शाएँगे कि याची स्वर्गीय भदवा मुण्डा का पुत्र है।

7. इसके विरुद्ध, सी॰ सी॰ एल॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि याची का नाम सेवा उद्धरण में नहीं आता है किन्तु कुछ प्रक्षेप किया गया प्रतीत होता है और उसके अतिरिक्त याची को मृत कर्मचारी का पुत्र दर्शाते हुए कोई वैध दस्तावेज कम्पनी के पास नहीं है।

8. अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति के लिए याची के दावे से इंकार करने वाला परिशिष्ट-A के अधीन आदेश लगभग इस तथ्य से इंकार करना है कि याची मृतक कर्मचारी का पुत्र है जो याची की सामाजिक हैसियत को प्रभावित करता है और मामले के उस दृष्टिकोण में मामले में जाँच करना समुचित होगा ताकि याची की हैसियत को अभिनिश्चित किया जा सके। इसके अतिरिक्त, परिशिष्ट-A में अंतर्विष्ट आदेश याची को पर्याप्त अवसर दिए बिना पारित किया गया प्रतीत होता है और इसलिए केवल उस आधार पर उक्त आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और तद्नुसार इसे अपास्त किया जाता है।

9. इन परिस्थितियों के अधीन, मामले में उच्च स्तरीय कमिटि द्वारा जाँच की जाए जो सी॰ सी॰ एल॰ के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार इस प्रकार का विवाद विनिश्चित करने के लिए है।

10. यह कहना अनावश्यक है कि उच्चस्तरीय कमिटि जाँच करते हुए याची को मामले में अपनी बात रखने का और कमिटि के समक्ष समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का अवसर देगी।

11. इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह के भीतर जाँच पूरी की जाए।

12. तद्नुसार यह आवेदन निपटाया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

बी॰ के॰ सिंह उर्फ बिरेन्द्र कुमार सिंह (1037 में)

बलिन्द्र सिंह एवं अन्य (994 में)

बनाम

झारखंड राज्य (दोनों में)

Cr. Appeal (S.J.) Nos. 1037 with 994 of 2005. Decided on 3rd November, 2010.

जी॰ आर॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 1 वर्ष 1992, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 480 वर्ष 1992 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 250 वर्ष 1992 में श्री आलोक कुमार दूबे, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰-II, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 28.7.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 29.7.2005 के दंडादेश के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 307/149, 147 एवं 148—हत्या का प्रयास–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–अभियोजन मामला एकमात्र चश्मदीद गवाह द्वारा समर्थित किया गया जिसने अपने आगे के प्रति-परीक्षण में अभियोजन मामले से इंकार किया–केवल इस प्रकार के गवाह जिसने अपने आगे के प्रति-परीक्षण में अभियोजन मामले से इंकार किया, के साक्ष्य के आधार पर किसी को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है–उनके बीच पुरानी दुश्मनी है–केवल परेशान और अपमानित करने के लिए उनको झूठा आलिप्त करने का प्रत्येक अवसर है–अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है–अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने का हकदार है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 12 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeev Ranjan (in 1037) M/s Manish Kumar, Someshwar Roy, Umesh Kumar Choubey, Rakesh Kumar (in 994); For the Appellants; Mr. S. Srivastava, A.P.P. (in 1037) Mr. I.N. Gupta (in 994); For the State.

आदेश

ये दोनों अपीलें एक ही आक्षेपित निर्णय से उद्भूत होती है और इसालिए उन्हें एक साथ सुना जा रहा है और एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. इन दोनों अपीलों को सत्र विचारण सं॰ 250 वर्ष 1992 में श्री आलोक कुमार दूबे, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰-II, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 28.7.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 29.7.2005 के दंडादेश के आदेश के विरुद्ध अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल किया गया है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने समस्त चारों अभियुक्तगण/अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ

147/148/149/307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उनको भारतीय दंड संहिता की धाराओं 307/149 के अधीन प्रत्येक को दस वर्षों का कठोर कारावास, भारतीय दंड संहिता की धारा 147 के अधीन दो वर्षों के कठोर कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है और प्रत्येक को 2000/-रुपया जुर्माना का भुगतान करने और जुर्माना के व्यतिक्रम में वे छह माह का सामान्य कारावास आगे भुगतेंगे। समस्त दंडादेश समवर्ती रूप से चलेंगे।

3. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 11.1.1992 को प्रात: लगभग 4 बजे ए॰ एस॰ आई॰ श्री ए॰ शंकर द्वारा जी॰ आर॰ पी॰ एस॰, बोकारो में नागेन्द्र ठाकुर (अ॰ सा॰ 5) का फर्दबयान दर्ज किया गया है जिसमें उसने कथन किया कि वह कमल यादव, संजय कुमार महतो और रामचन्द्र गोप के साथ दिनांक 10.1.1992 को प्रात: लगभग 11.45 बजे घर जा रहा था और जब वे रेलवे डाकखाना के पीछे विद्युत कार्यालय के सामने पहुँचे, BEV-9032 नंबर वाले टेम्पो ने पीछे से कमल यादव को धक्का मारा। वह गिर गया। योगेन्द्र सिंह, बी॰ के॰ सिंह, गीता सिंह, बलिन्द्र सिंह और शालीग्राम मिश्रा टेम्पो से बाहर आए। तत्पश्चात् योगेन्द्र सिंह और बी॰ के॰ सिंह ने कमल यादव को छुरा मारना शुरू किया। रक्त बहती उपहति कारित करते हुए बी॰ के॰ सिंह ने उसे एकबार पीछे से छुरा मारा। उसके दाएँ बाँह पर उपहति कारित करते हुए गीता सिंह, बलिन्द्र सिंह और शालीग्राम मिश्रा ने सूचक पर रॉड से प्रहार किया। तत्पश्चात्, सूचक नागेन्द्र ठाकुर, संजय और रामचन्द्र वहाँ से भाग गए। बलिन्द्र सिंह टेम्पो चला रहा था। दस मिनट बाद जब सूचक पुन: घटना स्थल पर आया, उसने पेट्रोलिंग पार्टी को घायल कमल यादव के निकट खड़ा पाया और उक्त टेम्पो भी वहाँ खड़ा था, यहाँ तक कि समस्त पूर्वोक्त अभियुक्तगण भी वहाँ थे। बी॰ के॰ सिंह ने उसे बताया कि वह घायल को अस्पताल ले जा रहा है, तब सभी अन्य अभियुक्तगण भाग गए। कमल यादव को एक अन्य टेम्पो से उसके इलाज के लिए बोकारो जेनरल अस्पताल ले जाया गया था। यह कथित किया गया है कि घटना के पीछे का कारण अभियुक्तगण और कमल यादव के बीच पुरानी दुश्मनी है। पूर्वोक्त फर्दबयान के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147/148/149/279/337/326/307 के अधीन समस्त पाँच व्यक्तियों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया है।

4. चूँकि अभियुक्त गीता सिंह फरार हो गया, उसका मामला अन्य सह-अभियुक्तगण से पृथक कर दिया गया था।

5. बचाव में आरोप से पूरा इंकार किया गया है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दर्ज बयान में भी समस्त चार अभियुक्तगण ने अपनी निर्दोषिता का अभिवाक किया है और घटना के तरीके से इंकार किया है।

6. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर आठ गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 संतोष यादव है। अ॰ सा॰ 2 कमल ग्वाला है। अ॰ सा॰ 3 राजेश कुमार मिश्रा है, अ॰ सा॰ 4 विजय मुखर्जी है, अ॰ सा॰ 5 नागेन्द्र ठाकुर (सूचक) है, अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ टी॰ पी॰ सिंह है, अ॰ सा॰ 7 इंदु देवी (अ॰ सा॰ 4) एवं अ॰ सा॰ 8 ललिता देवी है। प्रदर्शित दस्तावेज फर्दबयान पर नागेन्द्र ठाकुर का हस्ताक्षर प्रदर्श-1 है और कमल ग्वाला की उपहति रिपोर्ट प्रदर्श-2 है। इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है। गवाहों में से अ॰ सा॰ 3, अ॰ सा॰ 4, और अ॰ सा॰ 5 को अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया है। अ॰ सा॰ 7 ब्रजेश तिवारी की पत्नी है। उसने घटना के बारे में कुछ भी नहीं कहा है और उसे भी पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

7. अत: चर्चा किए जाने के लिए बचे गवाह केवल अ॰ सा॰ 1 संतोष यादव है जो घायल कमल ग्वाला का पुत्र है, अ॰ सा॰ 8 ललिता देवी जो कमल ग्वाला की पत्नी है और अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ टी॰ पी॰

सिंह है जिन्होंने विशेषज्ञ के रूप में कमल ग्वाला का स्वयं परीक्षण नहीं किया है और अ॰ सा॰ 2 स्वयं घायल कमल ग्वाला है। स्वीकृत रूप से, इस मामले में आई॰ ओ॰ का परीक्षण नहीं किया गया है और इसके लिए अभियोजन द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया है।

8. अ॰ सा॰ 1 संतोष यादव, जो कमल ग्वाला का पुत्र है, ने अपने साक्ष्य में कथन किया कि उसने दोपहर लगभग 12 बजे हल्ला सुना और तब वह डाकखाना के निकट घटनास्थल पर पहुँचा। यद्यपि उसने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उसने बी॰ के॰ सिंह को छुरा के साथ घटनास्थल पर खड़ा पाया किन्तु उसने बाद के पैराग्राफों में उल्लिखित किया है कि उसने इस तथ्य के बारे में पुलिस के समक्ष कथन नहीं किया था। स्वीकृत रूप से वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है बल्कि वह अभिकथित घटना के हो जाने के बाद हल्ला सुनने पर घटनास्थल पर पहुँचा। उसने आगे कथन किया है कि घटना के बारे में उसकी माता द्वारा उसे बताया गया था जिसे पड़ोसियों ने सूचित किया था।

9. अ॰ सा॰ 8 ललिता देवी, जो (घायल) कमल ग्वाला की पत्नी है, ने कथन किया है कि अभिकथित घटना की रात में वह अपने घर में थी किन्तु अगली सुबह उसे पड़ोसियों द्वारा सूचित किया गया था कि योगेन्द्र सिंह, बलदेव सिंह और शालीग्राम मिश्रा द्वारा उसके पति पर प्रहार किया गया था जिसके परिणामस्वरुप उसके पति की एक किडनी गंभीर रूप से जख्मी हो गयी थी और उसे बोकारो जेनरल अस्पताल में भर्ती किया गया था। अत: अ॰ सा॰ 8 भी अभिकथित घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है।

10. इस प्रकार, एकमात्र चश्मदीद गवाह कमल ग्वाला है जिसने उपहति प्राप्त किया।

11. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उक्त कमल ग्वाला ने अपने अतिरिक्त प्रति-परीक्षण में कथन किया है कि वह अन्य व्यक्तियों के साथ सड़क पर जा रहा था और उसने टेम्पो का हॉर्न नहीं सुना था और टेम्पो ने उसे धक्का मारा जिसके परिणामस्वरुप टेम्पो उलट गया। और इसका शीशा टूट गया और वह टेम्पो के टूटे शीशे पर गिर गया जिसने उसके पेट में गंभीर उपहति कारित किया। उसने अपने प्रति-परीक्षण में आगे कथन किया है कि उसने किसी को छुरा का वार करते नहीं देखा था।

12. अपीलार्थीगण की ओर से आगे तर्क किया गया है कि डॉक्टर, जिन्होंने घायल कमल ग्वाला का परीक्षण किया था, को अभियोजन द्वारा परीक्षित नहीं किया जा सका था क्योंकि वह भारत छोड़कर इंगलैंड चला गया था। अ॰ सा॰ 6 डॉ॰ टी॰ पी॰ सिंह है। यद्यपि उसने कमल ग्वाला का परीक्षण नहीं किया है किन्तु उसने उपहति रिपोर्ट सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया है कि टूटे शीशे पर अथवा किसी नुकीले औजार पर गिरने से ये उपहतियाँ संभव हो सकती है।

13. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया है कि एक मात्र चश्मदीद गवाह घायल कमल ग्वाला है जिसने अपने अतिरिक्त प्रति-परीक्षण में अभियोजन मामले से इंकार किया है। अत: केवल ऐसे गवाह, जिसने अपने अतिरिक्त प्रति-परीक्षण में अभियोजन मामले से इंकार किया है, के साक्ष्य के आधार पर किसी को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, स्वीकृत रूप से दोनों के बीच पुरानी दुश्मनी है। अत:, केवल उनको परेशान एवं अपमानित करने के लिए उनको झूठा आलिप्त करने का प्रत्येक अवसर है।

14. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए निवेदन प्रभावकारी प्रतीत होते हैं। जैसा ऊपर चर्चा की गयी है, अ॰ सा॰ 6 और 2, स्वयं घायल, जिसने अपने प्रति-परीक्षण में अभियोजन के संपूर्ण मामले से इंकार किया है, के साक्ष्य पर विचार करने पर मैं पाती हूँ कि अभियोजन अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। मेरे दृष्टिकोण में, अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने का हकदार हैं।

15. तद्नुसार, इन दोनों अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है और जी॰ आर॰ पी॰ एस॰ केस सं॰ 1 वर्ष 1992, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 480 वर्ष 1992 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 250 वर्ष 1992 में श्री आलोक कुमार दूबे, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰– II, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 28.7.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 29.7.2005 के दंडादेश के आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। चूँकि अपीलार्थीगण जमानत पर हैं, उन्हें अपने जमानत बंधकों के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

राम किशोर राय

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(S) No. 2012 of 2005. Decided on 20th November, 2010.

सेवा विधि–दंड–जाँच अधिकारी की रिपोर्ट, जिसके द्वारा याची को आरोपों से विमुक्त कर दिया गया था, के साथ मतभिन्नता रखते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा वेतन रोके जाने का दंड अधिनिर्णीत किया गया–कोई अवसर दिए बिना याची को एकदम से दंडित किया गया था–अनुशासनिक प्राधिकारी को उस चरण, जहाँ से उसने जाँच अधिकारी की रिपोर्ट का अधिमूल्यन शुरू किया, से अवचारी अधिकारी के विरुद्ध अग्रसर होने की छूट दी गयी और तत्पश्चात वह उपयुक्त आदेश पारित कर सकता है–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s Dr. S. N. Pathak, Om Prakash Singh, For the Petitioner; Mr. Saurav Arun, For the Respondent.

आदेश

याची ने यह रिट आवेदन निम्नलिखित अनुतोषों को इप्सित करने के लिए दाखिल किया है:

(I) अनुशासनिक प्राधिकारी, प्रत्यर्थी सं० 4 द्वारा पारित परिशिष्ट-4 में अंतर्विष्ट दिनांक 21.2.2004 के आदेश और अपीलीय प्राधिकारी, प्रत्यर्थी सं० 3 द्वारा पारित परिशिष्ट-5 में अंतर्विष्ट दिनांक 26.7.2004 के आदेश के अभिखंडन के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट/आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए।

(II) निम्न अवधियों के वेतन के भुगतान के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए

(i) 1.3.2003 से 20.3.2003- 20 दिनों,

(ii) 21.3.2003 से 8.9.2003- 172 दिनों,

(iii) 9.9.2003 से 27.9.2003- 19 दिनों

(iv) 28.9.2003 से 18.11.2003- 52 दिनों के लिए

(वेतन का निलंबन अवधि का वेतन अर्थात् 26 दिनों का आधा वेतन)।

2. याची को जमशेदपुर जिला में पुलिस के सहायक सब-इंसपेक्टर के रूप में पदस्थापित किया गया था और सुन्दर नगर पुलिस थाना, जमशेदपुर से पलामू स्थानांतरित किया गया था। उसने पदस्थापन के नए स्थान पर पद ग्रहण नहीं किया और 172 दिनों की अवधि के लिए अनुपस्थित रहा और दिनांक 9.9.2003 को पद ग्रहण किया और ड्यूटी से अनुपस्थित रहने के लिए उसके विरुद्ध आरोपों को विरचित

किया गया था और कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। तत्पश्चात् विभागीय जाँच की गयी थी। जाँच अधिकारी ने अवचारी अधिकारी के उत्तर और अभिलेख पर साक्ष्यों को लेने के बाद उसे दोषी नहीं पाया और याची को आरोपों से विमुक्त कर दिया।

3. अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत नहीं हुए और अभिनिर्धारित किया कि याची दोषी है और 18 माह के वेतन को एकदम से रोकते हुए दंड अधिनिर्णीत किया जो तीन ब्लैक मार्क्स के समतुल्य था और अनुपस्थिति की अवधि को काम नहीं वेतन नहीं के रूप में माना जाना था।

4. तत्पश्चात् याची ने अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील दाखिल किया और इसे अस्वीकार कर दिया गया था। पक्षों के बीच उक्त तथ्यों के बारे में कोई विवाद नहीं है।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि अनुशासनिक प्राधिकारी जाँच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमत नहीं हुए और उन्होंने अवसर दिए बिना दंड अधिनिर्णीत किया। उन्होंने आगे इंगित किया कि अनुशासनिक प्राधिकारी को जाँच अधिकारी के निष्कर्षों के साथ मतभिन्नता रखने की छूट है और वे अभिलेख पर अपने निष्कर्षों को प्रतिस्थापित कर सकते हैं और तत्पश्चात अवचारी अधिकारी को कारण बताओ नोटिस जारी करना जरूरी था और नोटिस तामील किए जाने के बाद अवचारी अधिकारी के उत्तर पर विचार करते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी उपयुक्त आदेश पारित कर सकता है। आगे यह इंगित किया गया था कि इस मामले में, अनुशासनिक प्राधिकारी ने विधि की उक्त अपेक्षा को पूरा नहीं किया था, अत: आदेश विधि में अनुचित है।

6. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया।

7. मैं याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों के साथ पूरी तरह सहमत हूँ। कोई अवसर दिए बिना याची को एकदम से दंडित किया गया था। अत: अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाने का दायी है।

8. याची ने निलंबन की अवधि के लिए गुजारा भत्ता के भुगतान के लिए भी प्रार्थना की है किन्तु राज्य के विद्वान अधिवक्ता प्रदर्शित नहीं कर सके थे कि इस तथ्य से राज्य द्वारा इंकार किया गया है, अत: वह इसका हकदार है।

9. किन्तु निर्देश दिया जाता है कि यदि अनुशासनिक प्राधिकारी, ऐसी इच्छा रखता है तो वह उस चरण, जहाँ उसने जाँच अधिकारी के रिपोर्ट का अधिमूल्यन शुरू किया था, से अवचारी अधिकारी के विरुद्ध अग्रसर हो सकता है और तत्पश्चात् ऊपर किए गए संप्रेक्षण के प्रकाश में उपयुक्त आदेश पारित कर सकता है।

10. चार माह की अवधि के भीतर रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। प्रत्यर्थीगण को शीघ्रातिशीघ्र अधिमानत: रिट याचिका में दावा किए गए गुजारा भत्ता के भुगतान का निर्देश दिया जाता है। तद्नुसार यह रिट याचिका निपटायी जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

उत्तम चन्द गुप्ता एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 649 of 2010. Decided on 19th November, 2010.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498-A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—क्रूरता—उन्मोचन आवेदन की खारिजी—प्रथम दृष्टया, याची ने धारा 498-A के अधीन अपराध किया—याची सं॰ 1, 3 और 4 द्वारा दाखिल पुनरीक्षण आवेदन खारिज-परिवाद याचिका में अथवा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन गवाहों के बयान में याची सं॰ 2 के विरुद्ध यातना अथवा दहेज की मांग का कोई अभिकथन नहीं है—याची सं॰ 2 के विरुद्ध आरोप का समर्थन करने के लिए आत्यंतिक रूप से कोई भी साक्ष्य नहीं है—प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विरूद्ध पारित आक्षेपित आदेश सम्पोषणीय नहीं—आक्षेपित आदेश अंशतः अपास्त। (पैराएँ 2 से 6)

निर्णयज विधि.—(2010) 7 SCC 667 : **(2010)4 JLJ & BLJ 1 (SC)** —Distinguished.

अधिवक्तागण.—M/s A. K. Sahani, N.K. Sahani, For the Petitioners; Mr. R.S. Singh, For the State; M/s M.S. Chabra, B.K. Sinha, For the O.P. No.2.

आदेश

यह आवेदन जसीडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 34 वर्ष 2008, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 198 वर्ष 2008, के संबंध में न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 22.5.2010 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उन्होंने याचीगण द्वारा उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन को खारिज कर दिया।

2. श्री ए॰ के॰ साहनी, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में किए गए अभिकथनों जो वर्तमान प्राथमिकी का आधार है, के अतिरिक्त केस डायरी में यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि याची सं॰ 1, 3 और 4 ने कोई अपराध किया था। आगे निवेदन किया गया है कि स्वतंत्र गवाहों ने और परिवादी के बहन-बहनोई ने इन याचीगण के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा था। यह निवेदन किया गया है कि जहाँ तक याची सं॰ 2 मिट्ठू गुप्ता का संबंध है, परिवाद याचिका में अथवा किसी गवाह के बयान में उसके विरुद्ध कोई भी अभिकथन नहीं है। तद्नुसार, श्री साहनी निवेदन करते हैं कि अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध पूर्वोक्त सामग्रियों का परिशीलन किए बिना यांत्रिक रूप से आक्षेपित आदेश पारित किया जिसे इस आवेदन में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

3. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एम॰ एस॰ छाबरा निवेदन करते हैं कि परिवाद याचिका में और पुलिस के समक्ष बयान में, परिवादी ने विनिर्दिष्टतः कथन किया कि याची सं॰ 1, 3 और 4 द्वारा उसे यातना दी जाती थी, जिसने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन प्रथम दृष्टया मामला बनाया। निवेदन किया गया है कि अन्य गवाहों, जिन्होंने बचाव पक्ष के मामले का समर्थन किया, के बयान को आरोप विरचित किए जाने के समय देखा नहीं जा सकता है। विधि अपेक्षा करती है कि यदि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से प्रथम दृष्टया अपराध निर्मित होता है, तब आरोप विरचित करना और अभियुक्त व्यक्तियों को विचारण का सामना करने के लिए कहना न्यायालय का कर्तव्य है। किन्तु, श्री छाबरा ने निष्पक्षतः कथन किया कि परिवाद याचिका में और पुलिस के समक्ष बयान में परिवादी ने याची सं॰ 2 मिट्ठू गुप्ता के विरुद्ध कुछ भी अभिकथित नहीं किया था।

4. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेखों और श्री (ए॰ के॰ साहनी द्वारा प्रस्तुत जिसे याची ने पुलिस पेपर के रूप में प्राप्त किया), केस डायरी के अंशों का परिशीलन किया है। परिवाद याचिका में, पैराग्राफ सं॰ 4 पर, परिवादी ने दृढ़तापूर्वक कथन किया कि याची सं॰ 4 ने उसको यातना दी

थी और तत्पश्चात् परिवादी के पति ने दहेज की मांग की थी। पैराग्राफ सं॰ 5 में आगे अभिकथित किया गया है कि याची सं॰ 1 और 3 ने परिवादी के पति के साथ सांठ-गांठ करके सादे कागज पर परिवादी का हस्ताक्षर लेने का प्रयास किया और जब उसने ऐसा करने से इंकार किया, उस पर प्रहार किया गया था और कमरे में बन्द कर दिया गया था। पूर्वोक्त दो बयान पुलिस के समक्ष परिवादी के बयान से समर्थन पाते हैं क्योंकि परिवादी का बयान दर्ज करते हुए पैराग्राफ सं॰ 4 के अन्त में आई॰ ओ॰ ने दृढ़तापूर्वक कथन किया कि उसने परिवाद याचिका में किए गए अपने पूर्व बयान को कथित किया और समर्थित किया था। अत: केस डायरी में पाए गए स्वतंत्र गवाहों के और परिवादी के बहन-बहनोई के अन्य बयान, जो याची का बचाव प्रतीत होते हैं, पर आरोप विरचित किए जाने के चरण पर विचार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, इस चरण पर उक्त बयान निर्णय के लिए अत्यन्त प्रासंगिक नहीं है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने **प्रीति गुप्ता एवं एक अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य, (2010)7 SCC 667 [: (2010)4 JLJ & BLJ 1 (SC)],** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों के निर्णय पर दृढ़ विश्वास किया है। मेरे दृष्टिकोण में, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वोक्त निर्णय लागू नहीं होता है। पूर्वोक्त मामले में याचीगण बॉम्बे और बंगलोर में निवास कर रहे थे जबकि वर्तमान मामले में समस्त याचीगण एक स्थान पर एक ही घर में निवास कर रहे हैं।

5. इस प्रकार, प्राथमिकी और सूचक के बयान में किए गए अभिकथनों की दृष्टि में, मैं प्रथम दृष्टया पाता हूँ कि याची सं॰ 1, 3 और 4 ने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध किया है। अत: जहाँ तक इन याचीगण का संबंध है, मैं आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, याची सं॰ 1 (उत्तम चन्द गुप्ता), याची सं॰ 3 (वेद प्रकाश गुप्ता) और याची सं॰ 4 (राजमुनि देवी) द्वारा दाखिल पुनरीक्षण आवेदन को एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

6. जहाँ तक याची सं॰ 2 मिट्ठू गुप्ता का संबंध है, मैं पाता हूँ कि परिवाद याचिका में अथवा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन गवाहों के बयान में उसके विरुद्ध यातना और/अथवा दहेज की मांग का आत्यंतिक रूप से कोई भी अभिकथन नहीं है। उक्त परिस्थिति के अधीन, मैं पाता हूँ कि याची सं॰ 2 के विरुद्ध आरोप का समर्थन करने के लिए कोई भी साक्ष्य नहीं है। अत: याची सं॰ 2 के विरुद्ध पारित आक्षेपित आदेश संपोषणीय नहीं है। तद्नुसार याची सं॰ 2 अर्थात् मिट्ठू गुप्ता द्वारा दाखिल पुनरीक्षण आवेदन एतद् द्वारा अनुज्ञात किया जाता है और जहाँ तक याची सं॰ 2 का संबंध है, आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

कृष्ण कुमार सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (S) No. 5946 of 2004. Decided on 22nd November, 2010.

सेवा विधि–त्यागपत्र–पुन: पदग्रहण का दावा–याची ने भविष्य निधि, नियतन के बाद वेतन बकायों और भविष्य निधि, जो उसके त्यागपत्र दिए जाने अथवा उसके स्वीकृति की तिथि तक जमा हुई थी, के भुगतान का दावा किया–प्रत्यर्थी को चार माह के भीतर भुगतान के पूर्वोक्त दावा पर विचार करने का निर्देश दिया गया–देय पायी गयी राशि पर 12% ब्याज का भुगतान करना होगा। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Bhanu Kumar, For the Petitioners; J.C. to S.C. I, For the Respondents.

आदेश

याची ने निम्नलिखित अनुतोषों को इप्सित करते हुए इस रिट याचिका को दाखिल किया है:–

(I) तत्कालीन निदेशक, मत्स्य, बिहार सरकार, पटना के हस्ताक्षर के अधीन जारी दिनांक 27 मार्च, 1993 के कार्यालय आदेश सं० 59, जिसके द्वारा सेवा विधियों के पूर्ण उल्लंघन में याची का तथाकथित त्यागपत्र दिनांक 19.12.1992 के प्रभाव से स्वीकार कर लिया गया है, के अभिखंडन के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट जारी करने के लिए।

(II) सहायक निदेशक, मत्स्य (जलाशय), राँची के कार्यालय के अधीन चालक के पद पर याची को पुनः पदग्रहण करने के लिए अनुमति प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हुए परमादेश रिट जारी करने के लिए।

(III) समस्त वेतन के बकायों, जिनका भुगतान याची को पहले नहीं किया गया है, का भुगतान करने के लिए और दिनांक 19.12.1992 से पदग्रहण की तिथि तक की अवधि को कर्तव्य पर व्यतीत अवधि के रूप में मानते हुए याची के वेतन के नियतन में पारिणामिक वित्तीय लाभों को प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए परमादेश रिट जारी करने के लिए।

(IV) सांविधिक ब्याजों के साथ वेतन आदि सहित समस्त धन का भुगतान याची को करने के लिए और अन्य पारिणामिक लाभों के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए परमादेश रिट जारी करने के लिए।

(V) किसी अन्य अनुतोष अथवा अनुतोषों, आदेश अथवा आदेशों, निर्देश अथवा निर्देशों, जिन्हें न्याय के उद्देश्य के लिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में माननीय न्यायालय सुयोग्य और समुचित समझता है, को पारित करने के लिए।

2. आरंभ में याची के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि वह अनुतोषों (I) और (II) पर जोर नहीं दे रहा है। वह केवल समस्त वेतन बकायों अथवा अन्य लाभों, जो उसका त्यागपत्र स्वीकार किए जाने के पहले देय थे, का भुगतान ब्याज के साथ करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हुए परमादेश का अनुतोष इप्सित कर रहा है।

3. संक्षेप में याची प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विभाग में चालक के रूप में काम कर रहा था। दिनांक 15.12.1989, 26.3.1991 और 16.4.1992 के अभ्यावेदनों के तहत उसने कई बार राँची से धनबाद अपने स्थानान्तरण के लिए प्रत्यर्थीगण को अभ्यावेदन दिया था। अंततः जब स्थानान्तरण के अभ्यावेदनों को स्वीकार नहीं किया गया था, उसने स्पष्टतः यह उपदर्शित करते हुए कि यदि उसे राँची से धनबाद स्थानान्तरित नहीं किया जाता है, वह त्यागपत्र दे रहा है और यदि स्थानान्तरण का उसका अनुरोध स्वीकार किया जाता है, तब त्यागपत्र स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, दिनांक 19.12.1992 को सेवाओं से अपना त्यागपत्र प्रत्यर्थीगण को सौंप दिया।

4. प्रत्यर्थीगण ने मामले का प्रतिवाद किया। यह कथन किया गया था कि याची ने त्यागपत्र दिया, किन्तु प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ 8 में अभिकथित किया गया है कि विभाग में विद्यमान परिपत्रों के मुताबिक प्रत्यर्थीगण उस अवधि, जब वह अपने त्यागपत्र के पहले विभाग में सेवा दे रहा था, के लिए उसको देय बकायों की मांग पर विचार करेंगे।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची ने दिनांक 16.8.1988 को सेवाओं को ग्रहण किया और दिनांक 1.9.1988 से वह सहायक निदेशक मत्स्य राँची के नियंत्रण में बना रहा। उन्होंने आगे निवेदन किया कि नियम के मुताबिक फॉर्म 201 में उसका जेनरल प्रोविडेन्ट खोला गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि उसके त्यागपत्र की अवधि तक उसकी भविष्य निधि भी देय है

और उसका वेतन, जिसे प्राप्त नहीं किया गया है, भी देय था और अन्य धनीय लाभ, जो उसके त्यागपत्र के समय तक उद्भूत हुए थे, वेतन के नियतन सहित भी देय है।

6. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि यदि प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध कोई देय शेष है तो वे उक्त राशि का भुगतान करने के लिए तैयार है।

7. मैंने संपूर्ण अभिलेखों का परिशीलन किया है, चूँकि याची ने उसके द्वारा दिए गए त्यागपत्र के अभिखंडन के लिए प्रार्थना नहीं किया है, मैं प्रार्थना के उक्त अंश से सरोकार नहीं रखता हूँ। याची ने केवल सामान्य भविष्य निधि, नियतन के बाद वेतन बकायों और भविष्य निधि, जो उसके त्याग पत्र दिए जाने अथवा इसके स्वीकार किए जाने की तिथि तक जमा हो गए थे, के भुगतान के लिए प्रार्थना की है। प्रत्यर्थीगण राज्य प्रदर्शित नहीं कर सका था कि इसने उस तथ्य कि दावा किए गए समस्त भुगतानों को याची को दे दिया गया है, से इंकार किया है। इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण ने अभिकथित किया है कि वे नियमों के मुताबिक उस अवधि, जब वह सेवा में था, के लिए उसको देय बकायों के भुगतान पर विचार करेंगे।

8. उक्त की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थीगण को आदेश की प्राप्ति की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर शीघ्रतापूर्वक और अधिमानत: सामान्य भविष्य निधि, उसके वेतन के नियतन के बाद वेतन बकायों और विभाग में शेष अन्य देयों के भुगतान के लिए उसके दावे पर विचार करने का निर्देश देता हूँ।

9. उक्त राशि, यदि इसे देय पाया गया है, पर याची अपने त्यागपत्र की स्वीकृति की तिथि से दो माह बाद से 12% की दर से वार्षिक ब्याज पाने का हकदार होगा।

10. तद्नुसार यह रिट याचिका निपटायी जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

नेशनल फेडरेशन ऑफ इंश्योरेंस फील्ड वर्कर्स ऑफ इंडिया

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 5501 of 2010. Decided on 4th November, 2010.

झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001—धारा 67(3)(v) सह-पठित धारा 2 (xxxi)—चुनाव कार्य के लिए एल॰ आई॰ सी॰ के अधीन कार्यरत विकास अधिकारियों की सेवाओं का तलब किया जाना—झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 के भी अधीन लाए गए प्रासंगिक संशोधन और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम को ध्यान में रखते हुए पंचायत चुनाव करवाने के लिए एल॰ आई॰ सी॰ के विकास अधिकारियों की सेवाओं को तलब करने में डी॰ सी॰ की ओर से कोई अवैधता नहीं की गयी है—आवेदन खारिज। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.—Mr. Rajiv Ranjan, For the Petitioner; A. G., For the State; Mr. Sumeet Gadodia, For the S.E.C.

आदेश

इस रिट आवेदन में उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या एल॰ आई॰ सी॰ के अधीन कार्यरत विकास अधिकारियों की सेवाएँ दिनांक 25.11.2010 से होने वाले पंचायत चुनाव में चुनाव कार्य के लिए तलब की जा सकती है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 की धारा 67 (3) (v) सह-पठित धारा 2 (xxxi) के अधीन प्रतिष्ठापित प्रावधान को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन करते हैं कि केवल राज्य सरकार के अथवा राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन, नियंत्रित और वित्त प्रदत्त कंपनी के अथवा राज्य सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले संगठन के कर्मचारियों/अधिकारियों की सेवाएँ चुनाव कार्य के लिए तलब की जा सकती है और इस प्रकार राज्य निर्वाचन अधिकारी (पंचायत) और/अथवा राज्य निर्वाचन आयुक्त को केन्द्रीय सरकार/केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों अथवा राज्य सरकार से सहायता नहीं प्राप्त करने वाले स्वशासी निकाय के अधिकारियों/कर्मचारियों की सेवाएँ चुनाव कार्य के लिए तलब करने का प्राधिकार नहीं है और इसलिए, हजारीबाग जिले में पदस्थापित एल॰ आई॰ सी॰ के विकास अधिकारियों की सेवाओं को तलब करते हुए उप-कमिश्नर-सह-जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत) हजारीबाग द्वारा जारी दिनांक 13.10.2010 का पत्र (परिशिष्ट-1) अपास्त किए जाने योग्य है।

3. इसके विरुद्ध राज्य निर्वाचन आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री सुमित गडोड़िया निवेदन करते हैं कि झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन लाए गए संशोधन के पहले केवल राज्य सरकार अथवा लोक कंपनी अथवा राज्य से सहायता प्राप्त संगठन के कर्मचारियों को ही पंचायत चुनाव में चुनाव कार्य समनुदेशित किया जाता था किन्तु अब झारखंड पंचायत राज अधिनियम में और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में भी संशोधन लाया गया है जिसके फलस्वरुप अब स्थानीय प्राधिकारों, विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीयकृत बैंकों, एल॰ आई॰ सी॰/सरकारी उपक्रमों, आदि की सेवाओं को तलब किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन के समर्थन में राज्य और संघीय क्षेत्रों के मुख्य निर्वाचन अधिकारी को संबोधित पत्र को प्रस्तुत भी किया है। इस प्रकार, निवेदन किया गया है कि चुनाव कार्य के लिए हजारीबाग जिला में पदस्थापित एल॰ आई॰ सी॰ के विकास अधिकारियों की सेवाओं को तलब करने की प्रत्येक शक्ति उप-कमिश्नर-सह-जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत), हजारीबाग को है।

4. नि:संदेह, यह सत्य है कि झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 की धारा 67 (3) (v) सह-पठित धारा 2 (xxxi) के अधीन केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों और इसके अभिकरण/परिकरण को चुनाव कार्य के साथ समनुदेशित करने के लिए तलब किया जा सकता है किन्तु झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 में और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में भी लाए गए संशोधन के फलस्वरुप महत्वपूर्ण परिवर्तनों को किया गया है।

5. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 159 के संशोधित प्रावधान के अधीन केन्द्रीय, प्रादेशिक अथवा राज्य अधिनियम द्वारा अथवा के अधीन निगमित स्थानीय प्राधिकारों, विश्वविद्यालयों, कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 17 में परिभाषित कोई अन्य संबंधित संस्थान अथवा उपक्रम जिसे केन्द्रीय, प्रादेशिक, राज्य अधिनियम द्वारा अथवा के अधीन स्थापित किया गया है अथवा जिसका नियंत्रण अथवा वित्त प्रदायन केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा प्रदान निधि से पूर्णत: अथवा अंशत: प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: किया जाता है, के कर्मचारियों की सेवाएँ तलब की जा सकती है। इस प्रकार, उक्त प्रावधान विकास अधिकारियों को अपने भीतर सम्मिलित करता है। आगे, संशोधन के माध्यम से प्रधान अधिनियम में नयी धारा 68A सम्मिलित किए जाने के फलस्वरुप ऊपर उल्लिखित संबंधित कर्मचारियों की सेवा पंचायत चुनाव करवाने के लिए तलब की जा सकती है। उक्त धारा 68A का पठन निम्नलिखित है:-

"68A. यदि निर्वाचक नामावली तैयार करने अथवा चुनावों को संचालित करने के संबंध में इस अधिनियम के किसी प्रावधान को प्रभाव देने में कोई संदेह अथवा अपर्याप्तता उद्‌भूत होती है, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 अथवा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के प्रावधान और उनके अधीन बनायी गयी नियमावली, जैसा भी मामला हो, यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे।''

6. किन्तु श्री राजीव रंजन निवेदन करते हैं कि झारखंड पंचायत राज्य (संशोधन) अध्यादेश, 2010 की धारा 68A के प्रावधान का अवलम्ब केवल उस स्थिति में लिया जा सकता है जहाँ अधिनियम के प्रावधान को प्रभाव देने में संदेह उद्‌भूत होता है किन्तु चूँकि झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 की धारा 67 (3) (v) में कोई असंदिग्धता नहीं है, संशोधित अधिनियम की धारा 68A का सहारा लेते हुए एल॰ आई॰ सी॰ के कर्मचारियों की सेवाओं को तलब करने का कोई औचित्य नहीं है।

7. मैं पूर्वोक्त निवेदन में कोई सार नहीं पाता हूँ, क्योंकि केवल अधिनियम के प्रावधान को प्रभाव देने में उद्‌भूत संदेह की स्थिति में ही इसके प्रयोज्यता के बारे में अधिनियम नहीं कहता है बल्कि निर्वाचक नामावली तैयार करने अथवा चुनावों के संचालन के संबंध में इस अधिनियम के किसी प्रावधान को प्रभाव देने के मामले, जहाँ अपर्याप्तता महसूस की जाती है, के बारे में भी यह कथन करता है।

8. इन परिस्थितियों के अधीन, मैं झारखंड पंचायत राज अधिनियम, 2001 के अधीन और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अधीन भी लाए गए प्रासंगिक संशोधन को दृष्टि में रखते हुए पंचायत चुनाव करवाने के लिए एल॰ आई॰ सी॰ के विकास अधिकारियों की सेवाओं को तलब करने में उपकमिश्नर-सह-जिला निर्वाचन अधिकारी (पंचायत), हजारीबाग की ओर से कोई अवैधता नहीं पाता हूँ।

9. तद्‌नुसार, यह रिट आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

त्रिभुभन नाथ सिंह @ त्रिभुवन नाथ सिंह

बनाम

आरक्षी अधीक्षक CBI, धनबाद के माध्यम से झारखण्ड राज्य

Cr. M.P. No. 442 of 2009. Decided on 2nd November, 2010.

दाण्डिक न्यायालय नियमावली–नियम 267—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—प्रतिभू राशि का प्रतिदाय–याची द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनी पत्नी के इलाज के लिए भारत छोड़ने की अनुमति की शर्त के तौर पर उसके द्वारा जमा की गई 75,000/-रु॰ की राशि का प्रतिदाय इप्सित कर रहा है–75,000/-रु॰ जमा करने का याची को दिया गया निर्देश पूर्व शर्त था क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनी पत्नी का इलाज कराने के लिए भारत छोड़ने की अनुमति देते समय दिया गया प्रतिभू एक फाइन राशि नहीं था बल्कि प्रतिभू था जो उस पर अधिरोपित शर्तों की पूर्ति पर पुनर्भूगतान के अध्यधीन था–शर्त न्यायालय द्वारा नियत अवधि के भीतर लौट जाने तक ही वैध था याची उक्त अवधि के भीतर लौट आया–प्रश्नगत राशि याची के पक्ष में निर्मुक्त किया जाय–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Rajesh Kumar, Vineet Kumar, Vashistha, For the Petitioner; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the Opp. Party.

डी॰ के॰ सिन्हा न्यायमूर्ति.–वर्तमान दाण्डिक विविध याचिका दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 144 वर्ष 2008 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 30.6.2008 के आदेश का स्पष्टीकरण इप्सित करते हुए एकल याची द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दाखिल किया गया है जिसके द्वारा 75,000/- (पच्चहत्तर हजार रुपये) की धन राशि विशेष न्यायाधीश CBI सह–अपर सत्र न्यायाधीश, VIII धनबाद के न्यायालय में RC केस सं॰ 1 (A)/2003-D प्रतिभू राशि के तौर पर याची द्वारा उक्त आदेश के अनुशरण में जमा की गयी थी जिसका याची उक्त राशि का प्रतिदाय इप्सित करता है क्योंकि वह अपनी पत्नी का उपचार कराने के बाद इस न्यायालय द्वारा विरचित समय सीमा के भीतर संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत लौटा था और आगे यह प्रार्थना की गयी थी कि याची के दो नजदीकी रिश्तेदारों द्वारा निष्पादित बन्धपत्रों को भी उन्मोचित कर दिया जाये।

2. याची ने पहले RC केस सं॰ 1 (A)/03D में श्री पी॰ सी॰ अग्रवाल विशेष न्यायाधीश CBI सह–अपर सत्र न्यायाधीश अष्टम, धनबाद द्वारा अभिलिखित दिनांक 16.2.2008 के आदेश के विरुद्ध दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 144 वर्ष 2008 दाखिल की थी जिसके द्वारा भारत छोड़ने और अपनी पत्नी का विशिष्टीकृत ईलाज के सम्बन्ध में छह माह की अवधि के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका जाने की याची की प्रार्थना अस्वीकार की गयी थी। उक्त आदेश के विरुद्ध याची इस न्यायालय के समक्ष आया तथा याची और साथ ही अस्थायी अधिवक्ता CBI की सुनवाई करने के उपरान्त इस न्यायालय ने दिनांक 30.6.2008 के आदेश द्वारा निर्देश दिया, ''याची को छः महीने के लिए भारत छोड़ने की अनुमति दी जाती है और वह 75,000/- नकद जमा करने पर अपनी पत्नी के शारीरिक समस्याओं के बेहतर ईलाज एवं प्रबन्धन हेतु उसे अपने साथ ले जा सकता है और बन्ध पत्र उसके दो रिश्तेदार द्वारा सम्यक् रूप से इस वचन बन्ध के साथ निष्पादित किया जायेगा जो कि भारत के नागरिक हों कि वह दिसम्बर, 2008 के अंत तक आवश्य ही वापस आयेगा। उसके अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधित्व साक्षियों के परीक्षा के दौरान भी उसके अधिवक्ता के माध्यम से किया जायेगा तद्द्वारा सभी सुसंगत दस्तावेज प्रमाणित किये जायेंगे जिसमें विफल रहने पर विशेष न्यायाधीश यथोचित आदेश पारित करने में सक्षम होगें।''

3. आर॰ सी॰ केस सं॰ 1(A)/03-D के अभिलेख से यह सुव्यक्त है कि याची ने सुरेन्द्र प्रताप सिंह (अभियुक्त के साले) तथा अभिराम कुमार सिंह (याची के भतीजे) के दो प्रतिभू बंधपत्रों के साथ सिविल न्यायालय में 8.7.2008 को नाजीर रसीद सं॰ 38/2008-09 के माध्यम से 75,000/-रु॰ (पचहत्तर हजार रुपये) की राशि जमा की गयी थी जिसे विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद द्वारा स्वीकार किया गया था।

4. मैं दिनांक 27.2.2009 के आक्षेपित आदेश से पाता हूँ कि विद्वान विशेष न्यायाधीश ने इस आधार पर जमा राशि निर्मुक्त करने से इनकार कर दिया था कि इस न्यायालय (झारखंड उच्च न्यायालय) द्वारा याची के पक्ष में कोई विशेष निर्देश नहीं दिया गया था कि उसके द्वारा जमा की गयी राशि उसके भारत लौटने के बाद उसको लौटा दी जाएगी। यह सुव्यक्त है कि प्रतिभू के तौर पर याची द्वारा जमा की गयी राशि के निर्मुक्ति के लिए 28.1.2009 को संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत लौटने के बाद एक याचिका दाखिल की थी। मैं सम्प्रेक्षित करता हूँ कि झारखंड उच्च न्यायालय, राँची द्वारा अंगीकृत पटना उच्च न्यायालय की दाण्डिक न्यायालय नियमावली के भाग VIII अध्याय I के प्रावधानों का मूल्यांकन करने में विद्वान विशेष न्यायाधीश विफल रहे हैं।

5. दाण्डिक न्यायालय नियमावली का नियम 267 हेड ऑफ एकाउन्ट का वर्णन करता है, जो कहता है,

> *''सार्वजनिक खातों में निम्नलिखित हेड ऑफ एकाउन्ट है जिसके तहत न्यायिक अधिकारियों द्वारा प्राप्त एवं संदत्त या उनके आदेश के अधीन प्राप्त या संदत्त धन का वर्गीकरण किया जाता है–*

a.....

b.....

c.....

d.....

e.....

f.....

g.....

h. अनिवार्य रसीद अर्थात् साक्षियों के खर्चे, कैदियों के भोजन के लिए राशि, नाव किराया एवं अन्य अनिवार्य रसीदें।

***नोट I**.–चूँकि जिलाधिकारियों द्वारा अब अनिवार्य कैश बुक अनुरक्षित किया जाना अपेक्षित नहीं हैं इसलिए ऐसी रसीदें, इन अधिकारियों के मामले में जनरल कैश बुक में प्रविष्ट की जानी चाहिए।*

***नोट 2**–नियम 270 (c) के शीर्ष (h) के अधीन प्राप्त धन के भुगतान के लिए।*

शीर्ष (h) के अधीन नियम 270 (c) के अधीन सामान्तया कैशियर द्वारा नकद में उसके अपने उत्तरदायित्व पर भुगतान किया जाएगा।

6. यह वर्णन करना सुसंगत है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में याची त्रिभुभन नाथ सिंह @ त्रिभुवन सिंह को अपनी पत्नी के ईलाज के लिए भारत छोड़ने के अनुमति देते समय उसे 75,000/-रु॰ (पचहत्तर हजार रुपये) जमा करने का निर्देश दिया जाना पूर्व शर्त था क्योंकि प्रतिभू फाइन राशि नहीं था बल्कि प्रतिभू या जो दाण्डिक पुनरीक्षण सं॰ 144 वर्ष 2008 में अभिलिखित दिनांक 30.6.2008 के आदेश द्वारा उसपर अधिरोपित शर्त्तों के पूर्ति करने पर पुनर्भुगतान के अध्यधीन था। यह शर्त दिसम्बर, 2008 तक उसके लौटने तक वैध था एवं इस न्यायालय को यह विश्वास करने का कारण है कि याची उक्त अवधि के भीतर वापस लौट गया क्योंकि इस तथ्य को विशेष न्यायाधीश द्वारा दिनांक 27.2.2009 के आक्षेपित आदेश में विवादित नहीं किया गया है।

7. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों एवं साथ ही दाण्डिक न्यायालय नियमावली के अधीन विरचित इसमें इसके ऊपर चर्चित नियमावली पर विचार करके यह निर्देश दिया जाता है कि याची त्रिभुवन सिंह @ त्रिभुवन नाथ सिंह द्वारा विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰–सह–अपर सत्र न्यायाधीश VIII, धनबाद के न्यायालय में 8.7.2008 को नाजीर रसीद सं॰ 38/08-09 के जरिए जमा की गई 75,000/- रु॰ (पचहत्तर हजार) रुपये की राशि को तत्काल दाण्डिक न्यायालय नियमावली के अनुसार उचित पहचान होने पर उसके पक्ष में निर्मुक्त किया जाय। उसे बंधपत्रों से उन्मोचित किया जाता है।

8. यह दाण्डिक विविध याचिका ऊपर इंगित रीति से अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

डॉ॰ अनन्त प्रसाद जायसवाल

बनाम

विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति, झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P.(S) No. 1558 of 2010. Decided on 4th November, 2010.

विश्वविद्यालय विधि–सेवा समाप्ति–याची ने अपने स्थानांतरण के स्थान पर पदग्रहण नहीं किया था–यह स्थापित करने के लिए कुछ भी ठोस नहीं दिया गया था कि अपीलार्थी पर जाँच रिपोर्ट तामील की गयी थी–मुख्य दंड के मामले में आधार, जिस पर दंड प्रस्तावित किया गया है, को अवचारी को संसूचित किए जाने की आवश्यकता है–विश्वविद्यालय किसी अभिवचन के साथ आगे नहीं आया है कि ऐसा कोई आधार, जिस पर बर्खास्तगी का आदेश पारित किया था, कभी भी याची को प्रभावकारी अभ्यावेदन दाखिल करने के लिए उसे सक्षम बनाने हेतु संसूचित किया गया था–आक्षेपित आदेश अपास्त–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 14)

अधिवक्तागण.–In Person, For the Petitioner; Mr. A. Allam, For the Respondents.

आदेश

याची को दिनांक 5.11.1990 को बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, राँची में कनीय वैज्ञानिक–सह–सहायक प्रोफेसर, मृदा (एग्रो फॉरेस्ट्री) के रूप में नियुक्त किया गया था। सेवाशर्त्त के अनुसार, याची की सेवाएँ बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के जोन के अंतर्गत स्थानान्तरणीय थीं। दिनांक 25.8.2003 को बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति ने याची को बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, काँके से जेड॰ आर॰ एस॰, दुमका स्थानान्तरित कर दिया किन्तु याची ने दुमका में अपना नया पद ग्रहण नहीं किया था यद्यपि दिनांक 26.8.2003 को उसे उसके काँके कार्यालय से भारमुक्त कर दिया गया था। प्रत्यर्थीगण के अनुसार जब याची ने अपना नया पद नहीं ग्रहण किया, याची को अनेक स्मरण पत्रों (रिमाइंडर्स) को दिया गया था जिसके द्वारा याची को अपना पद ग्रहण करने के लिए कहा गया था। समाचारपत्र में प्रकाशित नोटिस के माध्यम से भी उससे अनुरोध किया गया था किन्तु उसने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया था।

2. प्रत्यर्थीगण का आगे मामला यह है कि याची ने न केवल आदेशों की अवज्ञा की बल्कि अपने वरीयों के साथ दुर्व्यवहार भी किया और इसलिए दिनांक 29.10.2003 के आदेश के तहत उसे निलंबित कर दिया गया था। तदुपरांत विभागीय जाँच संचलित करने के लिए एक कमिटि गठित की गई थी। आरोपों को विरचित किए जाने पर उत्तर यदि हो, दाखिल करने के नोटिस के साथ उन्हें याची पर तामील किया गया था जिसे, प्रत्यर्थीगण के अनुसार कभी दाखिल नहीं किया गया था। अंतत: कमिटि ने दिनांक 17.3.2004 को कुलपति को अपना रिपोर्ट प्रस्तुत किया। तत्पश्चात, जाँच रिपोर्ट की प्रति के साथ दिनांक 19.4.2004 को याची को द्वितीय कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था किन्तु प्रत्यर्थीगण के अनुसार याची ने समुचित उत्तर देने के बजाय जाँच कमिटि के सदस्यों में से एक के विरुद्ध आरोप लगाया। किन्तु दिनांक 26.6.2004 को कुलपति ने आदेश पारित किया जिसके द्वारा याची की सेवा समाप्त कर दी गयी थी।

3. बर्खास्तगी के आदेश से व्यथित होकर याची ने महामहिम, विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के समक्ष अपील दाखिल की जिन्होंने सुनवाई के बाद वस्तुत: पाया कि बर्खास्तगी का आदेश पारित करने के पहले याची को समुचित अवसर नहीं दिया गया था और इसलिए एक माह के भीतर अपीलार्थी को सुनने के बाद जाँच समाप्त करने और विधि/संविधि के प्रावधानों के अनुरुप समुचित आदेश पारित करने के निर्देश के साथ दिनांक 10.6.2005 के अपने आदेश के तहत बर्खास्तगी का आदेश अपास्त कर दिया था।

4. तत्पश्चात्, अभिकथन की जाँच करने के लिए जाँच कमिटि पुनर्गठित की गयी थी किन्तु प्रत्यर्थीगण के मामले के अनुसार, याची ने अपना समुचित रूप से बचाव करने के बजाय सदैव कमिटि के सदस्य के विरुद्ध आरोप लगाया। किन्तु, दिनांक 10.8.2006 को कमिटि ने कुलपति के समक्ष अपना

रिपोर्ट प्रस्तुत किया जिस पर याची को कारण बताओ नोटिस दिया गया था। उस पर कुलपति ने आरोपों और कमिटि द्वारा दिए गए निष्कर्ष को विचार में लेते हुए पुन: दिनांक 15.5.2008 को बर्खास्तगी का आदेश (परिशिष्ट 4) पारित किया।

5. उस आदेश से व्यथित होकर, याची ने पुन: कुलाधिपति के समक्ष अपील दाखिल की जिन्होंने अपील को गुणागुण रहित होने के कारण दिनांक 5.7.2009 के अपने आदेश (परिशिष्ट-9) के तहत इसे खारिज कर दिया। उस पर इसी प्राधिकारी के समक्ष दिनांक 26.7.2009 को पुनर्विलोकन आवेदन दाखिल किया गया था जिसे दिनांक 20.3.2010 को (परिशिष्ट-14) खारिज कर दिया गया था।

6. दिनांक 15.5.2008 के बर्खास्तगी के उक्त आदेश (परिशिष्ट-4) को और साथ-साथ अपील में और पुनरीक्षण में भी पारित आदेशों, जैसा क्रमश: परिशिष्टों 9 और 14 में अंतर्विष्ट है, का अभिखंडन इस रिट आवेदन के माध्यम से इप्सित किया गया है।

7. आक्षेपित आदेशों का विरोध करने के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित डॉ॰ अनन्त प्रसाद जायसवाल ने एकमात्र बिन्दु अपनाया कि अनुशासनिक प्राधिकारी, कुलपति ने सेवा समाप्ति का दंड अधिरोपित करने के पहले ऐसे किसी आधार को प्रस्तुत नहीं किया था जिस पर उन्होंने सेवा समाप्ति का आदेश पारित किया था यद्यपि बिरसा कृषि विश्वविद्यालय संविधियों के खंड 13.9 के मुताबिक आधार, जिन पर कुलपति ने सेवा समाप्ति का आदेश पारित किया था, को अवचारी को दिया जाना अपेक्षित था ताकि अवचारी अपने कारण बताओ में प्रभावकारी उत्तर दे सके परन्तु अनुशासनिक प्राधिकारी ने उक्त प्रावधान का अनुपालन किए बिना आदेश पारित किया है और इसलिए न केवल अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश बल्कि अपील में और पुनर्विलोकन आवेदन में भी विद्वान कुलाधिपति द्वारा पारित आदेश भी अपास्त किए जाने योग्य है।

8. उसने आगे निवेदन किया कि सेवा समाप्ति का आदेश पारित किए जाने के पहले जाँच रिपोर्ट भी उस पर तामील नहीं की गयी थी।

9. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ आलम ने प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ 34 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि जाँच रिपोर्ट की प्रति याची पर तामील की गयी थी जो इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि यदि जाँच रिपोर्ट अवचारी पर तामील नहीं की गयी थी, वह कुलपति के समक्ष आपत्ति उठाने की दशा में नहीं होता और इस प्रकार निवेदन किया गया है कि याची की ओर से यह कहना सही नहीं है कि जाँच रिपोर्ट कभी भी तामील नहीं की गयी थी।

10. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और पक्षों की ओर से दाखिल किए गए शपथ पत्रों को देखते हुए यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि याची ने अपील के अपने ज्ञापनों में जाँच रिपोर्ट का विरोध करते हुए तब से कतिपय बिन्दुओं को लिया है, अत: उपधारणा की जा रही है कि जाँच रिपोर्ट अवश्य ही याची पर तामील की गयी थी किन्तु यह स्थापित करने के लिए कुछ भी ठोस नहीं दिया गया है कि जाँच रिपोर्ट अपीलार्थी पर तामील की गयी थी किन्तु इन तथ्यों और परिस्थितियों में निर्णायक प्रश्न यह है कि क्या प्रबंधन बोर्ड के उनसठवें बैठक द्वारा अनुमोदित बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के खंड 13.9 के उप-खंड (iv) के निबंधनों का अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनुपालन किया गया है अथवा नहीं। उक्त खंड 13.9 का पठन निम्नलिखित है:

> *"13.9 (1). नीचे दिए गए खंड (2) में विनिर्दिष्ट दंडों में से कोई एक अथवा अधिक, अच्छे और पर्याप्त कारणों जैसे अवचार, नैतिक अधमता, कर्तव्य की उपेक्षा, सेवा के निबंधन अथवा शर्त का उल्लंघन, अकुशलता, अनुशासनहीनता, दांडिक दोषसिद्धि के लिए किसी कर्मचारी पर अधिरोपित किया जा सकता है।*

नोट.–इस उद्देश्य के लिए अवचार का अर्थ है:

(i) किसी विधिपूर्ण आदेशों अथवा अनुदेशों का निष्पादन करने में जानबूझकर की गयी अवज्ञा अथवा जानबूझकर किया गया लोप अथवा उपेक्षा अथवा

(ii) जानबूझकर किया गया न्यास और कर्तव्य का भंग, अथवा

(iii) विश्वविद्यालय के नियमों अथवा आदेशों, अथवा कुलपति की अभिव्यक्त अनुमति को छोड़ कर अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कर्मचारी द्वारा उपहार उपदान, पुरस्कार अथवा पारिश्रमिक की मांग, स्वीकृति अथवा प्राप्ति;

(iv) विश्वविद्यालय के छात्रों अथवा कर्मचारियों के बीच गैर विधिपूर्ण गतिविधि में अथवा राजनीतिक प्रचार में लिप्त होना;

(v) किसी चीज को करना जो विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा को जर्जरित करता है अथवा जर्जरित कर सकता है अथवा इसके हितों के लिए हानिकारक है अथवा विश्वविद्यालय के कॉरपोरेट जीवन की सामंजस्यता और एकता को छेड़ता है अथवा छेड़ सकता है, अथवा

(vi) प्राधिकरण की सामान्य अथवा विशेष अनुमति के बिना प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः, किसी व्यक्ति, जो ऐसी सूचना अथवा दस्तावेज प्राप्त करने का हकदार नहीं है, को किसी दस्तावेज अथवा सूचना, जो अपने कर्तव्यों के निर्वहन में उसके कब्जे में आयी है, को संसूचित करना।

(2) निम्नलिखित लघु और मुख्य दंडों को विश्वविद्यालय के कर्मचारियों पर अधिरोपित किया जा सकता है:

(a) लघु दंड

(i) परिनिंदा;

(ii) कुशलता बार को रोके जाने सहित वेतनवृद्धियों का रोका जाना

(iii) आदेशों की उपेक्षा अथवा भंग अथवा लोप या कोई अन्य कृत्य करके विश्वविद्यालय को कारित किसी धनीय नुकसान के संपूर्ण अथवा इसके अंश की वेतन से वसूली;

(b) मुख्य दंड

(iv) वेतनमान के किसी टाईम स्केल में निम्नतर पद अथवा निम्नतर चरण पर घटाया जाना;

(v) विश्वविद्यालय सेवा से हटाया जाना जो सामान्यतः विश्वविद्यालय में किसी अन्य सेवा के लिए अक्षम नहीं बनाता है;

(vi) अनिवार्य सेवानिवृत्ति

(vii) विश्वविद्यालय सेवा से बर्खास्तगी जो विश्वविद्यालय में आगे रोजगार के लिए सामान्यतः अनर्हित करता है और समस्त प्रोद्भूत वित्तीय लाभों के नुकसान को सामान्यतः अंतर्ग्रस्त करता है।

(3) नियुक्ति प्राधिकारी खंड (2) में उल्लिखित दंडों में से किसी को अधिरोपित करने के लिए सक्षम होगा और नियुक्ति प्राधिकारी के अधीनस्थ कोई प्राधिकारी जैसे डीन, निदेशक एवं प्रधानाचार्य खंड (2) के उपखंड (a) में उल्लिखित लघु दंड को तृतीय वर्ग और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारियों पर अधिरोपित कर सकते हैं, और उसके अधीन पदस्थापित अन्य स्टाफ के मामले में परिनिंदा का दंड अधिरोपित कर सकता है यदि पूर्ववर्ती द्वारा ऐसा करने के लिए उसे सशक्त किया गया है।

परन्तु यह कि विश्वविद्यालय के किसी कर्मचारी पर किसी मुख्यदंड को अधिरोपित करने का आदेश तबतक पारित नहीं किया जाएगा जबतक उसे कोई अभ्यावेदन करने का पर्याप्त अवसर न दिया गया हो जो कि वह करना चाहता हो और ऐसे अभ्यावेदन पर सम्यक् रूप से विचार किया गया हो।

***स्पष्टीकरण.**–नीचे दिए गए खंड (4) में वर्णित पूरी प्रक्रिया लघु दण्ड के मामले में अपनाए जाने की जरूरत नहीं है। अगर सम्बन्धित प्राधिकारी को उसके विरूद्ध लगाये गए आरोपों को स्पष्ट करने का अवसर दिया गया हो और इस प्रकार से पेश किये गये स्पष्टीकरण पर आदेश पारित किए जाने से पहले विचार किया गया हो, तो यह पर्याप्त होगा।*

(4) आधारों, जिन पर किसी मुख्य दंड का अधिरोपण प्रस्तावित किया गया है, को लिखित में विश्वविद्यालय के संबंधित सेवक को संसूचित करना होगा और युक्तियुक्त समय के भीतर उससे उत्तर अपेक्षित होगा।

11. खंड 13.9 के उपखंड (3) और (4) का सरल पठन वस्तुत: उपदर्शित करता है कि जाँच रिपोर्ट प्राप्त करने पर अनुशासनिक प्राधिकारी यदि मुख्य दंड अधिरोपित करने का प्रस्ताव करता है तब उस आधार जिस पर वह मुख्य दंड के आदेश को पारित करना प्रस्तावित करता है, को अवचारी को संसूचित करने की आवश्यकता है ताकि अवचारी प्रभावकारी अभ्यावेदन कर सके और केवल तब अभ्यावेदन को विचार में लेने के बाद ही मुख्य दंड पारित करने की अपेक्षा अनुशासनिक प्राधिकारी से की जाती है।

12. वर्तमान मामले में, विश्वविद्यालय इस अभिवचन के साथ आगे नहीं आया है कि ऐसा कोई आधार, जिस पर बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया था, कभी भी याची को संसूचित किया गया था ताकि वह प्रभावकारी अभ्यावेदन दाखिल करने के लिए सक्षम हो सके।

13. अत: परिशिष्ट-4 में अंतर्विष्ट बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने का दायी है। साथ ही साथ, परिशिष्टों- 9 और 14 में अंतर्विष्ट क्रमश: अपील और पुनर्विलोकन आवेदन पर भी पारित आदेश अपास्त किए जाने के दायी हैं क्योंकि विद्वान अपीलीय प्राधिकारी यह विचार में लेने में विफल रहा कि सांविधिक प्रावधान के अननुपालन के कारण सेवा समाप्ति का आक्षेपित आदेश अवैधता से पीड़ित है।

14. तद्नुसार, परिशिष्टों-4, 9 और 14 में अंतर्विष्ट आदेशों को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। अत: यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। किन्तु अनुशासनिक प्राधिकारी को विधि के अनुरुप दंड के अधिरोपण के संबंध में मामले में अग्रसर होने की स्वतंत्रता रहेगी।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

वकील प्रसाद जायसवाल

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (S) No. 5116 of 2010. Decided on 2nd December, 2010.

सेवा विधि–प्रोन्नति–ए॰ सी॰ पी॰ के लाभों के लिए दावा–याची ने 24 वर्षों की सेवा पूरी कर लेने पर द्वितीय ए॰ सी॰ पी॰ के लिए अपने अधिकार एवं दावे को पुख्ता करने का दावा किया–याची को न केवल आरोप-पत्रित किया गया था बल्कि उसे प्रतिवर्तन का दंड भी अधिनिर्णीत किया गया है और दंड दिया गया है और उसकी प्रोन्नति भी दस वर्षों की अवधि के लिए रोक दी गयी है–यह प्रोन्नति ए॰ सी॰ पी॰ के प्रदाय को भी सम्मिलित करती है–याची

को दो ए॰ सी॰ पी॰ के प्रदान के प्रश्न पर विचार करने के निर्देश के साथ याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 11 से 13)

निर्णयज विधि.—AIR 1991 SC 2010—Distinguished.

अधिवक्तागण.—M/s Manoj Tandon, Navin Kumar Singh, For the Petitioner; Mr. Amarendra Pradhan, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से श्री मनोज टंडन और प्रत्यर्थीगण की ओर से श्री अमरेन्द्र प्रधान को सुना गया।

2. प्रति और प्रत्युत्तर शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया गया है और चूँकि अभिवचनों को पूरा किया जा चुका है, अत: दोनों अधिवक्ता सहमत हुए हैं कि स्वयं ग्रहण के चरण पर रिट याचिका को विनिश्चित किया जाए।

3. वर्तमान रिट याचिका में प्रार्थना याची को दिनांक 9 अगस्त, 1999 के प्रभाव से प्रथम एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन (ए॰ सी॰ पी॰) योजना और दिनांक 6 फरवरी, 1993 के प्रभाव से द्वितीय ए॰ सी॰ पी॰ के लाभों को देने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए निर्देश देने के लिए है।

4. स्वीकृत तथ्य ये हैं कि याची ने दिनांक 6 फरवरी, 1979 को सहायक अभियन्ता के तौर पर विभाग में पदग्रहण किया और उसने दिनांक 6 फरवरी, 1991 को 12 वर्षों की अवधि को पूरा किया। ए॰ सी॰ पी॰ योजना पहली बार दिनांक 14 अगस्त, 2002 को लागू की गयी थी जिसके फलस्वरुप, यह अनुबंधित किया गया था कि कर्मचारी, जिसने 12 वर्षों की सेवा सफलतापूर्वक पूरी कर ली है, को ए॰ सी॰ पी॰ योजना का लाभ दिया जाएगा और 24 वर्षों को पूरा करने पर उसे द्वितीय ए॰ सी॰ पी॰ का लाभ भी दिया जाएगा। कर्मचारियों को यह लाभ इस शर्त के साथ दिया गया था कि 12 वर्षों अथवा 24 वर्षों को पूरा करने की तिथि के दिनांक 9 अगस्त, 1999 से पहले होने की स्थिति में पदधारक उक्त कट-ऑफ-तिथि अर्थात् 9 अगस्त, 1999 के पहले ए॰ सी॰ पी॰ के लिए हकदार नहीं होगा।

5. याची का दावा यह है कि उसने दिनांक 6 फरवरी, 2003 को सेवा के 24 वर्षों को पूरा किया और इस प्रकार उसने द्वितीय ए॰ सी॰ पी॰ के लिए अपने अधिकार और दावा को पुख्ता किया था चूँकि सेवा के 24 वर्षों की अवधि पूर्णत: संतोषप्रद था।

6. इसी बीच, कतिपय अनियमितताओं/अवैधता के कारण, याची को दिनांक 30 अगस्त, 2003 को आरोप-पत्रित किया गया था और विभागीय कार्यवाही का सामना करने के बाद उसे कार्यपालक अभियन्ता के पद से सहायक अभियन्ता के पद पर प्रतिवर्तन का दंड अधिनिर्णीत किया गया था और यह निर्देश भी दिया गया था कि उसे दस वर्षों की अवधि के लिए कोई प्रोन्नति नहीं दी जाएगी। यह आदेश दिनांक 24 फरवरी, 2009 के आदेश के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था।

7. याची का दावा यह है कि चूँकि उसने अभिकथित अवचार के कारण विभागीय कार्यवाही आरंभ किए जाने के पहले सेवा के 24 वर्षों की अवधि को पूरा कर लिया था, उसने विशेषत: **भारत संघ बनाम के॰ वी॰ जानकीरमन,** आदि **AIR 1991 SC 2010** के मामले में प्रकाशित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में दो ए॰ सी॰ पी॰ प्रदान किए जाने के लिए अपने अधिकार को पुख्ता किया था। पैराग्राफ 6 पर जोर दिया गया है जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:

> *"6. प्रथम प्रश्न अर्थात्, जब मुहरबन्द लिफाफा प्रक्रिया के उद्देश्य के लिए अनुशासनिक/दांडिक कार्यवाही को आरंभ किया गया कहा जा सकता है, पर अधिकरण*

की पूर्णपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि केवल जब किसी अनुशासनिक कार्यवाही में आरोप ज्ञापन अथवा दांडिक अभियोजन में आरोप पत्र कर्मचारी को जारी किया जाता है, यह कहा जा सकता है कि कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही/दांडिक अभियोजन आरंभ होता है। केवल आरोपज्ञापन/आरोप-पत्र जारी किए जाने के बाद ही मुहरबन्द लिफाफा प्रक्रिया का अनुसरण करना होगा। उस चरण के पहले आरंभिक अन्वेषण का लंबित रहना मुहरबन्द लिफाफा प्रक्रिया अपनाने हेतु प्राधिकारीगण को सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। हम इस बिन्दु पर अधिकरण के साथ सहमत हैं। अपीलार्थी-प्राधिकारीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया प्रतिवाद यह है कि जब गंभीर अभिकथन हैं और आरोप-ज्ञापन/आरोप पत्र तैयार करने और जारी करने जब गंभीर अभिकथन संग्रहित करने में समय लगता है, कर्मचारी को प्रोन्नति, वेतनवृद्धि, आदि प्रदान करना प्रशासन की शुद्धता के हित में नहीं होगा, हमें प्रभावित नहीं करता है। इस प्रतिवाद को स्वीकार करने का परिणाम अनेक मामलों में कर्मचारियों के प्रति अन्याय में होगा। जैसा अब तक का अनुभव है, आरंभिक अन्वेषण अत्यधिक लम्बा समय लेते हैं और विशेषतः जब उन्हें हितबद्ध व्यक्तियों की प्रेरणा पर आरंभ किया जाता है, उन्हें जानबूझकर लंबित रखा जाता है। अनेक बार उनका परिणाम आरोप ज्ञापन/आरोप पत्र जारी नहीं करने में होता है। यदि अभिकथन गंभीर हैं और प्राधिकारीगण उनको अन्वेषित करने के लिए उत्सुक हैं, प्रासंगिक साक्ष्य संग्रहित करने और आरोपों को अंतिम रूप देने में सामान्यतः अधिक समय नहीं लगेगा। इसके अतिरिक्त, यदि आरोप उतने ही गंभीर हैं, प्रासंगिक नियमों के अधीन कर्मचारी को निलंबित करने का अधिकार प्राधिकारीगण को है और निलंबन स्वयं में मुहरबन्द लिफाफा प्रक्रिया का सहारा लेने की अनुमति देता है। इस प्रकार, प्राधिकारीगण उपचार रहित नहीं हैं। तब प्राधिकारीगण की ओर से यह प्रतिवाद किया गया था कि अधिकरण के पूर्णपीठ के निष्कर्ष सं० 1 और 4 एक-दूसरे के साथ असंगत है। वे निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

"(1) किसी पदधारी के विरुद्ध अनुशासनिक अथवा दांडिक कार्यवाही के लंबित रहने के आधार मात्र पर प्रोन्नति, चयनग्रेड, कुशलता सीमा का पार किया जाना अथवा उच्चतर वेतन मान पर विचार किए जाने को रोका नहीं जा सकता है;

(2) .....

(3) .....

(4) केवल संबंधित पदधारी पर आरोप ज्ञापन का तामील किए जाने के बाद अथवा दांडिक न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र दाखिल किए जाने के बाद ही मुहरबन्द लिफाफा प्रक्रिया का सहारा लिया जा सकता है।''

कोई संदेह नहीं है कि दोनों निष्कर्षों के बीच प्रतीकात्मक विरोधाभास है। किन्तु सामंजस्यपूर्वक पठन किए जाने पर और पूर्णपीठ का आशय भी यही है, दोनों निष्कर्षों का एक दूसरे से मेल-मिलाप करवाया जा सकता है। निष्कर्ष सं० 1 का पठन इस अर्थ में किया जाना चाहिए कि केवल इसलिए कि कर्मचारी के विरुद्ध कुछ अनुशासनिक/दांडिक कार्यवाही लंबित है, प्रोन्नति, आदि को रोका नहीं जा सकता है। उक्त लाभ से इंकार करने के लिए, उनहें प्रासंगिक समय पर उस चरण पर लंबित रहना चाहिए जब आरोप ज्ञापन अथवा आरोप-पत्र पहले ही कर्मचारी को जारी किया जा चुका है। इस प्रकार पठन करने पर दोनों निष्कर्षों के बीच कोई असंगति नहीं है।

अतः हम अधिकरण के पूर्ण पीठ के उक्त निष्कर्ष को अपीलार्थी-प्राधिकारीगण द्वारा दी गयी चुनौती को अस्वीकार करते हैं।

8. इस प्रकार यह जोरदार तर्क किया गया है कि याची ने दंड के आदेश को चुनौती दी है किन्तु वह वर्तमान रिट याचिका का विषय वस्तु नहीं है और उसके विरुद्ध अभिकथित अवचार के संबंध में कार्यवाही के प्रति किसी निर्देश के बिना दो ए॰ सी॰ पी॰ के लाभों का वह हकदार है।

9. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क किया है कि याची के विरुद्ध लगाए गए आरोप वित्तीय वर्ष 2002-03 से संबंधित है जैसा दिनांक 28.8.2003 के आरोप-पत्र में उपदर्शित किया गया है। द्वितीय ए॰ सी॰ पी॰ का देय तिथि वित्तीय वर्ष 2002-03 के अंतर्गत आती है। अत: याची दिनांक 2 फरवरी, 2003 के प्रभाव से द्वितीय ए॰ सी॰ पी॰ का दावा नहीं कर सकता है। दिनांक 28.8.2003 के आरोप-पत्र की प्रति को प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-D के रूप में अभिलेख पर भी लाया गया है।

10. के॰ वी॰ जानकी रमन (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण और तर्कों का उत्तर देते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि उक्त मामला केवल यह अधिक कथित करता है कि यदि आरोप ज्ञापन दिए जाने के पहले प्रोन्नति लाभ प्रोद्भूत हुए हैं और यदि लंबित आरंभिक अन्वेषण अथवा जाँच में विलम्ब है, तब पदधारी को उसकी प्रोन्नति के अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। पैरा-13 में यह प्रकथन भी किया गया है कि याची के विरुद्ध लगाए गए आरोप वित्तीय वर्ष 2002-03 से संबंधित है जैसा दिनांक 28.8.2003 के आरोप-पत्र में उपदर्शित किया गया है और इस प्रकार अवचार दिनांक 6.2.2003 के पूर्व का है और इसलिए, उसे दो ए॰ सी॰ पी॰ को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

11. वर्तमान मामले में, तथ्य बिल्कुल भिन्न है। याची को न केवल आरोप-पत्रित किया गया था बल्कि उसे दंड दिया गया है और प्रतिवर्तन का दंड अधिनिर्णीत किया गया है और दस वर्षों की अवधि के लिए उसकी प्रोन्नति भी रोक दी गयी है। यह प्रोन्नति ए॰ सी॰ पी॰ के प्रदान को भी सम्मिलित करती है।

12. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। उन्होंने प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ 11 को इंगित किया है जहाँ उन्होंने कथन किया है कि जहाँ तक दो ए॰ सी॰ पी॰ के लाभों के संबंध में याची के दावा का संबंध है, यह प्राख्यान किया गया है कि याची का मामला विभागीय प्रोन्नति कमिटि के समक्ष रखा जाएगा। किन्तु, चूँकि प्रतिशपथ पत्र में असंदिग्ध आश्वासन दिया गया है कि दो ए॰ सी॰ पी॰ प्रदान करने के संबंध में मामला स्क्रीनिंग कमिटि को निर्दिष्ट किया जाएगा, मैं गुणागुणों पर विचार करने का इच्छुक नहीं हूँ कि याची दो ए॰ सी॰ पी॰ का हकदार है या नहीं। विभाग यहाँ ऊपर किए गए संप्रेक्षणों से प्रभावित हुए बिना स्क्रीनिंग के समय मामले के समस्त पहलूओं का परीक्षण और उन पर विचार करेगा।

13. तथ्यों एवं परिस्थितियों में, यह रिट याचिका प्रत्यर्थीगण को इस निर्देश के साथ निपटायी जाती है कि, जैसा पैराग्राफों 11 और 13 में प्राख्यान किया गया है, मामले पर विचार किया जाएगा और याची को दो ए॰ सी॰ पी॰ प्रदान करने के प्रश्न को शीघ्रातिशीघ्र, इस आदेश की प्रमाणित प्रति को उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर विनिश्चित किया जाएगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मनोज प्रभाकर एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M.P. No. 745 of 2008. Decided on 22nd November, 2010.

खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954—धाराएँ 16 (i)(a), 10(iii) एवं 13 (2)—खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली, 1955—नियम 32, स्पष्टीकरण VIII—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—मिसब्रैंडेड स्टेमिना स्पोर्ट्स ड्रिंक का विक्रय–दांडिक अभियोजन को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि परीक्षा किए गए नमूने का बैच नम्बर संग्रहित नमूने के बैच नम्बर से मेल नहीं खाता था–यह कथन कहीं नहीं किया गया है कि प्रश्नगत नमूना इस तथ्य के कारण कि इसे याचीगण की दुकानों से संग्रहित किया गया था अपनी विनिर्दिष्ट गुणवत्ताओं को खो चुका था–नमूना न तो अपमिश्रित और न ही मिस ब्रैंडेड पाया गया था–याचीगण के अभियोजन को संपोषित नहीं किया जा सकता है–संपूर्ण अभियोजन अपास्त–याचिका अनुज्ञात।

(पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.–M/s Jai Prakash, Yogesh Modi, For the Petitioners; Mr. Mukesh Kumar, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान याचिका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लेते हुए C-IV केस सं॰ 22 वर्ष 2008, जिसमें दिनांक 5.1.2008 को सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (i) (a) के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है और जो अब सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष लंबित है, से उद्भूत समस्त दांडिक अभियोजन के अभिखंडन के लिए याचीगण की ओर से दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि वि॰ प॰ सं॰ 2 महेश पांडे, खाद्य निरीक्षक, राँची ने दिनांक 4.10.2007 को कृषि विपणन यार्ड, पंडरा, राँची, के दुकान सं॰ 5 पर स्थित मेसर्स गुजरात सहकारी दुग्ध विपणन परिसंघ लि॰ के व्यावसायिक परिसरों का दौरा किया–

(i) अमूल मस्ती स्पाइस्ड बटर मिल्क,

(ii) 'स्टैमिना'' बैच सं॰ एल॰-1 और

(iii) 'अमूल कूल' क्रमशः पेपर स्लिप सं॰ 687, 688 और 689 धारित करने वाले के नमूनों को रसीद के विरुद्ध भुगतान पर संग्रहित किया और इन सारे आइटमों को परीक्षा एवं रिपोर्ट के लिए लोक विश्लेषक, खनिज क्षेत्र विकास प्राधिकरण, धनबाद, झारखंड के पास भेजा।

3. लोक विश्लेषक झारखंड ने दिनांक 16 अक्टूबर, 2007 के अपने रिपोर्ट सं॰ 524PFF/2007 द्वारा मत दिया कि स्टैमिना स्पोर्ट्स ड्रिंक के नमूने की निर्माण तिथि दिनांक 11.5.2007 थी; निर्माण से 120 दिनों तक उपभोग योग्य थी और अवधि के अंत का अवसान हो चुका था अत: यह विपणन के योग्य नहीं था। लोक विश्लेषक के रिपोर्ट के आधार पर वि॰ प॰ सं॰ 2 खाद्य निरीक्षक ने दिनांक 3.1.2008 को सिविल सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा अधिकारी, राँची से लिखित सहमति प्राप्त करने के बाद खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (i) (a) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए इसमें के याचीगण के विरुद्ध सी॰ जे॰ एम॰ न्यायालय, राँची में अभियोजन संस्थापित किया। अधिकारिक परिवाद

इस पर दी गयी तिथि के पृष्ठांकन के साथ सी॰ जे॰ एम॰, राँची के हस्ताक्षर से युक्त दिनांक 5.1.2008 को न्यायालय में दाखिल किया गया था।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने आरंभ में याचीगण की ओर से निवेदन किया कि खाद्य निरीक्षक द्वारा संग्रहित नमूना बैच सं॰ एल॰–1 वाला ''स्टैमिना'' था जबकि एम॰ ए॰ डी॰ ए॰ के लोक विश्लेषक का रिपोर्ट 'स्टैमिना स्पोर्ट्स ड्रिंक्स 'बैच सं॰ 32 से संबंधित था और इस प्रकार, ऐसे नमूना जिसे याचीगण की दुकान से संग्रहित नहीं किया गया था, के परीक्षण पर लोक विश्लेषक के रिपोर्ट के आधार पर अभियोजन आरंभ किया गया था। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि बैच नम्बरों को उत्पादों के एक लॉट को आबंटित किया जाता है, तद्नुसार विभिन्न बैच नम्बरों को निर्मित उत्पादों के विभिन्न समूहों को आबंटित किया जाता है और केवल इस आधार पर कि परीक्षा किए गए नमूना का बैच नम्बर संग्रहित किए गए नमूने के बैच नम्बर से मेल नहीं खाता है, याचीगण का अभियोजन अपास्त किए जाने योग्य है।

5. अपने तर्क को आगे बढ़ते हुए श्री जय प्रकाश ने निवेदन किया कि यद्यपि दिए गए उत्पाद 'स्टैमिना' स्पोर्ट्स ड्रिंक के गैर–विपणनशीलता के लिए खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 में कोई शास्ति प्रावधान नहीं है, फिर भी, अधिनियम की धारा 16 (i) (a) के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया है जो कहता है–

''उपधारा (1-A) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, यदि कोई व्यक्ति–

(a) चाहे स्वयं या अपने निमित्त किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा किसी ऐसे खाद्य पदार्थ का–

(i) जो धारा 2 के खंड (ia) के उपखंड (m) के अर्थ में अपमिश्रित है या उस धारा के खंड (ix) के अर्थ में मिथ्या छाप वाला है अथवा जिसका विक्रय इस अधिनियम के या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के उपबंधों के अधीन अथवा खाद्य (स्वास्थ्य) प्राधिकारी के आदेश से प्रतिसिद्ध है, भारत में आयात करेगा या विक्रयार्थ विनिर्माण करेगा या भंडारकरण, विक्रय या वितरण करेगा, तो वह उस शास्ति के अतिरिक्त, जिससे वह धारा 6 के उपबंधों के अधीन दंडनीय हो, कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम नहीं होगी किन्तु तीन वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो एक हजार रुपये से कम नहीं होगा, दंडनीय होगा।

6. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने स्पष्ट किया कि अधिनियम के दांडिक प्रावधान यह नहीं कहते थे कि ''विपणनशीलता के लिए उपयुक्त नहीं होना अधिनियम के अधीन अपराध था।'' लोक विश्लेषक का रिपोर्ट दो अन्य वस्तुओं के बारे में मौन था कि क्या ये अपमिश्रित अथवा अन्यथा थे। शब्द अपमिश्रित को (m) के अधीन सहित अधिनियम की धारा 2 में अनेक तरीकों में परिभाषित और स्पष्ट किया गया है जो कहता है कि यदि वस्तु की गुणवत्ता अथवा शुद्धता विहित मापदंडों के नीचे है अथवा इसके घटक उन मात्राओं में उपस्थित है जो परिवर्तनशीलता के विहित सीमा के अंतर्गत नहीं है, किन्तु जो परन्तुक के साथ इसे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं बनाता है। लोक विश्लेषक का मत, जैसा यहाँ पहले उल्लिखित और निर्दिष्ट किया गया है, अधिनियम की धारा 2 (m) के परन्तुक की परिधि के अंतर्गत भी नहीं आता था और यदि यह स्वीकार किया भी जा सकता था कि परीक्षा रिपोर्ट उसी नमूना का था जिसे संग्रहित किया गया था, इसे कभी भी मिसब्रैंडेड के रूप में अभिनिर्धारित नहीं किया गया था जो दांडिक परिणामों की अपेक्षा करता हो।

7. तकनीकी बिन्दु उठाते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने ध्यान आकृष्ट किया कि परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 (खाद्य निरीक्षक) ने नमूनों को संग्रहित करते हुए खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 10 (iii) के अधीन सांविधिक प्रावधान का अनुसरण नहीं किया जो कहता है:–

''खाद्य निरीक्षक को निम्नलिखित शक्तियाँ होगी (a) निम्नलिखित में से किसी खाद्य पदार्थ के नमूने लेना–

(i) ऐसे पदार्थ का विक्रय करने वाला कोई व्यक्ति;

(ii) ऐसा कोई व्यक्ति जो ऐसे पदार्थ को किसी क्रेता या परेषिती के पास पहुँचाने, उसे परिदान करने या परिदान के लिए तैयार करने में लगा है;

(iii) कोई परेषिती जबकि कोई ऐसा पदार्थ उसे परिदत्त हो गया हो, और ऐसे नमूने को उस स्थानीय क्षेत्र के, जिसके अंदर नमूना लिया गया है, लोक विश्लेषक के पास विश्लेषणार्थ भेजना।

(3) जहाँ उप–धारा (1) के खंड (a) या उपधारा (2) के अधीन कोई नमूना लिया गया है, वहाँ उस दर पर, जिसपर वह पदार्थ लोगों को विक्रीत किया जाता है उसका परिकलित दाम उस व्यक्ति को दिया जाएगा जिससे वह लिया गया है।''

8. वर्तमान मामले में यद्यपि सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष प्रस्तुत अभियोजन रिपोर्ट में नीचे कहा गया था कि खरीद वाउचर उपाबद्ध किया गया था किन्तु इसे अभिलेख पर कहीं नहीं पाया गया था और वि॰ प॰ राज्य की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र में प्रतिवाद, जिसका विनिर्दिष्टत: अभिवचन किया गया है, के खंडन के लिए अभिकथित खरीद वाउचर की प्रति भी उपाबद्ध नहीं की गयी थी।

9. अगला बिन्दु उठाते हुए विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभियोजन अधिनियम की धारा 13 (2) के प्रावधान का अनुपालन करने में विफल रहा।

10. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार के सदस्यों की ओर से कम्पोजिट प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है। विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया कि तीन उत्पादों 'अमूल मस्ती स्पाइस्ड बटर मिल्क' 'स्टैमिना' और 'अमूलकूल', जिनकी कोड सं॰/क्रमांक सं॰ क्रमश: 687, 688 और 689 थी, के नमूनों को खरीद वाउचर के विरुद्ध भुगतान करके मेसर्स गुजरात दुग्ध विपणन परिसंघ दुकान सं॰ 5, पंडरा, राँची से संग्रहित किया गया था और इसे विश्लेषण और रिपोर्ट के लिए लोक विश्लेषक, एम॰ ए॰ डी॰ ए॰, धनबाद को भेजा गया था। लोक विश्लेषक ने अपने रिपोर्ट सं॰ 524 के तहत मत दिया कि ''स्टैमिना स्पोर्ट्स ड्रिंक की निर्माण तिथि दिनांक 11.5.2007 है जो निर्माण से 120 दिनों तक उपभोग किए जाने योग्य है जिसके अवधि के अंत का अवसान हो चुका है अत: यह विपणन के लिए उपयुक्त नहीं है।'' आगे कथन किया गया है कि जब खाद्य निरीक्षक ने याचीगणों के व्यवसायिक परिसरों का दौरा किया, तीन उत्पादों के नमूने लिए गए थे और उन्हें क्रम सं॰ 687, 688 और 689 के रूप में कूटबद्ध किया गया था जिसे याचीगण द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित किया गया था और प्रत्येक नमूने में तीन संवर्गों को तैयार किया गया था, एक संवर्ग को लोक विश्लेषक को भेजा गया था और प्रत्येक नमूने के दो संवर्गों को स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकारी की अभिरक्षा में रखा गया था और यह कि कोड सं॰/क्रम सं॰ 688 वाला नमूना वह उत्पाद था जिसके संबंध में लोक विश्लेषक ने दिनांक 16.10.2007 के अपने रिपोर्ट सं॰ 524 के तहत संसूचित किया था और कि लोक विश्लेषक अन्य दो उत्पादों के बारे में मौन था जिन्हें भी सीरियल कोड सं॰ 687 और 689 के साथ संग्रहित किया गया था। स्वीकृत रूप से, यह विश्लेषक रिपोर्ट ने मत नहीं दिया था कि क्रम सं॰ 688 वाला नमूना अपमिश्रित था बल्कि यह कथन किया गया था कि यह विपणन के लिए उपयुक्त नहीं था। विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ ने निवेदन किया कि यद्यपि उत्पाद अपमिश्रित नहीं था किन्तु इसे खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली, 1955 के नियम 32 के उल्लंघन में ''बेस्ट बीफोर यूज'' अवधि के परे बेचा गया था। खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमावली, 1955 के नियम 32 का स्पष्टीकरण VIII स्पष्ट करता है:–

(i) ''बेस्ट बीफोर'' का अर्थ है वह तिथि जो किसी कथित भंडारण दशा के अधीन अवधि के अंत को रेखांकित करता है जिसके दौरान उत्पाद पूर्णतः विपणन योग्य होगा

और किसी विनिर्दिष्ट गुणवत्ताओं को रखे रहेगा जिसके लिए प्रछन्न/अकथित अथवा अभिव्यक्त दावा किया गया है। परन्तु यह कि तिथि के परे भी खाद्य पूर्णतः संतोषजनक बना रह सकता है।

11. पक्षों द्वारा किए गए अभिवचनों और दिए गए तर्कों के सावधानीपूर्वक परीक्षण पर, मैं पाता हूँ कि याचीगण के व्यावसायिक परिसरों से संग्रहित क्रम सं॰ 688 वाला नमूना अधिनियम की धारा 2 की परिभाषा के अधीन न तो अपमिश्रित और न ही मिसब्रैंडेड पाया गया है। खनिज क्षेत्र विकास प्राधिकरण, धनबाद, झारखंड के लोक विश्लेषक ने नमूने के बारे में केवल यह मत दिया है कि ''यह विपणन के लिए उपयुक्त नहीं है।'' यह कहीं नहीं कथित किया गया है कि केवल इस तथ्य के कारण कि इसे याचीगण की दुकानों से संग्रहित किया गया था, प्रश्नगत नमूना अपनी विनिर्दिष्ट गुणावत्ताओं को खो चुका था और इसके लेबेल से पाया जा सकता था कि भंडारण अवस्था केवल 120 दिनों तक के लिए सीमित थी और किसी अन्यथा टिप्पणी की अनुपस्थिति में कि उत्पाद/नमूना निर्माण की तिथि से 120 दिनों की अवधि के परे मानव उपभोग के लिए अब योग्य नहीं था, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 16 (i) (a) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के दांडिक अभियोजन को जारी रखना इस आधार पर समुचित नहीं होगा कि नमूना ''स्टैमिना'' को न तो अपमिश्रित और न ही मिसब्रैंडेड पाया गया था।

12. उक्त चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि याचीगण के अभियोजन को विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है और एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, राँची के समक्ष लंबित C-IV-22 वर्ष 2008 से उद्भूत उनके समस्त अभियोजन को अपास्त किया जाता है।

तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

कुमार सतीश चन्द्र सिन्हा

बनाम

माननीय झारखंड उच्च न्यायालय एवं अन्य

W.P. (S) No. 332 of 2009. Decided on 6th October, 2010.

सेवा विधि–अनिवार्य सेवानिवृत्ति–झारखंड सेवा संहिता, 2000 की धारा 74 (b) (2)—50 वर्षों की आयु पूरा करने पर अधीनस्थ न्यायिक सेवा से समयपूर्व अनिवार्य सेवानिवृत्ति–याची के विरुद्ध विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकृतियों के अनेक अभिकथनों को किया गया था और मध्य अवधि में भी उसे स्थानान्तरित किया गया था–समुचित प्राधिकारी को किसी सरकारी सेवक को सेवानिवृत करने का पूर्ण अधिकार है यदि इसका मत है कि ऐसा करना लोकहित में है–समुचित प्राधिकारी को प्रदत्त अधिकार संपूर्ण है–यदि वह प्राधिकारी सद्भावपूर्वक उस मत को निर्मित करता है तो उस मत की शुद्धता को न्यायालयों के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है–न्यायिक सेवा और अन्य सेवाओं के बीच भिन्नता है–आम जनता की उम्मीदों पर खरा उतरने के लिए न्यायिक अधिकारियों को अवसर के अनुकूल होना होगा–आक्षेपित आदेश संपुष्ट–याचिका खारिज। (पैराएँ 4, 8 से 10)

निर्णयज विधि.–1970(2) SCC 458; 2003(6) SCC 545; (1992) 1 SCC 119—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Pandey Neeraj Rai, For the Petitioner/Appellants; JC to A.G., For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका याची द्वारा दिनांक 17.7.2008 की रिट याचिका के परिशिष्ट-3 में अंतर्विष्ट प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा जारी उस आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा याची को झारखंड सेवा संहिता की धारा 74 (b)(2) के अधीन 50 वर्ष की आयु पूरा करने पर अधीनस्थ न्यायिक सेवा से समयपूर्व अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया है।

3. याची को सिविल न्यायालय, हाजीपुर (वैशाली) में परिवीक्षाधीन मुंसिफ के रूप में नियुक्त किया गया था। याची उस समय लातेहार ए॰ सी॰ जे॰ एम॰ के रूप में कार्यरत था जब उसे सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया है कि झारखंड सेवा संहिता के नियम 74 (b) (ii) के अधीन शक्तियाँ नियुक्ति प्राधिकारी को किसी कर्मचारी/अधिकारी को इस आधार पर कि उसने 50 वर्ष की आयु पूरा कर लिया है, समयपूर्व अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का अनियंत्रित अथवा असीमित अधिकार प्रदान नहीं करती है। आगे प्रतिवाद किया गया था कि यह निष्कर्षित करने की याची लोकहित में समयपूर्व सेवानिवृत्त किए जाने का दायी है, का अर्थ होगा कि उसका सेवा में जारी रहना अथवा उसे सेवा में बनाए रखना लोकहित में नहीं है। विद्वान अधिवक्ता आगे प्रतिवाद करते हैं कि याची का चरित्र अकलंकित है और उसकी सेवा पुस्तिका में कोई प्रतिकूल प्रविष्टि नहीं है। अत: समयपूर्व सेवानिवृत्ति के लिए वह छाँटे जाने का दायी नहीं है।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि याची के विरुद्ध विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकृति के अनेक अभिकथनों को लगाया गया था और मध्य अवधि में उसका स्थानान्तरण भी किया गया था। उसे अपना आचरण सुधारने और अपनी कार्यकुशलता को बेहतर बनाने का अवसर दिया गया था; संपूर्ण सेवा अवधि में, कतिपय अधिवक्ताओं के साथ गुट निर्मित करते हुए विषयेतर महत्व के विभिन्न मामलों के संबंध में अभिकथनों की श्रृंखला और नैतिक अधमता के अभिकथनों को याची के विरुद्ध पटना उच्च न्यायालय में और इस न्यायालय में भी प्राप्त किया गया था और याची के समग्र कार्यपालन के मूल्यांकन पर याची को 50 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद अनिवार्य रूप से और समयपूर्व सेवानिवृत्त कर दिया गया था।

5. यह विधि की सुनिश्चित अवस्था है, जैसा **भारत संघ बनाम कर्नल जे॰ एन॰ सिन्हा, 1970 (2) SCC 458,** में प्रकाशित मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, कि समुचित प्राधिकारी को किसी सरकारी सेवक को सेवानिवृत करने का संपूर्ण अधिकार है यदि इसका मत है कि ऐसा करना लोकहित में है। समुचित प्राधिकारी को प्रदत्त अधिकार संपूर्ण है। नियम में उल्लिखित शर्तों के अधीन उस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। जिसमें से एक यह है कि संबंधित प्राधिकारी का मत होना होगा कि ऐसा करना लोकहित में है। यदि वह प्राधिकारी सद्भावपूर्वक वैसा मत निर्मित करता है, वैसे मत की शुद्धता को न्यायालयों के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है। व्यथित पक्ष को यह प्रतिवाद करने की छूट है कि अपेक्षित मत निर्मित नहीं किया गया है अथवा निर्णय सम्पार्श्विक आधार पर आधारित है अथवा कि यह एक मनमाना निर्णय है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति किसी भी सिविल परिणामों को अंतर्ग्रस्त नहीं करती है। समुचित प्राधिकारी में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए समुचित प्राधिकारी को विभिन्न विचारों को अधिमान देना होगा। कुछ मामलों में, सरकार महसूस कर सकती है कि ऐसे व्यक्ति, जो पद धारित कर रहा है, की तुलना में अधिक सक्षम अधिकारी द्वारा कोई विशेष पद लोक हित में अधिक लाभदायी रूप से धारित किया जा सकता है। यह हो सकता है कि कोई अधिकारी, जो पद धारित कर रहा है, अकुशल नहीं हो, किन्तु समुचित प्राधिकारी एक अधिक कुशल अधिकारी को प्राथमिकता दे सकता है। इसके

अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि कतिपय महत्वपूर्ण पदों में लोकहित अपेक्षा कर सकता है कि वहाँ असंदिग्ध सक्षमता और सत्यनिष्ठा का व्यक्ति होना चाहिए। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि समस्त संगठनों में और विशेषकर सरकारी संगठनों में कई निकम्में व्यक्ति हैं। इनको सेवा से हटा देना लोकहित में है। मूल नियम 74 (b) प्रत्येक सरकारी सेवक और लोकहित के बीच संतुलन बनाए रखता है। उन लोगों, जो इसके मत में लोकहित में वहाँ नहीं होने चाहिए, को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करके अपनी मशीनरी को ऊर्जावान और इसे अधिक कुशल बनाने के लिए सरकार को शक्ति दी गयी है।

6. प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रतिशपथ पत्रों की दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि न्यायिक सेवा में याची के लिए जाने के समय से ही विभिन्न स्थानों पर उसके विरुद्ध अनेक अभिकथनों को किया गया था और उसे मध्य अवधि में भी स्थानांतरित किया गया था और अपने आचरण को सुधारने और अपनी कार्यकुशलता को समृद्ध करने के लिए उसे अवसर देकर कई कदम उठाये गये थे। याची के विरुद्ध विभिन्न प्रकृति के अनेक परिवादों को पटना उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष किया गया था। विषयेतर अनुचिन्तनों पर मामलों के निपटारे में और कतिपय अधिवक्ताओं के साथ गुट निर्मित करने के संबंध में याची के विरुद्ध विभिन्न प्रकृति के अभिकथनों की एक श्रृंखला को किया गया था। पटना विधि महाविद्यालय के भूतपूर्व प्राचार्य प्रयाग सिंह द्वारा भी परिवाद किया गया था कि उसने उनकी हत्या करने का प्रयास किया था। अभिकथन करनेवाले की मृत्यु के कारण जाँच समाप्त कर दिया गया था।

7. याची की ओर से प्रति शपथपत्र के प्रत्युत्तर के साथ वर्ष 1987 से वर्ष 2007 तक के गोपनीय रिपोर्टों को दाखिल किया गया है जिसमें की गयी टिप्पणियाँ निम्नलिखित है:

श्री कुमार सतीश चन्द्र सिन्हा के गोपनीय सेवा अभिलेखों

Year	Name of Judgment	Reporting Officer/ Hon'ble Judge	Knowledge	Promptness in Disposal	Quality of Judgment	Supervision of Business	Efficiency	Reputation	Attitude towards Colleagues	Relationship with Bar & Public	Net Result
1987-88	Hajipur	Mr. Ram Avtar Singh	Ordinary	Yes	"	"	Yes	Yes	No complain	...	Most ordinary
1988-89	Hajipur	Mr. C.S. Lal	Satisfactory	Yes	...	...	...	Yes	Yes	...	Satisfactory, shaping well
1989-90	Hajipur	Mr. C.S. Lal	average	average		...	…	Yes		...	average
1990-91	Dhanbad	Mr. S.K. P.Verma	average	Good	...	...	Yes	Yes		...	An officer of average merit
1991-92	Dhanbad	Mr. S.I. A.I. Raza			...	...	No	No report against		...	See details*

*Poor knowledge of law and procedure, not industrious, does not fit for exercise of any enhanced power. His relation with was not good. He is an officer with bad reputation. His integrity is also not on board. (Expunged *vide* file no. XXV/95/92)

1992-93	Dhanbad	Mr. G.S. Choubey	Satisfactory	Yes			Yes	No complaint	Well behaved		
1993-94	Dhanbad	Mr. G.S. Choubey	Satisfactory	Yes			Yes	No complaint	Good	Good	Well behaved officer
1994-95	Dhanbad	Mr. G.S. Choubey	Satisfactory	Yes			Yes	Yes	Well behaved		Satisfactory
1996-97	Jamshedpur	Mr. D.N. Chakraborty	Good	Yes, OT fair			Yes	Good	Sober	Well behaved	Intelligent and Good officer
1997-98	Jamshedpur	Mr. D.N. Chakraborty	Fair	Yes, fair			Yes	Fair			OT Satisfactory, Smart Officer
1998-99	Jamshedpur	Mr. D.N. Chakraborty	Fair	Yes			Yes	Fair	Sober		OT capable of improvement
1999-2k	Deoghar	Mr. V. Narayan	Fair	Yes	Good		Yes	Yes	Cordial		OT capable of improvement
2k-2k1	Deoghar	Mr. V. Narayan	Sound	Yes	Good		Yes	Yes	Cordial		OT capable of improvement
08/03/1991	Dhanbad	Hon'ble N.S. Rao, J.	Satisfactory	Satisfactory	Satisfactory	N.A.	Satisfactory	Yes	Good	Good	B Satisfactory
30/08/97	Jamshedpur	Hon'ble P.K. Deo, J.	Good	Yes	B+	Does not arise	Yes	Nothing Heard Against	Well behaved	No complain	A Good officer in shaping.
2001-2002	Dhanbad	Mr. A.B. Shekhar									See details

This Officer has joined in the judgeship on 27.5.2002, hence no remark is given.
Hon'ble Zonal Judge Remark: Good officer

2002-03	Dhanbad	Mr. A.B. Shekhar	Good	Yes	Satisfactory	N.A.	Yes	Yes	Good	Good	Good Officer
2003-04	Saraikella	Mr. B.K. Pandey									under submission before Hon'ble Zonal Judge
2004-2005	Saraikella	Mr. B.K. Pandey	Good	Yes	A(Very Good)	Yes	Yes	Yes	Needs improvement	Needs improvement	B+

2004-2005	Sarai-kella	Mr. Tark-eshwar Prasad	Good	Yes	Yes B+ Good	Yes	Yes	See details	See details	See Details	B+

Reputation: One application in this regard was received from Vigilance Cell. Hon'ble High Court and I have submitted *vide* letter No. 907, dated 12/4/2005.
Allegation regarding his integrity not proved.
Attitude: In General good (Some improvement required towards subordinate and colleagues)

2005-2006	Sarai-kella	Mr. Tarkesh-war Prasad									Under sub-mission before Hon'ble Zonal Judge
2006-2007	Latehar	Mr. S.K. Murari	Good	Yes	Good	Yes	Yes	Yes	Good	Good	B+
2006-2007	Latehar	Mr. Bijay Kumar Pandit	Good	Yes	B+	Good	Yes	Yes	Sober, humble	Cordial	B+

8. चन्द्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2003 (6) SCC 545, में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 235 ब्लैक शीप को अनुशासित करने अथवा निकम्मों को छाँटने की दृष्टि से किसी भी समय किसी न्यायिक अधिकारी के कार्यपालन क्षमता के आकलन में उच्च न्यायालय को सक्षम बनाता है। किसी नियम अथवा आदेश द्वारा उच्च न्यायालय की संवैधानिक शक्ति को संकुचित नहीं किया जार सकता है। इस मामले में निर्णय के पैराग्राफों 43 और 44 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षण निम्नलिखित हैं:–

''43. उत्प्रेषण रिट को जारी करना स्वविवेक का उपाय है। देखें चम्पा लाल बिनानी बनाम सी० आई० टी०, (1971)3 SCC 20 : AIR 1970 SC 645. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा 32 के अधीन अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय और परिणामस्वरुप यह न्यायालय किसी अवैध आदेश को काट नहीं सकता है यद्यपि ऐसा करना विधिवत होगा। किसी दिए गए मामले में, उच्च न्यायालय अथवा यह न्यायालय आवेदक को स्वविवेकी अनुतोष का लाभ देने से इंकार कर सकता है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी स्वविवेकी अधिकारिता का प्रयोग किया है जिसे किसी ऐसे मामले में प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है जहाँ आक्षेपित निर्णय गलत पाया गया है यदि उस कारण से सारवान न्याय किया जा रहा है। (देखें एस० डी० एस० शिपिंग (प्रा०) लि० बनाम जय कन्टेनर सर्विसेज कं० (प्रा०) लि० (2003)4 Supreme 44) अन्य बातों के साथ-साथ ऐसे अनुतोष से इंकार किया जा सकता है जब यह लोकनीति के विरुद्ध होगा अथवा जहाँ किसी अवैध आदेश का अभिखंडन एक अन्य अवैध आदेश को पुनर्जीवित करेगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में यह न्यायालय ऐसे आदेश को पारित करने का हकदार है जो पक्षों के प्रति पूर्ण न्याय होगा।''

44. हमें अपीलार्थीगण के विरुद्ध वार्षिक गोपनीय रिपोर्टो से अवगत कराया गया है। इसका परिशीलन करने के बाद हमारा मत है कि यह एक सुयोग्य मामला नहीं है जहाँ अपीलार्थीगण के पक्ष में अपनी स्वविवेकी अधिकारिता का प्रयोग इस न्यायालय को करना चाहिए। ब्रिजमोहन गुप्ता, [(2003)2 SCC 390: 2003 SCC (L & S) 174] में इस न्यायालय ने अपीलार्थीगण के पक्ष में अपनी स्वविवेकी अधिकारिता का प्रयोग करने से इंकार किया है यद्यपि विधि के अनुरुप नहीं होने के नाते उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किए जाने का दायी पाया गया था।''

9. वर्तमान मामले में, याची के उपर्युक्त गोपनीय रिपोर्टों से स्पष्ट है कि एक अवसर पर उसकी सत्यनिष्ठा वर्ष 1991-92 में रोक ली गयी थी। एक प्रतिकूल टिप्पणी दी गयी थी जिसे अभिलेख से काट दिया गया था। इस प्रकार प्रतिशपथ पत्र में प्रगणित अन्य कारकों के साथ उसके कार्यपालन के उक्त चार्ट, जैसा ऊपर कहा गया है, प्रकट करता है कि याची ने अपनी सेवा के दौरान स्वयं को सुधारा नहीं था और उसका कार्यपालन संतोषजनक नहीं था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों की बड़ी संख्या में अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक सेवा और अन्य सेवाओं के बीच भिन्नता है। आम जनता को न्यायपालिका से बड़ी उम्मीदें है। यदि न्यायिक सेवा में निकम्मे व्यक्ति बने रहते है, उक्त निकम्मे व्यक्ति के अवचार के लिए संपूर्ण न्यायपालिका को दोष दिया जाता है। अपने कर्तव्यों के निर्वहन में न्यायपालिका के समक्ष मुश्किलों और कठिनाईयों की दृष्टि में, **अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ बनाम भारत संघ, [(1992)1 SCC 119]** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने सारे राज्यों और संघीय क्षेत्रों के न्यायिक अधिकारियों की अधिवर्षिता की आयु को 58 वर्ष से 60 वर्ष तक बढ़ाने का निर्देश जारी किया। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में राज्य सरकार द्वारा न्यायपालिका को सुभिन्न योग्य सेवा के रूप में रखा गया है। अत: न्यायिक अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे आम जनता की उम्मीदों पर खरा उतरने के लिए अवसर का उपयोग करेंगे। अत: याची को सेवानिवृत्त करते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आदेश में इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है। याची के समग्र कार्यपालन के मूल्यांकन के बाद लोकहित में याची को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय सद्भावपूर्वक लिया गया था।

10. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में इस रिट याचिका में आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और याची को कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता है। यह रिट याचिका गुणागुणरहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बसन्त कुमार झावर (646, 777, 1216, 1217 में)

ब्रिज किशोर झावर (647, 779, 1218, 1219 में)

बनाम

झारखंड राज्य निगरानी के माध्यम से एवं अन्य (सभी में)

Criminal Revision Nos. 646, 647, 777 with 779 of 2006 with Criminal M.P. Nos 1216, 1217, 1218 with 1219 of 2009. Decided on 22nd November, 2010.

भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910—धारा 39—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—ऊर्जा की चोरी–उन्मोचन आवेदन की खारिजी–विशेष न्यायाधीश (निगरानी) ने केस डायरी के कतिपय पैराग्राफों के परिशीलन के बाद और अभिलेख पर उपस्थित सामग्रियों के आधार पर अपनी व्यक्तिगत संतुष्टि पर धारा 39 के अधीन आरोप के लिए याचीगण के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए प्रथम दृष्टया मामला पाया–याचीगण ने दं॰ प्र॰ सं॰ के अनेक प्रावधानों के अधीन अनेक याचिकाओं को दाखिल किया है और ये सभी गुणागुण रहित होने के कारण अस्वीकार कर दी गयी है–याचीगण यह प्रदर्शित करने में विफल रहे कि अभियोजन का विवरण पूर्णत: बेतुका अथवा अयुक्तिसंगत था और आक्षेपित आदेश अवैध अथवा अनियमित थे जो अंतर्निहित

शक्ति अथवा पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप करने की उपेक्षा करते हों–याचिकाएँ खारिज। (पैरा 33)

निर्णयज विधि.–(2002) 2 SCC 135; (2007) 5 SCC 403; (2007) 4 SCC 70; (2008) 14 SCC 1—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s S. K. Kapur, Biren Poddar, P.K. Khaitan, S. Banerjee, Piyush Poddar, For the Petitioners; Mr. A.K. Kashyap, For the Vigilance; Mr. Manoj Tandon, For the B.S.E.B.; Mr. V.P. Singh, Mr. Mukesh Kumar, For the J.S.E.B..

आदेश

दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 401 सह–पठित धारा 397 के अधीन दाखिल दांडिक पुनरीक्षणों और दंड प्रक्रिया संहिता (दोनों इसमें इसके बाद संहिता के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 482 के अधीन दाखिल दांडिक विविध याचिकाओं को साथ सुना जा रहा है और एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. याची बसन्त कुमार झावर ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 646 वर्ष 2006 में विशेष केस सं॰ 30/89 (पटना निगरानी केस सं॰ 5/89) में श्री के॰ के॰ श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची द्वारा पारित दिनांक 18.3.2006 के आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा अभिकथित अपराध से उसकी उन्मुक्ति के लिए उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी, के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए प्रार्थना की है।

3. एक अन्य याची ब्रिज किशोर झावर ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 647 वर्ष 2006 में दिनांक 24.5.2006 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा श्री के॰ के॰ श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश, (निगरानी), राँची ने विशेष केस सं॰ 30/89 (पटना निगरानी केस सं॰ 5/89) में उन्मुक्ति के लिए दाखिल उसकी याचिका अस्वीकार कर दी है, के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए ऐसी ही प्रार्थना की है।

4. दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 779 वर्ष 2006 में याची ब्रिज किशोर झावर ने दिनांक 3.7.2006 के आक्षेपित आदेश के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा विशेष न्यायाधीश (निगरानी) ने विशेष केस सं॰ 30/89 में उसके और एक अन्य के विरुद्ध भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन आरोप विरचित किया था। याची ने दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान उक्त मामले में आगे की कार्यवाही को स्थगित करने की प्रार्थना की है।

5. याची बसन्त कुमार झावर ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 777 वर्ष 2006 में दिनांक 3.7.2006 के उस आदेश के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए ऐसी ही प्रार्थना की है जिसके द्वारा उसके एवं एक अन्य के विरुद्ध भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन आरोप विरचित किया गया था और विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची के समक्ष लंबित विशेष केस सं॰ 30/89 में आगे की दांडिक कार्यवाही को स्थगित करने की प्रार्थना भी की है।

6. याची बसन्त कुमार झावर ने दांडिक विविध सं॰ 1216 वर्ष 2009 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लेते हुए विशेष केस सं॰ 30/89 में श्री के॰ के॰ श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश (निगरानी) राँची द्वारा पारित दिनांक 3.7.2006 के आदेश, जिसके द्वारा उसके विरुद्ध आरोप विरचित किया गया था, के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए और आगे की कार्यवाहियों के स्थगन के लिए लगभग ऐसी ही प्रार्थना की है।

7. याची बसन्त कुमार झावर ने दांडिक विविध याचिका सं॰ 1217 वर्ष 2009 में इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लेते हुए दिनांक 18.3.2006 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा श्री विनय कान्त खान, विशेष न्यायाधीश (निगरानी) राँची के समक्ष लंबित विशेष केस सं॰ 30/89 में दांडिक अभियोजन से उन्मुक्ति के लिए उसकी प्रार्थना श्री के॰ के॰ श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी, के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए ऐसी ही प्रार्थना की है।

8. याची ब्रिज किशोर झावर ने दांडिक विविध याचिका सं॰ 1218 वर्ष 2009 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अलवम्ब लेते हुए दिनांक 3.7.2006 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा उसके विरुद्ध भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन आरोप विरचित किए गए थे, के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए और विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची के समक्ष लंबित विशेष केस सं॰ 30/89 में आगे की कार्यवाहियों के स्थगन के लिए भी ऐसा ही प्रार्थना की है।

9. याची ब्रिज किशोर झावर ने दांडिक विविध याचिका सं॰ 1219 वर्ष 2009 में इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लेते हुए दिनांक 24.5.2006 के आदेश, जिसके द्वारा विशेष केस सं॰ 30/89 में उसके उन्मोचन के लिए उसकी याचिका श्री के॰ के॰ श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी, के अभिखंडन/अपास्त किए जाने के लिए और वर्तमान दांडिक विविध याचिका के लंबित रहने के दौरान उक्त मामले में आगे की कार्यवाहियों के स्थगन के लिए भी प्रार्थना की है।

10. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक मोहन रजक, उप-आरक्षी अधीक्षक, अपराध अन्वेषण विभाग (विद्युत बोर्ड), पटना ने प्रभारी-अधिकारी-सह-डिप्टी एस॰ पी॰, सी॰ आई॰ डी॰ (बिहार राज्य विद्युत बोर्ड), पटना के समक्ष दिनांक 16.6.89 को एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया जिसमें अन्य बातों के साथ कथन किया गया था कि आरंभिक अन्वेषण पर उसके द्वारा यह एकत्रित किया गया था कि अप्रैल, 1986 से दिसम्बर, 1988 तक की अवधि के दौरान बिहार राज्य विद्युत बोर्ड ने मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ द्वारा अनुचित धनीय लाभों को कारित किए जाने से लगभग 4,00,00,000 (चार करोड़) रुपयों का नुकसान उठाया था। उसमें अभिकथन किया गया था कि बिहार राज्य विद्युत बोर्ड के तीन विद्युत अभियन्ताओं अर्थात् आनन्दी राय, विजय भूषण प्रसाद और सुबोध नारायण ने मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के प्रबंध निदेशक श्री ब्रिज किशोर झावर और इसके मुख्य कार्यपालक अधिकारी श्री ओ॰ पी॰ कपिला के साथ दुरभिसंधि कर दांडिक षडयन्त्र करके बिहार राज्य विद्युत बोर्ड (इसमें इसके बाद बोर्ड के रूप में निर्दिष्ट) को भारी धनीय नुकसान कारित किया। पूर्वोक्त निष्कर्ष सूचक द्वारा ग्रिड सब-स्टेशन आदित्यपुर में स्थापित मीटरों में दर्ज पठन की तुलना मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰, गम्हरिया के कारखाना परिसरों के भीतर स्थापित उपभोक्ता के मीटरों में दर्ज पठन से करके निकाली गयी थी। बोर्ड ने छह किलोमीटर लंबी अच्छी दशा के उच्च गुणवत्ता वाले केबल तार के माध्यम से पावर ग्रिड से विद्युत की आपूर्त्ति किया था किन्तु कारखाना के सिरे पर लाखों यूनिटों का अंतर पाया गया था। सूचक ने विस्तृत चार्ट देते हुए आगे अभिकथन किया कि उपभोग किया गया विद्युत, जैसा उपभोक्ता के परिसरों (मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰) में लगे मीटर में दर्ज किया गया है, उक्त कारखाना में उत्पादन के साथ सह-संबंधित नहीं है। सूचक ने लिखित रिपोर्ट में अभिकथन किया कि बिहार राज्य विद्युत बोर्ड के ऊपर नामित अभियन्ताओं ने मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ को सुकर बनाकर अनुचित लाभ पहुँचाया और विद्युत बिलों के विरुद्ध उक्त कारखाना के आउटस्टेशन चेकों को स्वीकार किया और तद्द्वारा बी॰ एस॰ ई॰ बी॰ को वास्तविक ब्याज और अपने खाते में चेकों के जल्द नगदीकरण से वंचित किया। एक विस्तृत चार्ट देते हुए सूचक ने अभिकथन किया कि वर्ष 1986 के नवम्बर माह के विद्युत के 39.95 लाख यूनिटों के उपभोग के विरुद्ध मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के कारखानों में 5557.21 मिट्रिक टन का उत्पादन दिखाया गया था जबकि वर्ष 1988 के नवम्बर माह में विद्युत के 39.56 लाख यूनिटों के उपभोग से 7702.82 मिट्रिक टन की सीमा तक उत्पादन दिखाया गया था। यहाँ यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि सूचक ने बताया कि पावर ग्रिड स्टेशन में स्थापित मीटर ने पूर्वोक्त अवधियों के लिए विद्युत के क्रमशः 44.58 लाख यूनिटों और 57.76 लाख यूनिटों की आपूर्त्ति दर्शायी थी। सूचक ने आगे

जोड़ा कि ग्रिड से विद्युत का उपभोग उच्चतर पक्ष पर दर्शाया गया था जबकि कारखाना परिसर में स्थापित मीटर में इसे निम्नतर पक्ष पर दर्ज किया गया था, फिर भी, कारखाना में दर्शाये गये ये विद्युत उपभोग के अननुपात में कारखाना में इस्पात का उत्पादन अत्यन्त उच्चतर पक्ष पर दर्शाया गया था जो उक्त कम्पनी के प्रबंधन और विद्युत बोर्ड के अभियन्ताओं के बीच साँठ-गाँठ के कारण ही संभव हो सकता था। एक पृथक चार्ट देते हुए यह अभिकथित किया गया था कि बी॰ एस॰ ई॰ बी॰ को 3.2462 करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ था। जब अनियमितताओं और अवैधताओं की जाँच करने के लिए गठित मीटर पठन कमिटी ने दिनांक 31.3.1987 को उपभोक्ता के परिसर में लगे ट्राईवेक्टर मीटर का परीक्षण किया, यह पता चला था कि महत्तम सीमा मांग भार काम नहीं कर रहा था और उक्त मीटर की परीक्षा के लिए कमिटी ने अधीक्षण अभियन्ता को अनुशंसा की थी। दिनांक 30.4.1987 को परीक्षा के लिए मीटर को हटाया गया था किन्तु चूँकि इसे उपभोक्ता की प्रेरणा पर मिसप्लेस कर दिया गया था, जो एक दांडिक कृत्य अर्थात् साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ है, मीटर की जाँच नहीं की जा सकी थी। सूचक के पास निर्धारित करने का कारण था कि वर्ष 1996 से काफी पहले से मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के संकर्म में बिजली की चोरी जारी थी और मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के प्रबंधन ने ऐसी छिटपुट चोरी को ढँकने के आशय के साथ विद्युत भार 13 के॰ वी॰ ए॰ से 19.6 के॰ वी॰ ए॰ तक बढ़वा लिया था यद्यपि कारखाना को 6.5 के॰ वी॰ ए॰ आपूर्त्ति के लिए पक्षों के बीच करार था किन्तु ऐसा भार बी॰ एस॰ ई॰ बी॰ के विद्युत अभियन्ताओं अर्थात् इस मामले के अभियुक्तगण की प्रेरणा पर प्रतिभूति राशि जमा करवाए बिना बढ़ाया गया था और तद्द्वारा बोर्ड को हानि उपगत हुई थी जिसे 37 लाख रुपया निर्धारित किया गया था। सूचक द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर आनन्दी राय, विद्युत अधीक्षण अभियन्ता, विद्युत आपूर्त्ति सर्किल, जमशेदपुर, विजय भूषण प्रसाद, विद्युत कार्यपालक अभियन्ता, विद्युत आपूर्त्ति डिवीजन, जमशेदपुर, सुबोध नारायण, सहायक विद्युत अभियन्ता, विद्युत आपूर्त्ति सब-डिविजन, आदित्यपुर-II, मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰, गम्हरिया के ब्रिज किशोर झावर और मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰, गम्हरिया के मुख्य कार्यपालक अधिकारी ओ॰ पी॰ कपिला के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409/420/467/468/471/120 B/201 के अधीन, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (2) के अधीन और भारतीय विद्युत अधिनियम 1910 की धाराएँ 39/39A के अधीन भी अभिकथित अपराध के लिए अपराध अन्वेषण विभाग (विद्युत बोर्ड), पटना, पी॰ एस॰ केस संख्या 0005/89 दिनांक 16.6.1989 को दर्ज किया गया था।

11. जैसी ऊपर चर्चा की गयी है, याचीगण बसंत कुमार झावर और ब्रिज किशोर झावर के विरुद्ध और कम्पनी मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰, गम्हरिया, अब मेसर्स उषा मार्टिन इन्डस्ट्रीज लि॰ के विरुद्ध भी भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 39 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए विशेष केस सं॰ 30/89 में दिनांक 3.7.2006 को विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची द्वारा निम्नलिखित तरीके में आरोप विरचित किया गया था।

> *''मैं, के० के० श्रीवास्तव, विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची एतद् द्वारा आपको मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि०, गम्हरिया, जमशेदपुर अब मेसर्स उषा मार्टिन इंडस्ट्रीज लि० उक्त मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि० के तत्कालीन अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक/निदेशक को आरोपित करता हूँ कि आपने वर्ष 81 से 88 के दौरान गम्हरिया, जमशेदपुर में मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि० के परिसर में मीटर में अनुचित सी०*

टी० स्थापित कराके, मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि० के विद्युत भार को समुचित रूप से नहीं बढ़वा करके विद्युत ऊर्जा के वास्तविक उपभोग के संबंध में कार्यकलाप की वास्तविक स्थिति को छुपाते हुए गलत रिपोर्टों को प्रस्तुत करके और उपभोग किए गए विद्युत ऊर्जा के लिए, बिलों को नहीं पेश करके और विद्युत भार को बढ़ाए जाने के निबंधनानुसार नियत मासिक औसत बिल को अनुपातिक रूप से नहीं बढ़वा करके बिहार राज्य विद्युत बोर्ड की विद्युत उर्जा को गैर ईमानदार रूप से निकाला, उपभोग अथवा उपयोग किया और केवल जून, 1986 से दिसम्बर, 1988 तक के दौरान बोर्ड को करोड़ों रुपयों की हानि पहुँचायी और तद्द्वारा विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन तथा मेरे संज्ञान में दंडनीय अपराध कारित किया।

और मैं एतद्द्वारा निर्देश देता हूँ कि आप मेरे समक्ष उक्त आरोप को विचारण का सामना करें।

12. भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 39 को 1986 के अधिनियम 31 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था जो उर्जा की चोरी पर विचार करता है,

''जो कोई भी गैर ईमानदार रूप से किसी उर्जा को निकालता है, उपभोग करता है अथवा उपयोग करता है, वह कारावास जिसकी अवधि तीन वर्षों तक बढ़ायी जा सकती है, अथवा जुर्माना जो एक हजार रुपयों से कम नहीं होगा, अथवा दोनों के साथ दंडनीय होगा और यदि यह सिद्ध किया जाता है कि उपभोक्ता द्वारा उर्जा निकालने, उपभोग करने अथवा उपयोग करने के लिए लाइसेन्सी द्वारा कोई कृत्रिम साधन अथवा अप्राधिकृत साधन का का प्रयोग किया गया है, यह उपधारित किया जाएगा, जब तक विपरीत सिद्ध नहीं किया जाता है, कि उर्जा को निकालना, उपभोग करना अथवा उपयोग करना ऐसे उपभोक्ता द्वारा गैर ईमानदार रूप से कारित किया गया है।''

13. यद्यपि धारा 39A के अधीन भी अभिकथित अपराध के लिए आरोप-पत्र दाखिल किया गया था किन्तु अभियोजन ने धारा 39A के अधीन अथवा भारतीय विद्युत अधिनियम (इसके बाद अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 44 के अधीन अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध दुष्प्रेरण के आरोप को प्रस्तावित नहीं किया था।

14. आरोप परिभाषित किया गया है,

''विनिर्दिष्ट आरोपों का सटीक विनिर्माण।''

किन्तु यहाँ मैं पाता हूँ कि अंशत: भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39 के प्रावधान पर और अंशत: अन्वेषण अधिकारी द्वारा अन्वेषण के क्रम में संग्रहित साक्ष्य पर आधारित विस्तृत अभियोगों को निर्मित किया गया है। मैं आगे पाता हूँ कि विरचित आरोप के बाद के अंश अधिनियम, जैसा यहाँ पहले निर्दिष्ट किया गया है, की धारा 39 के अधीन आरोप गठित नहीं करते है और इसलिए आरोप विरचित करने में सुधारी जा सकने वाली स्पष्ट अनियमितता है।

15. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कपूर ने याचीगण के उन्मोचन के बिन्दु पर तर्क करते हुए निवेदन किया कि अन्वेषण के क्रम में उर्जा की हानि के कारणों की जाँच करने के लिए बिहार राज्य विद्युत बोर्ड ने एक उच्च स्तरीय कमिटि का गठन किया था, जिसका वर्तमान मामले के अन्वेषण अधिकारी श्री उपेन्द्र कुमार भी एक सदस्य थे, विशेषत: यह पता लगाने के लिए कि क्या मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ (संक्षेप में कम्पनी) द्वारा विद्युत बोर्ड के अभियन्ताओं के साथ सांठ-गांठ करके उर्जा की चोरी की गयी थी। कमिटि ने अपने दिनांक 19.1.1996 के रिपोर्ट द्वारा कथन किया कि अनाचार का कोई भी साक्ष्य नहीं था और न ही बोर्ड के अधिकारियों के साथ सांठ-गांठ का साक्ष्य पाया जा सका था। कमिटि द्वारा आगे संप्रेक्षित किया गया था कि मीटर के पठनों में भिन्नता कम्पनी के कारखाना में कम क्षमता के करंट ट्रांसफॉर्मर की स्थापना के कारण थी जिसे विद्युत बोर्ड के अधिकारियों

द्वारा लगाया गया था और पावर ग्रिड के छोर पर और संकर्म में स्थापित मीटर के पठनों के बीच भिन्नता का यह एकमात्र तकनीकी कारण था।

16. श्री कपूर ने इंगित किया कि उच्च स्तरीय कमिटि के रिपोर्ट के आधार पर बोर्ड ने अलग-अलग मदों को दिए बिना 25 वर्षों की अवधि के लिए 11.61 करोड़ रुपयों का पूरक बिल मनमाने रूप से दिया था। याची बसन्त कुमार झावर, जो केवल निदेशक था और कभी-कभी कम्पनी के अध्यक्ष के रूप में काम किया था, को आरंभ में न तो प्राथमिकी में नामित किया गया था और न ही उनका नाम दिनांक 17.9.1996 को दाखिल आरोप-पत्र में अभियुक्त के रूप में आया था किन्तु प्राथमिकी के लगभग आठ वर्षों बाद और प्रथम आरोप पत्र के छह माह बाद अन्वेषण अधिकारी ने केस डायरी के कतिपय पैराग्राफों अर्थात् 1065, 1066, 1067, 1068 और 1069 को निर्दिष्ट करते हुए याची बसन्त कुमार झावर के विरुद्ध द्वितीय आरोप-पत्र दाखिल करने का विकल्प चुना यद्यपि प्रथम आरोप-पत्र दाखिल किए जाने के समय ये पैराग्राफ केस डायरी में उपलब्ध थे और याची बसन्त कुमार झावर का नाम अभियुक्तगण के कॉलम में सम्मिलित करने के लिए कोई नयी सामग्री नहीं थी जो अन्वेषण अधिकारी का असद्भावपूर्ण आशय दर्शाता था।

17. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री कपूर ने आग्रह किया कि यद्यपि बी॰ एस॰ ई॰ बी॰ को हानि उपगत करते हुए 4 करोड़ रुपयों की (उर्जा की चोरी) की गलत संगणना करने का अभिकथन था किन्तु इस बीच कम्पनी ने 6.34 करोड़ रुपयों का भुगतान करके बी॰ एस॰ ई॰ बी॰ की क्षतिपूर्ति की थी और विद्वान विशेष न्यायाधीश (निगरानी) ने अनदेखा किया कि उच्च स्तरीय कमिटि ने आरोप विरचित करते हुए याचीगण को और बोर्ड के अभियन्ताओं को क्लीन चिट दिया था और चूँकि उच्च स्तरीय कमिटी की रिपोर्ट मामले का अभिन्न अंग थी जिसे अभिलेख पर लाया गया था, इसका परिवीक्षात्मक मूल्य था और याचीगण के विरुद्ध आरोप विरचित करने का कोई औचित्य नहीं था।

18. श्री कपूर ने आगे स्पष्ट किया कि केस डायरी का पैराग्राफ 1065 अंतर्विष्ट करता था कि बसन्त कुमार झावर ने वर्ष 1982-85 के दौरान समय के किसी बिन्दु पर कम्पनी के अध्यक्ष के रूप में काम किया था किन्तु किसी स्पष्ट दांडिक कृत्य के अभिकथन के बिना। अन्वेषण अधिकारी ने वस्तुत: याची बसन्त कुमार झावर को विमुक्त कर दिया था और संप्रेक्षित किया था कि गम्हरिया में इसके संकर्म में कम्पनी के दैनिक क्रियाकलापों के साथ उनका कुछ लेना-देना नहीं था, जबकि श्री ओ॰ पी॰ कपिला कम्पनी के प्रेसिडेन्ट थे और मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के संकर्म के प्रभारी थे। इसके दैनिक क्रियाकलाप की देख-रेख कम्पनी के प्रेसिडन्ट द्वारा किया जाता था।

19. केस डायरी के पैराग्राफ 1067 के संबंध में विद्वान वरीय अधिवक्ता ने यह निवेदन करते हुए ध्यान आकृष्ट किया कि कम्पनी के ज्ञापन/संगम-अनुच्छेद के विषय-वस्तु पर कतिपय नोटों को कम्पनी के निर्माण के समय तैयार किए गए संवैधानिक दस्तावेजों से औपचारिक रूप से नकल तैयार किया गया था और वे कम्पनी के गम्हरिया संकर्म के दैनिक प्रबंधन और क्रियाकलापों से संबंधित थे जो आरोपों के संदर्भ में बिल्कुल प्रासंगिक नहीं थे जबकि अन्वेषण अधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया था कि ओ॰ पी॰ कपिला ही, न की कोई अन्य, संकर्म का प्रबंधन कर रहे थे। केस डायरी के पैराग्राफ 1068 ने उपदर्शित किया कि वर्ष 1977-78 से शुरू होने वाले वर्ष 1982-83 तक के कम्पनी रिपोर्ट में यह कथन किया गया था कि प्रासंगिक समय पर याची बसन्त कुमार झावर कम्पनी के अध्यक्ष और निदेशक थे जो भी उनके विरुद्ध विरचित आरोप के साथ सह-संबंधित नहीं था। पैराग्राफ 1069 में अन्वेषण अधिकारी ने दर्ज किया कि कम्पनी के व्यवसाय के कुछ अप्रासंगिक आइटमों से संबंधित कम्पनी के रजिस्ट्रार, कोलकाता के कार्यालय में कतिपय फॉर्मो और दस्तावेजों को हस्ताक्षरित एवं दाखिल किया गया था किन्तु

इन दस्तावेजों में से कोई भी गम्हरिया के संकर्म में कम्पनी के व्यवसाय के संचालन के साथ सह-संबंधित नहीं था। इस प्रकार, समय के किसी भी बिन्दु पर बोर्ड के अधिकारियों के साथ सांठ-गांठ करके विद्युत की छिटपुट चोरी अथवा अभिकथित अनाचार से संबंधित याची बसन्त कुमार झावर द्वारा किए गए किसी भी चीज को निर्दिष्ट करते हुए केस डायरी में अपराध में फँसानेवाला साक्ष्य का एक भी टुकड़ा प्रकट नहीं किया जा सका था, फिर भी, विशेष न्यायाधीश (निगरानी) ने याचीगण बसन्त कुमार झावर, ब्रिजकिशोर झावर और मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के विरुद्ध (शायद गलत रूप से) आरोप विरचित किया। याची बसन्त कुमार झावर की अपने उन्मोचन के लिए याचिका को अस्वीकार करते हुए दिनांक 18.3.2006 को विशेष न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया:–

''अभिलेखों के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि याची के विरुद्ध दिनांक 20.3.97 का आरोप-पत्र सं० 7 दिनांक 22.3.97 को दाखिल किया गया था और तत्पश्चात याची के विरुद्ध संज्ञान लिया गया था। दिनांक 22.8.97 का आर्डर-शीट दर्शाता है कि याची ने पहले मामले से उन्मोचन के लिए आवेदन दाखिल किया था और इसे इस न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। मैंने केस डायरी और सी० डी० सं० 238 के पैरा 1065, 1067, 1068 और 1069 का परिशीलन भी किया है जो दर्शाता है कि याची उक्त कम्पनी का अध्यक्ष और निदेशक था और यह भी पाता हूँ कि याची के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है।

सी० डी० में उपलब्ध सामग्री के साथ जुड़े उक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि मामले में अग्रसर होने के लिए याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य है। अतः याची बसन्त कुमार झावर की ओर से दाखिल दिनांक 30.1.2006 की उन्मोचन याचिका को एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।''

20. याची ने विशेष केस सं॰ 30/89 में विशेष न्यायाधीश (निगरानी) के समक्ष एकमात्र इस आधार पर अपने उन्मोचन के लिए प्रार्थना की थी कि विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए उनमें से किसी के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं थी और यह कि केस डायरी के उक्त पैराग्राफों में अंतर्विष्ट अभिलेख पर दर्शायी गयी एकमात्र सामग्री उक्त अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला गठित नहीं करती थी।

21. इसी प्रकार, याची ब्रिज किशोर झावर की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन दाखिल उन्मोचन याचिका पर विचार करते हुए विद्वान विशेष न्यायाधीश ने संप्रेक्षित किया:–

''प्राथमिकी के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि उसे प्राथमिकी में नामित किया गया है और याची के विरुद्ध आरोप-पत्र भी दाखिल किया गया है। तत्पश्चात, याची के विरुद्ध संज्ञान लिया गया था। केस डायरी सं० 238 के परिशीलन से, पैरा 1065, 1067, 1068 दर्शाता है कि याची कम्पनी का प्रबंधक निदेशक था। मैं यह भी पाता हूँ कि आरोप विरचित करने के लिए याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है।''

ऐसे संप्रेक्षण के साथ याची ब्रिज किशोर झावर के उन्मोचन के लिए दाखिल याचिका को विशेष न्यायाधीश द्वारा दिनांक 24.5.2006 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। बाद में, भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अन्य के साथ याची के विरुद्ध दिनांक 3.7.2006 को विद्वान विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची द्वारा आरोप विरचित किया गया था।

22. श्री कपूर ने आगे आग्रह किया कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन दाखिल उन्मोचन याचिका पर विचार करते हुए विशेष न्यायाधीश को विस्तृत कारणों को देना आवश्यक नहीं था किन्तु निष्कर्ष पर आने से पहले अपने व्यक्तिपरक संतुष्ट के लिए न्यायालय को अपने समक्ष रखे गए सामग्री पर न्यायिक विवेक का इस्तेमाल करना अपेक्षित था और वर्तमान मामले में यह स्पष्ट होगा कि उसमें अंतर्विष्ट प्रथम दृष्टया सामग्री को प्रकट किए बिना विशेष न्यायाधीश ने केवल केस डायरी के कतिपय पैराग्राफों को उद्धृत किया और न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना याचिका को अस्वीकार कर दिया।

23. सोमा चक्रवर्ती के मामले में, (2007)5 SCC 403, सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 10 में अभिनिर्धारित किया,

> *''आरोप विरचित करने के पहले न्यायालय को अभिलेख पर लायी गयी सामग्री पर अपना न्यायिक विवेक का इस्तेमाल करना ही होगा और इसे संतुष्ट होना ही होगा कि अभियुक्त द्वारा अपराध करना संभव था।''*

24. इसी प्रकार, **(2002)2 SCC 135** में प्रकाशित **दिलावर बालू कुराने के मामले** में अभिनिर्धारित किया गया था,

> *''.....सामान्यतः यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव है और यदि न्यायाधीश संतुष्ट हैं कि उसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य अभियुक्त के विरुद्ध कुछ संदेह को, किन्तु गंभीर संदेहों को नहीं, उद्भूत करते हैं, वह अभियुक्त को उन्मोचित करने में पूर्णतः न्यायोचित होंगे.....न्यायाधीश किसी डाकघर अथवा अभियोजन के प्रतिनिधि के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं <u>बल्कि उन्हें मामले की व्यापक संभाव्यताओं, साक्ष्य के कुल प्रभाव और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करना होगा ...।''</u>*

25. किन्तु, वर्तमान मामले में, विद्वान वरीय अधिवक्ता ने जोड़ा कि याचीगण के विरुद्ध आरोप की विरचना को न्यायोचित ठहराने के लिए कोई सामग्री नहीं थी यद्यपि प्रथम दृष्टया सामग्री इंगित करने के लिए विस्तृत कारणों को देना विशेष न्यायाधीश के लिए आवश्यक नहीं था और कतिपय पैराग्राफों को निर्दिष्ट करते हुए अभियोजन द्वारा दर्शायी गयी सामग्री उनमें से किसी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अपराध गठित करने के लिए निश्चय ही पर्याप्त नहीं थी। विशेष न्यायाधीश ने बिहार राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा गठित उच्च स्तरीय कमिटि द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को न तो देखा था और न ही निर्दिष्ट किया था, यद्यपि यह अभिलेख का अंश था, जिसके द्वारा याचीगण को उनके दांडिक दायित्व से विमुक्त कर दिया गया था और सूचक द्वारा प्राथमिकी में लगाए गए अभिकथनों पर विश्वास नहीं किया गया था और बिहार राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा गठित उच्च स्तरीय कमिटि ने सांठ-गांठ करके विद्युत की चोरी का कोई अभिकथन नहीं किया था।

26. अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए, विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 आरोप विरचित किए जाते समय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत बचाव सामग्रियों के परीक्षण पर कोई वर्जना नहीं लगाती है।

27. रुक्मिणी नारवेकर के मामले, (2008)14 SCC 1 में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया,

> *''.....जहाँ कुछ बचाव सामग्रियाँ, जब इन्हें विचारण न्यायालय को दर्शाया जाता है, पक्के तौर पर प्रदर्शित करेंगी कि अभियोजन का विवरण पूर्णतः बेतुका और*

अयुक्तिसंगत है और ऐसे काफी विरल मामलों में आरोप विरचित किए जाते समय अथवा संज्ञान लिए जाते समय न्यायालय द्वारा बचाव सामग्रियों पर विचार किया जा सकता है।''

28. श्री कपूर ने आगे निवेदन किया कि याची बसन्त कुमार झावर स्वीकृत रूप से एक सीमित अवधि के लिए मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰, अब मेसर्स उषा मार्टिन इंडस्ट्रीज लि॰ के अध्यक्ष थे और याची ब्रिज किशोर झावर उक्त कम्पनी के प्रबंध निदेशक थे किन्तु उनमें से किसी के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त तर्कपूर्ण सामग्री नहीं लायी जा सकी थी और ऊपर निर्दिष्ट किए गए कुछ पैराग्राफों में अंतर्विष्ट सामग्रियों पर उनकी दोषसिद्धि सुनिश्चित करना अभियोजन के लिए संभव नहीं था।

29. एस॰ एम॰ एस॰ फार्मास्यूटिकल्स लि॰ बनाम नीता भल्ला एवं एक अन्य, (2007)4 SCC 70 पैरा 20 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि,

''निदेशक का दायित्व उस तिथि पर विनिश्चित किया जाना चाहिए जिसपर अपराध किया गया है। केवल इसलिए कि इसमें का प्रत्यर्थी सं॰ 1 दिनांक 15.2.1995 के तात्पर्यित संकल्प का पक्ष था स्वयं में इस निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाता है कि वह कम्पनी के क्रियाकलापों के साथ सक्रिय रूप से जुड़ा था। इस न्यायालय ने इस मामले में दृढ़तापूर्वक अभिनिर्धारित किया है कि निदेशकों की एक वृहत संख्या हो सकती है किन्तु उनमें से कुछ कम्पनी के दैनिक क्रियाकलापों के प्रबंधन के साथ जुड़े नहीं हो सकते हैं और इस प्रकार वे कम्पनी के व्यावसाय के संचालन के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। प्रकथनों को यह वर्णन करना ही होगा कि व्यक्ति जिस पर कम्पनी के अपराध किए जाने के लिए प्रतिनिधिक दायित्व है, कम्पनी के व्यावसाय के संचालन का प्रभारी और जिम्मेदार दोनों था। उसमें अधिकथित अपेक्षाओं को मिलाकर, न की अलग-अलग करके, पढ़ा जाना होगा। जब किसी विधिक कल्पना को उठाया जाता है। उसके घटकों को संतुष्ट करना ही होगा।''

30. श्री कपूर ने यह स्पष्ट करते हुए अपना तर्क समाप्त किया कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा लिखा गया केस डायरी का पैराग्राफ-1065 स्पष्ट था कि श्री ओ॰ पी॰ कपिला कम्पनी के प्रेसिडेन्ट थे और गम्हरिया स्थित मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के संकर्म के प्रभारी थे। कम्पनी के दैनिक क्रियाकलापों की देख-भाल अथवा प्रबंधन कम्पनी के प्रेसिडेन्ट द्वारा किया जाता था। कम्पनी के मुख्यालय के साथ पत्राचार भी प्रेसिडेन्ट द्वारा किया जाता था। मामले के अन्वेषण के क्रम में केस डायरी में अन्वेषण अधिकारी के ऐसे निष्कर्ष ने याचीगण की निर्दोषिता को सुझाया और उनका दांडिक अभियोजन न्याय की घोर हानि होगी।

31. विपक्षी पक्षकार राज्य निगरानी की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कश्यप ने संक्षेप में निवेदन किया कि क्या अध्यक्ष/निदेशक कम्पनी के संपूर्ण प्रभार में था और बोर्ड के पदाधिकारियों के साथ सांठ-गांठ करके अपने संकर्म में विद्युत की चोरी द्वारा बिहार राज्य विद्युत बोर्ड को हानि पहुँचाते हुए प्रतिनिधिक दायित्व का जिम्मेवार था, यह तथ्य का प्रश्न है जिसे विचारण के दौरान पक्षों की ओर से साक्ष्य देकर ही विनिश्चित किया जा सकता था और इस प्रकार आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

32. केस डायरी के पैराग्राफ 1068 ने उपदर्शित किया कि वित्तीय वर्ष 1978-79 से वर्ष 1982-83 तक के मेसर्स उषा एलॉय एण्ड स्टील लि॰ के वार्षिक रिपोर्टों की प्रमाणित प्रति के परीक्षण के बाद

अन्वेषण अधिकारी ने एकत्रित किया कि याची ब्रिज किशोर झावर उक्त कम्पनी का प्रबंध निदेशक था और बाद के वित्तीय वर्ष में वह वाइस प्रेसिडेन्ट भी था। अन्वेषण अधिकारी द्वारा वार्षिक बयानों के परिशीलन पर एकत्रित किया गया था कि श्री बसन्त कुमार झावर उक्त कम्पनी का अध्यक्ष-सह-निदेशक था और उसके कार्यकाल के दौरान गम्हरिया के संकर्म में विद्युत आपूर्त्ति की चोरी की गयी थी। अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी ने आगे एकत्रित किया कि लिमिटेड कम्पनी से संबंधित समस्त सांविधिक दस्तावेज ब्रिजकिशोर झावर द्वारा प्रबंध निदेशक के रूप में पृष्ठांकित किए गए थे जबकि बसन्त कुमार झावर को अध्यक्ष के रूप में दर्शाया गया था। अपराध कम्पनी के संकर्म द्वारा चार करोड़ रुपयों की विद्युत चोरी से संबंधित था और याचीगण के अध्यक्ष एवं निदेशक/प्रबंध निदेशक होने के नाते आरोप विरचित किए जाने के चरण पर विशेष न्यायाधीश द्वारा सही प्रकार से विमुक्त नहीं किया जा सका था।

33. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों याचीगण की ओर से दिए गए विस्तृत तर्क और विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए उत्तर को ध्यान में रखते हुए, मैं सार पाता हूँ कि विद्वान विशेष न्यायाधीश (निगरानी) ने केस डायरी के कतिपय पैराग्राफों के परिशीलन के बाद और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि पर भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धारा 39 के अधीन आरोप के लिए याचीगण के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए प्रथम दृष्टया मामला पाया। याचीगण ने दंड प्रक्रिया संहिता के अनेक प्रावधानों के अधीन अनेक याचिकाओं को दाखिल किया है बल्कि उन्हें उन्मोचित करके उनकी दांडिक कार्यवाही को अपास्त/अभिखंडित करने के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब भी लिया है जो काफी समय से लंबित पड़ी है और इसे एक ही आदेश द्वारा उनकी समस्त याचिकाओं को गुणागुणरहित पाए जाने के कारण अस्वीकार किया जाता है। विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कपूर विशेष केस सं॰ 30/89 में विशेष न्यायाधीश (निगरानी), राँची द्वारा दर्ज आक्षेपित आदेश में जिसके द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन याचीगण द्वारा दाखिल याचिकाओं को क्रमिक तिथियों पर अस्वीकार कर दिया गया था और उनलोगों के विरूद्ध भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39 के अधीन आरोप विरचित किया गया था, कोई भी अवैधता, अनियमितता अथवा अनौचित्यता इंगित करने में विफल रहे जो आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की अपेक्षा करता हो। मैं विपक्षी पक्षकार राज्य निगरानी की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कश्यप द्वारा किए गए निवेदनों और दृष्टिकोणों से सहमत हूँ कि क्या अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक/निदेशक दी गयी परिस्थितियों में संकर्म के दैनिक क्रियाकलापों का संपूर्ण प्रभारी है और प्रतिनिधिक दायित्व का जिम्मेदार है, यह तथ्य का प्रश्न है जिसे केवल पक्षों द्वारा साक्ष्य देकर ही विनिश्चित किया जा सकता है। याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कपूर यह प्रदर्शित करने में विफल रहे कि अभियोजन का विवरण पूर्णतः बेतुका और अयुक्तिसंगत था और आक्षेपित आदेश अवैध अथवा अनियमित थे जो अंतर्निहित शक्ति अथवा पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में हस्तक्षेप आवश्यक बनाते हों। चूँकि इसमें की याचिकाएँ गुणागुण रहित हैं, उन सभी को अस्वीकार किया जाता है किन्तु इस आदेश की प्राप्ति के आठ माह के भीतर विशेष केस सं॰ 30/89 के समापन का निर्देश विशेष न्यायाधीश को दिया जाता है। उक्त चर्चा की दृष्टि में और चूँकि आई॰ ए॰ सं॰ 1739 वर्ष 2009 और आई॰ ए॰ सं॰ 1740 वर्ष 2009 पर जोर नहीं दिया गया था, अतः इन दोनों आवेदनों को जोर नहीं दिए जाने के कारण खारिज किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

दिलीप कुमार

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 870 of 2009. Decided on 23rd September, 2010.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण—याची को भरण-पोषण भत्ता के बकायों के साथ 1500/-रुपया मासिक भरण-पोषण का भुगतान विपक्षी पक्षकार को करने का निर्देश कुटुम्ब न्यायालय द्वारा दिया गया—विपक्षी पक्षकार याची की पहली पत्नी थी और आपसी सहमति के आधार पर पक्षों ने एक दूसरे को तलाक दे दिया था—यदि प्रथम विवाह समाप्त कर दिया जाता है और आवेदक-वि॰ प॰ अविवाहित बना रहता है और वह अपनी देख-भाल करने में अक्षम है तब वह अविवाहित बने रहने तक भरण-पोषण का दावा करने की हकदार है—विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन भरण-पोषण का दावा करने के लिए आवेदक-विपक्षी पक्षकार हकदार है—पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (पैराएँ 7 से 9)

निर्णयज विधि.—1995(5) SCC 299; 1996(1) SCC 39—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. A.S. Dayal, For the Petitioner; Mr. Shekhar Sinha, For the State; Mr. Jay Shankar Pandey, For the Opp. Party No. 2.

आदेश

याची ने यह पुनरीक्षण आवेदन विविध केस सं॰ 66 वर्ष 2005 के संबंध में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 15 सितम्बर, 2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया है जिसके द्वारा अवर न्यायालय ने आवेदन दाखिल किए जाने की तिथि से 1500/-रुपया मासिक भरण-पोषण भत्ता के भुगतान करने और अक्टूबर, 2009 और उसके आगे से इसका प्रत्येक माह के 15वें दिन के पहले भुगतान करने का निर्देश दिया है। इसके अतिरिक्त, उसे आदेश के तीन माह के भीतर तीन बराबर किश्तों में दिनांक 16.11.2005 से सितम्बर, 2009 तक भरण-पोषण भत्ता के बकाए का भुगतान करने का निर्देश भी दिया गया है।

2. संक्षेप में, आवेदक-विपक्षी पक्षकार का मामला यह है कि वह याची की विधिवत विवाहिता पत्नी है। उनका विवाह हिन्दू रीति-रिवाजों के अनुसार दिनांक 26.5.1985 को संपन्न कराया गया था और उक्त विवाह-संबंध से आवेदक-विपक्षी पक्षकार को दो पुत्र अर्थात् आलोक कुमार और मंटू कुमार है। कुछ समय बाद, आवेदक-विपक्षी पक्षकार को ज्ञात हुआ कि उसका पति चरित्रहीन है और उसने एक रखैल रखा है और वह अक्सर उसके साथ रहता है। दिनांक 29.9.1997 को याची ने आवेदक-विपक्षी पक्षकार को उसके नैहर भेजा और उससे कहा कि वह वापस आएगा और 15-20 दिनों के भीतर उसे ले जाएगा। किन्तु तत्पश्चात, याची उसके पास उसे उसके ससुराल ले जाने के लिए कभी नहीं आया और याची वर्ष 1997 से उसकी उपेक्षा किया करता था और उसे भरण-पोषण की कोई राशि नहीं देता था। दिनांक 14.10.1997 को आवेदक-विपक्षी पक्षकार अपने पिता के साथ याची के निवास स्थान गयी और वहाँ उसने पाया कि एक महिला उक्त घर में रह रही थी जिसने उसे बताया कि उसने याची के साथ पहले ही विवाह कर लिया था।

आवेदक-विपक्षी पक्षकार का मामला आगे यह है कि वह एक अर्द्ध-साक्षर महिला है और स्वयं की देख-भाल के लिए उसके पास आय का स्रोत नहीं है। दूसरी ओर, याची बोकारो इस्पात कारखाना में ऑपरेटर के रूप में कार्यरत है और वेतन के रूप में प्रति माह 20,000/- रुपयों की राशि अर्जित करता है।

3. याची उपस्थित हुआ और दिनांक 18.3.2008 को अपना कारण-पृच्छा दाखिल किया जिसमें कथन किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन याची द्वारा दाखिल याचिका पोषणीय नहीं है। किन्तु उसने स्वीकार किया है कि आवेदक-विपक्षी पक्षकार उसकी पहली पत्नी थी और दोनों पक्षों ने आपसी सहमति के आधार पर एक-दूसरे को तलाक दे दिया था और तलाक के बाद वह अपने गाँव के घर में रह रही है। उसने अपने कारण-पृच्छा में आगे कथन किया है कि पहले भी आवेदक-विपक्षी पक्षकार ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन एक मामला, विविध केस सं॰ 24 वर्ष 1999 दाखिल किया है जिसे सी॰ जे॰ एम॰ के न्यायालय, राँची द्वारा खारिज कर दिया गया है। दिनांक 19.9.1996 को जिला न्यायाधीश, बोकारो ने वैवाहिक केस सं॰ 4 वर्ष 1996 में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 (b) के अधीन पक्षों के बीच तलाक अनुज्ञात किया है। आवेदक-विपक्षी पक्षकार ने जिला न्यायाधीश, बोकारो के समक्ष सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश IX, नियम 13 के अधीन विविध केस सं॰ 9 वर्ष 1998 दाखिल किया था किन्तु इसे भी खारिज कर दिया गया है। याची ने अपनी याचिका में यह कथन भी किया है कि उसके दोनों पुत्र अब वयस्क हैं और उसका ज्येष्ठ पुत्र भोपाल में इंजीनियरिंग का अध्ययन कर रहा है और कनिष्ठ पुत्र डी॰ पी॰ एस॰, बोकारो का छात्र है और वह अपने दोनों पुत्रों की देख-भाल किया करता था। उसने आगे कथन किया है कि आवेदक-विपक्षी पक्षकार के साथ परस्पर तलाक के बाद उसने वन्दना नामक एक अन्य महिला से विवाह कर लिया और वर्तमान में, वह उसके साथ रह रहा है। आवेदक-विपक्षी पक्षकार ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन याची के विरुद्ध एक परिवाद मामला C-564 वर्ष 1997 भी दाखिल किया था किन्तु इसे सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा खारिज कर दिया गया था।

4. आवेदक-विपक्षी पक्षकार ने स्वयं सहित तीन गवाहों का परीक्षण अपना मामला सिद्ध करने के लिए किया है। दूसरी ओर, याची ने केवल स्वयं को वि॰ प॰ सं॰-1 के रूप में परीक्षित किया है किन्तु उसने कुछ दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् प्रदर्श-A वैवाहिक केस सं॰ 4 वर्ष 1996 के निर्णय की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श-B विपक्षी पक्षकार के अभिसाक्ष्य की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श-C- याची दिलीप कुमार के अभिसाक्ष्य की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श-D डिक्री की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श E–वैवाहिक केस सं॰ 4 वर्ष 1996 के ऑर्डर-शीट की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श-F केस सं॰ C 964 वर्ष 1997 के निर्णय की प्रमाणित प्रति, प्रदर्श-G विविध अपील सं॰ 9 वर्ष 1998 के ऑर्डर-शीट की प्रमाणित प्रति और प्रदर्श-H विवाह प्रमाण पत्र को प्रस्तुत किया है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ एस॰ दयाल निवेदन करते हैं कि विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया है क्योंकि याची ने दस्तावेजी साक्ष्य को दाखिल किया है जो स्पष्टत: सिद्ध करते हैं कि दोनों पक्षों ने जिला न्यायाधीश, बोकारो से आपसी सहमति के आधार पर तलाक डिक्री प्राप्त किया है। श्री दयाल आगे प्रतिवाद करते हैं कि आवेदक-विपक्षी पक्षकार ने पहले भी दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन दाखिल किया था जिसे विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा खारिज कर दिया गया है। इस प्रकार, अपने भरण-पोषण के भुगतान के लिए एक के बाद दूसरी याचिका दाखिल करके आवेदक-विपक्षी पक्षकार को इस प्रकार से याची को परेशान नहीं कर सकता है। श्री दयाल ने आगे प्रतिवाद किया है कि यह आवेदक-विपक्षी पक्षकार के साक्ष्य में आया है कि वह बाजार में सब्जी, आदि बेचकर स्वयं का भरण-पोषण कर रही है और इस व्यवसाय से उसको अच्छी आमदनी है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि वह स्वयं का भरण-पोषण करने में अक्षम है।

6. आवेदक-विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री जयशंकर पांडे ने प्रतिवाद किया है कि यद्यपि याची ने आपसी सहमति द्वारा आवेदक-विपक्षी पक्षकार को तलाक दिया और यदि उसने पुनर्विवाह नहीं किया है, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125(4) के फलस्वरुप, जो उसके मामले पर लागू नहीं होता है, उसे भरण-पोषण देने से इंकार नहीं किया जा सकता है।

7. अपने प्रतिवाद के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **वनमाला (श्रीमती) बनाम एच॰ एम॰ रंगनाथ भट्ट 1995 (5) SCC 299,** में प्रकाशित मामले और **गुरमीत कौर बनाम सुरजीत सिंघल उर्फ जीत सिंह , 1996 (1) SCC 39,** में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को उद्धृत किया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **वनमाला (श्रीमती) बनाम रंगनाथ भट्ट 1995 (5) SCC 299** में प्रकाशित मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

3. संहिता की धारा 125 पत्नियों, संतानों और माता-पिता को भरण-पोषण प्रदान करने का प्रावधान करती है। धारा 125 की उपधारा (1) अन्य बातों के साथ-साथ कहती है कि यदि पर्याप्त साधनों वाला कोई व्यक्ति स्वयं का भरण-पोषण करने में अक्षम अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में उपेक्षा करता है अथवा इंकार करता है, तो प्रथम श्रेणी का दंडाधिकारी, ऐसी उपेक्षा अथवा इंकार का प्रमाण दिए जाने पर ऐसे व्यक्तियों को 500/-रुपयों से अनधिक अपनी पत्नी को भरण-पोषण के लिए मासिक भत्ता देने जैसा दंडाधिकारी समुचित समझता है, और ऐसे व्यक्ति को इसका भुगतान करने, जैसा समय-समय पर दंडाधिकारी निर्देशित कर सकता है, का आदेश दे सकता है। उपधारा के स्पष्टीकरण का खंड (b) अभिव्यक्ति ''पत्नी'' को परिभाषित करता है, जो उस महिला को सम्मिलित करता है जिसे तलाक दिया गया है अथवा जिसने अपने पति से तलाक प्राप्त कर लिया गया है और पुनर्विवाह नहीं किया है। वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी द्वारा प्रतिवाद नहीं किया गया है कि हिन्दु विवाह अधिनियम की धारा 13-B के अधीन तलाक का डिक्री प्राप्त कर लेने के बाद अपीलार्थी ने पुनर्विवाह कर लिया है। यह भी विवादित नहीं है कि तलाक का डिक्री पारित किए जाने के पहले अपीलार्थी प्रत्यर्थी की विधिवत विवाहित पत्नी थी। ऊपर निर्दिष्ट परिभाषा के फलस्वरुप वह भरण-पोषण की हकदार होगी यदि वह दर्शा सकती है कि प्रत्यर्थी ने उसकी उपेक्षा की थी अथवा उसके भरण-पोषण से इंकार किया था। किन्तु प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान धारा 125 की उपधारा (4) की ओर आकृष्ट किया है जिसका पठन निम्नलिखित है:-

125 (4) इस धारा के अधीन कोई पत्नी अपने पति से भत्ता प्राप्त करने की हकदार नहीं होगी यदि वह जारकर्म कर रह रही है अथवा यदि, किसी पर्याप्त कारण के बिना, अपने पति के साथ रहने से इंकार करती है अथवा यदि वे आपसी सहमति से पृथक रूप से रह रहे हैं।

इस धारा के सरल पठन पर यह निष्पक्षतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त उपधारा में अभिव्यक्ति ''पत्नी'' उस महिला, जिसे तलाक दे दिया गया है, को सम्मिलित करने के अर्थ के रूप में नहीं है। ऐसा इस स्पष्ट कारण से है कि जब तक पति-पत्नी का संबंध नहीं है, तलाकशुदा महिला का जारकर्म में रहने अथवा पर्याप्त कारण के बिना अपने पति के साथ रहने से इंकार करने का प्रश्न हो नहीं सकता है। तलाके के बाद किसी महिला का अपने पति के साथ रहने का अवसर ही कहाँ होता है? इसी प्रकार, आपसी सहमति द्वारा पति-पत्नी के पृथक रूप से रहने का प्रश्न नहीं होगा क्योंकि तलाक के बाद पृथक रूप से रहने के लिए सहमति की आवश्यकता नहीं होती है। अतः इस संदर्भ में धारा 125 की उपधारा (4) उस महिला के मामले पर लागू नहीं होती है जिसे तलाक दे दिया गया है अथवा जिसने तलाक का डिक्री प्राप्त कर लिया है। अतः हमारे दृष्टिकोण में यह प्रतिवाद सुआधारित नहीं है।

8. एक अन्य मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यदि प्रथम विवाह को समाप्त कर दिया गया है और आवेदक-विपक्षी पक्षकार अविवाहित बना रहता है और स्वयं का भरण-पोषण करने में अक्षम है, तब वह अपने अविवाहित बने रहने तक भरण-पोषण का दावा करने की हकदार है।

9. विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता, श्री पाण्डेय ने आगे प्रतिवाद किया है कि याची ने न्यायालय के समक्ष न तो अपने कारण-पृच्छा में और न ही अपने साक्ष्य में इंकार किया है कि वह बोकारो इस्पात कारखाना में ऑपरेटर के रूप में कार्यरत है और उसका मासिक वेतन 20,000/- रुपया है। दूसरी ओर, उन्होंने आगे निवेदन किया है कि आवेदक-विपक्षी पक्षकार बाजार में सब्जी बेचकर किसी तरह अपना भरण-पोषण कर रही है। अत: विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया है कि आवेदक-विपक्षी पक्षकार दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन भरण-पोषण का दावा करने की हकदार है।

दोनों पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करते हुए और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में भी जैसा पहले कहा गया है, मैं आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता अथवा अनौचित्यता नहीं पाती हूँ। तद्नुसार, यह पुनरीक्षण आवेदन एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

बलभदर साहू उर्फ भदर एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 402 of 2000. Decided on 29th October, 2010.

एस॰ टी॰ सं॰ 345 वर्ष 1995 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, गुमला द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 18.7.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 19.7.2002 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 307/34 एवं 148—हत्या का प्रयास–दोषसिद्धि और दंडादेश–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पूर्णत: संपुष्ट नहीं किया गया–समस्त उपहतियाँ अत्यन्त लघु आयामों वाली और सरल प्रकृति की थी–विवादित भूमि पर कब्जा सुरक्षित करने के लिए भूमि विवाद, जो दुश्मनी का एकमात्र कारण था, के कारण पुरानी दुश्मनी के बारे में गवाह संगत थे–इस प्रकार, अपीलार्थीगण को झूठा आलिप्त किए जाने से इंकार नहीं किया जा सकता था–जहाँ बंदूक और पिस्तौल से गोली चलाने और विस्फोट कारित करते हुए बम फेंकने का अभिकथन है, घटना स्थल स्थापित करने की भारी जवाबदेही अभियोजन पर है–जहाँ परिवाद का विषयवस्तु सूचक को भी ज्ञात नहीं है, उस पर विश्वास करना सुरक्षित नहीं होगा–घटना स्थल को स्थापित नहीं किया जा सका था–आई॰ ओ॰ के अपरीक्षण से अपीलार्थीगण के बचाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपीलार्थीगण दोषमुक्त।
(पैराएँ 13 से 16)

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Chaturvedi, Md. Zaid Ahmad, For the Appellants; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान अपील पालकोट पी॰ एस॰ केस सं॰ 49 वर्ष 1994, तत्सम जी॰ आर॰ सं॰ 478 वर्ष 1994 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 345 वर्ष 1995 में श्री आलोक कुमार दूबे, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, गुमला द्वारा दर्ज दिनांक 18/19.7.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. अपीलार्थी सं॰ 1 बलभदर साहू उर्फ भदर को भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और पाँच वर्षों के लिए कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। उसे आगे भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और इस संप्रेक्षण के साथ तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था कि दोनों दंडादेश साथ-साथ चलेंगे। अन्य अपीलार्थीगण अर्थात् बसन्त साहू, अभिमन्यु साहू उर्फ मनु साहू, बाल्मीकी साहू, अनिल साहू और जोगी खरिया उर्फ जेवियर डुंगडुंग को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 307/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उनमें से प्रत्येक को तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। उन्हें आगे भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उनमें से प्रत्येक के विरुद्ध तीन वर्षों के कठोर कारावास का दंडादेश दर्ज किया गया था। दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला, जैसा मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गुमला के समक्ष प्रस्तुत परिवाद सं॰ 91 वर्ष 1994 में परिवादी/सूचक लेडवा सिंह द्वारा बताया गया है, यह है कि दिनांक 18.7.1994 को दिन के लगभग 11 बजे सह-अभियुक्त शिवचन्द पंडित और हरि मुंडा सहित समस्त अपीलार्थीगण बन्दूक, पिस्तौल से लैस होकर मुसरी टोली गाँव आए और गवाहों और परिवादी को धमकाते हुए कि उन्हें गोली मार दी जाएगी, घर से बाहर निकलने का आदेश देते हुए चुनौती दी। इसी क्रम में अभिकथन किया गया था कि अपीलार्थी बलभदर साहू उर्फ भदर ने किसी अभिमन्यु साहू उर्फ मुनु साहू के लाइसेन्सी बन्दूक से गोलियाँ चलाना शुरू किया था, जिसके परिणामस्वरुप ऐसी गोलीबारी से भयभीत होकर गाँव वाले गाँव छोड़कर चले गए और स्वयं को फगू सिंह के बगीचा में छिपा लिया। अभिकथन किया गया था कि अभियुक्तगण सोमरा सिंह और कुयू सिंह को खोज रहे थे। किन्तु अभियुक्तगण ने कुछ गवाहों के फगू सिंह के बगीचा में खुद को छिपाते देखा और परिणामस्वरुप, यह अभिकथन किया गया है, अपीलार्थी बलभदर साहू उर्फ भदर ने बन्दूक से गोली दागी जिससे परिवादी/सूचक के दांए हाथ, पीछे के भाग और दांए पैर में उपहति कारित हुई। देशी पिस्तौल से भी गोली चलाए जाने का अभिकथन है किन्तु किसी को उपहति नहीं हुई थी। घटना की उत्पत्ति को प्रकट करते हुए परिवादी ने कथन किया कि **सोमरा सिंह एवं अन्य बनाम बसन्त साहू एवं अन्य** के बीच दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही शुरू की गयी थी। ऐसी कार्यवाही के विरुद्ध अपर सत्र न्यायाधीश के न्यायालय में अपील दाखिल की गयी थी। घटना की सूचना पुलिस थाना में दी गयी थी किन्तु चूँकि अभियुक्त के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी, परिवादी ने परिवाद याचिका के नीचे अंगूठा की छाप लगाते हुए न्यायालय के समक्ष लिखित परिवाद दाखिल किया। परिवाद याचिका को सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन पुलिस को निर्दिष्ट किया गया था जिसके लिए भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147/148/323/324/307/452 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन भी अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 21.7.1994 को पालकोट थाना केस सं॰ 49 वर्ष 1994 दर्ज किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण के बाद भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147/148/323/324/307/452 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन भी अभिकथित अपराध के लिए समस्त आठ अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया। यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि विचारण के क्रम में सह-अभियुक्त शिवचन्द पंडित को फरार घोषित करते हुए उसका मामला अलग कर दिया गया था और अभियुक्त हरि मुंडा की मृत्यु हो गयी थी।

4. भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 148/324/307/452/34 के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 (2) के अधीन भी समस्त अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोपों को विरचित किया गया था और उनका विचारण किया गया था।

5. अभियोजन ने कुल मिलाकर 11 गवाहों को प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त, अभियोजन ने प्राथमिकी प्रदर्श–1, परिवाद प्रदर्श– 2, सूचक की उपहति रिपोर्ट प्रदर्श 3, केस डायरी के पैराग्राफ सं॰ 1 से 15 प्रदर्श 4, सी॰ डी॰ का पृष्ठ 15 से पृष्ठ 21 प्रदर्श 4/1, और केस डायरी के पृष्ठ 22 से पृष्ठ 27 प्रदर्श 4/2 को सिद्ध किया। अ॰ सा॰ 1 कुंजल सिंह ने परिसाक्ष्य दिया कि घटना पाँच वर्ष पहले दिन में लगभग 12 बजे सोमवार को हुई थी जब बसन्त, बलभद्र, अभिमन्यु, जोगी खरिया, हरि मुंडा, अनिल और अन्य उसके घर आए और गोलियाँ चलाने लगे। बलभदर साहू उर्फ भदर द्वारा दागी गयी गोलियों के कारण ये गवाह घर से बाहर आए और जंगल की ओर भाग गए किन्तु ऐसी गोलीबारी में लेडवा सिंह को उपहति प्राप्त हुई। घटना की उत्पत्ति भूमि विवाद से हुई थी जिसके लिए मामला दर्ज किया गया था। गवाहों ने स्वीकार किया कि हरि शंकर साहू अपीलार्थीगण का पिता था और कि कुयू सिंह उसका दादा था जबकि फगू उसका चाचा था। उसने स्वीकार किया कि फगू और जेठू ने लगभग पचास वर्ष पहले अपनी भूमि हरि शंकर साहू को बेच दी थी किन्तु गवाह बलपूर्वक जमीन जोतना चाहते थे जो असंतोष का कारण था। अ॰ सा॰ 2 सहेबू सिंह ने अ॰ सा॰ 1 के बयान का समर्थन किया और परिसाक्ष्य दिया कि मदन साव, अभिमन्यु, बाल्मीकी और बसन्त साव द्वारा गोलियाँ चलाने के बाद वह अपने घर से बाहर आया था। वे सोमरा सिंह और कुंजल सिंह को खोज रहे थे और अन्य अभियुक्त के साथ जोगी खरिया, शिवचन्द पांडे और हरि मुंडा पिस्तौल से लैस थे। गवाह ने बन्दूक पकड़े बलभदर साहू उर्फ भदर को पहचानने का दावा किया जबकि अन्य हमलावर तीर–धनुष से लैस थे। लेडवा सिंह ने अपने बाँह और जांघ पर, बन्दूक से चलायी गयी गोलियों से उपहतियाँ प्राप्त किया। गवाह ने स्वीकार किया कि एक ही पूर्वज का वंशज लेडवा सिंह उसका चाचा था और उनके बीच बँटवारा हो चुका था। लेडवा सिंह का पिता जीवित था और कि लेडवा सिंह अपने पिता के साथ वहाँ रहता था। उसने बंदूक से चलायी गयी 10/12 गोलियों को सुना था। उसे लेडवा से पता चला कि बंदूक की गोली से उसे उपहति प्राप्त हुई थी। गवाह ने स्वीकार किया कि घटना के 2/3 दिनों बाद विचार विमर्श के पश्चात मामला संस्थापित किया गया था और कि उसका बयान पुलिस द्वारा दर्ज नहीं किया गया था। अ॰ सा॰ 3 सुकरा सिंह को भी टेन्डर किया गया था। अ॰ सा॰ 4 श्री सिंह ने घटना के समय और तिथि का समर्थन किया और परिसाक्ष्य दिया कि प्रासंगिक समय पर वह अपने घर में था। किन्तु हल्ला सुनने पर वह बाहर आया और अभियुक्तगण भदरा साहू, मुन्नु साहू, बाल्मीकी साहू, बसन्त साहू, शिव चरण पांडे, अनिल साहू, जोगिया खरिया और हरि मुंडा को देखा। गवाह ने वर्णन किया कि बाल्मीकी सिंह अपने हाथ में पिस्तौल पकड़े था, बसन्त साव लाठी लिए था, जोगी खरिया ''बलुआ'' से लैस था, शिवचरण पांडे ''लाठी'' लिए था, भदर और मुन्नु भी बंदूक से लैस थे, अनिल छड़ी लिए था और हरि मुंडा बाँस लिए था। जब वह बुलाए जाने पर अपने घर से बाहर नहीं आया, बलभदर साहू उर्फ भदर ने अपने बंदूक से गोली चलायी जिससे उसके दांए हाथ में उपहति कारित हुई और वह गिर गया। यद्यपि उसने शोर मचाया किन्तु कोई गाँववाला उसके पास नहीं आया और उसने ऐसी घटना के कारण के बारे में अपनी अनभिज्ञता अभिव्यक्त किया। उसने स्वीकार किया कि बलभदर साहू उर्फ भदर के साथ उसका विवाद नहीं था और वह विगत 6/7 वर्षों से उससे अलग रह रहा था। उसने स्वीकार किया कि घटना के समय लेडवा सिंह उसके साथ खड़ा था, किन्तु उसने शोर नहीं मचाया था। गवाह ने आगे बलभदर उर्फ भदर को देखने का परिसाक्ष्य दिया, जब वह उसके घर के पश्चिम की ओर स्थित सोमरा गंगू के घर की ओर आ रहा था।

6. अ॰ सा॰ 5 सोमरा सिंह ने अपने परिसाक्ष्य में घटना को संपुष्ट किया और कथन किया कि उसने ''हल्ला'' सुना कि बलभदर साहू उर्फ भदर, हल्कू, बाल्मीकी और बसंत बम फेंक रहे थे और बंदूक से

गोलियाँ चला रहे थे और कि अनिल साहू, शिव चरण, योगी खरिया और हरि मोहन भी उनके साथ थे। हल्ला सुनने पर, वह बाहर आया और जंगल में खुद को छुपा लिया और दावा किया कि उसने जंगल से देखने का दावा किया। लेडवा सिंह को बाँह और जांघ पर बन्दूक की गोली से उपहतियाँ आई। घटना की उत्पत्ति प्रकट करते हुए उसने कथन किया कि भूमि विवाद था और उनके पिता के समय से ही भदर और बसंत के साथ दुश्मनी थी और कि हमलावरों द्वारा उसकी भूमि का जबरदस्ती अतिक्रमण किया गया था और ऐसी दुश्मनी के कारण उनके विरुद्ध मामला संस्थापित किया गया था। उसे लेडवा सिंह को देखने का अवसर मिला था जिसका घर उसके घर के बगल में था और कि विचार-विमर्श के बाद मामला संस्थापित किया गया था।

7. अ॰ सा॰ 6 लेडवा सिंह वर्तमान मामले का सूचक और घायल गवाह था। उसने परिसाक्ष्य दिया कि घटना छह वर्ष पहले सोमवार को दिन में लगभग 11 बजे हुई थी। वह अपने बगीचा में था जब भदर, बाल्मीकी, बसन्त, अभिमन्यु, अनिल जग्गी, हरि, शिव चरण वहाँ आए जिन्होंने सोमरा सिंह और कुंजल सिंह को सतर्क किया और आदेश दिया कि वे घर से बाहर आए अन्यथा उन्हें गोली मार दी जाएगी। अभियुक्तगण पिस्तौल, बम, लाठी, तीर-धनुष, लिए थे। उसने गोलियाँ चलने की आवाज सुनी किन्तु खुद को ''बारी'' (बगीचा) में छुपा लिया। गोली भदर साहू द्वारा चलाई गयी थी जिसने उसकी पीठ, बाँह और मस्तक पर उपहति कारित किया। परिणामस्वरुप, वह गिर गया और बेहोश हो गया। उसके पैर में भी उपहतियाँ कारित हुई। परिणामस्वरुप, वह गिर गया और बेहोश हो गया। उसने अपने पैर में भी उपहतियाँ पायी और केवल अगले दिन उसे होश आया और तब वह पुलिस थाना गया, जहाँ उसने अपना बयान दिया और वहाँ से वह अस्पताल गया जहाँ उसका उपचार किया गया था। जब पुलिस थाना में कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी थी, वह न्यायालय आया और अपने अधिवक्ता के सलाह पर न्यायालय में परिवाद दाखिल किया। उसने बलभदर साहू उर्फ भदर को कटघरे में पहचाना। उसने स्वीकार किया कि घटना के दो दिन बाद न्यायालय में परिवाद मामला दाखिल किया गया था और इसके संस्थापन के तिथि पर पाँच व्यक्ति उसके साथ न्यायालय गए थे। पुलिस थाना में कोई लिखित रपट प्रस्तुत नहीं की गयी थी। वह परिवाद दाखिल करने के चार दिन बाद पुलिस थाना गया। उसने न्यायालय में भदर साह (बलभदर साहू) को पहचाना। अभियुक्त शिवचरण बाहरी व्यक्ति था और न्यायालय में परिवाद दाखिल करने की तिथि पर सोमरा द्वारा यह तथ्य बताया गया था। समस्त गवाहों के साथ विचार-विमर्श के बाद परिवाद दाखिल किया गया था। अनिल साहू कोडेगा गाँव का रहनेवाला था और उसने आगे स्वीकार किया कि अभियुक्तगण भुसरी टोली गाँव के नहीं थे। अभियुक्तगण बसन्त और बाल्मीकी तेली टोली के थे और हमलावर पूर्वी दिशा से आए थे जिन्हें उसने पहचाना जब वह बगीचे में सब्जियों में पानी पटा रहा था और कि हमलावर सड़क पर थे। वह घटना की तिथि पर सोमरा के पिता फगू सिंह से नहीं मिल सका था बल्कि घटना के पहले और लगभग दो तीन घंटा बाद वह सोमरा और कुयु सिंह से मिला था। प्रासंगिक समय पर यह गवाह फगू सिंह के बगीचा में था और उसका पिता भी वहाँ आया था। गवाह ने स्वीकार किया कि परिवाद याचिका की विषयवस्तु सोमरा सिंह को ज्ञात थी। उसने पुलिस के समक्ष बयान देना स्वीकार किया कि जब वह अपने पिता के साथ बगीचा में काम पर लगा हुआ था, अभियुक्त भदर ने गोली चलायी और कि अभियुक्तगण बम, पिस्तौल, लाठी, तीर से लैस थे और घटना के समय उसका हमलावरों के साथ मुलाकात नहीं हुआ था। उसने शोर नहीं मचाया था। गवाह ने आगे स्वीकार किया कि वह साईकिल पर पीछे बैठकर उपचार के लिए अस्पताल गया था जहाँ वह दो-तीन घंटा रहा था। तमन सिंह साईकिल चला रहा था। उसने कथन किया कि भदर साव बंदूक लिए था, अभियुक्त पिस्तौल पकड़े था, बसन्त और बालमुकुन्द लाठी लिए थे किन्तु उसने अनभिज्ञता अभिव्यक्ति की कि कौन बम लिए था। किन्तु उसने विस्फोट से जाना कि इसे बम द्वारा कारित किया गया था। भदर साव के साथ विवाद का कारण उसके पिता को ज्ञात

था। उसने अपनी जांघ में उपहति प्राप्त नहीं की थी और कि मामला सोमरा के प्रेरणा पर संस्थापित किया गया था किन्तु उसने इंकार किया कि मामला गलत रूप से संस्थापित किया गया था।

8. अ॰ सा॰ 7 राजेश्वर पाठक ने पालकोट पुलिस थाना के तत्कालीन प्रभारी-अधिकारी श्री कृष्ण सिंह के कलम और हस्ताक्षर में औपचारिक प्राथमिकी, प्रदर्श A के रूप में चिन्हित, को सिद्ध किया। बिरसू सिंह, अधिवक्ता द्वारा तैयार किए गए ड्राफ्ट के आधार पर टंकक सुकरा ओराँव द्वारा सम्यक् रूप से टंकित परिवाद याचिका को उसने आगे सिद्ध किया। उसने परिवाद याचिका, प्रदर्श 2, पर बिरसू सिंह के हस्ताक्षर को सिद्ध किया। गवाह ने स्वीकार किया कि इन दस्तावेजों को उसकी उपस्थिति में तैयार किया गया था।

9. अ॰ सा॰ 8 जैनुल अबिदी भी औपचारिक गवाह था। उसने पालकोट के डॉ॰ शंभु प्रसाद सिंह के कलम और हस्ताक्षर में लेडवा सिंह की उपहति रिपोर्ट, प्रदर्श 3 को सिद्ध किया। उसने स्वीकार किया कि उक्त रिपोर्ट उसकी उपस्थिति में तैयार नहीं की गयी थी और कि उक्त डॉक्टर अभी भी वहाँ पदस्थापित था।

10. अ॰ सा॰ 9 किरु सिंह ने घटना के वर्ष, तिथि और समय का समर्थन किया और कथन किया कि उसने ''हल्ला'' सुना कि सोमरा पर प्रहार किया जा रहा था। उसने वहाँ बलभदर साहू उर्फ भदर, बाल्मीकी, बसन्त, अभिमन्यु को पहचाना। उसने आगे परिसाक्ष्य दिया कि भदर साह अपने हाथ में बंदूक पकड़े था। जबकि अभिमन्यु, बाल्मीकी, बसन्त पिस्तौल लिए थे। उसने बम विस्फोट भी सुना जिस पर सारे गाँव वाले भागने लगे। लेडवा सिंह ने गोली से हुई उपहति प्राप्त की जिसे भदर साव द्वारा दागा गया था। गवाह ने कटघरे में अभियुक्त को पहचाना और आगे स्वीकार किया कि उसके बुलाए जाने पर वह शाम में लेडवा से मिला था। लेडवा ने उसे बताया कि उसे बन्दूक की गोली से उपहतियाँ प्राप्त की थी किन्तु इस गवाह ने स्वीकार किया कि घटना उसकी उपस्थिति में नहीं घटी थी बल्कि श्री ने उसे इसके बारे में बताया था। उसने हरि शंकर साव और लेडवा के बीच भूमि विवाद की प्रकृति के बारे में अपनी अनभिज्ञता अभिव्यक्त की किन्तु घटना विवादित भूमि पर कब्जा सुरक्षित करने के लिए घटना घटी थी।

11. अ॰ सा॰ 10 डॉ॰ शंभु प्रसाद सिंह ने दिनांक 21.7.1994 को लेडवा सिंह का परीक्षण किया था और निम्नलिखित पाया था:-

(i) त्वचा तक गहरी 1/2 cm व्यास वाली दाएँ अगली बाँह के 1/3 ऊपर पोस्टीरियर सतह पर काली जली गोल उपहति।

(ii) त्वचा तक गहरी 1/2 cm व्यास वाली पहली उपहति के 1/2" नीचे दाएँ अगली बाँह के पोस्टीरियर सतह पर काली जली हुई गोल उपहति।

(iii) 1/2 cm x 3/4 cm x त्वचा गहरी दाएँ स्कापुलर क्षेत्र पर अंडाकार काली, जली हुई उपहति।

(iv) 1/3 x 1/2 cm व्यास x त्वचा तक गहरी दाएँ जांघ के पोस्टीरियर सतह पर काली, जली हुई गोल उपहति।

परीक्षण के 72 घंटे के भीतर विस्फोटक पदार्थ द्वारा कारित उपहति सरल प्रकृति की थी। उसने उपहति रिपोर्ट को सिद्ध किया जिसे पहले ही प्रदर्श-3 के रूप में चिन्हित किया गया था। उसने स्वीकार किया कि उसने घायल के पिता के नाम का उल्लेख नहीं किया था। उसने आगे स्वीकार किया कि पुलिस द्वारा घायल को प्रस्तुत किया गया था और पीड़ित पर उपहतियाँ पटाखों द्वारा संभव थी।

12. अ॰ सा॰ 11 मनोज भगत ने केस डायरी के विभिन्न पृष्ठों को सिद्ध किया जैसा उसके बयान में उल्लिखित किया गया था और जिन्हें प्रदर्श 4, 4/1 और 4/2 चिन्हित किया गया था। उसने स्वीकार किया कि डायरी उसकी उपस्थिति में नहीं लिखी गयी थी।

13. गवाहों के परीक्षण के बाद अभियोजन साक्ष्य को बन्द किया पाया गया था और अपीलार्थीगण का परीक्षण किया गया था। उनके बयानों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दर्ज किया गया

था जिसके द्वारा उनमें से प्रत्येक का सामना अभियोजन द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत अपराध में फँसाने वाली सामग्रियों से करवाया गया था जिसके प्रति उन्होंने बचाव गवाहों को लाने की इच्छा अभिव्यक्त करते हुए अपने दोष से इंकार किया। मैं अभिलेख से पाता हूँ कि एकमात्र गवाह, जिसे बचाव की ओर से प्रस्तुत किया गया था, जिला सब-रजिस्ट्रार कार्यालय, गुमला में सहायक ब॰ सा॰ 1 विश्वजीत उराँव है जिसने अभिसाक्ष्य दिया कि वह श्री रामेश्वर लाल, सब-रजिस्ट्रार के अनुदेश के अधीन विलेख सं॰ 343/45 के विषयवस्तु को अंतर्विष्ट करते बुक सं॰ 1, वॉल्यूम सं॰ 5/1945, पृष्ठ सं॰ 53 से 62 तक को न्यायालय में लाया था। विक्रय विलेख का विक्रेतागण फगू सिंह, जेठू सिंह, पुत्र किनू सिंह थे जबकि लिखा गया था कि क्रेतागण हलदर साहू के पुत्र शिवदेव साहू, पारस नाथ साहू, गौरीशंकर साहू, हरिशंकर साहू और दुखु साहू थे। गवाह ने आगे परिसाक्ष्य दिया कि डेविड गुड़ीया की लिखावट में मूल विलेख से रजिस्टर के विषय-वस्तु को उतारा गया था और उसने डेविड गुड़िया के हस्ताक्षर और लिखावट को पहचाना। उसने विलेख के प्रमाणित प्रति को सिद्ध किया जिसे प्रदर्श A चिन्हित किया गया था। गवाह ने स्वीकार किया कि रजिस्टर में लिखी गयी विषय वस्तु को न तो उसकी उपस्थिति में मूल विलेख से उतारा गया था और न ही उसकी उपस्थिति में इसकी तुलना की गयी थी। रजिस्ट्रार ने उसकी उपस्थिति में उक्त विलेख पर हस्ताक्षर नहीं किया था और कि मूल विलेख के बारे में उसको व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी। न्यायालय द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर गवाह ने स्वीकार किया कि डेविड गुड़िया अथवा फनवेल टिग्गा के साथ मिलने अथवा काम करने का अवसर उसे नहीं मिला था। उसने आगे अपनी अनभिज्ञता अभिव्यक्त की कि वे जीवित है या मृत और परिसाक्ष्य दिया कि उक्त विलेख में उल्लिखित भूमि के विषयवस्तु और वर्णन के बारे में उसे व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी और कि प्रमाणित प्रति उसके द्वारा तैयार नहीं की गयी थी।

14. आरंभ में ही विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि सक्षम प्राधिकारी से सांविधिक मंजूरी नहीं मिलने के कारण विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया था। अभियोजन गवाह संगत थे कि निरंतर भूमि विवाद के कारण पक्षों के बीच दुश्मनी थी और अ॰ सा॰ 9 किरु सिंह अपने प्रति-परीक्षण में विनिर्दिष्ट था कि विवादित भूमि पर कब्जा सुरक्षित करने के लिए घटना हुई थी। सूचक और अन्य अभियोजन गवाहों का विनिर्दिष्ट मामला यह है कि बलभदर साहू उर्फ भदर, अपीलार्थी, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था, द्वारा चलायी गयी गोलियों से तात्पर्यित रूप से कारित लेडवा सिंह ने अपने शरीर के विभिन्न अंगों पर बन्दूक की गोलियों से हुई उपहतियों को प्राप्त किया था। किन्तु चिकित्सीय साक्ष्य में अ॰ सा॰ 10 डॉ॰ शंभु प्रसाद सिंह ने दागी गयी गोलियों छर्रों की तो बात ही दूर, द्वारा कारित प्रतीत होती एक भी उपहति लेडवा सिंह के शरीर पर नहीं पाया था। समस्त उपहतियाँ अत्यन्त लघु आयामों वाली थीं और डॉक्टर के मत में यह सरल प्रकृति के विस्फोटक पदार्थ द्वारा कारित की गयी थी, सरल प्रकृति की थी और संभवत: पटाखों के टुकड़ों द्वारा कारित की गयी थी और उस तरीके से अभियोजन यह सिद्ध और स्थापित करने में बुरी तरह विफल रहा कि सूचक लेडवा सिंह द्वारा अभिकथित रूप से प्राप्त की गयी उपहतियाँ बलभदर साहू उर्फ भदर द्वारा अभिकथित रूप से आग्नेयास्त्रों द्वारा दागी गयी गोलियों से कारित की गयी थी। अभियोजन गवाह संगत थे कि अपीलार्थीगण पिस्तौल, बन्दूक, बाँस, तीर-धनुष से लैस थे किन्तु गवाहों में से कोई भी बम के विस्फोट सहित ऐसे किसी हथियार द्वारा उपहति नहीं प्राप्त किया था और लेडवा सिंह द्वारा प्राप्त उपहति, जो बहुत ही छोटे आयाम की थी, डॉक्टर के अनुसार पटाखों और बमों के प्रयोग द्वारा संभव थी। विवादित भूमि पर कब्जा सुरक्षित करने के लिए भूमि विवाद जो दुश्मनी का एकमात्र कारण थी, के कारण पूर्व दुश्मनी के बारे में गवाह संगत थे और इस प्रकार अपीलार्थीगण को झूठा आलिप्त करने से

इंकार नहीं किया जा सकता था और विद्वान सत्र न्यायाधीश इसे विचार में लेने में विफल रहे कि पक्षपाती गवाहों के साक्ष्य को छोड़कर अपीलार्थीगण के विरुद्ध कोई भी सकारात्मक साक्ष्य नहीं था और उनके कथन में विसंगति होने के चलते उनके परिसाक्ष्य की विश्वसनीयता और अभिकथित घटना में प्रत्येक अपीलार्थी की भागीदारी पर संदेह किया जा सकता था। अभियोजन गवाहों के अनुसार अपीलार्थीगण द्वारा बम फेंके गए थे और बन्दूक और पिस्तौल से गोलियाँ चलायी गयी थी किन्तु अभिलेख पर आई॰ ओ॰ का कोई भी वस्तुपरक निष्कर्ष नहीं है और उस तरीके से घटनास्थल स्थापित नहीं किया जा सकता था। वर्तमान मामला में विचारार्थ मुख्य बिन्दु निरंतर बने भूमि विवाद के कारण दुश्मनी का स्वीकृत मामला है। सूचक के अनुसार उसने बलभदर साहू उर्फ भदर द्वारा अभिकथित रूप से दागी गयी गोलियों द्वारा अपने शरीर के विभिन्न हिस्सों पर उपहतियाँ प्राप्त की किन्तु ऐसे अभिकथन को चिकित्सीय साक्ष्य में नकारा गया है। तीसरा बिन्दु जिस पर विचारण न्यायालय विचार करने में विफल रहा, सूचक लेडवा सिंह का बयान है जिसने असंदिग्ध शब्दों में परिसाक्ष्य दिया कि अ॰ सा॰ 5 सोमरा सिंह की प्रेरणा पर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में परिवाद दर्ज किया गया था। अभिकथित घटना दिनांक 18.7.1994 को हुई थी किन्तु अत्यधिक विलम्ब को स्पष्ट किए बिना परिवाद दिनांक 20.7.1994 को दर्ज किया गया था। अपीलार्थीगण बलभदर साहू उर्फ भदर, बसंत साहू, अभिमन्यु साहू उर्फ मुन्नु साहू और बाल्मीकी साहू सगे भाई थे और पुरानी दुश्मनी के कारण परिवादी-सूचक द्वारा उन्हें द्वेषपूर्वक झूठा आलिप्त किया गया था जो स्वीकृत मामला था। आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोपों को विरचित किया गया था किन्तु अपीलार्थीगण में से किसी को भी उक्त आरोप के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया गया था। वस्तुत: घटना अभियोजन द्वारा प्रस्तुत तरीके से नहीं हुई थी और इस प्रकार उनके दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त करके उन्हें दोषमुक्त किया जा सकता है।

15. समानान्तर स्तंभ में, श्रीमती लिलि सहाय, ए॰ पी॰ पी॰ ने प्रतिवाद का विरोध किया और निवेदन किया कि बन्दूक, पिस्तौल, बम, तीर-धनुष, लाठी जैसे घातक हथियारों से लैस होकर दंगा के अपराध में सक्रिय भागीदारी के बारे में अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रत्यक्ष अभिकथन थे और अपीलार्थी बलभदर साहू उर्फ भदर के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन था कि उसने सूचक लेडवा सिंह के शरीर पर उपहति कारित करते हुए गोलियाँ चलायी थी। अभियोजन की ओर से प्रस्तुत गवाहों के बयान में छोटी-मोटी भिन्नता को समय बीत जाने के कारण अनदेखा किया जा सकता है। भूमि विवाद को स्वीकार किया गया था और समान रूप से पक्षों के बीच दुश्मनी को भी स्वीकार किया गया था किन्तु इसी समय विधि का सुनिश्चित सिद्धान्त कि दुश्मनी दुधारा वार करती है को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। ऐसी दुश्मनी की दृष्टि में अपीलार्थीगण ने सूचक लेडवा सिंह की हत्या का प्रयास किया किन्तु सौभाग्यवश वह जीवित रहा और जब उसका मामला पुलिस थाना में ग्रहण नहीं किया जा सका था, उसने न्यायालय के समक्ष परिवाद दाखिल किया और आई॰ ओ॰ द्वारा मामला के अन्वेषण के बाद आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। बचाव पक्ष न्यायालय को आश्वस्त करने में विफल रहा कि आई॰ ओ॰ के गैर-परीक्षण के कारण अपीलार्थीगण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। घटना से संबंधित तात्विक तथ्यों को गवाहों के बयानों में अभिलेख पर लाया गया है जो घटनास्थल को सम्मिलित करता है और इस प्रकार अभियोजन का मामला सुसिद्ध किया गया था और विचारण न्यायालय का निर्णय हस्तक्षेप योग्य नहीं था।

16. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों अपीलार्थीगण और राज्य-प्रत्यर्थी की ओर से दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए और आक्षेपित निर्णय के सावधानीपूर्वक परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, गुमला ने अभिलेख के परे तथ्यों के गलत संप्रेक्षणों को देते हुए अभिलेख की घोर गलती की कि ''लगभग उन सभी ने कथन किया है कि बलभदर साहू उर्फ भदर ने लेडवा सिंह

(अ॰ सा॰ 6) पर बन्दूक से गोली चलायी जिसने अपने शरीर पर छर्रों द्वारा कारित उपहतियाँ पायी और जिसका बाद में डॉ॰ शंभु प्रसाद सिंह (अ॰ सा॰ 10) द्वारा परीक्षण किया गया था जिन्होंने लेडवा सिंह (अ॰ सा॰ 6) के शरीर पर दाएँ अगली बाँह, दाएँ स्कापुलर क्षेत्र और दाएँ जांघ पर बंदूक की गोली से हुई उपहतियाँ पायी। यद्यपि उपहतियाँ सरल प्रकृति की थी किन्तु वे आग्नेयास्त्र द्वारा कारित की गयी थी। यदि ये लेडवा सिंह के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर लगी होती, उपहतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गयी होती जबकि अ॰ सा॰ 10 डॉ॰ शंभु प्रसाद सिंह, जिन्होंने लेडवा की उपहतियों का परीक्षण किया था, का मत था कि ये बम के टुकड़ों अथवा पटाखों द्वारा कारित की गयी थी और निश्चय ही बंदूक की गोली द्वारा नहीं। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में सार प्रतीत होता है कि आई॰ ओ॰ के वस्तुपरक निष्कर्षों को अभिलेख पर नहीं लाया जा सका था और इस कारण अपीलार्थीगण के बचाव पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। यह सुनिश्चित विधि है कि विनिर्दिष्ट मामला में जहाँ बन्दूकों और पिस्तौलों द्वारा गोलियाँ चलाने और विस्फोट कारित करते बमों के फेंके जाने का अभिकथन था, घटनास्थल स्थापित करने की भारी जवाबदेही अभियोजन पर है और इस संबंध में आई॰ ओ॰ के वस्तुपरक निष्कर्ष प्रासंगिक तथ्य हो सकते थे कि क्या वह ऐसे गोलीबारी अथवा बम के टुकड़ों अथवा बम के विस्फोट के किसी अन्य निशान का साक्ष्य संग्रहित करने में सक्षम हो सकता था। सूचक लेडवा सिंह सहित गवाह संगत थे कि कि अन्य गवाहों के साथ सम्यक चर्चा और विचार-विमर्श के बाद और अ॰ सा॰ 5 सोमरा सिंह की प्रेरणा पर अभिकथित घटना के दो दिनों बाद परिवाद दाखिल किया गया था जो निश्चय ही पक्षपाती प्रकृति के थे और उस तरीके से अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे यह स्थापित करने में विफल रहा कि लेडवा सिंह पुलिस मामला के संस्थापन को उद्‌भूत करते परिवाद का वास्तविक लेखक था। किन्तु चिकित्सीय साक्ष्य प्रदर्श 3 की तुलना में तात्विक गवाहों के साक्ष्य में स्पष्ट विसंगति की दृष्टि में और परिवादी-सूचक की निष्पक्ष स्वीकृति की परिवाद गवाह सोमरा सिंह की प्रेरणा पर परिवाद दाखिल किया गया था, जिसके विषय वस्तु की जानकारी परिवादी/सूचक को भी नहीं थी, उस पर विश्वास करना सुरक्षित नहीं होगा और इस प्रकार यह सुरक्षित रूप से संप्रेक्षित किया जा सकता है कि घटना सूचक द्वारा बताए गए तरीके से और गवाहों द्वारा अपने साक्ष्य में वर्णित तरीके से नहीं हुई थी। मैं आगे संप्रेक्षित करता हूँ कि घटनास्थल को स्थापित नहीं किया जा सका था और अन्वेषण अधिकारी के गैर-परीक्षण के कारण अपीलार्थीगण के बचाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था और इस प्रकार अभिकथित अपराध में अपीलार्थीगण की सह-अपराधिता के प्रति युक्तियुक्त संदेह सृजित होता है और इसलिए पालकोट थाना केस सं॰ 49 वर्ष 1994 से उद्‌भूत सत्र विचारण सं॰ 345 वर्ष 1995 में उनकी दोषसिद्धि के निर्णय को विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्‌नुसार, अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, गुमला द्वारा दर्ज उनकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त किया जाता है। समस्त अपीलार्थीगण को दोषमुक्त किया जाता है। उनका जमानत बंधपत्र उन्मोचित किया जाता है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

राँची विश्वविद्यालय, राँची एवं अन्य

बनाम

बिजय कुमार शर्मा एवं अन्य

LPA No. 576 of 2003. Decided on 26th November, 2010.

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ 1266 वर्ष 1998 (आर॰) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 10.7.2003 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

(क) विश्वविद्यालय विधि–वेतनमान–राँची महिला महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा नियत वेतनमान को घटाने वाले आदेश को एकल न्यायाधीश द्वारा अभिखंडित किया गया–प्रत्यर्थीगण-याचीगण को उच्च श्रेणी/निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों का वेतनमान पाने का हकदार पाया गया था–यदि अधिनियम अथवा नियमावली के उल्लंघन में नियुक्ति/प्रोन्नति/पुनर्पदाभिधान किया जाता है, ऐसी नियुक्ति विधि की दृष्टि में नास्ति होगा–वर्तमान मामले में, मंजूर पदों पर विभिन्न क्षमता से कार्यरत तृतीय श्रेणी कर्मचारी को पुनर्पदाभिहित अथवा प्रोन्नत करने के लिए महाविद्यालय के प्राचार्य सक्षम नहीं थे–बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत कुलपति सक्षम थे–रिट याचियों को कोई विधिक अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ था और उनसे निहित अधिकार वापस लिए जाने का प्रश्न ही नहीं है–यदि कोई गलती की गयी थी, इसे किसी भी समय परिशोधित किया जा सकता है–अवैधता को आगे स्थायी बनाए रखने के लिए अवैध कृत्य को प्रथा नहीं बनाया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 9 से 13)

(ख) नैसर्गिक न्याय–नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों कठोर अथवा अपरिवर्तनीय नहीं है–उन्हें किसी संकीर्ण सिद्धांत में सीमित नहीं किया जा सकता है–उन्हें स्थिति की आत्यावश्यकता तक सीमित रहना होगा–उन्हें अपनी सीमाओं के अंतर्गत सीमित रहना होगा और उन्हें स्वच्छंद विचरने की अनुमति नहीं दी जा सकती है–मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को निर्देश के बिना शून्यता में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को लागू नहीं किया जा सकता है। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–2006(1) SCC 667—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Appellant; M/s Ritu Kumar, R.R. Tiwari, For the Respondents; Sr. S.C.II., For the State.

आदेश

यह लेटर्स पेटेन्ट अपील सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ 1266 वर्ष 1998 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 10.7.2003 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण सं॰ 1 से 12 तक द्वारा दाखिल रिट याचिका को अनुज्ञात किया गया है और दिनांक 9.3.1995 के मेमो सं॰ B/968-971 वाले आक्षेपित आदेश को अभिखंडित कर दिया गया है जिसके द्वारा राँची महिला महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा नियत वेतनमान को विश्वविद्यालय द्वारा घटा दिया गया है।

2. पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया है कि दिनांक 27.1.1982 को तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा पटना विश्वविद्यालय को छोड़कर बिहार राज्य के राज्य विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को संबोधित पत्र जारी किया जिसमें संसूचित किया गया था कि राज्य सरकार ने बिहार राज्य के अंतर्गत विश्वविद्यालय में कार्यरत उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों को एकसमान वेतनमान देने का निर्णय किया था और निर्णय, जिसे राज्य सरकार ने दिनांक 28.7.1981 के पत्र के तहत पटना विश्वविद्यालय के संबंध में लिया था, अन्य विश्वविद्यालयों पर भी लागू माना जाएगा। राज्य सरकार ने दिनांक 5.10.1989 के पत्र के तहत बिहार राज्य के समस्त विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को लिखा कि बिहार राज्य में अवस्थित विश्वविद्यालयों के अधीन महाविद्यालयों में पदस्थापित उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों के कर्मचारियों का एकसमान वेतनमान उसी तरीके से दिनांक 1.4.1981 के प्रभाव के साथ प्रयोज्य बनाया जाएगा जैसा क्षेत्रीय कार्यालयों में कार्यरत सचिवालय कर्मचारियों और उच्च श्रेणी एवं निम्न श्रेणी के सहायकों/लिपिकों तृतीय वर्ग के लिए प्रयोज्य बनाया गया था और आगे उपदर्शित किया गया था कि कर्मचारीगण वेतन के किसी

बकाये के हकदार बिलकुल नहीं होंगे। परिणामस्वरुप, राँची विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने दिनांक 25.4.1990 को सरकारी आदेश को प्रभावशाली बनाने के लिए आदेश (परिशिष्ट-3) जारी किया। घटक महाविद्यालयों के समस्त प्राचार्यों को राज्य सरकार द्वारा नियत वेतन नियतिकरण को प्रभाव देने के लिए तद्नुसार वेतनों को तैयार करने के लिए निर्देशित किया गया था। उक्त निर्देश के अनुसरण में, राँची महिला महाविद्यालय के प्राचार्य ने दिनांक 3.8.1990 की अधिसूचना (परिशिष्ट-4) जारी किया जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण को उच्च श्रेणी/निम्न श्रेणी के सहायकों/लिपिकों का वेतनमान प्रदान किया गया था। रिट याचिका का परिशिष्ट-4 उपदर्शित करता है कि रिट याचीगण के वेतन का नियतिकरण अनंतिम था और विश्वविद्यालय के अनुमोदन के अधीन था। तत्पश्चात् महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा वेतन के अनंतिम नियतिकरण के अनुसार कर्मचारियों को वेतन का भुगतान किया गया था। आक्षेपित आदेश द्वारा विश्वविद्यालय ने प्रत्यर्थीगण के वेतनमान को नियत करते हुए प्राचार्य के आदेश का अनुमोदन नहीं किया था और विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुरूप उनके वेतन का भुगतान किया गया था। स्वीकृत रूप से, प्रत्यर्थीगण सं० 1 से 12 तक को टंकक, भंडाररक्षक, रुटीन क्लर्क, पत्राचार क्लर्क, सार्टर के रूप में नियुक्त, प्रोन्नत और नियमित किया गया था जो राँची महिला महाविद्यालय में मंजूर पद थे। रांची महिला महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा अनुशंसित वेतनमानों को अनुमोदित नहीं करने और उनके वेतनमानों को घटाने, जैसा रांची विश्वविद्यालय के दिनांक 9.3.1995 के आदेश में उपदर्शित किया गया है, के विश्वविद्यालय के आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थीगण ने विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका दाखिल किया।

3. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को अनुज्ञात किया और विश्वविद्यालय द्वारा पारित दिनांक 9.3.1995 के आक्षेपित आदेश को अभिखंडित कर दिया गया था। प्रत्यर्थीगण/रिट याचीगण को उच्च श्रेणी-निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों को वेतनमान पाने का हकदार पाया गया था।

4. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेखों का परिशीलन किया है।

5. अपीलार्थी विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि प्रत्यर्थीगण सं० 1 से 12 तक को रुटीन क्लर्क/टाइपिस्ट, स्टोर क्लर्क, पत्राचार क्लर्क और सॉर्टर के मंजूर पदों पर नियुक्त किया गया है और न कि उच्च श्रेणी/निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों के पदों पर। प्रत्यर्थीगण को निम्न श्रेणी अथवा उच्च श्रेणी सहायकों/लिपिकों के पदों के विरुद्ध नियुक्त अथवा प्रोन्नत नहीं किया गया था। दिनांक 5.10.1989 के राज्य सरकार आदेश ने केवल उच्च श्रेणी सहायक और निम्न श्रेणी सहायक/लिपिक के वेतनमानों का विलय अनुज्ञात किया है और राँची विश्वविद्यालय ने पूर्वोक्त सरकारी आदेश को अपनाया है। राँची महिला महाविद्यालय, राँची के प्राचार्य ने आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-4) द्वारा उनको उच्च श्रेणी-निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों के रूप में पदनामित करते हुए प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक के वेतनमानों को नियत करते हुए अनंतिम आदेश जारी किया यद्यपि पारित आदेश स्पष्ट शब्दों में कहता था कि यह विश्वविद्यालय के अनुमोदन के अधीन है और यदि विश्वविद्यालय ने प्रत्यर्थीगण के पदनामों और वेतनमानों का अनुमोदन नहीं किया, उन्हें विद्यमान वेतनमान में प्रिवर्तित कर दिया जाएगा। विश्वविद्यालय अधिनियम के अधीन प्राचार्य पुन: पदनामित करने के लिए अथवा नए पद का वेतनमान प्रदान करने के लिए सक्षम नहीं है। तृतीय वर्गीय कर्मचारी को प्रोन्नत करने के लिए और वेतनमान के विरुद्ध उसे स्थापित करने के लिए कुलपति सक्षम है।

6. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि प्रत्यर्थीगण निम्न श्रेणी और उच्च श्रेणी सहायकों की कोटि के अंतर्गत आते हैं। उन्होंने आगे प्रतिवाद किया कि प्रत्यर्थीगण

विश्वविद्यालय में तृतीय वर्ग के लिपिक वर्गीय कर्मचारी हैं और विश्वविद्यालय उनको, जो स्नातक डिग्रीधारी थे, 1500-2750/-रुपयों और जो स्नातक डिग्रीधारी नहीं थे, उनको 1400-2300, रुपयों के पुनरीक्षित वेतनमानों का भुगतान कर रहा था।

7. अभिलेख के परिशीलन से प्रकट है कि प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक को राँची महिला महाविद्यालय, राँची में राज्य सरकार द्वारा मंजूर पदों के विरुद्ध टाइपिस्ट/स्टोर कीपर/रुटीन क्लर्क, पत्राचार क्लर्क और सार्टर के रूप में नियुक्त/प्रोन्नत या नियमित किया गया था। प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक को निम्न श्रेणी–उच्च श्रेणी सहायकों/लिपिकों के रूप में, नियुक्त/प्रोन्नत अथवा नियमित कभी नहीं किया गया था। रिट याचिका के परिशिष्टों 1 और 2 में अंतर्विष्ट दिनांक 27.1.1982 और दिनांक 5.10.1989 के सरकारी आदेश स्पष्टत: प्रावधानित करते हैं कि राज्य सरकार ने निर्णय किया था कि राज्य सरकार में कार्यरत निम्नश्रेणी–उच्च श्रेणी सहायकों/लिपिकों के समतुल्य एकसमान वेतनमान को विश्वविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों के घटक महाविद्यालयों में कार्यरत निम्न श्रेणी–उच्च श्रेणी सहायकों/लिपिकों को दिया जाएगा। उक्त आदेश के अनुसरण में, राँची विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय के अधीन कार्यरत महाविद्यालयों के संबंधित प्राचार्यों को पत्र/आदेश जारी किया। विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय के घटक महाविद्यालयों में कार्यरत तृतीय वर्गीय कर्मचारीगण के वेतनमानों को नियत और इनका भुगतान करना था जो मंजूर और अभिहित पदों, जिन्हें कर्मचारीगण प्रासंगिक समय पर धारण कर रहे थे, के विरुद्ध दिनांक 13.4.1991 के सरकारी आदेश (परिशिष्ट–4) में विहित है। रिट याचिका का परिशिष्ट 5 स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि निम्न श्रेणी और उच्च श्रेणी के सहायक/क्लर्क 785-1210/- रुपये के वेतनमान (पाँचवें वेतन आयोग में पुनरीक्षित वेतनमान 1500-2700/-रुपया) में थे जो उन उच्च श्रेणी–निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों पर लागू योग्य था जिन्होंने स्नातक डिग्री प्राप्त किया था। अन्य उच्च श्रेणी –निम्न श्रेणी सहायक/लिपिक, जिनके पास स्नातक डिग्री नहीं थी, 680-965/-रुपयों (पाँचवें वेतन आयोग में पुनरीक्षित 1400-2300/-रुपया) का वेतनमान प्राप्त कर रहे थे। दिनांक 13.4.1991 का सरकारी आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट–5) स्टोर कीपर, रुटीन क्लर्क, पत्राचार क्लर्क, सॉर्टर, टाइपिस्ट के विभिन्न वेतनमानों को स्पष्टत: उपदर्शित करता है। पाँचवें वेतन आयोग में पूर्वोक्त पदों के वेतनमान थे: स्टोर कीपर 1200-1800/-रुपया, टाइपिस्ट 1200-1800/-रुपया, रुटीन क्लर्क–975-1540/-रुपया, सॉर्टर–1200-1800/-रुपया और पत्राचार क्लर्क 1200-1800/-रुपया। यह ये भी उपदर्शित करता है कि विश्वविद्यालय के घटक महाविद्यालयों में विभिन्न मंजूर पद उपलब्ध हैं। उक्त दस्तावेज, रिट याचिका के साथ दाखिल अन्य दस्तावेज और विश्वविद्यालय द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र स्पष्टत: प्रकट करता है कि उच्च श्रेणी–निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों का वेतनमान तृतीय वर्ग कर्मचारीगण की अन्य कोटियों से भिन्न है। सरकारी आदेश के अनुसरण में राँची विश्वविद्यालय द्वारा जारी परिपत्र के परिणामस्वरुप राँची महिला महाविद्यालय, राँची के प्राचार्य ने तृतीय वर्ग में सहायक के रूप में कार्यरत व्यक्तियों, जो पहले से विभिन्न नामों और पदनामों के साथ तृतीय वर्ग कर्मचारीगण के रूप में कार्यकर रहे थे, के पदों को पुन: पदनामित करते हुए दिनांक 3.8.1990 की अधिसूचना जारी की। रिट याचिका के परिशिष्ट–4 के परिशीलन से यह भी प्रकट है कि तृतीय वर्ग कर्मचारीगण, जिनके वेतनमानों को उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों के रूप में नियत किया गया था, विभिन्न पदनामों को धारण कर रहे थे और प्राचार्य ने उन्हें उच्च श्रेणी–निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों के रूप में पुन: पदनामित किया। उक्त अधिसूचना (परिशिष्ट–4) स्पष्टत: उपदर्शित करती है कि प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक के संबंध में वेतन नियतिकरण/पुन: पदनामन अर्नतिम रूप से किया

गया था और यह वस्तुत: विश्वविद्यालय के अनुमोदन के अधीन था। बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 10 के अधीन तृतीय/चतुर्थवर्ग कर्मचारीगण को नियुक्त अथवा प्रोन्नत करने के लिए केवल कुलपति सक्षम प्राधिकारी हैं। रिट याचीगण वे पद धारण नहीं कर रहे थे जो उन्हें प्राचार्य द्वारा दिया गया था। अत: विश्वविद्यालय प्राचार्य द्वारा रिट याचीगण के संबंध में किए गए पुन: पदनामन और वेतन के नियतिकरण का अनुमोदन नहीं करने के लिए सक्षम था। विश्वविद्यालय ने उनलोगों द्वारा विधित: धारित पदों के अनुसार वेतनमानों को पुनर्नियत करते हुए अपनी शक्ति/अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया। वेतनमानों के नियतिकरण का उक्त आदेश भी अनंतिम था। अत:, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राचार्य के आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-4) के फलस्वरूप याचीगण को कोई निहित अधिकार प्रोद्भूत हुआ था।

8. प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि रिट याचिका के परिशिष्ट-4 के फलस्वरूप उन्होंने निम्न श्रेणी उच्च श्रेणी सहायकों/लिपिकों के पदों पर बने रहने के लिए निहित अधिकार अर्जित किया है और विश्वविद्यालय द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से आक्षेपित आदेश द्वारा उनके अधिकार को छीना नहीं जा सकता है। विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया।

9. यह विधि की सुनिश्चित प्रतिपादना है कि यदि अधिनियम अथवा नियमावली के उल्लंघन में नियुक्ति/प्रोन्नति/पुन: पदनामन किया जाता है, ऐसी नियुक्ति विधि की दृष्टि में नास्ति होगी। वर्तमान मामले में, महाविद्यालय का प्राचार्य मंजूर पदों पर विभिन्न हैसियत/क्षमता में कार्यरत तृतीय वर्ग कर्मचारीगण को पुन: पदनामित अथवा प्रोन्नत करने के लिए सक्षम नहीं था। बिहार राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम के प्रावधानों के अधीन कुलपति सक्षम था। प्राचार्य ने सांविधिक प्रावधानों के घोर उल्लंघन में अवैध रूप से और मनमाने तरीके से प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक को पुन: पदनामित किया और उनके वेतनमानों को नियत किया। ऐसा पुन: पदनामन/नियुक्ति/प्रोन्नति आरंभ से ही शून्य है। इसके अतिरिक्त, प्राचार्य ने उनको उच्च श्रेणी-निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों के रूप में पदनामित करते हुए और उनके वेतनमानों को नियत करते हुए अनंतिम आदेश पारित किया था और यह विश्वविद्यालय के अनुमोदन के अधीन था जिसने प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया था। इस प्रकार, कोई अधिकार, विधिक अधिकार की तो बात ही दूर, रिट याचीगण को प्रोद्भूत नहीं हुआ था और उनसे निहित अधिकार वापस लेने का प्रश्न ही नहीं है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि उन्होंने प्राचार्य द्वारा जारी अधिसूचना (परिशिष्ट-4) के फलस्वरूप निहित अधिकार अर्जित किया है।

10. रिट याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि रजिस्ट्रार, राँची विश्वविद्यालय, ने राँची महिला महाविद्यालय, राँची के प्राचार्य को दिनांक 22.2.1997 को अधिसूचना (रिट याचिका का परिशिष्ट-10) जारी किया जिसके द्वारा तृतीय वर्ग के सहायकों का पद धारित करने वाले राँची महिला महाविद्यालय के कर्मचारीगण में से दो अर्थात् राजेन्द्र महतो और राम सुन्दर साहू को उच्च श्रेणी-निम्न श्रेणी सहायकों/लिपिकों का पुनरीक्षित वेतनमान अनुज्ञात किया गया है। विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया और प्रतिवाद किया कि प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक राजेन्द्र महतो और राम सुन्दर साहू की तरह समान रूप से स्थित नहीं है। राजेन्द्र महतो खजाँची के रूप में कार्यरत था जो लेखाकार के समतुल्य है और उक्त वेतनमान में उसे सही प्रकार से स्थापित किया गया है। यदि कोई गलती की गयी थी, इसे किसी समय परिशोधित किया जा सकता था और प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक यह दावा नहीं कर सकते हैं कि उनके साथ भेदभाव किया गया है। यह विधि का सुनिश्चित सिद्धान्त है कि यदि अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना कोई कृत्य किया जाता है, अवैधता को आगे स्थायी बनाए रखने के लिए ऐसे अवैध कृत्य को व्यवहार नहीं बनाया जा सकता है।

11. उ॰ प्र॰ राज्य बनाम नीरज अवस्थी, 2006 (1) SCC 667 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

> *''75. यह तथ्य कि प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना समस्त नियुक्तियों को किया गया है अथवा कुछ नियुक्त व्यक्तियों की सेवाओं को विगत काल में नियमित किया गया है, हमारे मत में सामान्य ढंग नहीं कहा जा सकता है जिस पर न्यायालय की मुहर लगानी ही होगी। विगत व्यवहार सदैव सर्वोत्तम व्यवहार नहीं है। यदि विगत काल में अवैधता की गयी है, यह समझ के परे है कि कैसे ऐसी अवैधता को स्थायी बनाना अनुज्ञात किया जा सकता है। राज्य और बोर्ड विधि के अनुरुप कदम उठाने के लिए बाध्य थे। इस निमित भी संविधान के अनुच्छेद 14 का कोई उपयोजन नहीं होगा। अनुच्छेद 14 एक सकारात्मक अवधारणा है। अब यह सुनिश्चित है कि अवैधता में समानता का दावा नहीं किया जा सकता है। (देखें : आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस॰ बी॰ पी॰ वी॰ चलपति राव, [1995 (1) SCC 724]SCC पैरा 8; जालंधर सुधार न्यास बनाम संपूर्ण सिंह, [1999 (3) SCC 494]SCC पैरा 13 और बिहार राज्य बनाम कामेश्वर प्रसाद सिंह, [2000(9) SCC 94 : 2000 SCC [L & S) 845] SCC पैरा 30]*

12. प्रत्यर्थीगण 1 से 12 तक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया कि आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-7), रिट याचीगण के वेतनमानों को घटाने और काटने के आदेश को प्रभाव देने से पहले उनको सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया और प्रतिवाद किया कि महाविद्यालय द्वारा किया गया पुन: पदनामन और वेतनमान का नियतिकरण सरकारी आदेश (रिट याचिका के परिशिष्ट 2 और 3) के घोर उल्लंघन में था। इस प्रकार, राँची महिला महाविद्यालय के प्राचार्य ने आदेश के उल्लंघन में प्रत्यर्थीगण के पुन: पदनामन और वेतन के पुन: नियतिकरण के संबंध में परिशिष्ट 4 निर्गत किया। अत:, महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा पारित आदेश प्रारम्भ से ही शून्य था। रिट याचिका का परिशिष्ट-4 प्रकट करता है कि कोई अंतिम पुन: पदनामन और वेतन का नियतिकरण नहीं किया गया था और यह अनंतिम और विश्वविद्यालय के अनुमोदन के अधीन था। अत: आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-7) पारित करने के पहले सुनवाई का अवसर देने का प्रश्न ही नहीं है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त कठोर अथवा अपरिवर्तनीय नहीं है। उन्हें बाधा में कैद नहीं किया जा सकता है। उन्हें स्थिति की अत्यावश्यकता तक सीमित रहना होगा। उन्हें अपनी सीमाओं के अंतर्गत सीमित रहना होगा और उन्हें स्वच्छंद रूप से विचरने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त, यह पूर्व से प्रचलित है, कोई बिदका हुआ घोड़ा नहीं है। जब तथ्यों को स्वीकार किया जाता है, जाँच कोरी औपचारिकता होगी। नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुपालन की अपेक्षा उसमें प्राप्त होते तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए की जाती है। इसे प्रासंगिक तथ्यों और मामले के परिस्थितियों के प्रति निर्देश के बिना शून्यता में लागू नहीं किया जा सकता है।

13. मामले के उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों और विधि की प्रतिपादना की दृष्टि में, हम प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवादों में कोई बल नहीं पाते हैं। रिट याचीगण के दावा को अनुज्ञात करने में विद्वान एकल न्यायाधीश ने गलती की। तद्नुसार, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1266 वर्ष 1998 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 10.7.2003 का आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, रिट याचिका खारिज की जाती है। व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्तिगण

विकास शर्मा उर्फ गुल्ला एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Death Reference No. 01 of 2009 with Cri. Appeal No. 956 of 2009.
Decided on 8th December, 2010.

सत्र विचारण सं॰ 184 वर्ष 2005 में श्री चमरु टाँटी, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश बेरमो, तेनूघाट द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 14 जुलाई, 2009 और 17 जुलाई, 2009 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश एवं दंडादेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 307/34—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 354(3)—तीन व्यक्तियों की हत्या–मृत्यु दंडादेश–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा पुष्ट किया गया–अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य विश्वास योग्य एवं विश्वसनीयता उत्पन्न करने वाले हैं–यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य अन्यथा संतोषजनक प्रकृति के हैं और उन्हें विश्वास योग्य कहा जा सकता है, तब गवाहों की संख्या में वृद्धि मामले की आवश्यकता नहीं हो सकती है–अभियुक्तगण को झूठा आलिप्त करने का कोई कारण गवाहों के समक्ष नहीं है–इसके अतिरिक्त मृतकों का शव परीक्षण रिपोर्ट मृतकों को कारित उपहतियों के तथ्य को संपुष्ट करता है–घटना का समय और प्रयुक्त हथियार चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा आगे संपुष्ट किया गया–किन्तु अपीलार्थीगण का कोई दांडिक पूर्ववृत् अथवा अभिलेख पर उपलब्ध कोई साक्ष्य यह दर्शाने के लिए नहीं है कि वे समाज के प्रति खतरा हैं–दोषसिद्धि मान्य ठहरायी गयी किन्तु मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में घटा दिया गया।

(पैराएँ 15 से 18, 21, 43, 44 एवं 45)

(ख) दांडिक विधि–मृत्यु दंडादेश–प्रासंगिक कारक–विरल मामलों में विरलतम–अपीलार्थीगण को दंडादेश देते हुए न्यायालय किए गए अपराध की प्रकृति के बारे में आक्रोश की अनुभूतियों पर अथवा क्या अपीलार्थीगण जिन्होंने अपराध किया वस्तुतः समाज के प्रति संकट अथवा खतरा हैं या नहीं अथवा क्या अपीलार्थीगण को सुधारने अथवा पुनर्वासित किए जाने की संभावना है, पर विचार नहीं कर सकता है। (पैरा 34)

निर्णयज विधि.–1980 (2) SCC 684; 1983(3) SCC 470; 1973 (1) SCC 20; 1988 (7) SCC 177; 2002(8) SCC 125; 2007(15) SCC 760; 2010 (3) SCC 508; (2009) 15 SCC 625—Relied on; 1998 SCC (3) 455; 1998 SCC (1) 149; 2008(4) SCC 434; 2009 JT (4) SC 437; 1999 (5) SCC 702—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s R. S. Mazumdar, Rajesh Kumar, For the Appellants; M/s I.N. Gupta, Abani Kant Prasad, For the State; Mr. Rajan Raj, For the Informant.

आदेश

यह अपील सत्र विचारण सं॰ 184 वर्ष 2005 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, तेनूघाट, बेरमो द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 14 जुलाई, 2009 और 17 जुलाई, 2009 के दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश एवं दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थीगण को फिलिप जेम्स मरांडी, जयवन्ती मरांडी और संदीप पॉल मरांडी की हत्या करने का दोषी अभिनिर्धारित किया गया और तदनुसार भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के आदेश एवं

दंडादेश की संपुष्टि के अधीन भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोनों अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34 के अधीन अपराधों के लिए भी दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और तद्नुसार दस वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है। अपीलार्थीगण ने इस अपील को दाखिल किया है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने भी मृत्यु दंडादेश की संपुष्टि के लिए इस न्यायालय को निर्देश किया है। दोनों अपीलें एक ही निर्णय से उद्भूत हो रही हैं, अत: दोनों को इस एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. संक्षेप में, अभियोजन का मामला यह है कि सूचक संजय पीटर मरांडी उर्फ राजा अ॰ सा॰ 6 की अपने घर के निकट चाय की दुकान थी। उसका मित्र सुशांत टूडू अ॰ सा॰ 5 दिनांक 10.3.2005 को रात्रि लगभग 8.30 बजे उसकी दुकान पर आया और उसे अपने साथ जरीडीह बाजार चलने को कहा। इसी बीच सुभाष कुमार साव (अ॰ सा॰ 3) भी सूचक अ॰ सा॰ 6 की दुकान में आया। सूचक संजय पीटर मरांडी ने उसे लड़का जो दुकान में काम करता था, के साथ थोड़ी देर के लिए दुकान में रहने को कहा। तत्पश्चात् सुशांत टूडू अ॰ सा॰ 5 और सूचक अ॰ सा॰ 6 सुशांत टूडू की मोटरसाइकिल पर जरीडीह बाजार गए। कुछ समय बाद सूचक अ॰ सा॰ 6 अपनी दुकान पर पहुँचा और पाया कि वहाँ काफी लोग जमा थे और उसकी दुकान को घेर लिया था और उसे उन लोगों द्वारा बताया गया कि अभियुक्त-अपीलार्थीगण विकास शर्मा उर्फ गुल्ला और विशाल शर्मा उर्फ बंटी अपने हाथों में तलवार और भुजाली लिए उसकी दुकान पर आए थे और अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव पर यह विश्वास करते हुए कि वह संजय पीटर मरांडी है, हथियारों जो वे अपने हाथों में पकड़े थे, से प्रहार किया। अभियोजन कथा में यह भी है कि सुभाष साव (अ॰ सा॰ 3) अपनी जान बचाने के लिए दुकान से अपने घर भाग गया और स्वयं को अपने घर जो सूचक की दुकान के निकट था, में बन्द कर लिया। पूर्वोक्त अभियुक्त-अपीलार्थीगण सूचक के परिवार के सदस्यों की हत्या करने के आशय के साथ सूचक के घर की ओर अग्रसर हुए। इसी बीच, सूचक भी बाजार से अपनी दुकान पर वापस आया था। उसने घटनास्थल पर एकत्रित लोगों से उक्त सूचना सुनने पर सूचक तुरन्त अपने घर की ओर भागा और उसने देखा कि दोनों अभियुक्त-अपीलार्थीगण की माता अपने हाथ में डंडा लिए चारदीवारी के फाटक के निकट खड़ी थी और पूर्वोक्त अपीलार्थीगण का भाई राजेश कुमार भी अपने हाथ में डंडा लिए वहाँ उपस्थित था और उसने अपीलार्थीगण को सूचक के परिवार के सभी सदस्यों की हत्या करने के लिए प्रोत्साहित किया। अभियुक्त-अपीलार्थीगण विकास शर्मा और विशाल शर्मा ने सूचक के माता, पिता और भाई पर प्रहार किया। जब उसने अपने परिवार के सदस्यों पर क्रूरतापूर्ण प्रहार कारित किये जाते देखा तो उसने उन्हें बचाने के लिए शोर मचाया और अभियुक्त-अपीलार्थीगण हथियारों, जो वे अपने हाथों में लिए हुए थे, से उस पर प्रहार करने के लिए सूचक की ओर दौड़े। सूचक भी इस आशंका पर कि यदि वह उन्हें बचाने के लिए वहाँ बना रहेगा, वे घटनास्थल पर उसकी भी हत्या कर देंगे, घटना स्थल से भाग गया और वह पुलिस थाना पहुँचा जहाँ उसने मुंशी (पुलिस थाना का कांस्टेबल क्लर्क) को घटना के बारे में सूचित किया और पुलिस थाने के प्रभारी-अधिकारी, जो पेट्रोलिंग ड्यूटी पर थे, को वायरलेस पर सूचित किया गया था और वह तुरन्त घटनास्थल पहुँचे। जब पुलिस घटनास्थल पर पहुँची, उसका भाई उपहतियों के चलते पहले ही दम तोड़ चुका था और उसके माता-पिता जीवित थे। उन्हें अस्पताल ले जाया गया था किन्तु जब वे अस्पताल जा रहे थे, सूचक के माता की मृत्यु रास्ते में ही हो गयी। उसके पिता को धोरी अस्पताल में भरती किया गया था जहाँ चार दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गयी। पुलिस ने घटनास्थल पर पहुँचने के बाद सूचक का फर्दबयान भी दर्ज किया। पुलिस ने मृत्यु समीक्षा रिपोर्टों को तैयार किया और बेरमो पी॰ एस॰ केस सं॰

30 वर्ष 2005 भी दर्ज किया और विधि के अनुरुप अन्वेषण शुरू किया। अन्वेषण की समाप्ति पुलिस द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल करने में हुई।

3. विद्वान दंडाधिकारी ने संज्ञान लेने के बाद मामला सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया और विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थीगण को आरोपित किया गया था। अपीलार्थीगण ने आरोपों से इंकार किया और विचारण का दावा किया।

4. अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में अ॰ सा॰ 6 सूचक संजय पीटर मरांडी, अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव घायल, अ॰ सा॰ 4 जेम्स चौरे और अ॰ सा॰ 5 सुशांत टूडू जिन्होंने स्वयं को घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया था, का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ अजय कुमार सिंह ने तीनों मृतकों के मृत शरीर की शव परीक्षा संचालित की थी। अ॰ सा॰ 2 डॉ॰ कुमार अजय सिंह चिकित्सा अधिकारी है जिन्होंने घायल सुभाष कुमार साव अ॰ सा॰ 3 का परीक्षण किया था। दोनों डॉक्टर अ॰ सा॰ 1 और 2 ने क्रमश: शव परीक्षण रिपोर्ट और उपहति रिपोर्ट को सिद्ध किया है। अ॰ सा॰ 7 शैलेश कुमार चौहान मामले का अन्वेषण अधिकारी है। अ॰ सा॰ 8 रमा शंकर सिंह, सहायक निदेशक, राजकीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, राँची, झारखंड है। पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी सतीश कुमार (अ॰ सा॰ 9) ने अस्पताल में समस्त मृतकों की मृत्यु समीक्षा रिपोर्टों को तैयार किया। अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में कतिपय दस्तावेजों को भी प्रस्तुत किया है जिन्हें प्रदर्श 1 से प्रदर्श 13 तक चिन्हित किया गया है।

5. अभियोजन द्वारा साक्ष्य दर्ज किए जाने के बाद अपीलार्थीगण को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन परीक्षण किया गया था और उन्होंने अपने विरुद्ध साक्ष्य में किए गए समस्त प्रकथनों से इनकार किया और आगे कथन किया कि उन्हें मामले में झूठा आलिप्त किया गया है। बचाव पक्ष ने उनके बचाव के समर्थन में तीन गवाहों का परीक्षण किया है। ब॰ सा॰ 1 लक्ष्मण राम, ब॰ सा॰ 2 रामदेव राम और ब॰ सा॰ 3 डरकू सिंह। उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया है कि दिनांक 10.3.2005 की रात्रि को उन्होंने कुछ हल्ला सुना था और देखा था कि चौक पर कुछ लोग एकत्रित हुए थे। उन्होंने आगे अभिसाक्ष्य दिया कि सूचक घटनास्थल पर मोटरसाइकिल से पहुँचा था और मोटर साइकिल पर उसके पीछे कोई और भी बैठा हुआ था। वे उसके घर गए और कुछ समय बाद तुरन्त ही उक्त चौक पर वापस आए और कहा कि अज्ञात व्यक्तियों द्वारा उसके माता, पिता और भाई की हत्या कर दी गयी थी और उसने उन व्यक्तियों का नाम प्रकट नहीं किया जिन्होंने उनकी हत्या की थी। वह तुरन्त मोटर साइकिल पर पुलिस थाना गया।

6. साक्ष्य का परिशीलन और पक्षों को सुनने के बाद विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया और दंडादेश दिया जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है।

7. यहाँ यह उल्लिखित करना आवश्यक है कि मृतकों की मृत्यु घटनास्थल पर अभियोजन कथा में उपदर्शित समय और स्थान पर हो गयी। अभियोजन ने अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ ए॰ के॰ सिंह का भी परीक्षण किया जिन्होंने दिनांक 11.3.2005 को प्रात: 8.45 बजे मृतकों के मृत शरीरों की शव परीक्षा धोरी क्षेत्रीय अस्पताल में संचालित की थी और मृतक **फिलिप जेम्स मरांडी** के मृत शरीर पर निम्नलिखित बाह्य उपहतियों को पाया था:-

(i) दाहिने कान से बढ़ते हुए और ठुडड्री की ओर जाते हुए मुख के दाएं हिस्से पर 8" x 1/2" x 1/2" की कटी हुई उपहति, (ii) गर्दन के सबमेंटल क्षेत्र पर 2" x 1/2" x 1/4" की कटी हुई उपहति, (iii) गर्दन के दाएँ हिस्से से दाएँ कंधे के क्षेत्र की ओर से क्षैतिज दिशा में बाएँ छाती के ऊपरी हिस्से पर सतही 6" लंबी त्वचा तक गहरी उपहति, (iv) दायें हाथ पर 3" x 1" x ½" की कटने की उपहति जिसके चलते मेटाकार्पल्स का

पार्श्विक अस्थिभंग हुआ (v) दाएँ अंगूठे और तर्जनी के बीच हाथ के दाएँ भाग पर 1" x 1/2" x 1/4" की कटी हुई उपहति। उल्लिखित समस्त उपहतियाँ तलवार और भुजाली जैसे तेजधार वाले और भारी हथियारों द्वारा किए जाने की संभावना है। उपहतियों की प्रकृति मृत्युपूर्व थी। मृत्यु का कारण उक्त उल्लिखित उपहतियों के कारण हेमरेज और आघात थी। मृत्यु से बीता समय दिनांक 11.3.2005 को प्रातः 8.45 बजे सुबह संचालित शव परीक्षण के समय से 24 घंटा था।

अ॰ सा॰ 1 ने **संदीप पॉल मरांडी** के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया और निम्नलिखित उपहतियों को पाया:–

(i) तीन की संख्या में मुख के बाएँ हिस्से पर कटी उपहति (a) मोलर प्रोमिनेन्स को पार करते हुए उपरी होंठ की ओर बाएँ कान से बढ़ते हुए 6" x ½" x ½", (b) उपहति सं० (a) के नीचे 5-1/2" x 1/2", (c) उपहति सं० (b) के नीचे 5" x 1/2" x 1/2"; (ii) स्काल्प के दाएँ फ्रौंटल क्षेत्र से नाक की ओर बढ़ते हुए मुख के दाएँ हिस्से पर 6" x 1/2" x 1/2" की कटी उपहति, अस्थियाँ दिखती हुई; (iii) गर्दन के बाएँ हिस्से पर 6" x 1/2" x 1/2" की कटने की उपहति, यह उपहति बाएँ केरोटिड आर्टरी का कटना भी सम्मिलित करती है; (iv) हाथ के डोरसम पर त्वचा को छोड़कर एक छोर से दूसरे छोर तक क्षैतिज दिशा में हाथ के लगभग संपूर्ण ट्रांजैक्शन की ओर ले जाती हथेली के बाएँ हिस्से पर कटने की उपहति, माप 4" x 1" x1/2"; (v) कोहनी के पॉस्टीरियर पर कटी उपहति 2" x 1/4" x 1/4" (vi) इंटीरियर आक्जिलरी फोल्ड पर कटने की उपहति, 1" x 1/2" x 1/4": (vii) पेट पर कटने की उपहति 3" x 1/2" x 1/4"; (viii) छाती के बाएँ हिस्से पर कटने की उपहति 2" x 1/4" x 1/4"। उक्त समस्त उपहतियाँ संभवतः तलवार और भुजाली जैसे तेजधार वाले और भारी हथियारों से कारित होना संभावित है। उपहतियों की प्रकृति मृत्यु–पूर्व है। डॉक्टर के अनुसार मृत्यु का कारण उक्त उल्लिखित उपहतियों के कारण हेमरेज और आघात था। मृत्यु के बाद से बीता समय 24 घंटा।

अ॰ सा॰ 1 ने जयवंती मरांडी के मृत शरीर का शव परीक्षण संचालित किया और निम्नलिखित उपहतियों को पाया:

(i) दायीं कलाई पर कटने की उपहति 2" लंबी अस्थियाँ पृथक (कट थ्रू), (ii) मुख के बाएँ हिस्से पर 4" x 1" x 1/4" कटने की उपहति, (iii) नाक के दाएँ हिस्से से मोलरक्षेत्र तक बढ़ती मुख के दाएँ हिस्से पर 2" x 1/2" x 1/4" कटने की उपहति, (iv) बाएँ मस्टवायड क्षेत्रा से गाल की ओर बढ़ती 6" x 1/2" x 1/4" कटने की उपहति, (v) गर्दन के बाएँ हिस्से पर 2" x 1/2" x 1/4" कटने की उपहति, (vi) बायीं कलाई पलमर आस्पेक्ट (वेन्ट्रल आस्पेक्ट) पर 2" x 1/2" x 1/4" कटने की उपहति, (vii) बाएँ रिब केज एरिया पर 2" x 1/2" x 1/4" कटने की उपहति। समस्त उपहतियों को तेज धारवाले हथियार द्वारा कारित किए जाने की संभावना है। चिकित्सा अधिकारी के अनुसार मृत्यु का कारण उक्त उल्लिखित उपहतियों के कारण हेमरेज और आघात था। मृत्यु के बाद से बीता समय 24 घंटा था। ये उपहतियाँ तलवार अथवा भुजाली द्वारा संभव है। शव परीक्षण रिपोर्टों को क्रमशः प्रदर्शों 1, 2 और 3 के रूप में चिन्हित किया गया है।

अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ ए॰ के॰ सिंह ने मत दिया कि मृतक द्वारा प्राप्त उपहतियों को तलवार और भुजाली जैसे तेजधार वाले और भारी हथियारों से कारित किए जाने की संभावना है। उन्होंने आगे मत दिया है कि मृत्यु का समय शव परीक्षण के समय से 24 घंटों के भीतर है। उन्होंने आगे मत दिया कि उपहतियाँ मृत्युपूर्व प्रकृति की है और मृत्यु आघात एवं हेमरेज के कारण और मृत्युपूर्व उपहतियों के कारण कारित हुई थी।

अ॰ सा॰ 2 डॉ॰ अजय कुमार सिंह ने दिनांक 10.3.2005 को रात्रि लगभग 10.50 बजे क्षेत्रीय अस्पताल, धोरी में अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव की उपहतियों का परीक्षण किया था जहाँ उसने अगली

बाँह पर विदीर्ण घाव पाया था। कम्पाउन्ड फ्रैक्चर का संदेह, खून बहता ताजा जख्म, जख्म की आयु 24 घंटों के भीतर था। उपहति का ढंग कड़े और भोथरे और साथ-साथ तलवार जैसे तेज धार वाले वस्तु द्वारा था।

डॉक्टर (अ॰ सा॰ 2) ने आगे मत दिया है कि उपहतियों का समय घायल के परीक्षण के समय से 24 घंटों के भीतर था। उन्होंने आगे मत दिया कि उपहतियाँ तलवार जैसे कड़े अथवा तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी होंगी और उपहतियों की प्रकृति गंभीर थी।

8. अब यह विनिश्चित किया जाना है कि क्या अपीलार्थीगण ने घटना की तिथि पर मृतकों की हत्या की थी या नहीं। अभियोजन के अनुसार, मृतकों के शरीर पर उपहतियों के लेखक अपीलार्थीगण थे और उक्त उपहतियाँ तलवार और भुजाली द्वारा कारित की गयी थी जो अपीलार्थीगण मृतकों पर प्रहार करते समय अपने हाथों में पकड़े थे। अपीलार्थीगण ने निर्दोषिता का अभिवाक् किया है और कहा है कि उन्हें मामले में झूठा आलिप्त किया गया है।

9. अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में चश्मदीद गवाहों का परीक्षण किया है जिन्होंने दावा किया है कि उन्होंने घटना देखी थी।

10. घटना के दो भाग है। प्रथम भाग यह है कि अपीलार्थीगण अपने हाथ में हथियार-तलवार और भुजाली लिए हुए सूचक संजय पीटर मरांडी की दुकान पर पहुँचे और अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव को अ॰ सा॰ 6 संजय पीटर मरांडी, गलती से समझते हुए अपने-अपने हथियारों से उपहतियाँ कारित की और उस पर गंभीर चोटों को पहुँचाया। उक्त घटना के लिए अभियोजन ने अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव और अ॰ सा॰ 2 डॉ॰ अजय कुमार जिन्होंने घटना के बाद अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव की उपहतियों का परीक्षण किया था, साक्ष्य पेश किया है। घटना का द्वितीय भाग यह है कि अपीलार्थीगण द्वारा अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार पर प्रहार किए जाने के बाद वह (अ॰ सा॰ 3) घटनास्थल से भाग गया और अपने घर के भीतर चला गया। अभियुक्त अपीलार्थीगण ने उसका पीछा किया और वे भी अ॰ सा॰ 6 सूचक के घर में घुस गए जहाँ उन्होंने मृतकों की हत्या की जो सूचक (अ॰ सा॰ 6) के भाई, माता और पिता है। घटना के द्वितीय अंश को अ॰ सा॰ 4 जेम्स चौरे, अ॰ सा॰ 5 सुशांत टूडू और अ॰ सा॰ 6 संजय पीटर मरांडी द्वारा देखा गया था।

11. हम पहले घटना के द्वितीय भाग पर चर्चा करेंगे जिसमें कहा गया कि अपीलार्थीगण ने मृतकों की हत्या की। अभियोजन ने अपने मामले के समर्थन में अ॰ सा॰ 4, 5 और 6 का घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 4 जेम्स चौरे ने कथन किया है कि दिनांक 10.3.2005 को रात्रि लगभग 9 बजे वह अपने घर के भीतर खाना खा रहा था और उसने घर के बाहर कुछ शोरगुल सुना और वह तुरन्त अपने घर से बाहर आया और घटना को देखा। अ॰ सा॰ 5 सुशांत टूडू ने कथन किया है कि वह सूचक अ॰ सा॰ 6 की दुकान पर मोटर साइकिल से आया और दुकान में एकत्रित व्यक्तियों द्वारा उसे सूचित किया गया था कि सूचक अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव और एक लड़के को दुकान की देखभाल के लिए दुकान में रखकर बाजार गया था। जब सूचक अपनी दुकान पर वापस आया, उसने जाना कि दोनों अपीलार्थीगण सूचक की दुकान पर आए और गलती से उसे सूचक समझते हुए अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव पर प्रहार किया था और उसने अपने शरीर पर उपहतियों को प्राप्त किया था। उसने आगे जाना कि तत्पश्चात अभियुक्त अपीलार्थीगण अपने-अपने हाथों में तलवार और भुजाली पकड़े हुए सूचक के घर की ओर गए थे। यह सुनने के तुरन्त बाद, गवाह मोटर साइकिल से उतरा और घटनास्थल की ओर गया और उसने घटना को देखा। अ॰ सा॰ 4 और 5 अर्थात् जेम्स चौरे और सुशांत टूडू दोनों ने घटना को

देखा और उन्होंने कथन किया है कि राजेश शर्मा, जिसे अपीलार्थीगण का भाई कथित किया जाता है, अपने हाथ में लाठी लिए अ॰ सा॰ 6 सूचक के घर के दवाजा के निकट खड़ा था; अपीलार्थीगण की माता भी अपने हाथ में लाठी लिए वहाँ खड़ी थी। उन्होंने आगे अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी विकास शर्मा तलवार से लैस था और अपीलार्थी विशाल शर्मा भुजाली से लैस था और उन दोनों ने मृतकों के शरीर पर उपहतियाँ कारित की थी। अपीलार्थी विकास शर्मा ने तलवार से फिलिप मरांडी पर वार किया था और वह नीचे गिर गया था। दोनों अभियुक्त अपीलार्थीगण ने अपने-अपने हथियारों जिन्हें वे अपने हाथों में पकड़े हुए थे से अ॰ सा॰ 6 के भाई संदीप पर घातक वार किया जिसके परिणामस्वरुप वह भी नीचे गिर गया। उन्होंने यह अभिसाक्ष्य भी दिया है कि मृतक की माता जो वहाँ उपस्थित थी पर भी दोनों आवेदकों द्वारा प्रहार किया गया था। इस प्रकार, दोनों गवाहों (अ॰ सा॰ 4 और 5) ने सारगर्भित रूप से घटना का ब्योरा दिया है। इसी बीच, सूचक अ॰ सा॰ 6 संजय पीटर मरांडी घटनास्थल पर पहुँचा और मदद के लिए चिल्लाया। किन्तु अभियुक्त अपीलार्थीगण उस पर प्रहार करने के लिए उसकी ओर दौड़े। वह घटनास्थल से भाग गया। कुछ समय बाद पुलिस घटनास्थल पर पहुँची और यह पाया गया था कि अ॰ सा॰ 6 संदीप? [संजय] पीटर मरांडी पहले से ही घटनास्थल पर था और अ॰ सा॰ 6 सूचक के माता-पिता उस समय जीवित थे और उन्हें अस्पताल ले जाया गया था। सूचक के माता की मृत्यु अस्पताल ले जाते हुए हो गयी जबकि पिता की मृत्यु चार दिनों बाद धोरी अस्पताल में हो गयी।

12. अ॰ सा॰ 6 संजय मरांडी मामले का सूचक है और वह घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा करता है। उसने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि दिनांक 10.3.2005 को रात्रि लगभग 8.30 बजे उसका मित्र अ॰ सा॰ 5 सुशांत उसके घर आया और उसे कुछ वस्तुओं को खरीदने के लिए अपने साथ जरीडीह बाजार चलने को कहा जिस पर सूचक उसकी मोटरसाइकिल पर उसके साथ बाजार गया। सूचक (अ॰ सा॰ 6) ने अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव और लड़के को दुकान की देखभाल के लिए दुकान में रुकने को कहा। जब वे जरीडीह बाजार से दुकान पर आए, उन्होंने कुछ लोगों को दुकान के निकट एकत्रित देखा और उनलोगों ने उसे सूचित किया कि दोनों अभियुक्त अपीलार्थीगण, विकास शर्मा उर्फ गुल्ला और विशाल शर्मा उर्फ बन्टी अपने-अपने हाथों में तलवार और भुजाली लिए उसकी दुकान पर आए और गलत पहचान पर कि वह सूचक था, अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव पर प्रहार किया। अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव ने अपने शरीर पर उपहतियाँ प्राप्त की और वह घटनास्थल से भाग गया। तत्पश्चात, जमा भीड़ ने उनको यह भी सूचित किया कि दोनों अपीलार्थीगण उसके परिवार के सदस्यों पर प्रहार करने के लिए उसके घर की ओर अग्रसर हुए थे। सूचक अपने घर भागा और वहाँ पहुँचने पर उसने पाया कि अपीलार्थीगण की माता अपने हाथ में डंडा के साथ उसके घर के दरवाजा पर खड़ी थी और अपीलार्थी विकास उर्फ गुल्ला का भाई राजेश शर्मा भी चारदीवारी के भीतर खड़ा था और वह सूचक के परिवार के समस्त सदस्यों की हत्या करने के लिए अपीलार्थीगण को प्रेरित कर रहा था। सूचक अ॰ सा॰ 6 ने देखा कि अभियुक्त अपीलार्थी विकास शर्मा के हाथ में तलवार था जबकि अन्य अपीलार्थी विशाल शर्मा भुजाली लिए था और वे अपने-अपने हथियारों से उनकी हत्या के आशय से उसके माता, पिता और भाई पर प्रहार कर रहे थे। जब अपीलार्थीगण ने सूचक अ॰ सा॰ 6 को देखा, वे उसकी भी हत्या करने कि इरादे के साथ अपने हाथों में अपने-अपने हथियारों के साथ उसकी ओर बढ़े। किन्तु वह अत्यन्त आतंकित होने के कारण और आशंका करते हुए कि अभियुक्त अपीलार्थीगण उसकी भी हत्या कर देंगे, वह (सूचक) पुलिस थाना चला गया जहाँ मुंसी (पुलिस थाना का कॉंसटेबल क्लर्क) उसे मिला और उसने उसे घटना के बारे में बताया और तत्पश्चात् पुलिस तुरन्त उसके घर पहुँची और लोगों की सहायता से उसके माता-पिता को अस्पताल

ले जाया गया था। सूचक के भाई की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गयी, माता की मृत्यु उसको अस्पताल ले जाने के दौरान हो गयी और पिता अपने उपचार के दौरान धोरी अस्पताल में उपहतियों के कारण मर गया। इस प्रकार यह गवाह, सूचक अ॰ सा॰ 6 ने भी घटना का सजीव चित्रण किया है।

13. अभियोजन ने अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव को भी प्रस्तुत किया जिसे घायल गवाह बताया जाता हैं किन्तु इस घटना के समय पर नहीं बल्कि उसने प्रथम घटना में उपहतियों को प्राप्त किया जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है। उसने भी घटना के बारे में कथन किया है कि और मुख्य परीक्षण के दौरान स्वयं को चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है और उसने यह कथन भी किया है कि अभियुक्त अपीलार्थीगण ने समस्त तीनों मृतकों की हत्या की जो सूचक के माता-पिता और भाई थे।

14. विचारण न्यायालय ने अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य के सूक्ष्म संवीक्षण के बाद अभिनिर्धारित किया है कि अ॰ सा॰ 3 ने कथन किया है कि उसे सूचक के माता, पिता और भाई की हत्या के बारे में जानकारी तब हुई जब वह अस्पताल से वापस आया। विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रति-परीक्षण के पैरा 15 के परिशीलन से प्रतीत होता है कि वह सूचक के माता, पिता और भाई की हत्या की घटना के तथ्य का चश्मदीद गवाह नहीं हो सकता है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि उपहतियाँ प्राप्त करने के बाद वह भाग गया और सीधा अपने घर में घुस गया और जब वह बाहर आया, अभियुक्त अपीलार्थीगण स्थान छोड़ चुके थे और वह स्वयं अस्पताल गया और जब वह अस्पताल से घर लौटा, उसे हत्या की क्रूर और वीभत्स घटना के बारे में मालूम हुआ। हम विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों से भिन्नता रखने के लिए कोई सामग्री, तर्कपूर्ण और विश्वसनीय सामग्री की बात ही दूर, यह देखते हुए नहीं पाते है कि यह स्वाभाविक है क्योंकि गवाह अपने घर के अन्दर चला गया था। उसने अपने प्रति-परीक्षण में कथन किया है कि जब वह वापस लौटा, उसे ज्ञात हुआ कि मृतकों पर प्रहार किया गया था और उनकी मृत्यु हो गयी थी और इसलिए उसे चश्मदीद गवाह नहीं कहा जा सकता है। अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य का अधिमूल्यन करने में विचारण न्यायालय ने कोई गलती नहीं की है और हम इस तथ्य के सम्बन्ध में विचरण न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हैं कि अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव न तो द्वितीय घटना का और न ही सूचक के माता-पिता और भाई के हत्या के तथ्य का चश्मदीद गवाह था। वह उस घटना का चश्मदीद गवाह था जिसमें उसने उपहतियाँ प्राप्त की थी जिस पर बाद में चर्चा की जाएगी।

15. इस बिन्दु पर अत्यन्त जोर दिया गया है कि मुहल्ला, जहाँ घटना हुई थी, के किसी स्वतंत्र गवाह अर्थात् दुकानदारों और निवासियों का परीक्षण अभियोजन द्वारा नहीं किया गया है। गवाह जिन्हें न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है विश्वसनीय नहीं है। अ॰ सा॰ 4 ने संपूर्ण घटना का कथन किया है और वह घटना का स्वाभाविक गवाह है और अभियुक्त अपीलार्थीगण के साथ उसकी दुश्मनी नहीं है। जहाँ तक अ॰ सा॰ 5 सुशांत टूडू का संबंध है, उसे पक्षपाती गवाह नहीं कहा जा सकता है। उनको झूठा आलिप्त करने के लिए अभियुक्तगण के साथ दुश्मनी नहीं है। साक्ष्य का अधिमूल्यन करते हुए यह देखना होगा कि साक्ष्य की गुणवत्ता क्या है। साक्ष्य की गुणवत्ता न कि मात्रा अपेक्षित है। यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य अन्यथा संतोषजनक प्रकृति के है और उन्हें विश्वास योग्य कहा जा सकता है, तब गवाहों की संख्या में वृद्धि मामले की आवश्यकता नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त, यह एक फैशन हो गया है कि आम जनता, विशेषत: दांडिक मामलों में, अनेक कारणों से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और अभिसाक्ष्य देने से कतराती है। वर्तमान मामले में, कोई साक्ष्य नहीं है कि अड़ोस-पड़ोस के अन्य निवासी भी

अपने-अपने घरों में थे। अभियोजन ने दो गवाहों को प्रस्तुत किया है, पहला उसी पड़ोस का और वह खाना खा रहा था। वह तुरन्त अपने घर से बाहर आया और उसने भी घटना को देखा। वह एक स्वाभाविक गवाह है और उसकी विश्वसनीयता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। अ॰ सा॰ 5 भी घटना का चश्मदीद गवाह है और वह एक स्वतंत्र गवाह है। उसका साक्ष्य संगत था और उसके प्रतिपरीक्षण से कुछ भी ऐसा नहीं निकाला गया है जो निर्भर योग्य गवाह के साक्ष्य को अविश्वसनीय बनाएगा। अत: मुहल्ला के अन्य गवाहों से घटना की संपुष्टि कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। अत्यन्त जोर दिया गया था कि घटना के तरीके के संबंध में गवाहों के परिसाक्ष्य में विरोधाभास हैं। हमने समस्त साक्ष्य का परिशीलन किया है और हम कोई ऐसा विरोधाभास नहीं पाते है जो घटना की उत्पत्ति को छेड़ता है। मृतकों की मृत्यु के बारे में कोई विवाद नहीं है। स्मरण शक्ति के व्यपगत होने के कारण, संप्रेक्षण की स्वाभाविक गलती के कारण और घटना के समय पर लगे आघात एवं आंतक के कारण किसी सत्यवादी गवाह के परिसाक्ष्य में भी न्यून अंतर आ सकता है। ये सदैव रहती है भले ही गवाह कितना भी ईमानदार और सत्यवादी क्यों न हो। अत: हम चश्मदीद गवाहों विशेषत: अ॰ सा॰ 4 जेम्स चौरे, अ॰ सा॰ 5 सुशांत टूडू और अ॰ सा॰ 6 संजय पीटर मरांडी के परिसाक्ष्य में कोई ऐसा विरोधाभास नहीं पाते है। अ॰ सा॰ 4, 5 और 6 का विस्तारपूर्वक प्रति परीक्षण किया गया है किन्तु उसके साक्ष्य से कुछ भी निकाला नहीं जा सका था। प्रति परीक्षण के दौरान यह दर्शाने का प्रयास किया गया था कि अ॰ सा॰ 4, 5 और 6 घटना स्थल पर उपस्थित नहीं थे किन्तु इससे बचाव पक्ष को कोई लाभ नहीं हुआ।

16. मृतकों का शव परीक्षण रिपोर्ट तलवार और भुजाली द्वारा मृतकों को कारित उपहतियों के तथ्य को आगे संपुष्ट करता है; घटना का समय और प्रयुक्त हथियार भी चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा आगे संपुष्ट किए गए है।

17. जहाँ तक प्रथम घटना का संबंध है, अभियोजन ने अ॰ सा॰ 3 सुभाष कुमार साव का साक्ष्य पेश किया है। उसने कथन किया है कि दिनांक 10.3.2005 को रात्रि लगभग 8.30 बजे वह सूचक अ॰ सा॰ 6 की दुकान पर गया था जहाँ उसने पाया कि सुशांत टूडू अ॰ सा॰ 5 भी वहाँ उपस्थित था और वह सूचक के साथ बाजार जाना चाहता था। सूचक ने सुभाष कुमार साव अ॰ सा॰ 3 से दुकान की देखभाल के लिए लड़के के साथ कुछ समय तक दुकान में ही रहने को कहा और वह जल्द ही बाजार से लौट आएगा। जब वह दुकान में बैठा हुआ था, दोनों अपीलार्थीगण विकास उर्फ गुल्ला और विशाल उर्फ बन्टी अपने हाथों में तलवार और भुजाली से लैस होकर अचानक वहाँ पहुँचे और उस पर प्रहार किया जिससे बचने का प्रयास उसने बाएँ हाथ द्वारा किया जिस क्रम में हाथ पर उसे उपहतियाँ प्राप्त हुई और अन्य अभियुक्त अपीलार्थी विशाल शर्मा ने भुजाली से उसपर प्रहार किया जिससे उसके बाएँ हाथ की उंगलियों पर उपहतियाँ कारित हुई। वह घटनास्थल से भाग गया। जब उसने पीछे देखा, उसने देखा कि अपीलार्थीगण राजेश और उसकी माता के साथ उसके पीछे आ रहे थे। गवाह अपने घर में घुस गया जो सूचक के घर के आस-पास था। अपीलार्थीगण सूचक के घर में घुस गए। इस प्रकार, उसने प्रथम घटना जिसमें उसने उपहतियों को प्राप्त किया के बारे में बताया है। हमने पहले ही पूर्ववर्ती पैराग्राफों में उपहतियों, जिन्हें अ॰ सा॰ 2 डॉ॰ ए॰ के॰ सिंह द्वारा घायल अ॰ सा॰ 3 के शरीर पर पाया गया था, को उपदर्शित किया है। इस प्रकार, गवाह प्रथम घटना के बारे में संगत है और उपहतियों को चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट किया गया है। उसके शरीर पर उपहतियों को कारित किए जाने के बारे में अ॰ सा॰ 2 का साक्ष्य विश्वसनीय और तर्कपूर्ण है। विचारण न्यायालय ने प्रथम घटना के संबंध में उसके साक्ष्य पर सही प्रकार से विश्वास किया है।

18. उत्पत्ति, घटना की प्रकृति, घटना के समय अपीलार्थीगण द्वारा ढोए जा रहे हथियारों की प्रकृति सहित मामले के अनेक प्रासंगिक लक्षणों के दिग्दर्शन पर, अभियोजन के साक्ष्य से अथवा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से उद्‌भुत किसी अधिसंभाव्यता से निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थीगण को मामले में झूठा आलिप्त किया गया है। हमने चश्मदीद गवाहों और अन्य गवाहों के संपूर्ण साक्ष्य का परिशीलन किया है। विचारण न्यायालय ने अंतर्निहित रूप से साक्ष्य को सत्यवादी और विश्वसनीय पाया है यद्यपि उनकी उपस्थिति को संदेहास्पद दर्शाने का प्रयास किया गया था। हम अपीलार्थीगण की ओर से किए गए अभिवचन को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं पाते है। घटना स्थल पर उनकी उपस्थिति को स्पष्ट किया गया है और उनके साक्ष्य को केवल इसलिए अविश्वसनीय अथवा कलंकित के रूप में संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाहों में से एक मृतकों का संबंधी था। अभियोजन साक्ष्य ने समस्त तात्विक विशिष्टियों में संपूर्ण मामले का समर्थन किया है और उनके साक्ष्य में कोई दुर्बलता इंगित नहीं की जा सकती है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के स्वतंत्र अधिमूल्यन पर हम घटना की उत्पत्ति के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों में कोई दोष नहीं पाते है। विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्षों और साक्ष्य/अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन के बाद हम घटना के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्षों के साथ असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते है। हम पाते है कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला स्थापित करने में सक्षम रहा है। इस प्रकार, हम नहीं पाते है कि अपीलार्थीगण को मामले में झूठा आलिप्त किया गया है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि अपास्त करने पर अधिक जोर नहीं दिया है। उन्होंने केवल आग्रह किया है कि अपीलार्थीगण को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश आजीवन कारावास में बदल दिया जाए।

19. अब हमें यह देखना है कि क्या अपीलार्थीगण का मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 307 की परिधि के अंतर्गत आता है। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध गठित करने के लिए अपराध के दो घटक अवश्य उपस्थित होने चाहिए; (i) हत्या किए जाने से संबंधित जानकारी अथवा इसका आशय और (ii) इसकी ओर कृत्य करना। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के उद्देश्य के लिए तात्विक आशय अथवा जानकारी है और न कि आशय पूरा करने के उद्देश्य के लिए किए गए वास्तविक कृत्य का परिणाम। धारा स्पष्ट रूप से ऐसे किसी कृत्य को अनुध्यात करती है जिसे मृत्यु कारित करने के आशय के साथ किया गया है किन्तु मध्यक्षेपी परिस्थितियों के कारण आशयित परिणाम को पूरा करने में कृत्य विफल रहता है। अभियुक्त का आशय अथवा ज्ञान ऐसा होना होगा जो हत्या गठित करने के लिए आवश्यक है। आशय अथवा जानकारी की अनुपस्थिति में, जो भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 का आवश्यक घटक है, हत्या के प्रयास का अपराध नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा मनोदशा तथ्य के रूप में सटीक रूप से सिद्ध नहीं की जा सकती है। इसे केवल अन्य कारकों से निष्कर्षित किया जा सकता है। हत्या कारित करने के आशय को निम्नलिखित कुछ अथवा अनेक अन्य परिस्थितियों के मिश्रण से सामान्यत: एकत्रित किया जा सकता है:–

1. प्रयुक्त हथियार की प्रकृति;

2. क्या हथियार अभियुक्त द्वारा ढोया गया था अथवा इसे घटनास्थल से उठाया गया था;

3. क्या शरीर के महत्वपूर्ण अंग पर बार साधा गया था;

4. उपहति कारित करने में प्रयुक्त बल की मात्रा;

5. क्या कृत्य अचानक लड़ाई के क्रम में अथवा स्वछंद लड़ाई के क्रम में था;

6. क्या घटना संयोगवश हुई थी;

7. क्या कोई पूर्वचिन्तन था;

8. क्या कोई पूर्व दुश्मनी थी अथवा घायल अजनबी था;

9. क्या यह आवेग में हुआ था,

10. क्या अभियुक्त ने केवल एक वार अथवा अनेक वारों को किया था;

11. क्या कोई मध्यक्षेपी परिस्थितियाँ थी जिसने घायल के शरीर पर आगे उपहतियां को कारित होने से रोका;

12. क्या उसके पास उस पर आगे उपहतियाँ कारित करने का पर्याप्त समय था।

उपहतियाँ कारित करते हुए हमलावर/व्यक्ति के आशय पर विचार करने के लिए ये कुछ कारक है जो समग्र नहीं है।

20. वर्तमान मामले में, तलवार और भुजाली का प्रयोग किया गया था जिन्हें अभियुक्त द्वारा अपने हाथों में लिया गया था और गलत पहचान पर उन्होंने घायल अ॰ सा॰ 3 के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर साधा गया था। घायल ने अपनी कलाई अथवा कनिष्ठ उंगली पर उपहतियाँ प्राप्त की थी और उसने महत्वपूर्ण अंगों पर उपहतियाँ प्राप्त नहीं की थी। अतिरिक्त उपहतियाँ कारित करने का पर्याप्त समय था। अपीलार्थीगण दो की संख्या में थे जबकि घायल केवल एक था। बल प्रयोग करने और उसकी हत्या करने का पर्याप्त अवसर था। जब वहाँ दो व्यक्ति थे, वह आसानी से भाग नहीं सकता था यदि अभियुक्त अपीलार्थीगण का आशय उसकी हत्या करने का होता। जब वह घर के अन्दर गया, वे अ॰ सा॰ 2 की मृत्यु कारित करने के लिए उसके घर के अंदर नहीं घुसे। अ॰ सा॰ 6 ने कहीं भी साक्ष्य नहीं दिया है कि उसकी हत्या करने के आशय से उन्होंने उपहतियाँ कारित की। अ॰ सा॰ 2 ने अपने साक्ष्य में उपदर्शित नहीं किया है कि उपहतियाँ उसके जीवन के लिए घातक थी। किन्तु डॉक्टर (अ॰ सा॰ 2) ने कथन किया है कि उपहतियाँ गंभीर थी। हम नहीं समझ पाते है कि उपहतियाँ गंभीर कैसे थी। कोई एक्सरे रिपोर्ट नहीं है, नहीं उपहतियों को संप्रेक्षण के अधीन रखा गया था और कोई एक्सरे रिपोर्ट नहीं है जिसमें यह कहा गया हो कि घायल के शरीर पर कोई फ्रैक्चर था। भारतीय दंड संहिता की धारा 320 के अधीन गंभीर उपहतियों को संगणित किया गया है और यह ऐसी धारा की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है और यह सिद्ध करने के लिए कि ये गंभीर प्रकृति की थी, कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है। इस प्रकार हम पाते है कि साक्ष्य में उपदर्शित उपहतियाँ सरल उपहति है। इस प्रकार, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि अभियुक्त अपीलार्थीगण उसकी हत्या करने के आशय से अ॰ सा॰ 3 सुभाष साव को उपहतियाँ कारित करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषी है। उपहतियाँ सरल मात्र है और अपीलार्थीगण भारतीय दंड संहिता की धारा 324 सह-पठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दायी है। चश्मदीद गवाहों का साक्ष्य तर्कपूर्ण और विश्वसनीय है। अपीलार्थीगण की ओर से विचारार्थ कोइ अन्य बिंदु नहीं उठाया गया है।

21. अगला प्रश्न जिस पर हमारे द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है ये है कि क्या अपीलार्थीगण को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश विधि और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुरुप है। अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है। इस नियम से विमुख होने का कोई कारण नहीं है। अपने प्रतिवादों के समर्थन में उन्होंने **बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1980(2) SCC 684,** में प्रकाशित मामले और **मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1983(3) SCC 470,** में प्रकाशित मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निष्कर्षों पर विश्वास किया है। अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान

अधिवक्ता ने अपने तर्कों के क्रम में आगे प्रतिवाद किया कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए विधि की गंभीर गलती की है। अनेक कम करने वाली परिस्थितियाँ भी है। अत: अपीलार्थीगण को आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करना न्यायोचित और समुचित होगा। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कम करने वाली परिस्थितियों को इंगित किया अर्थात् अपीलार्थीगण द्वारा तलवार और भुजाली से मृतकों पर प्रहार किया गया था और घटना छोटी अवधि के लिए हुई थी। क्रूरता और निर्दयता प्रत्येक हत्या में अंत:निर्मित है; हत्या के मामले में मृत्यु दंडादेश नहीं दिया जा सकता है जहाँ अपराध करने में आपवादिक निर्दयता है; वर्ष 2008 में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उसका बयान दर्ज किए जाते समय अपीलार्थी विशाल शर्मा की आयु 27 वर्ष थी और इस प्रकार जब घटना हुई थी, वह 24 वर्ष की आयु का था; अपीलार्थी विकास शर्मा की आयु 29 वर्ष थी जब दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उसका बयान वर्ष 2008 में दर्ज किया गया था; इस प्रकार, जब उसने अपराध किया, उसकी आयु लगभग 26 वर्ष थी; अत: अपीलार्थीगण की आयु पर कम करने वाली परिस्थितियों के रूप में विचार करना होगा। विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि उनके पास अपने भविष्य के जीवन को सुधारने के लिए अवसर है यदि उनका मृत्यु दंडादेश आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया जाता है। आगे इंगित किया गया था कि अपीलार्थीगण का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वे समाज के प्रति खतरा नहीं है। सूचक और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण के मृत्यु दंडादेश का समर्थन करते हुए प्रतिवाद किया कि परिस्थितियों, जैसा बचाव पक्ष द्वारा प्रक्षेपित किया गया है, पर मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने के लिए कम करने वाली परिस्थितियों के रूप में विचार नहीं किया जा सकता था। उन्होंने आगे इंगित किया कि जब सूचक दुकान में उपस्थित नहीं था, अपीलार्थीगण ने उसके माता, पिता और भाई की हत्या की। मृतकों की ओर से कोई उकसावा नहीं था; कि वह तरीका जिसमें तीनों व्यक्तियों की हत्या की गयी थी, अत्यन्त निर्मम, वीभत्स और डरावनी और मानव गरिमा के प्रति पूर्ण उपेक्षा का था और आपराधिक कार्य प्रणाली पहले से सुविचारित थी।

22. हमने अपीलार्थीगण और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और विचारण न्यायालय, जिसने अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया और मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया जैसा ऊपर उपदर्शित किया गया है, के निर्णय सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का परिशीलन किया है।

23. दांडिक विचारण में जहाँ अभियोजन मृत्यु दंडादेश के अधिरोपण के लिए मामला निर्मित करना इप्सित करता है, नि:संदेह अभियोजन को एक अत्यन्त भारी और दुर्भर बोझ का निर्वहन करना होगा। अभियोजन को गुरुतरकारी परिस्थितियों के अस्तित्व और कम करनेवाली परिस्थितियों की पारिणामिक अनुपस्थिति को प्रदर्शित करके इस बोझ का निर्वहन करना होगा। ऐसे बोझ का निर्वहन करते हुए अभियोजन को न केवल अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करना होगा बल्कि इसे यह भी सिद्ध करना होगा कि अपराध कैसे किया गया था और गुरुतरकारी परिस्थितियों को सिद्ध करना होगा जो इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि मामला विरल मामलों में विरलतम की कोटि में आता है और मृत्युदंड की अपेक्षा रखता है। उक्त बोझ का निर्वहन करने में, अभियोजन को इस तथ्य को साक्ष्य द्वारा सिद्ध करना होगा और दंडादेश पारित किए जाते समय अभियुक्त को उक्त साक्ष्य का खंडन करने का अधिकार है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दर्ज बयान के अतिरिक्त अभियुक्त को पृथक रूप से मौका दिया जाना चाहिए कि वह कम करनेवाली परिस्थितियों को प्रदर्शित कर सके जो अपराध किए जाने के समय अथवा तत्पश्चात उसके पक्ष में थी ताकि गुरुतरकारी और कम करनेवाली परिस्थितियों के साक्ष्य को तराजू में तौला जा सके।

24. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1980(2)SCC 684], मामले में मृत्यु दंडादेश की वैधता को मान्य ठहराते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 235(2) के प्रावधान विभाजित विचारण प्रावधानित करते हैं और यह सुनवाई द्वारा दंडादेश सिद्ध करने का और तात्विक साक्ष्य, जो किसी विशेष अपराध के प्रासंगिक नहीं है अथवा उससे संबंधित नहीं है किन्तु जिनका दंडादेश चुनने से संबंध हो सकता है, को अभिलेख पर लाने का अधिकार देता है। यह किसी अन्य विचारण की सुनवाई जैसा है। **बचन सिंह (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

> *''163. एक अन्य प्रतिपादना जिसका उपयोजन किसी सीमा तक विधायी परिवर्तनों से प्रभावित होता है सं० (v) है। उस प्रतिपादना के अंश (a) में यह कहा गया है कि अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों से टकराती परिस्थितियों को दोष सिद्धि पूर्व चरण के पहले अभिलेख पर लाया जा सकता है। अंश (b) में, यह जोर दिया गया है कि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडादेश को चुनते हुए न्यायालय जाँच के अधीन अपराध विशेष से संबंधित परिस्थितियों के साथ मुख्यतः सरोकार रखता है। अब, धारा 235(2) विभाजित विचारण प्रावधानित करती है और विनिर्दिष्टतः अभियुक्त को दंडादेशपूर्व सुनवाई का अधिकार प्रदान करती है जिस चरण पर वह अभिलेख पर सामग्री अथवा साक्ष्य ला सकता है जो जाँच के अधीन अपराध विशेष के प्रति कठोरतापूर्वक प्रासंगिक अथवा उससे संबंधित नहीं हो सकता है किन्तु जिसका फिर भी, धारा 354 (3) विभाजित विचारण प्रावधानित करती है और विनिर्दिष्टतः अभियुक्त को दंडादेश पूर्व सुनवाई का अधिकार प्रदान करती है जिस चरण पर वह अभिलेख पर सामग्री अथवा साक्ष्य ला सकता है जो जाँच के अधीन अपराध विशेष के प्रति कठोरतापूर्वक प्रासंगिक अथवा उससे संबंधित नहीं हो सकता है किन्तु जिसका फिर भी, धारा 354 (3) में निहित नीति के साथ संगत रूप में दंडादेश चुनने के साथ संबंध हो सकता है। धारा 235(2) सह-पठित धारा 354 (3) से ज्ञेय वर्तमान विधायी नीति यह है कि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध सहित अनेक अपराधों की डिग्री नियत करने अथवा दंडादेश चुनने में न्यायालय को अपना विचार अपराध विशेष से संबंधित परिस्थितियों तक ''मुख्यतः'' अथवा मात्र इस तक सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि अपराधी की परिस्थितियों पर भी सम्यक रूप से विचार करना चाहिए।''*

25. इसके अतिरिक्त, **बचन सिंह (ऊपर)** के पूर्वोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि इस पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि मृत्यु दंड के क्षेत्र में कम करने वाले कारकों के विस्तार और अवधारणा को न्यायालय द्वारा धारा 354 (3) में प्रस्तावित दंडादेश देने की नीति के अनुरुप न्यायालय द्वारा उदारवादी और विस्तृत रूप रेखा दी जानी चाहिए। न्यायाधीशों को रक्त पिपासु नहीं होना चाहिए। हत्यारों को फाँसी से लटकाना उनके लिए कभी भी बहुत अच्छा नहीं हुआ है। राज्य द्वारा दिए गए तथ्य और आंकड़े, यद्यपि अपूर्ण है, दर्शाते हैं कि विगत में न्यायालयों ने अत्यन्त अनिरंतरता के साथ कठोर दंड दिया है–एक कारक जो उस सावधानी और दयाभाव को अनुप्रमाणित करता है जो उन्होंने सदैव ऐसे गंभीर मामले में अपने दंडादेश देने के स्वविवेक के प्रयोग पर लागू किया है। हत्या के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति के लिए आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है। मानव जीवन की गरिमा के प्रति वास्तविक और चिरस्थायी सरोकार विधि के अभिकरण के माध्यम से जीवन हरने के प्रति प्रतिरोध प्रतिपादित करता है। विरल मामलों में विरलतम मामलों को छोड़कर, जहाँ वैकल्पिक विकल्प निर्विवाद रूप से पहले ही बंद हो चुका है, ऐसा नहीं करना चाहिए।

26. जगमोहन सिंह बनाम उ॰ प्र॰ राज्य, [1973 (1) SCC 20] मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश की वैधता को मान्य ठहराते हुए अभिनिर्धारित किया कि अब सिद्धान्तों का उपयोजन धारा 354(3) और धारा 235(2) से ज्ञेय सर्वोपरि विधायी शक्ति द्वारा मार्गदर्शित करना होगा अर्थात् (i) केवल अत्यन्त सह-अपराधिता के गंभीरतम मामलों में कठोर दंड दिया जा सकता है, (ii)

दंडादेश चुनते हुए अपराध की परिस्थितियों के अतिरिक्त अपराधकर्ताओं की परिस्थितियों को भी ध्यान में लेना होगा।

27. मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य (1983 (3) SCC 470) मामले में सर्वोच्च न्यायालय को पुन: यह परीक्षण करने का अवसर था कि मृत्युदंड कब अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए। सर्वोत्तम न्यायालय ने बचन सिंह मामले में अधिकथित सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक परीक्षण किया और निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:

"32. क्यों समुदाय संपूर्ण रूप से ''किसी भी सूरत में मृत्यु दंडादेश नहीं'' सिद्धांत में परिलक्षित मानवीय दृष्टिकोण को पृष्ठांकित नहीं करता है, इसका कारण इप्सित करना आसान है। प्रथमतः यह मानवीय संरचना ''जीवन के प्रति श्रद्धा'' सिद्धांत के आधार पर निर्मित की गयी है। जब समुदाय का कोई सदस्य एक अन्य की हत्या द्वारा इस सिद्धांत का उल्लंघन करता है, समाज स्वयं को इस सिद्धांत की जंजीरों से बंधा महसूस नहीं कर सकता है। द्वितीयतः, यह स्वीकार करना ही होगा कि समुदाय के सुरक्षित घेरे और इसके द्वारा प्रवर्तित विधि के शासन के कारण समुदाय का प्रत्येक सदस्य स्वयं अपने जीवन को खतरे में डाले बिना सुरक्षित रूप से रहने में सक्षम है। विधि के शासन का अस्तित्व और सजा का भय उनके लिए बाधा के रूप में प्रवर्तित होता है जिन्हें अन्य की हत्या करने में कोई संकोच नहीं है यदि यह उनके उद्देश्यों को पूरा करता है। इस सुरक्षा के लिए समुदाय का प्रत्येक सदस्य सशंकित है। जब समुदाय, जो हत्या किए जाने से स्वयं हत्यारे की सुरक्षा करता है, के सदस्य की हत्या करके कृतज्ञता के बदले कृतघ्नता दर्शायी जाती है अथवा जब समुदाय महसूस करता है कि आत्मरक्षा के लिए हत्यारे को मारना ही होगा, समुदाय मृत्युदंड को मंजूर करके इस सुरक्षा को वापस ले सकता है। किन्तु समुदाय प्रत्येक मामले में ऐसा नहीं करेगा। यह ''विरल से विरलतम मामलों में'' ऐसा कर सकता है जब इसके सामूहिक अंतरात्मा को इस कदर आघात लगता है कि मृत्युदंड बनाए रखने की वांछनीयता अथवा अन्यथा के संबंध में अपने व्यक्तिगत मत को ध्यान में लिए बिना न्यायिक शक्ति केन्द्र के धारकों द्वारा मृत्युदंड दिए जाने की अपेक्षा करेगा। समुदाय ऐसी अनुमति को ध्यान में ले सकता है जब अपराध को हेतु को अथवा अपराध किए जाने के तरीके अथवा अपराध के समाज विरुद्ध अथवा घृणापूर्ण प्रकृति के मंच से देखा जाता है, उदाहरणस्वरुपः

(I) हत्या करने का तरीका

33. जब हत्या अत्यन्त निर्मम, वीभत्स, राक्षसी, जघन्य अथवा नृशंस तरीके से की जाती है जो समुदाय का तीव्र और उग्र क्रोध उत्पन्न करती है। उदाहरणस्वरुप,

(i) जब उसके घर में उसको जिन्दा भून देने की दृष्टि से पीड़ित के घर में आग लगा दी जाती है।

(ii) जब उसकी हत्या करने के लिए पीड़ित को यातना अथवा क्रूरता के अमानवीय कृत्यों के अधीन किया जाता है।

(iii) जब राक्षसी तरीके से पीड़ित के शरीर को टुकड़ों में काटा जाता है अथवा उसके शरीर को क्षत-विक्षत किया जाता है।

(II) हत्या करने का हेतु

34. जब हत्या किसी ऐसे हेतु के लिए की जाती है जो पूर्ण अनैतिकता तथा अद्यमता दर्शाता है। उदाहरणस्वरुप, जब (a) धन अथवा पुरस्कार के लाभ के लिए भाड़े पर लिया गया हत्यारा हत्या करता है, (b) संपत्ति विरासत में पाने के लिए अथवा हत्यारे

के नियंत्रण के अधीन किसी व्यक्ति अथवा संरक्षित/प्रतिपाल्य अथवा जिसके मुकाबले में हत्यारा प्रभावशाली अवस्था में अथवा विश्वासभाजन है कि संपत्ति के ऊपर नियंत्रण पाने के लिए जानते-बूझते मंसूबे के साथ बेरहमी से हत्या की जाती है अथवा (ग) मातृभूमि के साथ विश्वासघात करने के क्रम में हत्या की जाती है।

(III) अपराध की समाज विरोधी अथवा सामाजिक रूप से घृणित प्रकृति

35. (a) जब अनुसूचित जाति अथवा अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य की हत्या व्यक्तिगत कारणों के लिए नहीं बल्कि उन परिस्थितियों में की जाती है जो सामाजिक रोष उत्पन्न करते हैं। उदाहरणस्वरुप, जब ऐसे व्यक्तियों को आतंकित करने अथवा किसी स्थान से उन्हें डरा कर भगाने के लिए अथवा विगत अन्यायों को पलटने की दृष्टि से और सामाजिक संतुलन स्थापित करने के लिए उनको दिए गए भूमि अथवा लाभों को समर्पित करने के लिए अथवा उनको वंचित करने के लिए हत्या की जाती है।

(b) ''दुल्हन जलाने'' और ''दहेज मृत्यु'' के रूप में ज्ञात मामलों में अथवा जब पुनः एकबार दहेज प्राप्त करने के लाभ के लिए पुनर्विवाह करने के लिए अथवा आसक्ति के कारण किसी अन्य महिला से विवाह करने के लिए हत्या की जाती है।

(IV) अपराध की विशालता

36. जब अपराध अनुपात में बृहद है। उदाहरणस्वरुप जब अनेक हत्याएँ, जैसे किसी परिवार के लगभग समस्त सदस्यों अथवा किसी जाति विशेष, समुदाय अथवा मुहल्ले की व्यक्तियों की बृहत संख्या की हत्या जाती है।

(V) हत्या के पीड़ित का व्यक्तित्व

37. जब हत्या का पीड़ित (a) मासूम बच्चा है जिसकी हत्या के लिए कोई बहाना, उकसावा की तो बात ही दूर, नहीं दे सकता था अथवा नहीं दिया है, (b) असहाय महिला अथवा वृद्धावस्था अथवा दुर्बलता के कारण निःसहाय बनाया गया व्यक्ति, (c) जब पीड़ित ऐसा व्यक्ति है जिसकी तुलना में हत्यारा प्रभावशील अथवा न्यास की अवस्था में है, (d) जब पीड़ित लोक व्यक्तित्व है जो अपनी दी गयी सेवाओं के लिए सामान्यतः समुदाय के आदर और प्रेम का पात्र है और हत्या व्यक्तिगत कारणों को छोड़कर राजनीतिक अथवा अन्य कारण से की गयी है।''

28. बचन सिंह (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा 206 में डॉ॰ चिताले के सुझाव के अनुसार निम्नलिखित कम करनेवाली परिस्थितियों को अधिकथित किया है:

*''**कम करने वाली परिस्थितियाँ.**-उक्त मामलों में अपने स्वविवेक के प्रयोग में, न्यायालय को निम्नलिखित परिस्थितियों को ध्यान में लेना होगा:*

(1) कि अपराध अत्यन्त मानसिक अथवा भावुक अशांति के प्रभाव के अधीन किया गया था।

(2) अभियुक्त की आयु। यदि अभियुक्त युवक अथवा वृद्ध है, उसे मृत्यु दंडादेश नहीं दिया जाएगा।

(3) अधिसंभाव्यता कि अभियुक्त हिंसा के दांडिक कृत्यों को नहीं करेगा जो समाज को जारी खतरा गठित करेगा।

(4) अधिसंभाव्यता कि अभियुक्त को सुधारा और पुनर्वासित किया जा सकता है। राज्य को साक्ष्य द्वारा सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त उक्त शर्तों (3) और (4) को संतुष्ट नहीं करता है।

(5) कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त विश्वास करता है कि वह अपराध करने में नैतिक तौर पर न्यायोचित था।

(6) कि अभियुक्त ने किसी अन्य व्यक्ति के दबाव अथवा प्रभाव के अधीन अपराध का कृत्य किया।

(7) कि अभियुक्त की दशा दर्शाता था कि वह मानसिक रूप से बीमार था और कि उक्त कमी ने उसके आचरण की अपराधिता का अधिमूल्यन करने की उसकी क्षमता को बाधित किया।''

29. नि:संदेह, ये प्रासंगिक परिस्थितियाँ हैं और दंडादेश विनिश्चित करने में इन्हें अधिक अधिमान देना होगा। इन कारकों में से कुछ जैसे अति यौवन, अनिवार्य महत्व के हो सकते है। भारत के अनेक राज्यों में, विशेष अधिनियमन प्रभाव में है जिनके अनुसार ''बालक'' अर्थात ''जो व्यक्ति हत्या की तिथि पर 16 वर्ष से कम आयु का था, को हत्या के लिए विचारित, दोषसिद्ध और मृत्यु दंडादेशित अथवा आजीवन कारावासित नहीं किया जा सकता है और न ही उसपर वयस्क के रूप में उसी दांडिक प्रक्रिया के तहत विचार किया जा सकता है। ऐसे किशोर अपराधकर्ता अथवा बालकों के लिए विशेष अधिनियम सुधारात्मक प्रक्रिया प्रावधानित करते हैं।

30. मच्छी सिंह (ऊपर) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मृत्यु दंडादेश आमंत्रित करने वाले अपराध की कोटि के विरल मामलों में से विरलतम के विनिश्चय की परीक्षा बचन सिंह मामले में उपदर्शित मार्गदर्शक सिद्धान्तों की दृष्टि में मोटे मापदंडों को सम्मिलित करती है जिसे चुनना होगा और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर लागू करना होगा जहाँ मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने का प्रश्न उद्‌भूत होता है। बचन सिंह मामले से निम्नलिखित प्रतिपादनाएँ सामने आती हैं:–

(1) अत्यन्त सदोषता के गंभीरतम मामलों को छोड़कर मृत्यु का कठोर दंड देना आवश्यक नहीं है।

(2) मृत्युदंड का विकल्प चुनने के पहले अपराध की परिस्थितियों के साथ अपराधकर्ता की परिस्थितियों को भी विचार में लेना अपेक्षित है।

(3) आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है। दूसरे शब्दों में, मृत्युदंड केवल तब अधिरोपित करना होगा जब मामले की प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आजीवन कारावास बिलकुल अपर्याप्त प्रतीत होता है और परन्तु यह कि, और केवल परन्तु यह कि आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करने को विकल्प का प्रयोग अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों और समस्त प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए चेतनापूर्ण रूप से नहीं किया जा सकता है।

(4) गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों का बैलेंस शीट तैयार करना होगा और ऐसा करते हुए कम करनेवाली परिस्थितियों को पूर्ण अधिमान देना होगा और विकल्प का प्रयोग करने के पहले गुरुत्तरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों के बीच न्यायोचित संतुलन स्थापित करना होगा।

31. बचन सिंह, (1980(2) SCC 684) में प्रकाशित मामले में उपदर्शित इन कारकों की पृष्ठभूमि में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रश्न के विनिश्चय के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों पर लागू करने के लिए निम्नलिखित प्रतिपादनाओं को विरचित किया:–

अत्यन्त सदोषता के गंभीरतम मामलों को छोड़कर मृत्यु का कठोर दंड देना आवश्यक नहीं है।

(ii) मृत्युदंड का विकल्प चुनने के पहले अपराध की परिस्थितियों के साथ अपराधकर्ता की परिस्थितियों को भी विचार में लेना अपेक्षित है।

(iii) आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है। दूसरे शब्दों में, मृत्युदंड केवल तब अधिरोपित करना होगा जब अपराध की प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आजीवन कारावास बिलकुल अपर्याप्त प्रतीत होता है और परन्तु यह कि, और केवल परन्तु यह कि आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करने के विकल्प का प्रयोग अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों और समस्त प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए चेतनापूर्ण रूप से नहीं किया जा सकता है।

(iv) गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों का बैलेंस शीट तैयार करना होगा और ऐसा करते हुए कम करनेवाली परिस्थितियों को पूर्ण अधिमान देना होगा और विकल्प का प्रयोग करने के पहले गुरुत्तरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों के बीच न्यायोचित संतुलन स्थापित करना होगा।

39. इन मार्गदर्शक सिद्धान्तों को लागू करने में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित प्रश्नों को पूछा जा सकता है और इनका उत्तर दिया जा सकता है:

(a) क्या अपराध के बारे में कुछ असामान्य है जो आजीवन कारावास के दंडादेश को अपर्याप्त बनाता है और मृत्यु दंडादेश को निमंत्रित करता है।

(b) क्या अपराध की परिस्थितियाँ ऐसी है कि कम करने वाली परिस्थितियों, जो अपराधकर्ता के पक्ष में जाती है, को महत्तम अधिमान प्रदान करने के बाद भी मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है?

56. बचन सिंह मामले में अधिकथित सिद्धान्तों और मच्छी सिंह मामले (1983 (3) SCC 470) में प्रकाशित में किए गए विरचनों, जैसा पहले ध्यान में लिया गया है, को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों, उनके तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए लागू किया गया है। निर्मल सिंह बनाम हरियाणा राज्य में (1999(3) SCC पृ० 650 में प्रकाशित) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्त धरमपाल पर अधिरोपित दंडादेश को संपुष्ट करते हुए सह-अभियुक्त के ऐसे दंडादेश को इन तथ्यों कि अभियुक्त का कोई दांडिक पूर्ववृत्त नहीं था, उसके समाज के प्रति खतरा बने रहने की संभावना नहीं थी, वह केवल अपने सह-अभियुक्त भाई के साथ था और मृतक पर उसके भाई द्वारा 2-3 वार किए जाने के बाद उसने एक मृतक पर तीन वार किया था, को ध्यान में लेते हुए आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मामला ''विरल से विरलतम'' प्रकृति का नहीं है और इसलिए मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया। (to be checked here under)

57. अंशद बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 (4) SCC, पृष्ठ 381, में अभिनिर्धारित किया गया है:

''न्यायालयों को दं० प्र० सं० की धारा 354 (3) के माध्यम से 1973 में किए गए विधायी परिवर्तनों के प्रति जागरुक होना होगा। मृत्यु दंडादेश, सामान्य नियम के प्रति अपवाद होने के नाते, दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों को संतुलित करने के बाद दर्ज किए जाने वाले 'विशेष कारणों' के लिए 'विरल मामलों में से विरलतम' में अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए। हत्या किए गए व्यक्तियों की संख्या एक अनुचिन्तन है किन्तु मृत्यु दंड अधिरोपित करने के लिए एकमात्र अनुचिन्तन नहीं है जब तक मामला ''विरल में से विरलतम मामलों'' की कोटि में नहीं आता है। न्यायालयों को अपराध की प्रकृति, क्रूरता जिसके साथ इसे

निष्पादित किया गया था, अपराधी का पूर्ववृत, प्रयुक्त हथियार, आदि को ध्यान में रखना होगा। ऐसे समस्त कारकों को सूचीबद्ध करना न तो संभव है और न ही वांछनीय और वे प्रत्येक मामले पर निर्भर करते हैं।''

58. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मो० चमन बनाम राज्य (दिल्ली का एन० सी० टी०), 2001 (2) SCC 28, में पहले अधिकथित विधि पर विस्तारपूर्वक चर्चा के बाद पृष्ठ 28 पर अभिनिर्धारित किया गया है कि:

''वर्तमान मामले पर आते हुए, किया गया अपराध निःसंदेह गंभीर और वीभत्स है और अपीलार्थी का आचरण धिक्कार्य है। यह किसी मानव के गन्दे और विकृत मनोदशा को प्रकट करता है जिसका अपने दैहिक इच्छाओं पर कोई नियंत्रण नहीं है। तब प्रश्न है: क्या मामले को ''विरल में से विरलतम कोटि के रूप में, वर्गीकृत किया जा सकता है जो मृत्यु के गंभीरतम दंड को न्यायोचित ठहरायेगा। बचन सिंह, मच्छी सिंह और अन्य निर्णयों में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धान्तों के मापदंड पर मामले को मानते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से गुरुतरकारी और कम करनेवाली परिस्थितियों को संतुलित करते हुए, हम यह स्वीकार करने के कायल नहीं है कि मामले को मृत्युदंड के सुयोग्य ''विरल मामलों में से विरलतम'' समुचित रूप से कहा जा सकता है।''

32. कम करनेवाली परिस्थितियों पर विचार करते हुए **बचन सिंह (ऊपर)** के मामले में की गयी उद्घोषणाओं से अभियुक्त की आयु को दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए विचार में लेना होगा और दूसरी चीज जिसे विचार में लेना होगा यह अधिसंभाव्यता है कि अभियुक्त अपराध/हिंसा नहीं करेगा जो समाज के प्रति जारी रहने वाला खतरा गठित करेगा। यह देखना होगा कि यदि वह जीवित रहता है, समाज में उसकी उपस्थिति समाज के प्रति संकट होगा। एक और कम करने वाली परिस्थिति यह है कि न्यायालय को इस अधिसंभाव्यता को देखना होगा कि अभियुक्त को सुधारा और पुनर्वासित किया जा सकता है और राज्य को सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त उक्त शर्तों को संतुष्ट नहीं करता है।

33. मामले का एक अन्य पहलू है। अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि दिनांक 14.7.2009 को दर्ज की गयी थी और तत्पश्चात् दिनांक 17.7.2009 को विचारण न्यायालय द्वारा इन कारणों के लिए मृत्यु दंडादेश दर्ज किया गया था कि तलवार और भुजाली से प्रहार करके तीन व्यक्तियों की हत्या की गयी थी। दोषसिद्धों का मामला निर्मम और बर्बर और न्यायिक अंतरात्मा के प्रति आघातमय था और सूचक अ॰ सा॰ 6 बच गया था क्योंकि वह घटनास्थल से भाग गया था। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने जोर देने का प्रयास किया कि समाज की अपेक्षा अपराध की प्रकृति के प्रति दंडादेश की पर्याप्तता है। किन्तु इसी समय पर हम उस व्यक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं जिसे अपराध करता अभिकथित किया गया है और दंडादेश पाने का उसका अधिकार दंडादेश देने की संरचित शक्ति के अंतर्गत होना होगा।

34. बचन सिंह (ऊपर) के मामले में जोर दिया गया था कि मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने के पहले मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए न्यायालय द्वारा मानव जीवन की गरिमा के प्रति चिरस्थायी सरोकार दर्शाना होगा। मृत्यु दंडादेश चुनने के पहले न्यायालय को अपनी न्यायिक अंतरात्मा द्वारा प्रतिकारात्मक निष्ठुरता की प्रवृत्ति को त्यागना होगा। **बचन सिंह (ऊपर)** में निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने संप्रेक्षित किया कि लोक प्रतिनिधि नहीं होने के नाते न्यायाधीशों को अपने ऊपर भविष्यवाणी करने वाला अथवा जनमत का प्रवक्ता बनने की जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिए। न्यायिक अवरोध के बतौर जनमत निर्धारित करने का कार्य विधायकों पर छोड़ देना चाहिए। अपीलार्थीगण को दंडादेश देते हुए न्यायालय किए गए अपराध की प्रकृति के बारे में रोष की अनुभूतियों और इन प्रश्नों

कि क्या अपीलार्थीगण जिन्होंने अपराध किया वस्तुतः समाज के प्रति खतरा या संकट हैं या नहीं अथवा क्या अपीलार्थीगण के सुधार अथवा पुनर्वास की कोई संभावना है या नहीं पर फैसला नहीं कर सकता है।

35. विद्वान अधिवक्ता ने **शोभित चमार बनाम बिहार राज्य [(1998 SCC (3) 455], शिव राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [1998 SCC (1) 149], प्रजीत कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य [2008 (4) JT 257 : 2008 (4) SCC 434]; उ॰ प्र॰ राज्य बनाम सत्तन उर्फ सत्येन्द्र (2009 JT (4) SC 437)** और **सुनील बबन पिंगले बनाम महाराष्ट्र राज्य [1999 (5) SCC 702]** के मामलों को उद्धृत किया। परिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय मुख्यतः **बचन सिंह (ऊपर)** और **मच्छी सिंह (ऊपर)** मामलों में दिए गए निर्णयों पर आधारित है। हमने उन निर्णयों में अधिकथित सिद्धान्तों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है। प्रत्येक मामले को इसके तथ्यों और परिस्थितियों से न्यायनिर्णीत करना होगा। निर्णयों, जिन्हें विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू होने योग्य नहीं है।

36. पंछी बनाम उ॰ प्र॰ राज्य [1998 (7) SCC 177] मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किया:

16. ''जब इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने बहुमत द्वारा बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य में मृत्यु दंडादेश की संवैधानिक वैधता को मान्य ठहराया, इस न्यायालय ने यह कहने में विशेष सावधानी बरती कि सामान्यतः हत्या के अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया जाना चाहिए और इसे विरल मामलों में से विरलतम तक सीमित रखना चाहिए जब वैकल्पिक विकल्प पहले ही बन्द हो चुके हों। दूसरे शब्दों में, संवैधानिक पीठ ने पूर्वोक्त असामान्य मामलों, जिनमें न्यूनतर दंडादेश किसी भी कारण से पूर्णतः अपर्याप्त होगा, को छोड़ कर समस्त मामलों में मृत्यु दंडादेश वैध नहीं पाया था। मच्छी सिंह बनाम पंजाब राज्य में इस न्यायालय की त्रि-न्यायाधीश पीठ ने बचन सिंह मामले में निर्णयाधार का अनुसरण करते हुए कतिपय मार्गदर्शक सिद्धान्तों को अधिकथित किया जिनमें से निम्नलिखित वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक हैः (SCC P. 489 Para 38)

"(iv) गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों का बैलेन्स शीट तैयार करना होगा और ऐसा करते हुए कम करनेवाली परिस्थितियों को पूर्ण अधिमान देना होगा और विकल्प का प्रयोग करने के पहले गुरुतरकारी और कम करनेवाली परिस्थितियों के बीच न्यायोचित संतुलन स्थापित करना होगा।''

20. हमने दो न्यायालयों के उक्त कारणों को केवल यह इंगित करने के लिए निकाला है कि वह तरीका वहशी अथवा निर्मम है जिसमें हत्यारों ने एक छोटे बालक सहित पीड़ितों पर कृत्यों को किया जिसने इस न्यायालय को चार व्यक्तियों के लिए मृत्यु दंडादेश चुनने के लिए कायल किया था। निःसंदेह इस मामले में हत्या विशेषतः वृद्ध और सुकुमार बालक की हत्या में निर्ममता छायी हुई है। यह हो सकता है कि तरीका, जिससे हत्याओं को किया गया था, स्वयं में कोई हल्का पक्ष नहीं दर्शाता है किन्तु यह इन हत्याओं में विचित्र अथवा अत्यन्त विशेष नहीं है। निर्मम तरीका, जिससे हत्या की गयी थी, आधार हो सकता है किन्तु यह न्यायनिर्णीत करने का एकमात्र मापदंड नहीं हो सकता है कि क्या मामला ''विरल मामलों में से विरलतम'' है, जैसा बचन सिंह मामले में उपदर्शित किया गया है। एक तरीके से प्रत्येक हत्या निर्मम है और एक से अन्य के बीच की भिन्नता हत्या को घेरते गुरुतरकारी अथवा कम करनेवाली परिस्थितियों के कारण हो सकता है।''

37. अत: न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इस निष्कर्ष पर आने के लिए कि क्या मामला विरल मामलों में से विरलतम की परिधि के अंतर्गत आता है, हत्या की निर्ममता को समस्त कम करनेवाली परिस्थितियों के साथ देखना होगा।

38. मुल्ला बनाम उ॰ प्र॰ राज्य, (2010) 3 SCC 508) मामले में तीन व्यक्ति ट्यूबवेल से अपने खेतों में सिंचाई कर रहे थे। आठ दुष्ट घटनास्थल पर पहुँचे और उन्होंने चार व्यक्तियों को पकड़ लिया जो अपने खेतों की सिंचाई कर रहे थे और संपत्ति के बारे में पूछा और प्रत्येक से 3000/- रुपया फिरौती मांगी और उनको धमकाया कि अन्यथा उनकी हत्या कर दी जाएगी। उसी समय पर, चार व्यक्ति, जो अपने खेतों की सिंचाई करके घर लौट रहे थे, वहाँ पहुँचे और उन्हें भी दुष्टों द्वारा रोका गया और उनमें से प्रत्येक से भी 10,000/-रुपया मांगा गया। जब समस्त व्यक्तियों ने अपनी अक्षमता अभिव्यक्त की, उन लोगों ने दो व्यक्तियों पर बन्दूक के कुन्दे से प्रहार किया और सारे व्यक्तियों को जंगल की ओर ले गए। उन लोगों ने तीन व्यक्तियों को धन लाने का निर्देश देते हुए छोड़ा अन्यथा उन सबों की हत्या कर दी जाएगी। व्यक्ति जिन्हें छोड़ा गया था, गाँव पहुँचे और उन्होंने गाँव में घटना के बारे में बताया और यह कि वे अन्य सारे अपहृत व्यक्तियों को अपने साथ ले गए। सुबह पाँच व्यक्तियों के मृत शरीर ट्यूबवेल के निकट पाए गए थे और अपीलार्थीगण को उन व्यक्तियों की हत्या करने का दोषी पाया गया था। अपीलार्थीगण के विरुद्ध मृत्यु दंडादेश दर्ज किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय ने मामले के समस्त तथ्यों और परिस्थितियों का निर्धारण करने पर और समस्त गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों को विचार में लेते हुए दोषसिद्धि संपुष्ट किया और मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया।

39. गुरुमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2009) 15 SCC 625 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कतिपय मार्गदर्शक सिद्धान्तों को अधिकथित किया है जिन्हें अभियुक्त अपीलार्थीगण को समुचित दंडादेश अधिनिर्णीत करने के पहले विचार में लेना होगा और सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि उक्त कारक समग्र नहीं बल्कि मात्र उदाहरणस्वरुप है। इस निर्णय के पैरा 12 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है:

''मामले के महत्वपूर्ण लक्षण हैं जिन्हें अभियुक्त को समुचित दंडादेश अधिनिर्णीत करने में विचार में लिए जाने की अपेक्षा की जाती है;

1. स्वीकृत रूप से, घटना एकदम से हुई थी;

2. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से स्पष्ट है कि अपीलार्थी रोजाना उस रास्ते नहीं जाता था;

3. अपीलार्थी ने मृतक के मस्तक पर लाठी से केवल एक वार किया जो घातक सिद्ध हुआ;

4. अन्य अभियुक्त ने प्रत्यक्ष कृत्य में भाग नहीं लिया, अतः अपीलार्थी को छोड़कर अन्य सह-अभियुक्तों अर्थात् निरंजन सिंह, हरभान सिंह और मंजीत सिंह को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है;

5. घटना दिनांक 8.1.1997 को हुई थी और मृतक अस्पताल में भर्ती रहा और अंततः दिनांक 14.1.1997 को उसकी मृत्यु हो गयी;

6. विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि पक्षों के बीच पूर्व दुश्मनी नहीं थी;

अतः यह पूर्णतः स्पष्ट है कि कोई पूर्व नियोजित योजना नहीं थी अथवा यह कि घटना अभियुक्तगण के सामान्य आशय को अग्रसर करने में घटित हुई थी। जब इन समस्त तथ्यों और परिस्थितियों को समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार में लिया जाता है, तब

भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि को पोषित करना मुश्किल हो जाता है।''

40. वर्तमान मामले में, विद्वान विचारण न्यायालय ने दंडादेश अधिनिर्णीत करने के लिए कारणों में से एक यह दिया है कि तीन व्यक्ति थे जिनकी निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी गयी थी।

41. टीका राम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 (15) SCC 760, में प्रकाशित मामले में जहाँ एक परिवार के सात सदस्यों की हत्या गोलीमार कर की गयी थी और कुछ व्यक्तियों ने अपने शरीर पर उपहतियाँ प्राप्त की थी। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण करने के बाद, इस मामले में विचारण न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश का महत्तम दंड अधिनिर्णीत किया है जबकि उच्च न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया है और सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय के निष्कर्षों के साथ सहमत था कि प्रश्नगत घटना को मृत्यु के महत्तम दंड की अपेक्षा करता विरल मामलों में विरलतम नहीं कहा जा सकता है।

42. बचित्तर सिंह बनाम पंजाब राज्य [2002 (8) SCC 125], मामले में सुखवन्त सिंह और भूपिन्दर सिंह के परिवारों की हत्या कर दी गयी थी और विचारण न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया था जिसे उच्च न्यायालय द्वारा संपुष्ट किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया।

43. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी विशाल शर्मा उर्फ बन्टी घटना के समय पर 24 वर्ष की आयु का था और अपीलार्थी विकास शर्मा उर्फ गुल्ला की आयु घटना के समय पर 26 वर्ष थी। वे नौजवान थे और अभी भी है। अपीलार्थीगण का कोई दांडिक इतिहास अथवा दांडिक पूर्ववृत्त नहीं है और अभिलेख पर उपलब्ध कोई साक्ष्य नहीं है कि वे समाज के प्रति खतरा हैं। समय के क्षणिक अंतराल में भुजाली और तलवार द्वारा मृतकों की हत्या की गयी थी। राज्य ने इस प्रभाव का प्रदर्शन नहीं किया है कि आजीवन कारावास का दंड पर्याप्त नहीं है और अपीलार्थीगण के आजीवन कारावास के दरवाजे बन्द हो चुके हैं और एकमात्र दंड मृत्यु दंडादेश का दंड है। इस प्रकार, यह मामला विरल मामलों में से विरलतम की कोटि में नहीं आता है। अत: उनका मृत्यु दंडादेश आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाता है। अभियुक्त अपीलार्थीगण भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34 के बजाय भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन दोषसिद्ध किए जाने के भी दायी है।

44. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को, जैसा ऊपर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है, और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को भी दृष्टि में रखते हुए हम विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। अपीलार्थीगण के मृत्यु दंडादेश के आदेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन एक वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश भी दिया जाता है। दोनों दंडादेश समवर्ती रूप से चलेंगे।

45. पूर्वोक्त कारणों से, हम दोषसिद्धि को संपुष्ट करते हैं और मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित करते हैं। तद्नुसार, दोनों अपीलों और सत्र न्यायाधीश द्वारा किए गए निर्देश को एतद् द्वारा निपटाया जाता है।

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

लालमनी देवी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 1188 of 2005. Decided on 12th January, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 317 वर्ष 2003 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ सं॰ IV, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 8.8.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 9.8.2005 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास–महिला को उसके पति और पति के माता-पिता द्वारा जिन्दा जलाये जाने का अभिकथन–घटना में मृतका के पुत्री की मृत्यु भी हो गयी–परिस्थितियाँ, जिनसे दोष का निष्कर्ष निकाला जाना इप्सित किया जाता है, तर्कपूर्ण और मजबूती से स्थापित होनी चाहिए–अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा कि धन की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण मृतका के साथ क्रूरता की जाती थी–धन की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण मृतका के साथ क्रूरता किए जाने की अधिसंभाव्यता घट जाती है क्योंकि मृतका नौ वर्ष पहले से विवाहित थी और दो संतानों की माता थी, विशेषतः तब जब अभियोजन का मामला यह नहीं है कि विवाह के समय से ही धन की मांग की जाती थी–परिस्थितियाँ आत्महत्या करने की संभावना को उपदर्शित करती हैं–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 15)

अधिवक्तागण.–M/s K.P. Deo, S.P. Roy, G.P. Roy, For the Appellants; Mr. T.N. Verma, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–समस्त तीनों अपीलार्थीगण को सीता देवी की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सह-पठित धारा 34 के अधीन दोषसिद्ध किए जाने पर कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था।

2. अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 28.12.2002 को प्रातः लगभग 11.30 बजे जब सूचक राघवेन्द्र प्रसाद सिंह (अ॰ सा॰ 8) अपनी बहन सीता देवी उर्फ सुमित्रा देवी (मृतका) के ससुराल आया, उसे ज्ञात हुआ कि उसके बहन के पति राजीव नयन सिंह और उसके सास-श्वसुर अर्थात् लालमनी देवी और रामलखन सिंह ने उसकी बहन को जलाकर मार दिया है। उन्होंने झूठा अभिवाक् किया कि सीता देवी (मृतका) दुर्घटनावश आग की चपेट में आ गयी, जिसके परिणामस्वरुप उसकी और उसकी लगभग 15 माह की पुत्री की मृत्यु हो गयी।

3. आगे मामला यह है कि समय के उस बिन्दु पर पुलिस भी वहाँ आयी और घर का निरीक्षण किया और तब पता चल सका था कि वस्तुतः सीता देवी को बाथरूम में जलाकर मार दिया गया था जहाँ जला हुआ प्लास्टिक पाइप, कागज के टुकड़ों, थोड़ी सी किरासन तेल लिए एक स्टील का गिलास पाया गया था जिन्हें जब्त तक लिया गया था। उन सबों ने बाथरूम से आती किरासन तेल के गंध को महसूस किया जहाँ से मृत शरीर को हटाया गया था और बाथरूम के बाहर रखा गया था।

4. पूर्वोक्त तथ्य को ध्यान में लेने पर, उक्त राघवेन्द्र प्रसाद सिंह (अ॰ सा॰ 8) ने घटनास्थल पर उसी दिन लगभग दिन के 12 बजे अपना फर्दबयान दिया। हेतुक जो बताया गया था यह था कि उसके साथ क्रूरता इसलिए की जाती थी क्योंकि उसे पुरुष संतान नहीं हुआ था। इसी समय पर यह कथन भी

किया गया है कि अभियुक्तगण ने धन मांगना भी शुरू कर दिया था। मांग को अंशत: पूरा भी किया गया था। इसके बावजूद, उसकी बहन के साथ क्रूरता की जाती थी।

5. उक्त फर्दबयान पर, जब मामला दर्ज किया गया था, अन्वेषण शुरू किया गया था और उस क्रम में, पुलिस ने सीता देवी के मृत शरीर की मृत्यु समीक्षा की थी। तत्पश्चात् सीता देवी के मृत शरीर को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था। उस समय तक इशा कुमारी उर्फ छोटी जिसे अस्पताल ले जाया गया था, की मृत्यु भी हो गयी थी। डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव (अ॰ सा॰ 9) ने दोनों मृतकाओं के मृत शरीरों का शव परीक्षण संचालित किया था और 100% जलने की उपहति के कारण लगे आघात को मृत्यु का कारण पाया था।

6. आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने पर और सत्र न्यायालय को मामला सुपुर्द किए जाने पर अपीलार्थीगण का विचारण किया गया था जिसमें मृतका के समस्त कजिनों अ॰ सा॰ 5 ब्रजेश कुमार शर्मा, अ॰ सा॰ 6 बाँके बिहारी शर्मा और अ॰ सा॰ 7 रितेश कुमार का परीक्षण किया गया था जिन्होंने परिसाक्ष्य दिया कि यह जानकारी मिलने पर कि उनकी कजिन की मृत्यु हो गयी है, वे घटनास्थल पर आए और प्लास्टिक पाइपों, कागज के कुछ टुकड़ों को बाथरूम में जला पाया जहाँ किरासन तेल अंतर्विष्ट करता एक गिलास भी था और कि मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण और इस कारण भी कि उसका पुत्र नहीं था, मृतका के साथ क्रूरता की जाती थी। सूचक का परीक्षण अ॰ सा॰ 8 के रूप में किया गया था। अजित कुमार पोद्दार को अ॰ सा॰ 3 के रूप में परीक्षित किया गया था जिसने परिसाक्ष्य दिया कि वह घटनास्थल पर आने वाला पहला व्यक्ति था जहाँ उसने मृतका और उसकी पुत्री को जलता हुआ पाया और उसने आग बुझाया और उनको बाथरूम से बाहर लाया। अ॰ सा॰ 1 और 2 सीता देवी और उसकी पुत्री इशा कुमारी के मृत शरीरों की मृत्यु समीक्षा के गवाह है।

7. विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि का आदेश दर्ज करते हुए यद्यपि कई परिस्थितियाँ दर्ज की किन्तु उन्होंने दोष के अपने निष्कर्ष को मुख्यत: निम्नलिखित परिस्थितियों पर आधारित किया है।

(1) मृतका सीता देवी को धन की मांग और पुत्र को जन्म नहीं देने के संबंध में अभियुक्तगण द्वारा क्रूरता, यातना और प्रताड़ना के अधीन सदैव किया जाता था।

(2) घटना के समय घर के निकट रहने वाले अनेक व्यक्ति एकत्रित हुए थे किन्तु अपीलार्थीगण अर्थात् राजीव नयन सिंह और राम लखन सिंह वहाँ नहीं आए यद्यपि वे दुकान में थे जो उसी भवन के भूतल पर अवस्थित था।

(3) मृतका को लगभग पूरी तरह किरासन तेल से भींगा पाया गया था।

(4) डॉक्टर द्वारा अंगों को तोड़ा-मरोड़ा पाया गया था जो न्यायालय के अनुसार इस तथ्य का उपदर्शक था कि उसने कुछ विरोध किया होगा और यह कि अभियुक्तगण ने दुर्घटनावश मृत्यु का झूठा अभिवचन किया था।

8. दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश से व्यथित होकर यह अपील दाखिल की गयी है।

9. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

10. यह सुनिश्चित किया जा चुका है कि परिस्थितियाँ, जिनसे दोष का निष्कर्ष निकाला जाना इप्सित किया गया है, तर्कपूर्ण रूप से और मजबूती से स्थापित किया जाना होगा। परिस्थितियों में से एक,

जिसे अभियुक्तगण का दोष दर्शाती परिस्थितियों की श्रृंखला की कड़ियों में से एक माना गया है, यह है कि मृतका के साथ मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण क्रूरता की जाती थी जो हमारे दृष्टिकोण में अभियोजन स्थापित करने में पूर्णत: विफल रहा है क्योंकि मृतक के समस्त कजिनों, अ० सा० 5, 6 और 7 ने यद्यपि परिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्तगण धन की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण और इस कारण भी कि वह पुत्र को जन्म नहीं दे रही थी, मृतका के साथ क्रूरता करते थे किन्तु उनमें से किसी ने स्रोत के बारे में प्रकट नहीं किया है कि उन्हें इन सबके बारे में जानकारी कैसे मिली। इसके अतिरिक्त, वे पुलिस के समक्ष ऐसा बयान देते प्रतीत नहीं होते हैं जो वस्तुत: गवाहों को दिए गए सुझाव से प्रतीत होता है। गवाहों में से एक अर्थात् अ० सा० 6 क्रूरता के बिन्दु पर बिल्कुल मौन है। जहाँ तक मृतका के सूचक भाई (अ० सा० 8) का संबंध है, यद्यपि उसने परिसाक्ष्य दिया है कि उसकी बहन के साथ क्रूरता की जाती थी क्योंकि वह पुत्र को जन्म नहीं दे रही थी किन्तु वह इसके प्रति बिल्कुल मौन है कि किस तरीके से मृतका के साथ क्रूरता की जाती थी क्या उसे ताना दिया जाता था अथवा क्या उस पर प्रहार किया जाता था अथवा किसी अन्य तरीके से उसे परेशान किया जाता था। गवाह इसके बारे में भी मौन हैं कि उसे इन सब के बारे में कैसे पता चला अर्थात् क्या उसने किसी अन्य व्यक्ति से इसे सुना था अथवा स्वयं मृतका द्वारा उसे बताया गया था। इन परिस्थितियों के अधीन, अभियोजन को कभी भी इस तथ्य को स्थापित करता नहीं कहा जा सकता है कि मृतका के साथ धन की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण और पुत्र को जन्म नहीं देने के कारण भी क्रूरता की जाती थी। इसके अतिरिक्त, धन की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण मृतका के साथ क्रूरता किए जाने की अधिसंभाव्यता कम हो जाती है–क्योंकि मृतका का विवाह नौ वर्ष पहले हुआ था और उसकी दो संतान थी विशेषत: जब अभियोजन का मामला यह नहीं है कि विवाह के तुरन्त बाद धन की मांग की जाती थी।

12. अगली परिस्थिति पर आते हुए यह दर्ज किया जाए कि घटना स्थल, जहाँ अनेक व्यक्ति एकत्रित हो गए थे, से अभियुक्तगण की अनुपस्थिति को न्यायालय द्वारा अपराध में फँसाने वाली परिस्थिति के रूप में लिया गया है क्योंकि अभियुक्तगण का स्वाभाविक आचरण घटनास्थल की ओर भागने का होता जब उन्हें मृतका के जलने के बारे में पता चला। विचारण न्यायालय गलत रूप से इस निष्कर्ष पर आता प्रतीत होता है। अ० सा० 8 के साक्ष्य से यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि जब वह घटनास्थल पर आया, अपीलार्थी सं० 2 राजीव नयन सिंह उसकी पुत्री को अस्पताल ले जा चुका था और अपीलार्थी सं० 3 राम लखन सिंह वहाँ पर उपस्थित था। उसी मुहल्ला के निवासी अ० सा० 3 अजित कुमार पोद्दार ने परिसाक्ष्य दिया है कि वह घटनास्थल पर पहुँचने वाला पहला व्यक्ति था जहाँ उसने जब मृतका को जलता हुआ पाया आग बुझाया और उसे दूसरे कमरे में ले गया। उसने भी यह परिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्तगण में से कोई भी वहाँ उपस्थित नहीं था। मृतका का पति और श्वसुर दुकान पर थे जबकि सास किसी कीर्तन में भाग लेने वहाँ से आधा किलोमीटर दूर किसी स्थान पर गयी हुई थी। अत: यदि अ० सा० 3 के साक्ष्य को अ० सा० 8 के साक्ष्य के साथ पूर्वोक्त परिस्थिति के संदर्भ में पढ़ा जाता है, यह प्रतीत होगा कि जब मृतका बाथरूम में आग से जल रही थी, अभियुक्तगण वहाँ नहीं थे और जब तक अ० सा० 8 घटनास्थल पर पहुँचा, अपीलार्थी राजीव नयन सिंह, मृतका का पति, उसकी पुत्री को अस्पताल ले जा चुका था जहाँ उसने जलने से हुई उपहति के कारण दम तोड़ दिया। इसे दोहराया जाए कि इस तथ्य का कथन अभियोजन के मुख्य गवाह अ० सा० 8 द्वारा किया गया है। अत: पूर्वोक्त परिस्थिति दोष इंगित करती अपराध में फँसाने वाली परिस्थिति नहीं कही जा सकती है।

13. जहाँ तक मृतका, जिसकी मृत्यु विरोध का निशान पीछे छोड़ते हुए हो गयी थी, के किरासन तेल से भींगा होने के बारे में अन्य परिस्थिति का संबंध है, उसे तथ्यों और परिस्थितियों में बिना किसी गलती के अभियुक्त का दोष दर्शाता अपराध में फँसाने वाली परिस्थिति के रूप में नहीं लिया जा सकता है।

14. अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य से यह पहले ही ध्यान में लिया जा चुका है कि जब उसने मृतका को बाथरूम में जलता पाया, अभियुक्तगण में से कोई भी वहाँ उपस्थित नहीं था, जो तथ्य मानव वध के थ्योरी को पूरी तरह असिद्ध करता है, बल्कि आत्महत्या करने की संभावनाओं को उपदर्शित करती परिस्थितियाँ है क्योंकि यह बिल्कुल संभव है कि अभियुक्तगण पुत्र को जन्म नहीं देने के कारण उसके विरुद्ध टिप्पणी करते होंगे क्योंकि मृतका की दो पुत्रियाँ थी, एक लगभग 15 माह की और दूसरी लगभग 6 वर्ष की, जिसने मृतका को आत्महत्या करने के लिए तत्पर किया होगा और वैसी स्थिति में मृतका का किरासन तेल से भींगा हुआ पाया जाना अभियुक्तगण की सह-अपराधिता के प्रति कभी नहीं सुझाता है। इसी समय पर, अंगों का मुड़ना अथवा पंजों से खुरचना, जिसे न्यायालय ने प्युजिलिस्टिक रवैया कहा है, कभी भी जलाने के समय पर स्वयं द्वारा प्रतिरोध किए जाने के बारे में उपदर्शित नहीं करता है क्योंकि चिकित्सा विधि शास्त्र के अनुसार, जब अत्यधिक जलन होती है, अंग मुड़ेंगे और इस प्रकार यह स्थिति आत्महत्या के मामले में भी हो सकती है।

15. अत: परिस्थितियाँ जिन पर दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश दर्ज किया गया है, ऊपर कथन किए गए मामले के तथ्यों में, उन परिस्थितियों को अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपराध में फँसाने वाला नहीं कहा जा सकता है। अत:, दोषसिद्धि का निर्णय दर्ज करने में विचारण न्यायालय न्यायोचित नहीं है। तद्नुसार, दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, अपीलार्थीगण को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी सं॰ 2 और 3 अर्थात् राजीव नयन सिंह और राम लखन सिंह को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है। अपीलार्थी सं॰ 1 लालमनि देवी, जो जमानत पर है, को जमानत बंधक के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

परिणामस्वरुप, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

गुप्तेश्वर सिंह

बनाम

बिहार राज्य खाद्य एवं नागरिक आपूर्त्ति निगम लि॰ एवं अन्य

W.P. (S) No. 5653 of 2005. Decided on 6th January, 2011.

सेवा विधि–वसूली–गोदाम में कमी का अभिकथन–प्रत्यर्थीगण ने अभिलेख पर किसी ऐसे आदेश को नहीं लाया है, जिसके द्वारा विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी है अथवा प्रासंगिक आचरण नियमों के अधीन उसे दोषी पाया गया है–याची की स्वीकृति के आधार पर विभिन्न जिलों से विभिन्न समय पर वसूलियाँ की गयी थी–यदि नियोक्ता ने किसी भी कारण से मूल आदेश में ऐसा ब्याज सम्मिलित नहीं किया था, संपूर्ण अवधि, जिसे बीत जाने दी गयी है, पर दूसरी बार विचार करने की छूट नियोक्ता को नहीं है–अत: प्रत्यर्थीगण ब्याज वसूल करने के हकदार नहीं है–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 4 एवं 5)

निर्णयज विधि.—LPA Nos. 93/09, 283/10—Applied.

अधिवक्तागण.—Mr. Sumeet Kumar Gadodia, For the Petitioner; Mr. Satyendra Singh, For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका याची द्वारा दिनांक 30.9.2004 और 31.8.2005 के आदेशों, रिट याचिका के परिशिष्ट-7 और 8, के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा याची को अभिकथित गोदाम कमी की राशि पर 18% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज के भुगतान का निर्देश दिया गया है। याची ने 55,856.97/-रुपयों की राशि जो याची द्वारा प्रत्यर्थीगण को भुगतान योग्य थी, को समायोजित करने के बाद अर्जित अवकाश और उपदान के लिए भुगतान योग्य 93,419/-रुपयों के भुगतान के लिए परमादेश रिट भी आगे इप्सित किया है और उसने आगे प्रार्थना की है कि सामूहिक बीमा, पेंशन, आदि सहित अन्य सेवानिवृत्ति लाभों को भी निर्मुक्त किया जाए।

2. याची बिहार राज्य खाद्य एवं सिविल आपूर्त्ति निगम में सहायक के रूप में कार्यरत है और उसकी सेवाकाल के दौरान गोदाम में कतिपय कमियाँ पायी गयी थी और याची के वेतन से 1,49,894.97/-रुपयों की राशि वसूल करने का निर्देश दिया गया था। याची को मार्च, 2003 में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था और तब तक 90,328/-रुपयों की राशि उसके वेतन से काटी जा चुकी थी और अभी भी याची के विरुद्ध 59,566.97 रुपया बकाया था। तत्पश्चात्, अप्रैल, 2003 में 3710/-रुपयों की राशि भी वसूल कर ली गयी थी और वह 55,856.97/-रुपयों की राशि का भुगतान करने का आगे दायी था जिसे उसने अपने अर्जित अवकाश और उपदान की राशि के विरुद्ध समायोजित करने की प्रार्थना की है।

3. प्रत्यर्थीगण ने भी प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि अर्जित अवकाश और उपदान की राशि याची को भुगतान योग्य है और जी॰ आई॰ एस॰ और भविष्य निधि की राशि याची द्वारा समुचित औपचारिकताओं को पूरा कर लेने के बाद ही निर्मुक्त की जा सकती है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि रिट याचिका के परिशिष्टों-7 और 8 द्वारा याची से ब्याज की मांग को उठाया गया था और उसका उत्तर प्रत्यर्थीगण को दिया गया था और तत्पश्चात ब्याज सहित वसूली की गयी थी। उन्होंने आगे इंगित किया कि नियम, जिसे प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ 17 में उद्धृत किया गया था, प्रावधानित नहीं करता है कि प्रत्यर्थीगण राशि, जिसका गबन किया गया है, के अतिरिक्त अपने कर्मचारीगण से वसूल की गयी राशि पर ब्याज पाने के हकदार है। प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया और प्रतिवाद किया कि विभिन्न समयों पर विभिन्न जिलों में राशि की वसूली के लिए आदेशों को पारित किया गया है और राशि जिसे मांगा गया है, ब्याज से संबंधित है और समुचित कारण बताओ नोटिस दिया गया है और तत्पश्चात याची से राशि वसूल की जा रही है। उन्होंने आगे इंगित किया कि प्रत्यर्थीगण याची की ओर से ढिलाई के कारण उठाए गए नुकसान के लिए ब्याज का निर्धारण करने के हकदार है। उन्होंने संशोधित नियमावली पर भी विश्वास किया जिसे प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-A के रूप में संलग्न किया गया है।

4. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के निवेदन पर सम्यक् रूप से विचार करने के बाद अभिलेख से स्पष्ट है कि प्रत्यर्थीगण ने अभिलेख पर किसी आदेश को नहीं लाया है जिसके द्वारा विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी है अथवा उसे प्रासंगिक आचरण नियमावली के अधीन दोषी पाया गया

है। याची की स्वीकृति के आधार पर, विभिन्न समयों पर विभिन्न जिलों से वसूलियाँ की गयी है। अभिलेख से यह पता भी चलता है कि याची 1,49,894.77/-रुपयों की राशि का भुगतान करने का दायी था और अप्रैल, 2003 तक उसके वेतन से 94038/-रुपयों की राशि काटी जा चुकी थी। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कोई पूर्व आदेश दाखिल नहीं किया है जिसके द्वारा वसूली निर्देशित की गयी थी यद्यपि विभिन्न अवसरों पर वसूली की गयी थी जिसे याची द्वारा स्वीकार किया गया है। अभिलेख से यह भी स्पष्ट है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा याची पर कारण बताओ नोटिस तामील किया गया था। यदि उक्त राशि को मुख्य राशि में सम्मिलित किया भी गया था, प्रत्यर्थीगण यह दर्शाने के लिए उक्त आदेश को न्यायालय के समक्ष दाखिल कर सकते थे कि मुख्य राशि ब्याज की राशि को भी सम्मिलित करती है। परिशिष्टों 7 और 8 के परिशीलन से स्पष्ट नहीं है कि मूल आदेश में वर्णित राशि ब्याज को सम्मिलित नहीं करती थी। यदि यह मूल आदेश में सम्मिलित थी, ब्याज के भुगतान के लिए याची को नया कारण बताओ नोटिस दिए जाने की आवश्यकता नहीं थी। यदि नियोक्ता ने किसी कारण वश ऐसे ब्याज को मूल आदेश में सम्मिलित नहीं किया था, संपूर्ण अवधि जिसे बीत जाने दी गयी थी के लिए कर्मचारी से ब्याज के भुगतान का दावा करते हुए अनेक वर्षों बाद ब्याज के विवाद्यक पर दोबारा विचार करने की छूट नियोक्ता को नहीं है। इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण ब्याज वसूल करने के हकदार नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, यह मामला **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 93 वर्ष 2009 (बिहार राज्य खाद्य एवं सिविल आपूर्त्ति निगम लिमिटेड बनाम नागेश्वर सिंह)** और **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 283 वर्ष 2010 (बिहार राज्य खाद्य एवं सिविल आपूर्त्ति निगम बनाम बीनित कुमार)** में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों से पूर्णत: आच्छादित है। प्रत्यर्थीगण अर्जित अवकाश और उपदान की राशि में 55,856.97/-रुपयों की राशि समायोजित कर सकते है और शेष राशि तुरन्त निर्मुक्त की जा सकती है और सामूहिक बीमा, पेंशन, आदि की राशि का, जैसे ही याची औपचारिकताओं को पूरा करता है, भुगतान करने के लिए विभाग संबंधित विभागों को निर्देश जारी करेगा और उक्त राशि का भुगतान शीघ्रातिशीघ्र किया जाएगा।

5. उक्त की दृष्टि में, रिट याचिका अनुज्ञात किए जाने योग्य है। उक्त निर्देश के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मो॰ निसारुल हक

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1494 of 2010. Decided on 10th January, 2011.

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989—धाराएँ 3(1)(x) और 3(1)(xi)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अनुसूचित जाति के किसी सदस्य का अपमान–परिवादी जन प्रतिनिधि है जबकि याची कार्यपालक अभियन्ता है–यह अभिकथन नहीं था कि याची ने सार्वजनिक रूप से सूचक को उसकी जाति के नाम से गाली दी थी–याची ने अभिकथित रूप से कहा कि उसने हरिजन और दुसाध जाति के अनेक विधायकों को देखा था–ऐसा कहना हरिजन अथवा दुसाध जाति के व्यक्ति को अपमानित अथवा अभित्रासित नहीं करता है–दूसरी ओर अभिलेख पर तथ्य यह था कि याची को ही सूचक द्वारा

अपमानित किया गया था, जो सूचक के हाथों संस्थापित किया गया था–याची का दांडिक अभियोजन न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा जिसे संपोषित नहीं किया जा सकता है–दांडिक अभियोजन अभिखंडित। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s R. S. Mazumdar, Bijay Kumar Pandey, For the Petitioner; Mr. Md. Hatim, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने लातेहर (हरिजन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 1/07 की प्राथमिकी और मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, लातेहर के समक्ष लंबित अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धाराओं 3(1)(x) और 3(1) (xi) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची के विरुद्ध समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. वर्तमान याचिका की सुनवाई के दौरान, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 और 3 के नामों को याची की प्रेरणा पर काट दिया गया था और विपक्षी पक्षकार प्रकाश राम को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के रूप में संख्यांकित किया गया था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 प्रकाश राम ने दिनांक 20.4.2007 को लातेहर पुलिस के समक्ष लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया जिसमें अभिकथन किया गया था कि घटना की अभिकथित तिथि पर वह लातेहर के सर्किट हाऊस में ठहरा हुआ था। सर्किट हाऊस में बैठे हुए उसने बालूमठ और लातेहर में अवस्थित क्रमशः छपर कलवर्ट और जालिम कलवर्ट से संबंधित निविदाओं के बारे में उसे सूचित करने के लिए याची मो॰ निसारुल हक, कार्यपालक अभियन्ता, विशेष डिविजन, लातेहर को आने के लिए संदेशवाहक भेजा। जब याची मो॰ निसारुल हक ने सर्किट हाऊस आने से इनकार किया, तब वह स्वयं याची के कार्यालय गया और जब उसने पूर्वोक्त कलवर्टों के निर्माण से संबंधित निविदाओं के संबंध में सूचना अभिनिश्चित करना चाहा, यह अभिकथित किया गया था कि याची क्रोध में आ गया और कहा कि उसने अनेक ''हरिजन-दुसाध विधायकों'' को देखा था और कोई भी सूचना देने से इनकार कर दिया। सूचक ने अभिव्यक्त किया कि उसने याची-अभियुक्त द्वारा किए गए कथनों से स्वयं को अपमानित महसूस किया क्योंकि उसे अभियुक्त द्वारा हरिजन के रूप में व्यवहार किया गया था यद्यपि वह लोक प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार किए जाने योग्य था।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री आर॰ एस॰ मजूमदार ने आरंभ में निवेदन किया कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धाराओं 3(1)(x) और 3(1)(xi) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए कार्यपालक अभियन्ता की श्रेणी के लोक सेवक, याची को दांडिक अभियोजन मामले की तथ्यों और परिस्थितियों में पोषणीय नहीं था। अभियोजन मामले के अनुसार संपूर्ण घटना याची कार्यपालक अभियन्ता के कार्यालय में हुई थी जहाँ सूचक गया था और याची के साथ गाली-गलौज किया था जिसके लिए वर्तमान मामले के सूचक श्री प्रकाश राम और अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 448/341/323/353/477/307/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए स्वयं दिनांक 20.4.2007 को लातेहर पी॰ एस॰ केस सं॰ 43/07 उद्भूत करते हुए प्रति मामला संस्थापित किया गया था। प्रति मामले में अभिकथित किया गया था कि जब इसमें के याची-अभियुक्त दिनांक 20.4.2007 को दोपहर लगभग 2.45 बजे अपने कार्यालय के कक्ष में काम कर रहा था, कोई शमशुल होदा उसके पास आया और उसे साथ चलने को कहा क्योंकि विधायक प्रकाश राम उसे सर्किट हाऊस में बुला रहा

था जिस पर याची ने आश्वासन दिया कि वह दस मिनटों में अपना काम समाप्त कर सर्किट हाऊस आएगा। शमशुल होदा वापस चला गया किन्तु लगभग 10 मिनट बाद विधायक प्रकाश राम कुछ गुंडों के साथ वहाँ आया, जो उसके कक्ष में घुसे और उसे गालियाँ देने लगे और अपने पहने हुए जुतों से उसपर प्रहार करने लगे। प्रकाश राम ने गन्दी भाषा का प्रयोग किया और उसे आतंकित किया। तब हमलावर विधायक ने अपने साथ आए गुंडों से याची पर प्रहार करने और उसके अंगों को तोड़ देने के लिए कहा। आगे विधायक के विरुद्ध अभिकथित किया गया था कि वह उसका गला दबाने लगा किन्तु याची किसी तरह से बच निकला और अपना जीवन बचाया, किन्तु हमलावर याची के कार्यालय से बहुमूल्य दस्तावेजों को लेकर वापस चले गए।

5. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 का अध्याय II अत्याचारों के अपराधों पर विचार करता है। धारा 3(1)(x) कथन करता है:

> *''कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, जनता को दृष्टिगोचर किसी स्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अपमान करने के आशय से साशय उसको अपमानित या अभित्रस्त करेगा; वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी, किन्तु जो पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, दण्डनीय होगा।''*

धारा 3(1)(xi) कहता है,

> *''कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसकी लज्जा भंग करने के आशय से हमला या बल प्रयोग करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी, किन्तु जो पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, दण्डनीय होगा।''*

6. विधि की उक्त प्रतिपादनाओं के कोरे पठन से स्पष्ट है कि मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में अधिनियम की धारा 3(1)(xi) याची के विरुद्ध आकृष्ट होती ही नहीं है। अधिनियम की धारा 3(1)(x) की प्रासंगिकता के संबंध में विद्वान वरीय अधिवक्ताओं श्री मजूमदार ने निवेदन किया कि याची के विरुद्ध यह अभिकथित नहीं किया गया था कि उसने सूचक को उसके अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य होने के नाते उसका अपमान करने के आशय के साथ अपमानित अथवा अभित्रासित किया था बल्कि यदि तर्क की खातिर अभियोजन मामले को सत्य स्वीकार भी किया जाता है, यद्यपि इससे इनकार किया गया है, यह अभिकथित किया गया था कि याची अभियुक्त ने केवल इतना कहा था कि उसने अनेक हरिजन-दुसाध विधायकों'' को देखा था जिसका अर्थ यह नहीं था कि उसने उसके अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति का सदस्य होने के नाते सूचक का अपमान करने के आशय के साथ उसे अपमानित अथवा अभित्रासित किया था ताकि अधिनियम की धारा 3(1)(x) की रिष्टि आकृष्ट हो सके। यह अभिकथन नहीं था कि झूठे अभिकथन कि उसने कहा था कि उसने हरिजन और दुसाध के अनेक विधायकों को देखा था, को छोड़कर याची ने खुलेआम उसके जाति नाम से सूचक को गालियाँ दी थी। ''खुले आम'' अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के सदस्य का अपमान अधिनियम की धारा 3 (1)(x) के अधीन अपराध गठित करने का सार है।

7. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए श्री मजूमदार ने आगे निवेदन किया कि लिखित रिपोर्ट प्रकट नहीं करता था कि ऐसा कथन सार्वजनिक स्थान पर खुले आम याची द्वारा किया गया था बल्कि सूचक गुंडों के साथ याची-कार्यपालक अभियन्ता के कार्यालय आया था और जूतों से उस पर प्रहार करते हुए याची के विरुद्ध अपराधिक बल का प्रयोग किया था जब वह लोकसेवक के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था और इस तरीके से सूचक ने याची को अपने कर्तव्य के निर्वहन से रोका और वापस जाते हुए सूचक बहुमूल्य दस्तावेजों को ले गया और इसलिए यहाँ पहले निर्दिष्ट दोनों प्राथमिकी के संयुक्त पठन

से स्पष्ट होना कि वर्तमान मामले का सूचक ही हमलावर था जो याची के कक्ष में गया और उस पर प्रहार किया।

8. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, मो॰ हातिम ने प्रतिवाद का विरोध किया और निवेदन किया कि याची के विरुद्ध सूचक, एक सम्मानित व्यक्ति और विधान सभा का तत्कालीन सदस्य, के जाति नाम का उपयोग करने का प्रत्यक्ष अभिकथन है किन्तु उसी समय पर स्वीकार किया कि वर्तमान मामले के सूचक के विरुद्ध याचीगण द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 353 सहित अनेक धाराओं के अधीन प्रति मामला संस्थापित किया गया था।

9. वर्तमान मामले में विचारार्थ बिन्दु ये हैं कि क्या यहाँ ऊपर निर्दिष्ट कथनों द्वारा किया गया अभिकथित अपमान सार्वजनिक स्थल पर किया गया था जैसा अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अनुध्यात किया गया है और कि क्या याची के अभिकथित कथन अनुसूचित जाति के सदस्य का अपमान करता है। स्वीकृत रूप से, वर्तमान मामले का सूचक अनुसूचित जाति का सदस्य है। मैं सूचक के लिखित रिपोर्ट से पाता हूँ कि याची-अभियुक्त ने कहा कि उसने हरिजन और दुसाध जाति के अनेक विधायकों को देखा था। मेरे दृष्टिकोण में, ऐसे कथन हरिजन अथवा दुसाध जाति के व्यक्ति का न तो अपमान और न ही अभित्रास करते हैं और अभिलेख पर, सूचक द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट की बात ही दूर, कोई सामग्री नहीं है कि घटना सार्वजनिक स्थल पर हुई थी जैसा अधिनियम की धारा 3(1)(x) के अधीन अनुध्यात किया गया है। दूसरी ओर, भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 448/341/323/353/477/307/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए लातेहर पी॰ एस॰ केस सं॰ 43/07 को उद्भूत करते हुए उसी दिन लातेहर पुलिस थाना में याची-अभियुक्त द्वारा संस्थापित मामला प्रथम दृष्टया परिलक्षित करता है कि याची को ही वर्तमान मामले के सूचक और अन्य द्वारा अपमानित किया गया था। तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि न तो धारा 3(1)(x) के अधीन अपराध और न ही धारा 3(1)(xi) के अधीन अपराध याची के विरुद्ध निर्मित होता है और इसके अतिरिक्त, तथ्यों और परिस्थितियों में, आरोप-पत्र दाखिल करने के पहले अभियोजन द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी प्राप्त नहीं की जा सकी थी। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूँ कि दी गयी स्थिति के अधीन याची मो॰ निसारुल हक का दांडिक अभियोजन न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा जिसे संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, जी॰ आर॰ सं॰ 167/07 के तत्सम, लातेहर (हरिजन) पी॰ एस॰ केस सं॰ 1/07 में, उसका दांडिक अभियोजन अभिखंडित किया जाता है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

मेसर्स के॰ एन॰ फार्म्स एण्ड इंडस्ट्रीज (प्रा॰) लि॰

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Civil Review No. 23 of 2008. Decided on 24th November, 2010.

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धाराएँ 4 एवं 6—नयी भूमि अर्जन कार्यवाही की शुरूआत—रिट याचिका की खारिजी—इस आधार पर कि दावा पुराना हो चुका है—बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 4(h) के अधीन कार्यवाही शुरू किए जाने के कारण राज्य की ओर

से विलम्ब हुआ था और यह आशयपूर्ण नहीं था–करार के आधार पर मुआवजा की राशि का भुगतान किया गया था यद्यपि मुआवजा के भुगतान के लिए कोई अंतिम अधिनिर्णय नहीं दिया गया था–याची वैसे ही अनुतोष का हकदार था जो एक अन्य रिट याचिका में समरुप स्थिति में उसे दिया गया था–भूमि के उचित मुआवजा का निर्धारण करने का निर्देश जिला भूमि अर्जन अधिकारी को दिया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Sahani, For the Petitioner; Mr. S. Choudhary, For the Respondents.

आदेश

इस याचिका में, याची ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6793 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 16.1.2008 के आदेश का पुनर्विलोकन इप्सित किया है। यह कथन किया गया है कि भूमि अर्जन केस सं॰ 6 वर्ष 1961-62 और भूमि अर्जन केस सं॰ 5 वर्ष 1963-64 में याची की भूमि के अर्जन की प्रक्रिया शुरू की गयी थी। उस प्रक्रिया में याची की भूमि का कब्जा राज्य द्वारा अधिग्रहित किया गया था। किन्तु मुआवजा का अंतिम अधिनिर्णय पारित नहीं किया गया था। इससे व्यथित होकर, याची ने सम्यक् मुआवजा अधिनिर्णीत करने के लिए भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध नयी कार्यवाही आरंभ करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिए जाने की प्रार्थना करते हुए उक्त रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6793 वर्ष 2006 दाखिल किया था। इस न्यायालय ने पाया कि मामला काफी पुराना था क्योंकि याची ने चार से अधिक दशकों के बाद इस न्यायालय की शरण ली थी। यह संप्रेक्षित करते हुए कि मामला पुराना था, न्यायालय ने रिट याचिका खारिज कर दी थी।

2. याची ने कथन किया है कि वस्तुत: मामला प्रत्यर्थी द्वारा लंबित रखा गया था और विलम्ब उनकी ओर से, न कि याची की ओर से था। आगे कथन किया गया है कि समरुप परिस्थिति और तथ्यपरक स्थिति के अधीन, एक अन्य भूमि के टुकड़े के संबंध में इसी याची द्वारा दाखिल एक अन्य रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1546 वर्ष 2005 को दिनांक 18.11.2009 के आदेश द्वारा निपटाया गया था जिसके द्वारा आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर विधि के अनुरुप नई नोटिसों को जारी करने, जैसा भूमि अर्जन अधिनियम की धाराओं 4 और 6 के अधीन अपेक्षित है, और मुआवजा अधिनिर्णीत करने के लिए मामला भूमि अर्जन अधिकारी/पूर्वी सिंहभूम के कलक्टर को वापस भेजा गया था।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ साहनी ने निवेदन किया कि समुचित अनुदेशों की अनुपस्थिति में उक्त तथ्यों को इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया जा सका था और डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) 6793 वर्ष 2006 को उसमें उल्लिखित तथ्यों के आधार पर सृजित इस धारणा कि विलम्ब याची की ओर से था यद्यपि मामला प्रत्यर्थीगण द्वारा लंबे समय तक लंबित रखा गया था, के अधीन दिनांक 16.1.2008 के आदेश द्वारा निपटाया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि राज्य ने काफी पहले दिनांक 31 मार्च, 1960 को पहले ही भूमि का कब्जा ले लिया है जिसे प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ 9 में स्वीकार भी किया गया है और याची को गंभीर कठिनाई, नुकसान और क्षति झेलनी पड़ेगी यदि डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1546 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 18.11.2009 के आदेश को पूर्वोल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में पुनर्विलोकित नहीं किया जाता है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस न्यायालय ने पहले ही याची की भूमि के अन्य टुकड़े के लिए अर्जन हेतु नया कदम उठाने और मुआवजा अधिनिर्णीत करने के लिए निर्देश दिया है और वर्तमान मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ बिल्कुल समरुप होने के नाते न्याय के उद्देश्य के लिए ऐसा ही आदेश पारित किया जा सकता है और भूमि के समुचित अर्जन और मुआवजा अधिनिर्णीत करने के लिए कदम उठाने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाए जैसा निर्देश डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1546 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 18.11.2009 के आदेश में उनको दिया गया है।

4. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान सरकारी अधिवक्ता ने उक्त प्रतिवादों को विवादित नहीं किया है किन्तु निवेदन किया है कि राज्य की ओर से विलम्ब बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 4(h) के अधीन कार्यवाही आरंभ किए जाने के कारण था और आशयपूर्ण नहीं था। यह स्पष्ट किया गया है कि इसी भूमि के लिए, यद्यपि अर्जन की पूर्व प्रक्रिया को आरंभ किया गया था किन्तु बाद में भूमि अर्जित करने और याची को मुआवजा का भुगतान करने के बजाए भूमि की बंदोबस्ती को बातिल करने के लिए और सरकार द्वारा इसे अधिग्रहित करने के लिए बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 4(h) के अधीन कार्यवाही आरंभ करने का निर्णय राजस्व विभाग द्वारा लिया गया था। बाद में उक्त कार्यवाही को याची द्वारा सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 410 वर्ष 1978 में चुनौती दी गयी थी और उक्त रिट आवेदन में बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 4(h) के अधीन आरंभ की गयी कार्यवाही को दिनांक 30 जून, 1986 के निर्णय द्वारा अभिखंडित कर दिया गया था।

5. आगे निवेदन किया गया है कि करार के आधार पर मुआवजा की राशि का भुगतान किया गया था, यद्यपि मुआवजा के भुगतान का कोई अंतिम निर्णय नहीं था। किन्तु विद्वान सरकारी अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि उस तथ्यपरक स्थिति में उसी याची की भूमि के टुकड़े के लिए डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 1546 वर्ष 2005 में भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन अपेक्षित नोटिस को जारी करने के बाद मुआवजा के नए सिरे से निर्धारण के लिए आदेश पारित किया गया है। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि एल० पी० ए० संख्या 567 वर्ष 2009 में उक्त आदेश के विरुद्ध राज्य द्वारा दाखिल अपील को दिनांक 26.10.2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है।

6. अभिलेख पर उपलब्ध उक्त निवेदनों और तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूँ कि याची उसी अनुतोष का हकदार है जैसा उसे समरुप स्थिति में डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 1546 वर्ष 2005 में दिया गया है जिसे देने से डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 6793 वर्ष 2006 में अभिलेख पर उपलब्ध प्रासंगिक तथ्यों की अनुपस्थिति में इनकार किया गया था।

7. उक्त दृष्टि में, डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 6793 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 16.1.2008 के आदेश को वापस लिया जाता है और डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 6793 वर्ष 2006 में वर्णित भूमि के संबंध में भी डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 1546 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्देशों के अनुरूप कार्रवाई करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देते हुए यह रिट याचिका निपटायी जाती है। तद्नुसार जिला भूमि अर्जन अधिकारी/पूर्वी सिंहभूम जिला कलक्टर को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर विधि के अनुरुप पूर्वोक्त भूमि के उचित मुआवजा का निर्धारण करने के लिए तुरन्त कदमों को उठाने का निर्देश दिया जाता है।

8. यह स्पष्ट किया जाता है कि अंतिम अधिनिर्णय की राशि का भुगतान करते हुए अंतिम अधिनिर्णय करने के पहले अंतरिम मुआवजा के जरिए याची को भुगतान की गयी किसी भी राशि का समायोजन किया जाएगा।

9. ऊपर उक्त निबंधनों में यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय जे० सी० एस० रावत, न्यायमूर्ति

डॉ० (श्रीमती) पुलचेरिया जॉन होरो (1000 में)

डॉ० (श्रीमती) रत्ना बनर्जी (1042 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P.(S) Nos. 1000, 1042 of 2006. Decided on 13th January, 2011.

विश्वविद्यालय विधि–वेतन–भूतलक्षी तिथि से प्रोफेसर के पुनरीक्षित वेतनमान में वेतन के बकायों का दावा–अवधि, जब महाविद्यालय इंटरमीडिएट स्तर तक भी संबद्ध नहीं था, के दौरान महाविद्यालय को दी गयी सेवाओं को प्रोन्नति के लिए सेवा की संगणना के उद्देश्य से विचार में नहीं लिया जाएगा–किन्तु कोई वर्जना नहीं है कि महाविद्यालय को डिग्री-स्तर II तक संबद्ध होना ही चाहिए–महाविद्यालय डिग्री-स्तर-I तक संबद्ध था जब याचीगण को नियुक्त किया गया था–इस प्रकार, याचीगण नियुक्ति की तिथि से समयबद्ध प्रोन्नति और प्रोफेसर के रूप में ऐसे समयबद्ध प्रोन्नति के लाभ को पाने के हकदार हैं–याचीगण के मामलों पर विचार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया गया। (पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.–M/s Ajit Kumar, Rahul Kumar, Vikash Kumar, Prabhat Singh, For the Petitioners; J.C. to A.G., For the Respondent-State; J.C. to Mr. A.K. Mehta, For the University.

आदेश

इन दोनों रिट याचिकाओं के विवाद एक ही हैं और इसलिए एक ही निर्णय द्वारा दोनों रिट याचिकाओं को निपटाया जाता है।

2. इस तथ्य कि याचीगण को बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग, पटना (संक्षेप में आयोग) की सम्यक् अनुशंसा पर दिनांक 18.8.94 के प्रभाव से प्रोफेसर के रूप में पहले ही प्रोन्नत किया जा चुका है, को विचार में लेते हुए भूतलक्षी तिथि के प्रभाव के साथ प्रोफेसर के पुनरीक्षित वेतनमान में याचीगण के वेतन के बकाया को निर्मुक्त करने हेतु प्रत्यर्थीगण को आदेश देने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचीगण द्वारा इन रिट याचिकाओं को दाखिल किया गया है। इसके अतिरिक्त, याचीगण ने अपनी प्रोन्नति की तिथि दिनांक 18.8.94 के प्रभाव के साथ याचीगण के वेतनमान को नियत करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाना इप्सित किया है; याचीगण ने आगे इप्सित किया है कि रिट याचिका के परिशिष्ट-7 में अंतर्विष्ट पत्र की दृष्टि में रीडर के वेतनमान में प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा वेतनमान नियत किया गया है जो गलत है।

3. दोनों रिट याचियों को निर्मला महाविद्यालय में क्रमशः हिन्दी और इतिहास विभागों में दिनांक 26.7.1969 को लेक्चरर के पद पर नियुक्त किया गया था। उक्त महाविद्यालय राँची विश्वविद्यालय, राँची से संबद्ध था। यह भी अभिकथित किया गया है कि उक्त महाविद्यालय को ऐकेडेमिक सत्र 1969-70 के लिए प्री डिग्री-I कला स्तर तक प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा संबद्ध किया गया था और तब से प्रत्यर्थी महाविद्यालय में प्री डिग्री कला स्तर के छात्रों को शिक्षण आरंभ होता रहा है। महाविद्यालय द्वारा किए गए उक्त नियुक्ति के अनुसरण में याचीगण ने निर्मला महाविद्यालय, राँची में दिनांक 18.8.69 को सेवाओं को ग्रहण किया और प्रत्यर्थी महाविद्यालय एवं बिहार विश्वविद्यालय सेवा आयोग ने दिनांक 10.8.76 को उक्त महाविद्यालय में क्रमशः हिन्दी और इतिहास विभाग में लेक्चरर के रूप में याचीगण की सेवाओं को संपुष्ट किया और अनुमोदित किया। याचीगण को दिनांक 1.2.1985 के प्रभाव के साथ समयबद्ध प्रोन्नति योजना के अधीन उनके अपने-अपने विषयों में लेक्चरर के पद से रीडर के पद पर प्रोन्नत किया गया था। उक्त महाविद्यालय के शासी परिषद् ने 16-25 वर्षीय योजना के अधीन समयबद्ध प्रोन्नति के लिए संविधि के अधीन प्रोफेसर के पद के लिए याचीगण के मामलों पर विचार किया और दिनांक 18.8.94 के प्रभाव से उक्त प्रोन्नति को अनुमोदित किया। ऐसे अनुमोदन के अनुसरण में याचीगण के नामों को राँची विश्वविद्यालय, राँची को अनुशंसित किया गया था। निर्मला महाविद्यालय, राँची द्वारा की गयी अनुशंसा को विश्वविद्यालय के शासी निकाय के समक्ष और आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और तब उन्हें

प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नति के लिए दिनांक 7.5.1999 को इसके द्वारा अनुशंसित किया गया था। तत्पश्चात्, उन्हें प्रोफेसर के पद पर समबद्ध प्रोन्नति दी गयी थी। इसके परिणामस्वरुप, दिनांक 18.8.94 के प्रभाव से प्रोफेसर के रूप में रिट याचीगण को नियुक्त करते हुए राँची विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा रिट याचिकाओं का परिशिष्ट-6 जारी किया गया था। तत्पश्चात्, दिनांक 24.6.03 को मानव संसाधन विकास विभाग, झारखंड सरकार द्वारा अधिसूचना जारी की गयी थी जिसमें प्रोफेसर के रूप में उनकी प्रोन्नति को अनदेखा करते हुए रीडर के निम्नतर वेतनमान में याचीगण का वेतन नियत किया गया था। उनके द्वारा अभ्यावेदनों को दिया गया था किन्तु प्रत्यर्थी-प्राधिकारी द्वारा इस पर ध्यान नहीं दिया गया था। अत: उक्त आदेश से व्यथित होकर दोनों रिट याचियों ने रिट याचिकाओं को दाखिल किया।

4. प्रत्यर्थी राज्य ने मामले का प्रतिवाद किया और प्रस्तुत किया गया एकमात्र अभिवचन यह है कि याचीगण का महाविद्यालय वर्ष 1971-72 के प्रभाव से डिग्री II स्तर तक राँची विश्वविद्यालय से संबद्ध था और इस प्रकार उनकी नियुक्ति की सारभूत तिथि दिनांक 1.6.1971 नियत की गयी थी। प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने रिट याचिकाओं के परिशिष्ट-7 में अंतर्विष्ट अधिसूचना का समर्थन किया और विश्वविद्यालय ने पर्याप्त समय दिए जाने के बावजूद कोई प्रतिशपथ पत्र दाखिल नहीं किया है।

5. मैंने याचीगण और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है।

6. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद किया कि याचीगण को वर्ष 1969 में नियुक्त किया गया था और उनकी नियुक्ति की सारभूत तिथि वर्ष 1969 बनी रहेगी। महाविद्यालय को राँची विश्वविद्यालय के साथ एकेडेमिक सत्र 1969-70 से प्री॰ डिग्री और डिग्री स्तर I कला स्तर के लिए संबद्ध किया गया था और हिन्दी और इतिहास विषयों को भी उक्त संबद्धता पत्र में प्रदान किया गया था जिसे पूरक शपथ पत्र के परिशिष्ट-I के रूप में दाखिल किया गया है। उन्होंने आगे इंगित किया कि विश्वविद्यालय की संविधि 15 भी अत्यन्त स्पष्ट है कि यदि किसी व्यक्ति ने बिहार राज्य के अंतर्गत एक अथवा अधिक विश्वविद्यालयों में लेक्चरर के रूप में निरन्तर सेवा के दस वर्षों को पूरा कर लिया है परन्तु यह कि अवधि, जब महाविद्यालय संबंधित विषय में इंटरमीडिएट स्तर तक भी संबद्ध नहीं था, के दौरान डिग्री महाविद्यालय में दी गयी सेवा को इस संविधि के उद्देश्य के लिए विचार में नहीं लिया जाएगा। उन्होंने आगे इंगित किया कि रीडरों और प्रोफेसरों के मामलों में भी इसी प्रावधान को संविधि में लागू योग्य बनाया गया है और इस प्रकार संविधि वर्जित नहीं करती है कि संबद्ध महाविद्यालय को स्तर-II डिग्री के लिए विश्वविद्यालय द्वारा संबद्ध किया जाना होगा; आगे इंगित किया गया था कि पूरक शपथपत्र का परिशिष्ट-R/1 स्पष्टत: प्रकट करता है कि निर्मला महाविद्यालय को प्री डिग्री और डिग्री स्तर-I के लिए राँची विश्वविद्यालय के साथ सत्र 1969-70 के प्रभाव से संबद्ध किया गया था।

7. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क का खंडन किया और प्रतिवाद किया कि डिग्री स्तर II के लिए वर्ष 1971 में महाविद्यालय को संबद्धता प्रदान की गयी थी और इस प्रकार याचीगण वर्ष 1994 के प्रभाव से प्रोफेसर का वेतनमान पाने के हकदार नहीं हैं और अपनी सारभूत नियुक्ति के बाद अपनी सेवाओं का 25 वर्ष पूरा कर लेने के बाद ही ऐसी प्रोन्नति पाने के वे हकदार हैं। यह प्रतिवाद भी किया गया था कि वर्ष 1971 में महाविद्यालय डिग्री II तक संबद्ध था और इस प्रकार, याचीगण की सारभूत नियुक्ति वर्ष 1971 के प्रभाव से मानी जाएगी जैसा रिट याचिकाओं के परिशिष्ट-7 में कथन किया गया है।

8. विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता हमें यह प्रदर्शित नहीं कर सके थे कि क्या याचीगण का दावा वास्तविक नहीं था अथवा कि याचीगण उस तिथि से जब से याचीगण दावा कर रहे हैं उक्त वेतनमान

पाने के हकदार नहीं हैं। विश्वविद्यालय किसी भी दस्तावेज का खंडन नहीं कर सकी थी जिन्हें इन रिट याचिकाओं में याचीगण द्वारा दाखिल किया गया है।

9. अभिलेख के परिशीलन से प्रकट है कि निर्मला महाविद्यालय को एकेडेमिक सत्र 1969-70 से प्री-डिग्री और डिग्री I कला स्तर तक प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा संबद्धता प्रदान की गयी थी और तब से उक्त महाविद्यालय में प्री-डिग्री-I कला स्तर के छात्रों का शिक्षण आरंभ किया गया था और याचीगण ने दिनांक 18.8.69 के प्रभाव से महाविद्यालय की सेवाओं को ग्रहण किया था। उक्त रिट याचीगण के नियुक्ति पत्रों को प्रत्येक रिट याचिका में परिशिष्ट-I के रूप में रिट याचिकाओं के साथ दाखिल किया गया है। उक्त नियुक्ति पत्रों को विश्वविद्यालय द्वारा अथवा राज्य द्वारा इनकार नहीं किया गया है और राज्य ने कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया है कि राँची विश्वविद्यालय द्वारा महाविद्यालय को ऐसी संबद्धता प्रदान नहीं की गयी है। विश्वविद्यालय ने भी याचीगण के शपथ पत्र के साथ दाखिल उक्त पत्र (पूरक शपथ पत्र का परिशिष्ट-R/1) को विवादित नहीं किया है। प्रत्यर्थी राज्य ने किसी शपथ पत्र के जरिए कोई भी प्रकथन नहीं किया है कि पत्र याचिका के पूरक शपथ पत्र का परिशिष्ट-1, महाविद्यालय द्वारा कभी भी जारी नहीं किया गया था और इस प्रकार यह निष्कर्षित किया जा सकता है कि महाविद्यालय एकेडेमिक सत्र 1969-70 के प्रभाव से राँची विश्वविद्यालय के साथ संबद्ध था और याचीगण को क्रमशः हिन्दी और इतिहास विषयों में लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया गया था और विषयों को उक्त संबद्धता पत्र में भी सम्मिलित किया गया था। अब राज्य द्वारा यह नहीं कहा जा सकता है कि इंटरमीडिएट और डिग्री I स्तर तक महाविद्यालय को संबद्धता नहीं थी। विश्वविद्यालय संविधि 15 निम्नवत प्रावधानित करती है:-

"1. संविधियों में अंतर्विष्ट किसी भी विपरीत चीज के बावजूद एतद् द्वारा प्रावधानित किया जाता है कि:

(1) शासी निकाय द्वारा प्रबंधित एवं पोषित किसी संबद्ध महाविद्यालय (जो धार्मिक और भाषायी अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित और प्रबंधित महाविद्यालयों को सम्मिलित करता है) में सेवा दे रहे लेक्चरर को बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग की अनुशंसा पर समयबद्ध योजना के आधार पर निम्नलिखित शर्तों के अधीनस्थ रीडर के पद पर प्रोन्नत किया जाएगा:

(a) कि वह लेक्चरर के रूप में अपनी नियुक्ति के समय पर प्रवर्तित संविधि के अधीन लेक्चरर के पद के लिए यथा विहित अर्हता धारण करता हो और उससे जुड़ी शर्तों, यदि हो, को परिपूर्ण करता हो जैसा संविधि में अधिकथित किया गया है:

(b) कि वह लेक्चरर के पद पर सारभूत नियुक्ति को धारित करता हो; और

(c) कि उसने बिहार राज्य के अंतर्गत एक अथवा अधिक विश्वविद्यालयों में लेक्चरर के रूप में कम से कम दस वर्षों की निरन्तर सेवा को पूरा किया हो:

परन्तु यह कि अवधि, जब महाविद्यालय संबंधित विषय में इंटरमीडिएट स्तर तक भी संबद्ध नहीं था, के दौरान डिग्री महाविद्यालय में दी गयी सेवा को इस संविधि के उद्देश्य के लिए विचार में नहीं लिया जाएगा:

परन्तु आगे यह कि बिहार राज्य के अंतर्गत एक से अधिक विश्वविद्यालयों में दी गयी सेवा को निरन्तर माना जाएगा यदि किसी विश्वविद्यालय की सेवा छोड़ने और अन्य

विश्वविद्यालय की सेवा ग्रहण करने के बीच की बीती अवधि सामान्य पदग्रहण करने के समय के आधिक्य में नहीं है जैसा सेवा संविधि द्वारा विहित किया गया है।

(d) कि दिनांक 19.10.82 पर अथवा इसके पहले विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों में दिनांक 19.10.82 पर अथवा इसके पहले मंजूर पदों के विरुद्ध कार्यरत लेक्चरर को ही डेफिसिट ग्रांट भुगतान राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा।

(2) .....

(3) किसी विश्वविद्यालय के विभाग में अथवा शासी निकाय द्वारा प्रबंधित एवं पोषित किसी संबद्ध डिग्री महाविद्यालय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विहित विश्वविद्यालय प्रोफेसर की अर्हता रखनेवाले और जिसने बिहार राज्य के अंतर्गत एक अथवा अधिक विश्वविद्यालयों में लेक्चरर/रीडर के रूप में कम से कम 16 वर्षों की निरन्तर सेवा पूरी कर ली है, रीडर को बिहार महाविद्यालय सेवा आयोग की अनुशंसा पर अन्य शर्तों को वैसा ही रखते हुए, विश्वविद्यालय प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नत किया जाएगा।''

10. संविधि के उक्त उद्धरण के परिशीलन से प्रकट है कि अवधि, जब महाविद्यालय इंटरमीडिएट स्तर तक भी संबद्ध नहीं था, के दौरान महाविद्यालय को दी गयी सेवा को प्रोन्नति के लिए सेवा की संगणना के उद्देश्य से विचार में नहीं लिया जाएगा। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यदि महाविद्यालय इंटरमीडिएट और डिग्री स्तर-I तक संबद्ध किया गया है, तब शिक्षण फैकल्टी के समयबद्ध प्रोन्नति के लिए उक्त संविधि लागू योग्य होगी। उक्त संविधि से यह भी स्पष्ट है कि कोई भी वर्जना नहीं है कि महाविद्यालय को डिग्री स्तर-II तक संबद्ध होना ही चाहिए। राज्य के विद्वान अधिवक्ता विश्वविद्यालय अधिनियम और संविधि के प्रावधानों के अनुकूल किसी ऐसी संविधि अथवा किसी सरकारी मार्गदर्शक सिद्धान्तों को मुझे प्रदर्शित नहीं कर सके थे कि यदि महाविद्यालय विश्वविद्यालय के साथ डिग्री स्तर-II तक संबद्ध नहीं किया गया था, याचीगण समयबद्ध प्रोन्नति के हकदार नहीं होंगे और वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में याचीगण को वर्ष 1969 में नियुक्त किया गया था और पूरक शपथ पत्र के परिशिष्ट-R/1 द्वारा महाविद्यालय डिग्री स्तर- I तक संबद्ध किया गया है और इस प्रकार याचीगण नियुक्ति की तिथि से समयबद्ध प्रोन्नति पाने के हकदार हैं और याचीगण दिनांक 18.8.94 के प्रभाव से प्रोफेसर योजना के रूप में उक्त समयबद्ध प्रोन्नति के लाभ को पाने के हकदार हैं जिसे रिट याचिकाओं के परिशिष्ट-6 के मुताबिक विश्वविद्यालय द्वारा पहले ही दिया जा चुका है। राज्य सरकार ने उक्त विधिक अवस्था को अनदेखा किया और गलत आदेश पारित किया। यह उपदर्शित करना भी बिलकुल उपयुक्त होगा कि याचीगण का वेतन नियतकरण चार्ट, याचिका के पूरक शपथपत्र का परिशिष्ट-1, स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि उन्हें उक्त चार्ट के कॉलम सं॰ 3 में हिन्दी और इतिहास के प्रोफेसरों के रूप में दर्शाया गया था। रीडर के रूप में उनकी प्रोन्नति की तिथि को सही प्रकार से दिनांक 1.2.1985 दर्शाया गया है। उनको प्रोफेसर के रूप में दर्शाए जाने के बावजूद द्वितीय प्रोन्नति के उनके दावा को रिक्त रखा गया है; यदि राज्य ने उनको रीडर के बजाए प्रोफेसर के रूप में दर्शाया था, वे प्रोफेसर के रूप में याचीगण के वेतन को रोक नहीं सकते हैं। राज्य ने उक्त तथ्य के बारे में कोई खंडन प्रस्तुत नहीं किया है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता मुझे यह प्रदर्शित नहीं कर सके थे कि उन्हें क्यों प्रोफेसर के रूप में दर्शाया गया था, क्यों उन्हें रीडर के रूप में वेतन लेने की अनुमति दी गयी थी; अत: याचीगण प्रोफेसर का वेतन पाने के हकदार हैं।

11. उक्त आधारों पर याचीगण दिनांक 18.8.94 के प्रभाव से प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नति के हकदार

हैं और इस प्रभाव का वेतन, भत्ता और अन्य लाभों को भी पाने के हकदार हैं। उक्त संप्रेक्षणों के प्रकाश में याचीगण के मामलों पर शीघ्रातिशीघ्र विचार करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देशित किया जाता है।

12. यह कहना अनावश्यक है कि यदि प्रत्यर्थीगण द्वारा याचीगण के दावा को अनुज्ञात किया जाता है, याचीगण को आदेश की तिथि से तीन माह के भीतर बकायों और अन्य लाभों को दिया जाएगा। तद्नुसार, रिट याचिकाएँ निपटायी जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

मीरा देवी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) Nos. 3359, 3366, 3360, 3361, 3363, 3364, 3369-3375, 3385, 3760, 3964, 3965, 3367, 3968, 3969, 3978, 3980, 3985, 3997, 3998, 3999, 4000, 4001, 4002, 4003, 4256, 4313, 4404, 4743, 4744, 4761, 4762, 4020, 3368, 3376, 4873, 5226, 5284, 5403, 5413, 5414, 5442, 5445, 5451, 5499, 5536, 5540, 5839, 5895, 5951 of 2010. Decided on 9th December, 2010.

जन वितरण प्रणाली–एक ही मुद्रित आदेश द्वारा पी॰ डी॰ एस॰ अनुज्ञप्ति का रद्दकरण–जब एक बार किसी व्यक्ति को अनुज्ञप्ति दी जाती है, वह बहुमूल्य अधिकार अर्जित करता है–ऐसे अधिकार का लापरवाह तरीके से अतिलंघन नहीं किया जा सकता है अथवा इसको वापस नहीं लिया जा सकता है–याचीगण द्वारा दाखिल कारण बताओ उत्तरों पर चर्चा किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया–मुद्रित आदेश में कुछ खाली कॉलम हैं जिन्हें नाम, लाइसेंस संख्या, मेमो संख्या, तिथि देते हुए हाथ से भरा गया है–याचीगण के उत्तरों पर कोई चर्चा और विचार नहीं किया गया है और याचीगण के निजी मामलों में अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा विवेक का इस्तेमाल नहीं किया गया है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याचिकाएँ अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Kumar, For the Petitioner(s); Mr. D. K. Dubey, G.P.I., For the State.

आदेश

रिट याचिकाओं के इस बैच में याचीगण ने दिनांक 12 जून, 2010 के प्रत्यर्थी सं॰ 3 के आदेश का विरोध किया है जिसके द्वारा उनके जन वितरण प्रणाली के अपने-अपने अनुज्ञप्तियों को अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा विवेक का इस्तेमाल किए बिना एक ही मुद्रित आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया है।

2. यह कथन किया गया है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा याचीगण को जन वितरण प्रणाली की अनुज्ञप्तियों को दिया गया था और उन्होंने अनुज्ञप्तियों अथवा किसी सांविधिक आदेश के, किन्हीं निबंधनों का उल्लंघन नहीं किया है और उनकी अनुज्ञप्तियों के रद्दकरण का आदेश बिल्कुल मनमाना और अनपेक्षित है। यह निवेदन किया गया है कि याचीगण को एक आम कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था और उन्होंने अपने उत्तरों को भी दाखिल किया था किन्तु उत्तरों पर अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा चर्चा और विचार तक नहीं किया गया है और कोई स्पष्ट कारण दिए बिना मनमाने तरीके से उनकी अनुज्ञप्तियों को रद्द करते हुए आक्षेपित आदेशों को पारित किया गया है।

3. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिकाओं का विरोध किया और निवेदन किया कि याचीगण को जन वितरण प्रणाली की अनुज्ञप्तियों को प्रिंसिपल सचिव, खाद्य एवं सिविल आपूर्त्ति, झारखंड सरकार द्वारा जारी विहित परिपत्र और मार्गदर्शक सिद्धांतों के उल्लंघन में जारी किया गया था। अनुज्ञप्तियों को अनुज्ञेय सीमा के आधिक्य में प्रदान किया गया था। विकास उप-कमिश्नर-सह-अपर कलक्टर, पलामू ने पाया था कि अनुज्ञप्तियों को विभाग द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धांतों और विधियों के उल्लंघन में प्रदान किया गया था और उस आधार पर अनुज्ञप्ति धारकों को अपनी अनुज्ञप्तियों के समर्थन में दस्तावेजों को प्रस्तुत करने और स्पष्ट करने के लिए नोटिसों को जारी किया गया था। किन्तु अनुज्ञप्तिधारक संतोषजनक स्पष्टीकरण दाखिल करने और अपनी अनुज्ञप्तियों की वैधता के समर्थन में तर्कपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहे। मामले के समरुप होने के नाते याचीगण की अनुज्ञप्तियों को रद्द करते हुए अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा एक ही आदेश पारित किया गया है।

4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, मैं पाता हूँ कि याचीगण द्वारा दाखिल कारण बताओ उत्तरों पर चर्चा किए बिना एक ही मुद्रित आदेश द्वारा याचीगण की अनुज्ञप्तियों को रद्द कर दिया गया है। मुद्रित आदेश में कुछ खाली कॉलम है जिन्हें नामों, अनुज्ञप्ति संख्या, मेमो संख्या, तिथि, आदि देते हुए हाथ से भरा गया है। याचीगण के उत्तरों पर कोई चर्चा अथवा विचार नहीं किया गया है और याचीगण के निजी मामलों में अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा विवेक का इस्तेमाल भी नहीं किया गया है।

5. यह सुस्थापित है कि जब एक बार किसी व्यक्ति को अनुज्ञप्ति प्रदान की जाती है, वह एक बहुमूल्य अधिकार अर्जित करता है। ऐसे अधिकार का लापरवाह तरीके से अतिलंघन नहीं किया जा सकता है अथवा इसको वापस नहीं लिया जा सकता है जैसा वर्तमान मामले में किया गया है।

6. पूर्वोक्त कारणों से दिनांक 12 जून, 2010 के अनुज्ञापन प्राधिकारी के आक्षेपित आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। इन रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है।

7. यह स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश अनुज्ञापन प्राधिकारी को विधि के अनुरूप अग्रसर होने और आदेश पारित करने से नहीं रोकेगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

चन्दन मिश्रा

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 226 of 2008. Decided on 12th January, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 414—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 220 एवं482—चुरायी गयी मोटर साइकिल की बरामदगी–संज्ञान–दो विभिन्न स्थानों पर दो विभिन्न मामलों को संस्थापित किया गया–प्रश्नगत मोटर साइकिल की चोरी को सरायकेला खरसाँवा जिला में अज्ञात लोगों के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379 के अधीन स्वतंत्र अपराध के रूप में दर्ज किया गया था जबकि इसकी बरामदी भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 414 के अधीन सारभूत मामला और अपराध को उद्भूत करते हुए अभिकथित चोरी के पाँच दिनों बाद पुलिस द्वारा एक भिन्न जिला में की गयी थी–कृत्यों का चालू रहना निरन्तर था और चुरायी गयी मोटर साइकिल याची

और अन्य लोगों के कब्जे से बरामद की गयी थी जो इस निष्कर्ष की ओर ले गया कि ऐसी निरन्तरता के पीछे सामान्य उद्देश्य था–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 220 द्वितीय मामले में याची के पश्चातवर्ती अभियोजन को प्रतिषिद्ध करती है–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 414 के अधीन मामला अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.–AIR 1963 SC 1850; AIR 2001(3) SC 2637—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Amit Kumar Das, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005, जी॰ आर॰ सं॰ 220 वर्ष 2005 के तत्सम, के संबंध में याची के दांडिक अभियोजन सहित दिनांक 28.3.2005 के आदेश, जिसके द्वारा अब श्री एस॰ के॰ चौधरी, न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित मामले में याची के विरुद्ध मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि जब सूचक पुलिस सब-इंसपेक्टर उमेश प्रसाद सिंह राजमार्ग पर वाहनों की जाँच में लगा हुआ था, उसे संदेह हुआ कि उसने रेलवे स्टेशन के बगल से आते हुए और बर्मा माइंस की ओर जाते हुए दो मोटर साइकिल सवार को रूकने का सिग्नल दिया था, किन्तु सवारों ने अपनी मोटर साइकिल की गति बढ़ा दी लेकिन पीछा किए जाने पर वे पकड़े गए थे। स्पेलंडर हीरो होण्डा मोटर साइकिल सं॰ JH05E/8972 के सवार मुकेश शर्मा ने अपना नाम, वंश और पता प्रकट किया और इसके पिलियन सवार ने अपना नाम चन्दन मिश्रा अर्थात वर्तमान अपीलार्थी प्रकट किया। एल॰ एम॰ एल॰ मोटर साइकिल के सवार ने अपना नाम संजय कुमार सिन्हा बताया और पूछे जाने पर पिलियन सवार ने अपना नाम मधुपाल बताया। सूचक को हीरो होण्डा मोटरसाइकिल की जाँच करने पर गड़बड़ का संदेह हुआ क्योंकि उक्त मोटरसाइकिल पर लगे रजिस्ट्रेशन प्लेट के पीछे एक भिन्न रजिस्ट्रेशन नम्बर पाया गया था और इसका हैंडल लॉक भी टूटा हुआ था। सवार मुकेश शर्मा ने सूचक के समक्ष अपना दोष स्वीकार किया और कथन किया कि स्पलेंडर हीरो होण्डा मोटरसाइकिल चुरायी हुई थी और वे सब उक्त मोटर साइकिल को ठिकाने लगाने जा रहे थे। याची सहित समस्त अभियुक्तगण को गिरफ्तार किया गया था और उन सबों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। मोटरसाइकिलों की अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी। पुलिस ने अन्वेषण के पश्चात उनके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया और तद्नुसार उनके विरुद्ध उक्त धारा के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता, श्री दास ने निवेदन किया कि अज्ञात लोगों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 25 वर्ष 2005 को उद्भूत करते हुए प्रश्नगत मोटर साइकिल की चोरी का मामला किसी श्यामलेंदू मोहन घोष द्वारा संस्थापित किया गया था जिसने पार्किंग स्थान से अपनी मोटरसाइकिल गायब पाया था। वर्तमान मामला अर्थात गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005 में पकड़े जाने के बाद याची को आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 25 वर्ष 2005 में भी रिमान्ड किया गया था और आरोप-पत्र दाखिल किए जाने के बाद दिनांक 27.3.2006 को उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन सी॰ जे॰ एम॰, सरायकेला के न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था। इस तरीके से दो मामलों को संस्थापित किया गया था–एक गोलमुरी (बर्मा माइंस) पुलिस थाना पर मोटरसाइकिल की बरामदगी के लिए और दूसरा आदित्यपुर पुलिस थाना पर उक्त मोटरसाइकिल की चोरी के लिए।

4. विद्वान अधिवक्ता, श्री दास ने इंगित किया कि किसी व्यक्ति को एकल अपराध के लिए दो बार अभियोजित नहीं किया जा सकता है यद्यपि घटना एक ही संव्यवहार में घटित हुई थी।

5. विद्वान अधिवक्ता, श्री दास ने **AIR 2001 (3) SC 2637** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया। **टी॰ टी॰ एन्टोनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य** के साथ **दामोदरन पी॰ एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:

> *''यह बिल्कुल संभव है और ऐसा प्रायः होता है कि एक अथवा एक से अधिक संज्ञेय अपराधों को अंतर्ग्रस्त करती एक ही घटना के संबंध में किसी पुलिस थाना के पुलिस प्रभारी अधिकारी को एक से अधिक सूचनाएँ दी जाती है। ऐसे मामले में उसे उनमें से प्रत्येक को स्टेशन हाऊस डायरी में प्रविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है और यह दं० प्र० सं० की धारा 154 में अंतर्निहित है। किसी फोन कॉल अथवा क्रिप्टिक टेलीग्राम द्वारा दी गयी अस्पष्ट सूचना के अतिरिक्त पुलिस थाना के पुलिस प्रभारी-अधिकारी द्वारा इस उद्देश्य के लिए रखी गयी स्टेशन हाऊस डायरी में पहले प्रविष्ट की गयी सूचना दं० प्र० सं० की धारा 154 द्वारा प्रतिपादित प्राथमिकी है। प्राथमिकी में उल्लिखित और पुलिस अधिकारी द्वारा स्टेशन हाऊस डायरी में प्रविष्ट तथ्यों से प्रकट संज्ञेय अपराध में अन्वेषण आरंभ करने के पश्चात मौखिक अथवा लिखित में दी गयी अन्य समस्त सूचनाएँ अथवा ऐसे अन्य संज्ञेय अपराध, जो अन्वेषण के दौरान उसके ध्यान में आ सकते हैं, दं० प्र० सं० की धारा 162 के अधीन आते बयान होंगे। ऐसी किसी सूचना/बयान को समुचित रूप से प्राथमिकी के रूप में नहीं माना जा सकता है और पुनः स्टेशन हाऊस डायरी में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता क्योंकि यह प्रभाव में द्वितीय प्राथमिकी होगी और यह दं० प्र० सं० की योजना के अनुकूल नहीं हो सकती है।''*

6. श्री दास ने आगे स्पष्ट किया कि मोटरसाइकिल की अभिकथित चोरी और सवार के कब्जे से इसकी बरामदगी एक ही संव्यवहार था जिसके लिए दो विभिन्न स्थानों पर दो विभिन्न मामलों को संस्थापित किया गया था और यहाँ निर्दिष्ट प्रतिपादना की दृष्टि में गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005 में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 414 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची का अभियोजन पोषणीय नहीं था और याची के विरुद्ध अभिखंडित किए जाने का दायी है।

7. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें प्रतिवाद किया गया है कि प्रश्नगत मोटर साइकिल की चोरी दिनांक 25.1.2005 को आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 25 वर्ष 2005 को उद्भूत करते हुए सरायकेला खरसावाँ जिले की अधिकारिता के अंतर्गत हुई थी और तद्नुसार अन्वेषण के पश्चात भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिसका संज्ञान सी॰ जे॰ एम॰, सरायकेला खरसावाँ द्वारा लिया गया था, किन्तु चूँकि चुरायी गयी मोटरसाइकिल अभिकथित घटना के पाँच दिनों बाद दिनांक 31.1.2005 के गोलमुरी (बर्मा माइंस) पुलिस थाना की अधिकारिता के अंतर्गत बरामद की गयी थी जिसने गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005 को उद्भूत किया, आरोप पत्र दाखिल किए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन याची के विरुद्ध सी॰ जे॰ एम॰, पूर्वी सिंहभूम, जमशेदपुर द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था।

8. प्रश्नगत मोटरसाइकिल की चोरी सरायकेला खरसावाँ जिला में अज्ञात लोगों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन स्वतंत्र अपराध के रूप में दर्ज की गयी थी जबकि अभिकथित चोरी के पाँच दिनों बाद गोलमुरी (बर्मा माइंस) पुलिस द्वारा भिन्न जिला से इसकी बरामदगी की गयी थी जिसने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 414 के अधीन सारभूत मामले और अपराध को उद्भूत किया। याची को गोलमुरी पुलिस थाना की अधिकारिता के अंतर्गत चुरायी गयी मोटरसाइकिल के साथ पकड़ा गया था और

मोटरसाइकिल के सवार ने अपना दोष स्वीकार किया कि यह चुरायी गयी मोटरसाइकिल थी। सार से प्रतीत होता है कि अपराधों में से प्रत्येक दांडिक परिणामों वाला सारभूत प्रकृति का है जो दो भिन्न न्यायालयों की अधिकारिता के अंतर्गत हुआ।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 220 एक से अधिक अपराध के लिए विचारण पर विचार करती है जिसका पठन है:

''यदि परस्पर संबद्ध ऐसे कार्यों के, जिनसे एक ही संव्यवहार बनता है, एक क्रम में एक से अधिक अपराध एक ही व्यक्ति द्वारा किए गए हैं तो ऐसे प्रत्येक अपराध के लिए एक ही विचारण में उस पर आरोप लगाया जा सकता है और उसका विचारण किया जा सकता है।''

संहिता में ''एक ही संव्यवहार'' को परिभाषित नहीं किया गया है। यदि एक व्यक्ति द्वारा अनेक कृत्यों को किया जाता है, जिसकी उद्देश्य अथवा डिजाइन की एकता है, वह यह उपदर्शित करने वाली मजबूत परिस्थिति होगी कि वे कृत्य एक ही संव्यवहार के अंश हैं। सर्वाधिक आवश्यक परीक्षा कृत्य की निरन्तरता और उद्देश्य की सामान्यता है अर्थात एक ही उद्येश्य की ओर ले जाते हुए कृत्यों की निरन्तर प्रवर्तन होनी चाहिए और समस्त कृत्यों का सामान्य उद्देश्य होना चाहिए।

10. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चीमलापति गनेश्वरराव, AIR 1963 SC 1850 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

''यह सामान्यतः समझा जाता है कि कृत्यों की श्रृंखला के संबंध में जहाँ समय अथवा स्थान की निकटता अथवा उद्देश्य और डिजाइन की एकता/संयुक्तता अथवा कार्रवाई की निरंतरता है, यह निष्कर्षित करना संभव हो सकता है कि वे एक ही संव्यवहार का अंश निर्मित करते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि संव्यवहार को एक ही माने जाने के लिए उन तत्वों में से प्रत्येक का सह-अस्तित्व होना आवश्यक नहीं है। किन्तु यदि एक ही व्यक्ति द्वारा किए गए अनेक कृत्य उद्देश्य अथवा डिजाइन की एकता दर्शाते हैं, वह यह उपदर्शित करने वाली मजबूत परिस्थिति होगी कि वे कृत्य एक ही संव्यवहार का अंश निर्मित करते हैं। कृत्यों की श्रृंखला के बीच संबंध हमें एक ही संव्यवहार को गठित करने के लिए उन कृत्यों का आवश्यक घटक प्रतीत होता है।''

11. सी॰ जे॰ एम॰, सरायकेला खरसावाँ की अधिकारिता के अधीन अज्ञात लोगों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन चोरी के मामले का रिपोर्ट किया गया था किन्तु सूचक के प्रश्नगत मोटरसाइकिल, जो चोरी का विषयवस्तु था, को याची एवं अन्य के कब्जा से बरामद किया गया था जिसके लिए गोलमुरी (बर्मा माइंस) पुलिस थाना में भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन सारभूत अपराध के लिए मामला दर्ज किया गया था जो स्वीकृत रूप से एक ही संव्यवहार का अंश था। अभियुक्तगण का आशय उक्त मोटरसाइकिल, जो आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 25 वर्ष 2005 को उद्भूत करते चोरी का विषय वस्तु था, को ठिकाने लगाने का था और इसलिए, मैं पाता हूँ कि कृत्यों का निरन्तर प्रवर्तन था और चुरायी गयी मोटरसाइकिल याची और अन्य के कब्जा से बरामद की गयी थी जो इस निष्कर्ष की ओर ले गया कि ऐसी निरन्तरता के पीछे सामान्य उद्देश्य था, अत: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 220 गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005, जी॰ आर॰ केस सं॰ 220 वर्ष 2005 में याची का पश्चातवर्ती अभियोजन प्रतिषिद्ध करती है क्योंकि अभिकथित बरामद एक ही संव्यवहार का अंश थी जिसके द्वारा सूचक की मोटरसाइकिल को चुराया गया था और परिणामस्वरूप भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन मामला संस्थापित किया गया था। मैं मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन प्रासंगिकता पाता हूँ कि सूचक द्वारा पश्चातवर्ती मामले अर्थात् गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005 में दिया गया बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अधीन आते बयान के रूप में

समझा जाएगा और इसलिए पश्चातवर्ती प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आधार के रूप में नहीं माना जा सकता है। याची के लिए और उसकी ओर से किए गए तर्क में गुणागुण प्रतीत होता है, तद्नुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए गोलमुरी (बर्मा माइंस) पी॰ एस॰ केस सं॰ 14 वर्ष 2005 में उसका अभियोजन और आदेश, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, को भी अभिखंडित किया जाता है। यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 220 के अधीन अधिकथित प्रावधानों और अन्य प्रासंगिक प्रावधानों की दृष्टि में आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 25 वर्ष 2005 के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 414 के अधीन उसके द्वारा प्रथम दृष्टया अभिकथित रूप से किए गए अपराध के लिए याची को अभियोजित किया जाएगा।

तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

कुर्बान कुरैशी

बनाम

सत्यपाल वर्मा

W. P. (C) No. 4233 of 2010. Decided on 4th January, 2011.

बिहार मकान (पट्टा किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धाराएँ 11(1)(c) एवं 14—निजी आवश्यकता के आधार पर एकपक्षीय बेदखली डिक्री—न्यायालय ने एकपक्षीय डिक्री को इस आधार पर वापस लेने से इंकार कर दिया कि वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करते हुए आवेदन नहीं दिया गया था—आज्ञापक प्रावधानों का पालन किया जाना चाहिए—किन्तु वर्तमान में गलती अनजाने में की गयी थी—एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने का आदेश नोटिस का मानी गई तामिला के कारण था जो याची-किराएदार को ज्ञात नहीं था—साम्यापूर्ण आधार पर अनुतोष पाने का याची हकदार है—अवर न्यायालय को अनुमति देने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 9 एवं 10)

निर्णयज विधि.—1986 PLJR 982; 1987 PLJR 62—Referred to.

अधिवक्तागण.—Mr. Ayush Aditya, For the Petitioner; M/s Himanshu Kumar Mehta, A. K. Amar & Manjhu S. Patra, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. बेदखली वाद सं॰ 9 वर्ष 2009 में मुंसिफ, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 7.8.2010 के आदेश (परिशिष्ट-5) को आक्षेपित किया गया है। मामले के तथ्य ये हैं कि वादी-प्रत्यर्थी ने बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (इसमें इसके बाद अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 11 (1)(c) के अधीन अपनी निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली वाद दाखिल किया।

3. प्रतिवादी-याची उपस्थित हुआ और दिनांक 16.6.2010 को अपना लिखित कथन दाखिल किया। बाद में, दिनांक 18.6.2010 को दिनांक 20.2.2010 के आदेश, जिसके द्वारा न्यायालय ने एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने का आदेश पारित किया था, को वापस लेने के लिए एक अन्य आवेदन दिया गया था। दिनांक 18.6.2010 का आवेदन परिशिष्ट-3 है। उक्त आवेदन के पैराग्राफ 1 में यह कथन किया गया है कि अवर न्यायालय ने एक माह की अवधि के अवसान के बाद तालीमा को पर्याप्त माना

है क्योंकि न तो नोटिस और न ही अभिस्वीकृति को वापस प्राप्त किया गया था। याची के अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि आवेदन दिनांक 7.8.2010 के आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-5) को अवैध रूप से पारित करके अस्वीकार कर दिया गया था।

4. वर्तमान मामले में प्रतिवाद का आधार यह है कि वर्तमान रिट याचिका दाखिल करने के बाद याची ने वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करते हुए आवेदन दाखिल किया जिसे आवश्यकत: लिखित कथन दाखिल करने के पहले दिया जाना चाहिए था। न्यायालय ने एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने के आदेश को वापस लेने के लिए दिए गए आवेदन को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यद्यपि लिखित कथन दाखिल किया गया था, किन्तु वाद, जिसे मकान मालिक की ओर से अपनी सद्भावपूर्व आवश्यकता के आधार पर किराएदार को बेदखल करने के लिए दाखिल किया गया था, के प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करते हुए कोई आवेदन नहीं दिया गया था। वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति एक आरंभिक आज्ञापक अपेक्षा है।

5. अवर न्यायालय ने एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने के आदेश को वापस लेने के लिए याची के आवेदन को अस्वीकार कर दिया है क्योंकि उस तिथि तक वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करते हुए कोई आवेदन नहीं दिया गया था।

6. प्रत्यर्थी-मकानमालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क किया है और न्यायालय को संबोधित किया है कि यह प्रावधान आज्ञापक था और इसलिए अनुमति आवेदन लिखित कथन के पूर्व किये जाने का दायी था। याची एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने हेतु दिनांक 20.2.2010 के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल करने के बाद भी ऐसा करने में विफल रहा। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने **उमेश राम बनाम शत्रुघन प्रसाद,** 1987 PLJR 62, में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है। पूर्वोक्त निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण था कि जब पूर्वोक्त मामले में याची ने अपना लिखित कथन दाखिल किया, वह प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करते हुए आवेदन दाखिल करने में विफल रहा था जो अधिनियम की धारा 14 की उपधारा 4 का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक घटक है। यह आज्ञापक प्रकृति का है, अत: वर्तमान याची किसी अनुतोष का हकदार नहीं है।

7. विद्वान अधिवक्ता ने **दिल्ली क्लॉथ एण्ड जेनरल मिल्स कम्पनी लिमिटेड (अब डी॰ सी॰ एम॰ (लि॰) के रूप में ज्ञात) बनाम सूरज कुंवर एवं एक अन्य,** 1986 PLJR 982 में एक अन्य खंडपीठ के निर्णय पर भी विश्वास किया। इस खंडपीठ ने ऊपर उद्धृत विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को अभिपुष्ट और संपुष्ट किया था।

8. चुनौती का दूसरा आधार यह है कि वाद का प्रतिवाद करने के लिए अनुमति इप्सित करते हुए आवेदन लिखित कथन दाखिल करने की अवधि के अवसान के बाद दाखिल किया गया था और इसलिए वह किसी भी अनुतोष का हकदार नहीं है।

9. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद और विधि के प्रावधानों और अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया के परिशीलन के बाद यह सही है कि धारा 14 की उप-धारा 4 वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करना किराएदार के लिए आज्ञापक बनाती है। धारा 14 की उप-धारा 5 समय के भीतर दाखिल आवेदन पर प्रतिवाद करने की अनुमति प्रदान करना न्यायालय के लिए आज्ञापक बनाती है और उप-धारा 6 अपेक्षा करती है कि किराएदार प्रतिवाद करने की अनुमति प्रदान करते हुए आदेश से 15 दिनों के भीतर अपना लिखित बयान दाखिल कर सकता है। वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से संपूर्ण प्रक्रिया इस कारण से उथल-पुथल हो गयी है कि याची-किराएदार को ज्ञात नहीं था कि लिखित कथन दाखिल किए जाने के पहले ही फरवरी, 2010 के महीने में एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने का आदेश विद्यमान था। न्यायालय ने तामीला को पर्याप्त माना था क्योंकि कोई अभिस्वीकृति अथवा समन वापस नहीं प्राप्त किया गया था। दूसरी ओर, किराएदार ने वाद संस्थापित किए जाने की जानकारी होने के बाद जल्दबाजी में लिखित कथन दाखिल किया, किन्तु यह प्रतीत होता है कि उसने प्रतिवाद करने की अनुमति इप्सित करने के आज्ञापक प्रावधानों को पूर्णत: अनदेखा कर दिया और बाद की तिथि पर

दिनांक 20.2.2010 का आदेश वापस लेने के लिए आवेदन दाखिल किया गया था जिसे अस्वीकार कर दिया गया था और इस न्यायालय में चुनौती दी गयी थी। प्रतिवाद करने की अनुमति केवल दिसम्बर, 2010 में इप्सित की गयी थी। मैं मकान मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों के साथ पूर्णत: सहमत हूँ कि चूँकि ये प्रावधान आज्ञापक हैं, अत: न्यायालय द्वारा इनका कठोरतापूर्वक अनुसरण किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में किराएदार ने अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय की शरण ली है और पर्यवेक्षणीय और साम्या की अधिकारिता का अवलम्ब लिया है कि उसे किसी गलती अथवा उसको दिए गए गलत कानूनी सलाह के कारण बेदखली वाद में गुणागुणों पर प्रतिवाद करने से वंचित किया जा रहा है।

10. अधिवक्ता को सुनने के बाद मेरा दृष्टिकोण है कि आज्ञापक प्रावधानों का अनुसरण किया जाना चाहिए किन्तु दी गयी परिस्थितियों में अभिलेख से प्रकटत: प्रतीत होता है कि गलती अनजाने में की गयी थी। एकपक्षीय रूप से अग्रसर होने का आदेश नोटिस का मानी गई तामीला के कारण था जो उसकी जानकारी में नहीं था। यह वह मामला नहीं है जहाँ मामला जानबूझकर लंबा खींचा गया है यद्यपि मकान मालिक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा यही प्रचारित किया गया है; केवल साम्यापूर्ण आधार पर ही याची दावा किए गए अनुतोष का हकदार है। मैं इस निष्कर्ष पर आता हूँ कि अभिवचनों के आदान-प्रदान के बाद मामला गुणागुण पर विनिश्चित किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में यद्यपि विलम्बित चरण पर आवेदन पहले ही दाखिल किया जा चुका है, मैं निर्देश देता हूँ कि अवर न्यायालय वाद का प्रतिवाद करने की अनुमति प्रदान करेगा जैसा धारा 14(4) के अधीन अपेक्षित है क्योंकि लिखित कथन पहले ही दाखिल किया जा चुका है और टेक्नीकलिटीज के बजाय गुणागुण पर इसे विनिश्चित करेगा।

11. पूर्वोक्त निर्देश के साथ रिट याचिका निपटायी जाती है और दिनांक 7.8.2010 और 20.2.2010 के आदेशों को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा और मामला गुणागुण पर विनिश्चित किया जाएगा।

12. निर्णय समाप्त करने के पहले मैं न्यायालय और पक्षगण को सतर्क करने का इच्छुक हूँ कि मामला विनिश्चित करने में किसी भी प्रकार का विलम्ब नहीं किया जाएगा। दोनों पक्षों को इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ दिनांक 18.1.2011 को उपस्थित होना होगा और अवर न्यायालय शीघ्रातिशीघ्र प्राथमिकत: छह माह की अवधि के भीतर मामला विनिश्चित करने के लिए अग्रसर होगा। यह स्पष्ट किया जाता है कि पक्षों में से किसी को स्थगन तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जबतक कोई अत्यावश्यक परिस्थिति विद्यमान न हो और वह भी लिखित में कारण दर्ज करने के बाद अन्यथा न्यायालय इस न्यायालय द्वारा नियत समय सीमा का पालन करेगा। पक्षगण अपना व्ययं स्वयं वहन करेंगे।

माननीय दिलीप कुमार सिन्हा, न्यायमूर्ति

विरन्ची महथा एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (S.J.) No. 791 of 2002. Decided on 5th January, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 143 वर्ष 1996 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III बोकारो द्वारा पारित दिनांक 31.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 324 एवं 148—गंभीर उपहति–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–अभियोजन यह सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा है कि सूचक ने किसी घातक हथियार द्वारा उपहतियाँ पायी थी–कोई अभिकथन नहीं है कि उसके मस्तक सहित सूचक के किसी महत्वपूर्ण अंग पर लाठी का वार किया गया था–अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 148 के अधीन आरोप सिद्ध करने में विफल रहा–अभियोजन की ओर से न तो अन्वेषण अधिकारी और न ही डॉक्टर को प्रस्तुत और परीक्षित किया जा सका था–इस प्रकार घटनास्थल का दौरा करने के बाद आई॰ ओ॰ के वस्तुपरक निष्कर्ष को अभिलेख पर नहीं लाया जा सका था और अपने लिखित रिपोर्ट में सूचक द्वारा प्रस्तुत घटना का तरीका संपुष्ट नहीं किया जा सका था जो विश्वास उत्पन्न करे–वर्तमान मामला अपीलार्थी के विरुद्ध प्रति मामला प्रतीत होता है–अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा–दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s. A.K. Sahani & Neelanjan Chatterjee, For the Appellants; Mr. Md. Hatim, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान दांडिक अपील सत्र विचारण सं॰ 143 वर्ष 1996 में श्री आर॰ के॰ श्रीवास्तव अपर सत्र न्यायाधीश, F.T.C.-III, बोकारो द्वारा दर्ज दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 324 एवं 148 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है। अपीलार्थीगण में से प्रत्येक को प्रत्येक अपराधों पर दो वर्षों की अवधि का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश इस निर्देश के साथ दिया गया है कि दोनों दंडादेश समवर्ती रूप से चलेंगे।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक भगलूकेश महथा ने दिनांक 14.12.1995 को चन्दनकियारी पुलिस थाना के समक्ष लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ अभिकथन किया गया कि उसी दिन, जब वह दोपहर लगभग 1 बजे वह अपनी फसल देखने खाता सं॰ 8, भूखंड सं॰ 3305, 3306 और 3310 से संबंधित धान के खेतों में गया था किन्तु अभिकथन किया गया है कि अचानक अपीलार्थीगण लाठी और चाकू से लैस होकर आए और उसको गाली देना शुरू किया। आगे अभिकथित किया गया है कि इसी संव्यवहार में अपीलार्थी नटवर महथा उर्फ लटन महथा ने उसके पैरों पर लाठी का प्रहार किया जबकि अपीलार्थी विरन्ची महथा ने रक्त बहती उपहतियाँ कारित करते हुए उसके बाएँ बांह पर छूरा से वार किया और अपीलार्थी संजय महथा ने उसके बाएँ कान पर उपहति कारित की। सूचक पर प्रहार उनके सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में किया गया था और राम प्रसाद महथा के घर के सदस्यगण, जो हल्ला सुनकर घटनास्थल पर आए थे, के आने पर अपीलार्थीगण भाग गए। लिखित रिपोर्ट के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147/148/342/324/323 एवं 307 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अपीलार्थीगण के विरुद्ध चन्दनकियारी पी॰ एस॰ केस सं॰ 116 वर्ष 1995 संस्थापित किया गया था। अन्वेषण के बाद उक्त धाराओं में आरोप-पत्र दाखिल किया गया था किन्तु अपीलार्थीगण के विरुद्ध केवल भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 148/307 के अधीन आरोपों को विरचित किया गया था। अपीलार्थीगण का बचाव यह था कि प्रश्नगत धान का खेत उनका था और सूचक ने चोरी-छिपे उनके खेत से धान काटने की कोशिश की थी जिसका अपीलार्थीगण ने विरोध किया और प्रतिरोध किया जिससे वर्तमान मामले के सूचक के विरुद्ध प्रति-मामला उद्‌भूत हुआ और इस अपील के अपीलार्थी विरंची महथा प्रति-मामले का सूचक था।

3. अभियोजन ने केवल दो गवाहों का परीक्षण किया था और उनमें से अ॰ सा॰ 1 नीतू महथा उर्फ निताई महथा वर्तमान मामले के सूचक का पुत्र था और अ॰ सा॰ 2 स्वयं सूचक था। इसके अतिरिक्त,

बचाव ने एकमात्र गवाह संतोष कुमार को प्रस्तुत किया जो औपचारिक प्रकृति का था और उसने केवल भूमि का किराया रसीद सिद्ध किया जिसे प्रदर्श A-चिन्हित किया गया था। इसके अतिरिक्त, अभियोजन ने लिखित रिपोर्ट प्रदर्श 1 पर सूचक का हस्ताक्षर सिद्ध किया जबकि प्रदर्श A किराया रसीद था, प्रदर्श D दिनांक 14.12.1995 के प्रति-मामले की प्राथमिकी, प्रदर्श B अधिकार अभिलेख (खतियान), प्रदर्श C संपूर्ण अधिकार अभिलेख, प्रदर्श E प्रति मामले का आरोप-पत्र और प्रदर्श F बचाव की ओर से सिद्ध किए गए प्रति मामले के दिनांक 15.12.1995, 16.12.1995 और 25.7.2002 के आदेशों के अंतर्विष्ट करते आर्डर शीटों की प्रमाणित प्रति थी। अ॰ सा॰ 1 नीतू महथा उर्फ निताई महथा ने परिसाक्ष्य दिया कि घटना दिनांक 14.12.1995 को दोपहर लगभग 1 बजे हुई थी जब वह बगल वाले खेत में था। उसका पिता खेत में था और उस समय पर समस्त अभियुक्तगण उसके पिता को पीटने लगे और वह हल्ला सुनकर वहाँ गया। उसका पिता उपहतियाँ प्राप्त करने के बाद पहले पुलिस थाना गया और वहाँ से अस्पताल गया। उसका बयान पुलिस द्वारा दर्ज किया गया था। प्रति-परीक्षण में गवाह ने स्वीकार किया कि प्रासंगिक समय पर वह अपने खेत में था जो घटनास्थल के बगल में था। पूछे जाने पर उसने खेत जहाँ वह खड़ा था की चौहद्दी बतायी और उस खेत का भूखंड संख्या भी बताया जो घटना स्थल था। घटना स्थल उस स्थान जहाँ वह खड़ा था से 200 गज की दूरी पर था और यह दूरी तय करने में उसे 3/4 मिनट लगा था। उसने घटनास्थल पर रक्त देखा था किन्तु इसे पुलिस को नहीं दिखाया गया था। उसे उसके पिता द्वारा बताया गया था कि विरंची महथा ने चाकू से उस पर प्रहार किया था, नटवर महथा उर्फ लटन महथा ने लाठी का वार उसके पैरों पर किया था और संजय कुमार महथा ने पत्थर मारकर उसके कान पर उपहति कारित की थी। शेष अभियुक्तगण ने उसे लातों-मुक्कों से पीटा था। उसने स्वीकार किया कि उसको और उसके चाचा को छोड़कर कोई भी घटनास्थल पर नहीं आया था। गवाह ने आगे स्वीकार किया कि विरंची महथा ने उसके, उसके पिता और चाचा के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379/34 के अधीन अपराध के लिए चंदनकियारी पी॰ एस॰ केस सं॰ 115 वर्ष 1995 को उद्‌भूत करते हुए मामला संस्थापित किया था और उस संबंध में उन तीनों को गिरफ्तार किया गया था और न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था। उसने इसके बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की कि दोनों मामलों में से कौन समय के पहले बिन्दु पर संस्थापित किया गया था। गवाह ने स्वीकार किया कि विरंची द्वारा संस्थापित मामला अभी भी उनके एवं अन्य के विरुद्ध न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय में चल रहा था जो साक्ष्य के चरण पर था।

4. अ॰ सा॰ 2 भगलूकेश महथा वर्तमान मामले का सूचक है जिसने परिसाक्ष्य दिया कि दिनांक 14.12.1995 को जब वह अपने खेत में था, अभियुक्तगण वहाँ आए और उसपर प्रहार करने लगे। अभियुक्तगण की विनिर्दिष्ट आरोप के बारे में बताते हुए गवाह ने अभिसाक्ष्य दिया कि विरंची महथा ने उसके दाएँ बाँह पर चाकू मारा, नटवर महथा उर्फ लटन महथा ने लाठी से उसके पैरों पर वार किया और संजय कुमार महथा ने अनजान वस्तु से उसके कान पर उपहतियाँ कारित की और पुनः नटवर महथा उर्फ लटन महथा ने लाठी से उसपर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप वह जमीन पर गिर गया। हल्ला सुनकर उसका भाई राम प्रसाद महथा और उसका पुत्र नीतू महथा उर्फ निताई महथा आए और अभियुक्तगण भाग गए। चन्दरकियारी अस्पताल में उसका उपचार किया गया और वहाँ से उसे चास रेफरल अस्पताल भेजा गया। गवाह ने अपना बयान यह परिसाक्ष्य देते हुए संपुष्ट किया कि वह पहले पुलिस थाना गया और अपना बयान दिया और तब वह अस्पताल गया। उसने लिखित बयान पर अपना हस्ताक्षर पहचाना जिसे प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने अनभिज्ञता व्यक्त की कि क्या विरंची महथा द्वारा

उसके विरुद्ध मामला संस्थापित किया गया था और आगे अनभिज्ञता व्यक्त की कि क्या उसे प्रति मामले के संबंध में जेल भेजा गया था। गवाह ने स्वीकार किया कि भूखंड सं॰ 3305 और 3306 से धान काट लिया गया था किन्तु भूखंड सं॰ 3304 का धान अभी भी खड़ा था जबकि बगल के खेतों से धान पहले ही काट लिया गया था। इसने स्वीकार किया कि अगल-बगल की भूमि पर अथवा इर्द-गिर्द कोई काम नहीं हो रहा था और कि उसे भाई और उसके पुत्र को छोड़कर कोई भी घटनास्थल पर नहीं आया था जिन्हें उसने घटना और उसके द्वारा प्राप्त उपहतियों का कारण बताया। विरंची महथा ने चाकू से एक उपहति कारित की थी। उसने घटना के बारे में गाँव के पंचायत को संसूचित नहीं किया था। गवाह ने स्वीकार किया कि उसको छोड़कर कोई अन्य चश्मदीद गवाह नहीं था और कि उसने केवल अपने भाई और पुत्र को घटना के बारे में बताया था। गवाह ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि पुलिस थाना में बयान उसके भाई द्वारा, न कि उसके द्वारा दिया गया था किन्तु उसी रात को लगभग 7 बजे अस्पताल से उसकी छुट्टी होने के बाद पुलिस थाना पर उसका बयान दर्ज किया गया था और उसने इसपर हस्ताक्षर किया था। उसका विरंची महथा के साथ भूमि विवाद चल रहा था तथा उसके लिए 2/3 मामले चल रहे थे। अभियुक्त ने उसके विरूद्ध मारपीट का एक मामला भी दर्ज कराया था किन्तु उसने अनभिज्ञता अभिव्यक्त की कि क्या उसके विरुद्ध चोरी का अभिकथन किया गया था। गवाहों के परीक्षण के बाद अभियुक्तगण में से प्रत्येक का सामना अपराध में फँसाने वाली सामग्रियों के साथ कराया गया था और अभियुक्त विरंची महथा से विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछा गया था कि उसने उसके दाएँ हाथ पर चाकू से उपहति कारित किया था जिसके प्रति उसने अपने दोष से इनकार किया। अन्य अभियुक्तगण ने भी अपना दोष स्वीकार नहीं किया।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने संक्षिप्त निवेदन किया कि यद्यपि अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 307/148 के अधीन अपीलार्थीगण में से किसी के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा किन्तु विचारण न्यायालय ने तथ्यों के सचेत अनुचिन्तन के बिना कि आरोपों में से किसी को भी सिद्ध नहीं किया जा सका था, अभिलेख पर उपलब्ध किसी भी सामग्री के बिना समस्त अपीलार्थीगण को दोषसिद्ध किया। अभियोजन का विनिर्दिष्ट मामला था कि अपीलार्थी विरंची महता ने चाकू द्वारा सूचक के दाएँ हाथ पर उपहति कारित किया था और कि सूचक का उपचार चंदनकियारी अस्पताल में किया गया था जहाँ से उसे बेहतर उपचार के लिए चास रेफरल अस्पताल भेजा गया था किन्तु न तो कोई चिकित्सीय साक्ष्य अथवा डॉक्टर, जिसने सूचक की उपहतियों का उपचार किया, को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन आरोप के समर्थन में अभियोजन की ओर से पेश किया जा सका था कि सूचक को गोली मारने, छुरा भोंकने या काटने के किसी उपकरण से वास्तव में कोई उपहति नहीं पहुँचा था जिसे अपराध के हथियार के तौर पर उपयोग किया जाता है ताकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 324 के अधीन अपराध आकृष्ट हो सके। जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 148 जो घातक हथियार से लैस होकर दंगा के बारे में विचार करता है, के अधीन अपराध का संबंध है, इसका पठन इस प्रकार है :-

> *''जो कोई घातक आयुद्ध से, या किसी ऐसी चीज से, जिससे आक्रामक आयुद्ध के रूप में उपयोग किए जाने पर मृत्यु कारित होना सम्भाव्य हो, सज्जित होते हुए बल्वा करने का दोषी होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा।''*

6. वर्तमान मामले में, अभियोजन यह सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा कि सूचक ने किसी घातक हथियार द्वारा उपहतियाँ प्राप्त किया था। लाठी घातक हथियार की कोटि में नहीं आता है, किन्तु यदि इससे बारबार मस्तक पर प्रहार किया जाए तो यह घातक हो सकता है। किन्तु वर्तमान मामले में

कोई अभिकथन नहीं है कि मस्तक सहित सूचक के किसी अन्य महत्वपूर्ण अंग पर लाठी का वार किया गया था और इस प्रकार अभियोजन अपीलार्थीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन आरोप सिद्ध करने में विफल रहा।

7. वर्तमान मामले में अभियोजन की ओर से न तो अन्वेषण अधिकारी और न ही डॉक्टर को प्रस्तुत और परीक्षित किया जा सका था और इस प्रकार घटनास्थल का दौरा करने के बाद आई॰ ओ॰ के वस्तुपरक निष्कर्ष को अभिलेख पर नहीं लाया जा सका था और इसलिए अपने लिखित रिपोर्ट में सूचक द्वारा प्रस्तुत घटना के तरीका को संपुष्ट नहीं किया जा सका था जो विश्वास उत्पन्न करता। प्राथमिकी दर्ज करने का समय दिनांक 14.12.1995 को दोपहर 1.50 बजे दिया गया है। सूचक ने स्पष्टत: कथन किया कि उसके भाई ने पुलिस थाना में बयान दिया था जबकि उसका बयान उसी दिन सांय लगभग 7 बजे पुलिस द्वारा दर्ज किया गया था। जब वह अस्पताल से लौटा था। अत: न्यायालय के पास यह विश्वास करने का कारण था कि लिखित रिपोर्ट जिसे दिनांक 14.12.1995 को दोपहर लगभग 1.50 बजे पुलिस थाना के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, सूचक का बयान नहीं था। अपने प्रति-परीक्षण में सूचक ने स्पष्टत: स्वीकार किया कि उसको छोड़कर घटना का कोई अन्य चश्मदीद गवाह नहीं था और उसने घटना के बारे में अपने पुत्र नीतू महथा उर्फ निताई महथा (अ॰ सा॰ 1) और अपने भाई (अ-परीक्षित) को बताया था। अपीलार्थीगण की ओर से दिए गए बयान में पक्षगण गोत्रज थे, हिन्दु विधि के मीताक्षरा स्कूल से मार्गदर्शित थे, सहदायिक संपत्ति में उन सबका हिस्सा था और स्वीकृत भूमि विवाद विगत कई वर्षों से पक्षगण के बीच चल रहा था। मैं अभिलेख से पाता हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए चन्दनकियारी पी॰ एस॰ केस सं॰ 115 वर्ष 1995 को उद्भूत करता सूचक एवं एक अन्य के विरुद्ध अपीलार्थी विरंची महथा द्वारा संस्थापित मामला समय का पहला बिन्दु था जबकि सूचक अ॰ सा॰ 2 द्वारा संस्थापित वर्तमान मामला चन्दनकियारी पी॰ एस॰ केस सं॰ 116 वर्ष 1995 को उद्भूत करता प्रति मामला था और मैं पाता हूँ और अभिनिर्धारित करता हूँ कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा।

8. तथ्यों एवं परिस्थितियों में, अपीलार्थीगण की सह-अपराधिता के प्रति युक्तियुक्त संदेह सृजित होता है और अभियोजन अपने बोझ का निर्वाह करने में विफल रहा। अत: यह सुरक्षित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि घटना अभियोजन द्वारा प्रस्तुत तरीके से नहीं हुई थी। उक्त चर्चा की दृष्टि में उनको संदेह का लाभ देते हुए अपीलार्थीगण विरंची महथा, दुर्गा प्रसाद महथा, आशीष कुमार उर्फ आशीष कुमार, संजय कुमार महथा, नटवर महथा उर्फ लटन महथा और विद्यासागर महथा को चन्दनकियारी पी॰ एस॰ केस सं॰ 116 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ सं॰ 1525 वर्ष 1995 के तत्सम, से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 143 वर्ष 1996 में दोषमुक्त किया जाता है। अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰-III, बोकारो द्वारा दर्ज उनकी दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश को अपास्त किया जाता है। उनके जमानत पत्रों को उन्मोचित किया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

लक्षेश्वर प्रसाद दत्ता

बनाम

भारत संचार निगम लिमिटेड एवं अन्य

W.P. (S) No. 3964 of 2009. Decided on 16th December, 2010.

सेवा विधि–वेतन–एफ॰ आर॰ 22 के अधीन जी॰ ओ॰ आई॰ (29) के आधार पर संगणना करते हुए आई॰ डी॰ ए॰ वेतनमान में वेतन के नियतिकरण को चुनौती–निवेदन यह है कि एफ॰ आर॰ 22 उन उम्मीदवारों से संबंधित है जिन्हें भारत सरकार द्वारा चयनित किए जाने के बाद प्रत्यक्षतः नियुक्त किया गया है जबकि याची बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में पदग्रहण करते समय मूल रूप से भर्ती किया गया व्यक्ति नहीं था–ये समस्त विषमताएँ ताथ्यिक संगणना के साथ-साथ नियमों की प्रयोज्यता का प्रश्न अपेक्षित करती है–नए निर्णय के लिए मामला संबंधित प्राधिकारी को वापस भेजा गया–अंतिम आदेश पारित किए जाने तक राशि की वसूली को प्रास्थगित रखा जाए। (पैराएँ 5 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Sujit Narayan Prasad, For the Petitioner; Mr. M. Khan, Mr. Faiz-ur-Rahman, For the Respondents (BSNL).

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुजीत नारायण प्रसाद और भारत संचार निगम लिमिटेड की ओर से एम॰ खान को सुना गया।

2. याची डी॰ आर॰ 22 के अधीन जी॰ ओ॰ आई॰ (29) के आधार पर संगणित की गयी आई॰ डी॰ ए॰ वेतनमान में अपने वेतन के नियतिकरण के कारण व्यथित है। उक्त संगणना का परिणाम उसके मासिक वेतन के घटाए जाने में हुआ है। प्रत्यर्थी सं॰ 2 के हस्ताक्षर के अधीन दिनांक 4 मार्च, 2008 को एक सामान्य आदेश जारी किया गया था जिसके द्वारा बाहरी उम्मीदवारों, जिन्होंने अन्य विभागों से बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में कनीय लेखा अधिकारी के रूप में पदग्रहण किया था, की प्रत्यक्ष भर्त्ती कोटा के विरुद्ध नए उम्मीदवार के रूप में माना गया था। जैसा मौलिक नियमों में प्रावधान किया गया है। प्रत्यर्थी सं॰ 5 के हस्ताक्षर के अधीन दिनांक 12 अगस्त, 2009 को एक अन्य आदेश पारित किया गया था और 9,850-250-14,600 रुपयों से 6,500-200-10,500 रुपयों के वेतनमान में घटाते हुए याची का वेतनमान पुनःनियत किया गया था। याची ने अपने वेतनमान अर्थात् 9,850-250-14,600 रुपयों के वेतनमान, जो वह प्रत्यर्थीगण की सेवाओं में लिए जाते समय प्राप्त करता, के लिए भी प्रार्थना की है।

3. याची के अधिवक्ता ने कार्यालय आदेश, विज्ञापन, आदि यह प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया है कि परिशिष्ट-1 के तहत नियुक्ति का प्रस्ताव था। अन्य विभागों से उम्मीदवारों को बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ पत्र सं॰ 4-85/2003 एस॰ ई॰ ए॰-बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ दिनांक 5 नवम्बर, 2004 में उल्लिखित निबंधनों एवं शर्तों में आई॰ डी॰ ए॰ वेतनमान 9,850-250-14,600 रुपयों में बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में जे॰ ए॰ ओ॰ के पद को ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया गया था।

4. नियुक्ति के पूर्वोक्त प्रस्ताव के अनुसरण में, याची ने अपना त्यागपत्र दिया जिसे चीफ पोस्टमास्टर जेनरल, बिहार सर्किल, पटना द्वारा दिनांक 11.2.2005 के आदेश के तहत स्वीकार किया गया था। वह याची का पूर्व नियुक्ति प्राधिकारी था। दिनांक 8.2.2005 के संसूचना पत्र के मुताबिक भारत सरकार के उपक्रम बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में उसके स्थायी आमेलन पर यह त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया था। समय-समय पर संशोधित सी॰ सी॰ एस॰ पेंशन नियमावली, 1972 के परिशिष्ट-2 में निबंधनों का विवरण दिया गया था। तीन अन्य के साथ याची का नाम, क्रमांक 121 पर आया था। कोई विवाद नहीं था चूँकि याची ने पुनरीक्षित वेतनमान में और अपनी नियुक्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुकूल वेतन प्राप्त किया था। विवाद केवल तब उद्‌भूत हुआ जब प्रत्यर्थीगण ने याची के ध्यान में यह लाते हुए कि गलत संगणना की गयी थी और याची को 3 लाख रुपये का अधिक भुगतान किया गया था, दिनांक 12.8.2009 को एक पत्र जारी किया था।

5. पूर्वोक्त गलत संगणना एफ॰ आर॰ 22 की व्याख्या के आधार पर की गयी थी जो स्पष्टतः याची के मामले पर प्रयोज्य नहीं है। निवेदन किया गया है कि एफ॰ आर॰ 22 उन उम्मीदवारों से संबंधित है

जिन्हें भारत सरकार द्वारा चयनित किए जाने के बाद प्रत्यक्षत: नियुक्त किया गया था जबकि बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में पदग्रहण करते समय याची मूल रूप से नियुक्त व्यक्ति नहीं था। वह पहले ही दूरसंचार विभाग में लंबे समय तक सेवा दे चुका था और दिसम्बर, 2000 में ली गयी परीक्षा जिसमें उसे कनीय लेखा अधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित घोषित किया गया था जिसमें उसका नाम क्रमांक 26 पर आया था, में उपस्थित होने के बाद बाहरी उम्मीदवारों को नियुक्ति देने के लिए दिनांक 24.1.2003 को बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ द्वारा प्रस्ताव किया गया था जो भारत सरकार की नियमावली के अनुरुप अपने-अपने कैडर में उनके त्यागपत्र देने के अधीनस्थ था।

6. याची को दिनांक 18 जनवरी, 2000 को 9,850-250-14,600 रुपयों के वेतनमान में नियुक्ति आदेश जारी किया गया था जैसा प्रस्ताव सं॰ 4-85/2003—एस॰ ई॰ ए॰ बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ दिनांक 5.11.2007 में उल्लिखित है। याची के अधिवक्ता ने प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई का गंभीरतापूर्वक प्रतिवाद किया है और प्राख्यान किया है कि याची को उसकी किसी गलती के बिना गंभीर हानि पहुँचायी गयी है। बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ ने सुनवाई का अवसर दिए बिना एकपक्षीय रूप से अपना दृष्टिकोण बदल लिया है।

7. बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है किन्तु, असंदिग्ध रूप से सहमत हुए कि याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

8. इस दृष्टिकोण में मेरा सुदृढ़ मत है कि ये समस्त विषमताएँ ताथ्यिक संगणना और नियमों की प्रयोज्यता के प्रश्न आदि की अपेक्षा करती है। अत: मामला संबंधित प्राधिकारी को वापस भेजा जाए जो याची को नोटिस जारी करेगा और उसकी समुचित सुनवाई करने के बाद यह विचार में लेते हुए कि वह एक नयी नियुक्ति नहीं है और बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ द्वारा आमेलित किए जाते समय पर अपने मूल विभाग से त्याग पत्र देने की अपेक्षा उससे की गयी थी, विधि के अनुरूप मामले को नए सिरे से विनिश्चित करेगा। पत्र सं॰ 4-85/2003 एस॰ ई॰ ए॰ बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में निबंधनों और शर्तों का खंड (xi) निम्नलिखित स्पष्टत: कथन करता है:

> *"(xi) परीवीक्षा पर जे॰ ए॰ ओ॰ के रूप में नियुक्त किए जाने पर प्रशिक्षण के बेसिक इंडक्शन पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने पर बाहरी उम्मीदवारों को आई॰ डी॰ ए॰ वेतनमान 9,850-250-14,600 रुपयों (बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में 6,500-200-10,500 रुपयों के सी॰ डी॰ ए॰ वेतनमान के समतुल्य) में स्थापित किया जाएगा। उनके मूल विभाग में उनके अधिष्ठायी ग्रेड की तुलना में वेतन सुरक्षा बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में प्रावधानित की जाएगी किन्तु प्रतिनियुक्ति के आधार पर डी॰ ओ॰ टी॰ में अथवा बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ में दी गयी उनकी पूर्व सेवा को वरीयता सहित किसी उद्देश्य के लिए गणना नहीं किया जाएगा।''*

9. अत: मेरा सुदृढ़ दृष्टिकोण यह है कि याची को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए और उसकी आपत्तियों और विषमता जो बाद के चरण पर उत्पन्न हुई है जिसके द्वारा याची को उसको हानि कारित करते हुए स्थिति का सामना अचानक करना पड़ रहा है, को भी विचार में लेने के बाद नए सिरे से निर्णय करना अपेक्षित है।

10. (पुनरीक्षित) नियुक्ति पर आई॰ डी॰ ए॰ वेतनमान में वेतन के नियतिकरण से संबंधित बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ द्वारा जारी दिनांक 12.8.2009 का आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-14) एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। बी॰ एस॰ एन॰ एल॰ की ओर से भुगतान की गयी तथा कथित राशि आधिक्य की वसूली को तब तक प्रास्थगित रखा जाएगा जब तक समस्त पहलूओं जिन पर यहाँ ऊपर चर्चा की गयी है और याची द्वारा उठायी गयी आपत्तियों को विचार में लेने के बाद अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाता है।

पूर्वोक्त निर्देशों के अनुसार, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

भुनेश्वर यादव एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal No. 231 of 2001. Decided on 10th January, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 28 वर्ष 1999 में श्री महेश प्रसाद सिन्हा, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, द्वितीय, तेनूघाट, बेरमों द्वारा पारित दिनांक 8.6.2001 के निर्णय और दिनांक 12.6.2001 के दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/149, 148, 323 एवं 324—हत्या–सामान्य लक्ष्य–आजीवन कारावास–खेत में नाला बनाने पर विवाद–विधि के अधीन आवश्यक नहीं है कि विधि विरुद्ध सामान्य लक्ष्य के साथ विधि विरुद्ध जमाव के समस्त मामलों में इसे कार्रवाई में परिणत होना ही चाहिए अथवा सफल होना ही चाहिए–जमाव जो विधि विरुद्ध नहीं था जब जमाव किया गया था बाद में विधि विरुद्ध बन सकता है–केवल एक अपीलार्थी को मृत्यु कारित करने के लिए उत्तरदायी पाया गया था–गवाहों में से किसी ने अन्य अपीलार्थीगण के बारे में कुछ भी नहीं कहा कि उन्होंने वस्तुतः मृतक पर प्रहार किया था अथवा मृतक की हत्या करने में कोई कृत्य किया था–केवल एक अपीलार्थी को दोषी पाया गया–उसके ऊपर अधिरोपित आजीवन कारावास संपुष्ट किया गया–अन्य अपीलार्थीगण को धारा 302/149 के अधीन आरोप से दोषमुक्त किया गया–अपील अंशत अनुज्ञात। (पैराएँ 10 से 15)

निर्णयज विधि.–(1977)1 SCC 733; (2008)16 SCC 529; (2009)10 SCC 773 : **2010(1) JLJ & BLJ 134 (SC)**—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the Appellants; Mr. T. N. Verma, A.P.P., For the Respondent.

सुशील हरकौली, न्यायमूर्ति.–हमने अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुना है।

2. आक्षेपित निर्णय द्वारा नौ अपीलार्थीगण, जो तीन महिलाओं को सम्मिलित करते हैं, को धारा 302/149 के अधीन जुर्माना के आज्ञापक दंडादेश के बिना आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध किया गया है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 148/323/324 के अधीन छह माह का कठोर कारावास दिया गया है।

3. अभियोजन मामला, जैसा सरकारी अस्पताल, पेतरवार, जिला बोकारो में दिनांक 27.7.1998 को सांय 7 बजे दर्ज प्राथमिकी में बताया गया है, यह है कि सूचक अर्थात् मोहन महतो, उसकी पत्नी बिन्दा देवी, उसका भाई भुनेश्वर यादव उर्फ झूपर महतो और दो मजदूर, अर्थात, कुन्जा सिंह एवं अंडू करमाली अपने खेत में काम कर रहे थे। दिनांक 27.7.1998 को सायं लगभग 4 बजे अपीलार्थी कंचन यादव और उसका सह-भ्राता (जिसे प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है) सूचक के खेत में आए और खेत में नाला बनाने लगे जिस पर सूचक ने आपत्ति की जिसका परिणाम दोनों पक्षों के बीच गाली-गलौज में हुआ। इसके बाद अभियुक्त कंचन यादव और उसका भ्राता गाँव चले गए जहाँ से वे एक घंटा बाद सायं लगभग 5 बजे अन्य अपीलार्थीगण के साथ हथियारों से लैस होकर वहाँ आए। उनमें से, भुनेश्वर यादव भाला और कोरी लिए था, बिनोद यादव और हीरालाल क्रमशः तलवार और टांगी लिए आए और कंचन यादव और उसका सह-भ्राता क्रमशः टांगी और कोरी लिए हुए थे।

4. प्राथमिकी के अनुसार ये समस्त व्यक्ति घटनास्थल पर पहुँचने के तुरन्त बाद सूचक के पक्ष के लोगों को गाली देने लगे और पीछा करने लगे जिस पर वहाँ काम कर रहे दोनों मजदूर भाग गए। मृतक भुनेश्वर यादव उर्फ झूपर महतो पर भुनेश्वर यादव (अभियुक्त) द्वारा कोरी और भाला से प्रहार किया गया था। जिसके चलते मृतक गिर गया। अभियुक्तगण कंचन, फगुनी और हीरालाल यादव ने सूचक पर प्रहार किया और तीनों महिलाओं ने सूचक की पत्नी पर प्रहार किया। कंचन यादव का सह-भ्राता शेष अभियुक्तगण को उकसा रहा था। अभियुक्त भुनेश्वर यादव ने मृतक का गला दबाया जिसके चलते घटना स्थल पर मृतक की मृत्यु हो गयी। अभियुक्त बिनोद को भी सूचक की पत्नी के दाँए कोहनी के नीचे तलवार से प्रहार करता हुआ कहा गया है। तत्पश्चात, अभियुक्तगण भाग गए।

5. मामले में अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया था। दो घायल गवाहों को अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 5 के रूप में परीक्षित किया गया है। अ॰ सा॰ 1 सूचक और अ॰ सा॰ 5 सूचक की पत्नी है। अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर है जिन्होंने अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 5 की उपहतियों का परीक्षण किया था। अ॰ सा॰ 7 वह डॉक्टर हैं जिन्होंने पोस्टमार्टम परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 दोनों मजदूर है जो अभिकथित रूप से सूचक, उसकी पत्नी और मृतक के साथ खेत में काम कर रहे थे और वे भाग गए थे जब अभियुक्तगण समूह में घटनास्थल पर आए थे। अ॰ सा॰ 4 मृत्यु समीक्षा का गवाह है और अ॰ सा॰ 8 ने प्राथमिकी, आदि को सिद्ध किया है।

6. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान अ॰ सा॰ 1 अर्थात् सूचक के बयान की ओर आकृष्ट किया है जिसने अपने प्रति-परीक्षण के पैराग्राफों 14 और 15 में कथन किया है कि घटना के बाद वह पुलिस थाना गया था जहाँ से उसे अस्पताल भेजा गया था। अ॰ सा॰ 1 के उक्त बयान के अनुसार पुलिस थाना में उसका बयान दर्ज किया गया था और उसका हस्ताक्षर भी प्राप्त किया गया था। अभियुक्तगण के नामों को पूछा गया था और उसके बाद उसे अस्पताल भेजा गया था जहाँ उसका फर्दबयान दर्ज किया गया था जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी और इस प्रकार यह तर्क किया गया था कि अस्पताल में दर्ज फर्दबयान को प्राथमिकी नहीं माना जा सकता है जो ऊपर कथित तथ्यों की पृष्ठभूमि में अत्यन्त संदेहास्पद बन गया है।

7. कठोरतापूर्वक कथन करते हुए, यह तर्क आकर्षक होता किन्तु झारखंड राज्य में की गई अन्वेषण की प्रकृति पर विचार करते हुए हम इस तथ्य पर विश्वास करने के इच्छुक अधिक होंगे कि घटना सायं 5 बजे हुई थी और प्राथमिकी सायं 7 बजे अस्पताल में दर्ज की गयी थी और, इसलिए, अधिक समय नहीं बीता था जो इस निष्कर्ष की संभावना की ओर ले जाएगा कि प्राथमिकी को काफी सोच-विचार कर दर्ज किया गया था। इन परिस्थितियों में, हम प्राथमिकी को युक्तियुक्त और तत्पर मानने के इच्छुक हैं।

8. विवाद की प्रकृति और तरीके की पृष्ठभूमि को ध्यान में लेते हुए, उपहतियों जिन्हें मृतक और दो घायल गवाहों को कारित किया गया था, के आधार पर कुछ तर्क उठाए गए हैं, किन्तु ये महत्वहीन विसंगति है। समय अंतराल और समस्त गवाहों की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए इन लघु अंतरों को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है। मूल तथ्य बना रहता है कि प्रहार किया गया है, अभियुक्तगण पीड़ितों की संख्या से अधिक थे, अभियुक्तगण के शरीर पर कोई उपहति नहीं है और दूसरी ओर, सूचक के पक्ष में तीन व्यक्ति घायल हुए हैं और उपहतियाँ अनेक है। घटना जुलाई माह में सायं लगभग 5 बजे हुई थी अर्थात् दिनदहाड़े। घटना के समय को अस्पताल में सायं 7 बजे दर्ज प्राथमिकी द्वारा संपुष्ट किया गया है। दो घायल गवाह हैं जिनकी घटनास्थल पर उपस्थिति स्वाभाविक प्रतीत होती है। उपहतियों की

प्रकृति को स्व-कारित अथवा निर्मित नहीं कहा जा सकता था। दोनों घायल गवाह घटना के बारे में बताने में संगत है। लड़ाई के चरण तक घटना का अंश जो दूसरी बार सायं 5 बजे शुरू हुई को दोनों मजदूरों अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 द्वारा संपुष्ट किया गया है।

9. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि की गयी हत्या को अभिकथित विधि विरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करना नहीं कहा जा सकता था, बल्कि एक सीधा प्रस्थान था जिसमें विधि विरुद्ध जमाव के केवल एक व्यक्ति ने उसपर प्रहार करने के बाद मृतक का गला घोंट दिया था। उनके अनुसार, जमाव का सामान्य उद्देश्य दांडिक बल, यदि आवश्यक हो, का प्रयोग करके भी जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना था।

उन्होंने यह तर्क भी किया है कि हत्या ऐसा अपराध नहीं था जो विधि विरुद्ध जमाव का कोई सदस्य जानता था कि ऐसा किए जाने की संभावना है और इसलिए वर्तमान मामले में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के साथ भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 149 को लागू नहीं किया जा सकता है। उन्होंने निवेदन किया है कि यदि धारा 149 भा॰ दं॰ सं॰ प्रयोजनीय है भी, यह केवल भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 323 एवं 324 के संबंध में प्रयोजनीय हो सकती है। हमने निवेदनों पर विचार किया है।

10. किसी व्यक्ति, जो विधि विरुद्ध जमाव का सदस्य है, के विरुद्ध जो सिद्ध किया जाना है, यह है कि वह जमाव को गठित करने वाले व्यक्तियों में से एक था और उसका जमाव के अन्य सदस्यों के साथ सामान्य उद्देश्य था जैसा भारतीय दंड संहिता की धारा 141 में परिभाषित किया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 142 प्रावधानित करती है कि कोई भी इस तथ्य, जो किसी जमाव को विधि विरुद्ध जमाव बनाता है, के प्रति अवगत होने पर आशयपूर्वक उस जमाव का हिस्सा बनता है और बना रहता है तो उसे विधि विरुद्ध जमाव का सदस्य कहा जा सकता है। अत: विधि के अधीन यह आवश्यक नहीं है कि विधि विरुद्ध सामान्य उद्देश्य के साथ विधि विरुद्ध जमाव के समस्त मामलों में इसे कार्रवाई में परिणत होना ही होगा अथवा सफल होना ही होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के स्पष्टीकरण के अधीन कोई जमाव, जो विधि विरुद्ध नहीं था जब इसका जमाव किया गया था, बाद में विधि विरुद्ध बन जा सकता है।

उक्त प्रतिपादना को दृष्टि में रखते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मूसा खान बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1997)1 SCC 733** के मामले में प्रतिपादना अधिकथित किया है जो निम्नलिखित है:

> *"5. .....अतः न्यायालय यह उपधारित करने का हकदार नहीं है कि कोई और प्रत्येक व्यक्ति जिसे किसी समय पर दंगाई भीड़ के निकट उपस्थित अथवा इसकी गतिविधियों के दौरान किसी चरण पर इसमें हिस्सा लेते अथवा छोड़ते हुए सिद्ध किया गया है, इसके द्वारा आरंभ से अंत तक किए गए प्रत्येक कृत्य का दोषी है अथवा कि ऐसी भीड़ के प्रत्येक सदस्य ने आरंभ से ही गैर-कानूनी गतिविधियों, जिसमें जमाव बाद में निर्मित होगा, की प्रकृति को पूर्वानुमानित अथवा अनुध्यात किया होगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक मामले में यह सिद्ध करना ही होगा कि संबंधित व्यक्ति किसी चरण पर न केवल विधि विरुद्ध जमाव का सदस्य था बल्कि समस्त निर्णायक चरणों पर सदस्य था और जमाव के सामान्य उद्देश्य में समस्त चरणों पर भाग लिया।*

पुन: माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मारानाडु बनाम राज्य, (2008)16 SCC 529 : 2009(1) JLJ & BLJ 4(SC)** के मामले में विधि विरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के विनिश्चिय के लिए निम्नलिखित विधिक अवस्था को उच्चारित किया:-

> *''...विधि विरूद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के अवधारण हेतु विधि विरूद्ध जमाव के प्रत्येक सदस्यों का आक्रमण के समय, इसके पूर्व एवं इसके पश्चात् आचरण, अपराध का प्रयोजन, कुछ संगत विचारण है। घटना के किसी प्रक्रम पर विधि विरूद्ध*

जमाव का सामान्य आशय क्या था, यह अनिवार्यतः तथ्य का एक प्रश्न है, जिसे जमाव की प्रकृति सदस्यों द्वारा ले जाया जा रहा हथियार एवं घटना-स्थल पर या इसके पास सदस्यों के बर्ताव को ध्यान में रखते हुए अवधारित किया जाना है। विधि में यह अनिवार्य नहीं है कि किसी विधि विरूद्ध सामान्य उद्देश्य वाले विधि विरूद्ध जमाव के प्रत्येक मामले में यह कार्रवाई में परिवर्तित या सपफल होगा। धारा 141 के स्पष्टीकरण में, कोई जमाव, जो तब विधि विरूद्ध नहीं था जब इसका जमाव हुआ था, बाद में विधिविरूद्ध हो सकता है। यह अनिवार्य नहीं है कि वह आशय या प्रयोजन, जो किसी जमाव को विधि विरूद्ध जमाव धारित करने के लिए अनिवार्य है, प्रारंभ से ही विद्यमान होता है। किसी विधि विरूद्ध जमाव के बनने का समय महत्वपूर्ण नहीं है। कोई जमाव, जो अपने प्रारंभ या इसके कुछ समय पश्चात् विधिसम्मत है, वह बाद में विधि विरूद्ध हो सकता है। अन्य शब्दों में, यह घटना-स्थल पर साथ-साथ इसके अनुक्रम में विकसित हो सकता है।''

एक समरुप प्रतिपादन **पांडूरंग चंद्रकांत महात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009)10 SCC 733 : 2010(1) BLJ & JLJ 134 (SC)** के मामले में हाल-फिलहाल में दोहरायी गयी थी जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:

''यह सुविदित है कि विधि विरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के विनिश्चय के लिए आक्रमण के पहले और समय पर विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों में से प्रत्येक का आचरण प्रासंगिक अनुचिन्तन है। घटना के किसी विशेष चरण पर विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य तथ्य का प्रश्न है और इसे जमाव की प्रकृति, सदस्यों द्वारा लिए गए हथियारों और घटना स्थल पर अथवा इसके निकट सदस्यों के आचरण को दृष्टि में रखते हुए विनिश्चित करना होगा।''

11. उक्त प्रतिपादना को ध्यान में रखते हुए यह विचार करने की आवश्यकता है कि क्या समस्त व्यक्तियों जिन्हें भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 149 की मदद से भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था, का हत्या करने का सामान्य उद्देश्य था विशेषत: जब यह अभियोजन का मामला है कि अपीलार्थी सं॰ 1 भुनेश्वर यादव ने हथियार, जिसे वह पकड़े था, से मृतक पर प्रहार किया जो घातक सिद्ध हुआ। स्पष्ट दृश्य प्राप्त करने के लिए हम अभियोजन का मामला दोहरा सकते हैं जब सूचक (अ॰ सा॰ 1), मृतक और सूचक की पत्नी बिन्दा देवी (अ॰ सा॰ 5) अपने खेत में काम कर रहे थे, अपीलार्थी सं॰ 2 कंचन यादव और अपीलार्थी सं॰ 9 फुटुक चन्द यादव वहाँ आए और खेत पर नाला बनाने लगे ताकि उनके खेत को पानी मिल सके जिस पर आपत्ति की गयी थी जिसके परिणामस्वरुप गाली-गलौज हुआ। तत्पश्चात्, दोनों अपीलार्थीगण चले गए और एक घंटा बाद अन्य अपीलार्थीगण के साथ वापस आए जो विभिन्न हथियारों से लैस थे। तत्पश्चात्, अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य के मुताबिक अपीलार्थी भुनेश्वर यादव, जो कुदाल और भाला लिए था, ने मृतक के मस्तक पर कुदाल से प्रहार किया। जब वह गिर गया, अपीलार्थी भुनेश्वर यादव ने उसका गला दबा दिया जिसके परिणामस्वरुप उसकी मृत्यु हो गयी। ऐसा ही परिसाक्ष्य अ॰ सा॰ 5 एक घायल गवाह है। पूर्वोक्त गवाहों (अ॰ सा॰ 1 और 5) में से किसी ने अन्य अपीलार्थीगण के बारे में कुछ नहीं कहा है कि उन्होंने मृतक पर प्रहार किया अथवा मृतक की हत्या करने में कोई कृत्य किया, यद्यपि अभियोजन के अनुसार, समस्त अभियुक्तगण विभिन्न हथियारों से लैस होकर घटनास्थल पर आए किन्तु मृतक की हत्या करने में शेष अभियुक्तगण की ओर से किसी प्रत्यक्ष कृत्य की अनुपस्थिति में यह तथ्य शायद ही सुझाता है कि उनका हत्या करने का सामान्य उद्देश्य था बल्कि परिस्थितियाँ सुझाती हैं कि अपीलार्थीगण विभिन्न हथियारों से लैस होकर इसलिए आए ताकि वे उनके खेत में नाला बनाने के लिए उनको राजी करने के लिए अभियोजन को मजबूर कर सके।

अत: यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उसकी हत्या करने के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने हेतु मृतक की हत्या नहीं की गयी थी।

12. किन्तु अ॰ सा॰ 1 और 5 के साक्ष्य से वस्तुत: प्रकट होता है कि अपीलार्थी सं॰ 1 भुनेश्वर यादव मृतक की हत्या कारित करने का जिम्मेदार है। अ॰ सा॰ 1 और 5 के अनुसार, अपीलार्थी भुनेश्वर यादव अन्य अपीलार्थीगण के साथ कुदाल और भाला लिए घटनास्थल पर आया किन्तु केवल उसने मृतक के मस्तक पर कुदाल से प्रहार किया और जब मृतक गिर गया अपीलार्थी भुनेश्वर यादव ने उसका गला दबा दिया और यह तथ्य डॉक्टर अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य से संपुष्ट होता है जिन्होंने शव परीक्षा के क्रम में 2" x 1" x मस्तिष्क तक गहरा आयाम वाला खोपड़ी के बाएँ हिस्से पर विदीर्ण जख्म पाया। साथ ही साथ गर्दन भी सूजी हुई थी। इसके अतिरिक्त छाती (इंटर कोस्टल स्पेस) के ऊपर एक उपहति पायी गयी थी जो डॉक्टर के अनुसार, कुदाल अथवा तलवार द्वारा कारित की जा सकती थी। यद्यपि अभियोजन मौन है कि उपहति कैसे कारित की गयी थी, किन्तु यह अभियोजन मामले को विरोधात्मक रूप से प्रभावित नहीं करता है क्योंकि यह बिल्कुल संभव है कि अ॰ सा॰ 1 और 5 अभियुक्त को उस उपहति को कारित करते नहीं देख सकते थे क्योंकि अनेक व्यक्ति वहाँ पर थे और साथ ही साथ अन्य अभियुक्तगण द्वारा अ॰ सा॰ 1 पर हमला किया गया था जब उसने मृतक को बचाने की कोशिश की। अत: कोई संदेह नहीं बना रहता है कि अपीलार्थी भुनेश्वर यादव ने ही मृतक को उपहति कारित किया जो घातक सिद्ध हुआ और इसलिए हम अपीलार्थी भुनेश्वर यादव को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाते हैं।

तद्नुसार, अपीलार्थी भुनेश्वर यादव को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 के बजाय धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है। किन्तु उसके विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित आजीवन कारावास का दंडादेश अभिपुष्ट किया जाता है। जहाँ तक शेष अपीलार्थीगण का संबंध है, उन्हें धारा 302/149 के अधीन आरोप से दोषमुक्त किया जाता है।

13. अभियोजन मामले के अन्य पहलू पर आते हुए जहाँ तक यह भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 148, 323 और 324 के अधीन अन्य अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि से संबंधित है, हम वस्तुत: पाते हैं कि अ॰ सा॰ 1 ने अपने साक्ष्य में अभिसाक्ष्य दिया कि नौ अभियुक्तगण में से छह अभियुक्तगण अर्थात् भुनेश्वर यादव, कंचन यादव, फगू यादव, हीरालाल यादव, बिनोद यादव और फुटुकचन्द यादव विभिन्न हथियारों से लैस होकर आए और उनमें से कंचन यादव ने उसके मस्तक के दोनों हिस्सों पर टांगी से प्रहार किया जबकि अपीलार्थी फगू यादव ने उसकी बांयी अगली बाँह पर टांगी से प्रहार किया जो तथ्य न केवल अ॰ सा॰ 5 के साक्ष्य से बल्कि डॉक्टर अ॰ सा॰ 6, जिन्होंने खोपड़ी के दोनों हिस्सों पर विदीर्ण जख्म और बांयी अगली बाँह पर अन्य उपहतियों के अतिरिक्त विदीर्ण जख्मों को भी पाया, के साक्ष्य से भी संपुष्ट होता है।

14. पूर्वोक्त उपहतियों के अतिरिक्त, डॉक्टर (अ॰ सा॰ 5) के अनुसार अ॰ सा॰ 1 ने कंधे पर उपहति और पीठ पर अनेक खरोचों को प्राप्त किया जो निश्चय ही हथियारों से लैस अभियुक्तगण द्वारा कारित की गयी होंगी किन्तु अ॰ सा॰ 1 इस बिन्दु पर मौन प्रतीत होता है कि किसने उन उपहतियों को कारित किया यद्यपि अ॰ सा॰ 5 ने कथन किया है कि अभियुक्तगण कंचन यादव और फगू यादव के अतिरिक्त अन्य अभियुक्तगण अर्थात् हीरालाल यादव और विमल यादव ने भी अ॰ सा॰ 1 पर प्रहार किया। अन्य अभियुक्तगण द्वारा किए गए प्रत्यक्ष कृत्य पर मौन रहना शायद ही कोई अंतर बनाता है क्योंकि विधिविरुद्ध जमाव, जो व्यक्तियों की वृहत संख्या से गठित है, के प्रत्येक सदस्य द्वारा निभायी गयी भूमिका के बारे में इंगित करना बहुत मुश्किल है। इसके अतिरिक्त, हम पाते हैं कि अ॰ सा॰ 5 द्वारा प्राप्त की गयी कड़े और भोथरे हथियार से कारित दो उपहतियाँ निश्चय ही विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों में से कुछ

के द्वारा कारित की गयी होंगी जिनका सामान्य उद्देश्य उनके खेत में नाला बनाने देने के लिए उनको जबरन राजी करने के लिए अभियोजन पक्ष के सदस्यों के विरुद्ध बल प्रयोग करना था और सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में अभियुक्तगण ने अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 5 पर प्रहार किया और इस प्रकार तीनों महिला अभियुक्तगण जो किसी हथियार से लैस नहीं थी को छोड़कर समस्त अभियुक्तगण का भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 148, 323 और 324 के बजाय भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 148, 323 और 324 सह-पठित धारा 149 के अधीन दोषसिद्ध किया जा रहा है और उनके द्वारा पहले ही भुगती गयी अवधि के लिए दंडादेशित किया जाता है।

15. जहाँ तक तीनों महिला अपीलार्थीगण का संबंध है, यद्यपि वे घटनास्थल पर अन्य अभियुक्तगण के साथ आयी, किन्तु निश्चय ही ये हथियारों से लैस नहीं थी और उनको अ॰ सा॰ 1 पर प्रहार करता अभिकथित नहीं किया गया है यद्यपि उन्हें लातों-मुक्कों से अ॰ सा॰ 5 पर प्रहार करता बताया गया है किन्तु अ॰ सा॰ 5 द्वारा प्राप्त उपहतियों को डॉक्टर के अनुसार कड़े और भोथरे वस्तु द्वारा कारित बताया गया है। अत: अ॰ सा॰ 5 का विवरण चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि नहीं पाता है। इसके अतिरिक्त, यह तथ्य कि घटनास्थल पर आए थे अपीलार्थीगण खाली हाथ थे जिन्होंने किसी तरीके से अ॰ सा॰ 1 पर प्रहार करने में भाग नहीं लिया था, यह दर्शाता है कि वे विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य कभी नहीं थे और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 148, 323 और 324 के अधीन उनको दोषसिद्ध करने में विचारण न्यायालय ने अवैधता की। परिणामस्वरुप, उन्हें समस्त आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, उन्हें उनके जमानत बंध पत्रों के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

16. परिणामस्वरुप, यह अपील अंशत: अनुज्ञात की जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

रमेश चन्द्र झा

बनाम

कोल माइंस प्रोविडेन्ट फंड कमिश्नर, बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज के माध्यम से

S. A. No. 134 of 2005. Decided on 21st December, 2010.

अभिधान अपील सं॰ 29/02 में विद्वान अपर जिला न्यायाधीश-XIII, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 16.2.2005 के निर्णय एवं डिक्री के विरूद्ध।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXVII, नियम 5A सह-पठित धारा 79—भारत संघ के असंयोजन के कारण वाद खारिज किया जाना—अपीलार्थी को सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ संगठन का कर्मचारी होने के नाते सरकारी सेवक अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और वर्तमान मामले में सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 79 की कोई प्रयोज्यता नहीं है—न्यासी बोर्ड के विरुद्ध उसके द्वारा दाखिल वाद केन्द्र सरकार/भारत संघ के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण नहीं है और आदेश XXVII नियम 5 (A) के प्रावधान मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं हैं—भारत संघ के असंयोजन के कारण वाद को दोषपूर्ण अभिनिर्धारित करता अवर अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्टत: गलत है, विधि के विपरीत और असंपोषणीय है—आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त—व्यय के साथ अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 17, 21, 22, 27, 31, 32, 37, 38, 43, 44, 45 एवं 46)

निर्णयज विधि.—AIR 1999 SC 2552; AIR 2000 SC 331; (2001) 7 SCC 1; AIR 2005 SC 2677—Relied on.

अधिवक्तागण.—In person, For the Appellant; Mr. Ratnesh Kumar, For the C.M.P.F.

एन॰ एन॰ तिवारी, न्यायमूर्ति.–यह द्वितीय अपील विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्न पर स्वीकार की गयी है:

''क्या अवर अपीलीय न्यायालय ने यह विनिश्चित किए बिना कि क्या कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर भारत संघ के अधीन लोक अधिकारी है ताकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXVII, नियम 5A के प्रावधान आकृष्ट हो सकें विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को पलटने और भारत संघ के असंयोजन के कारण वाद खारिज करने में गंभीर गलती है?''

2. उक्त प्रश्न विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष की दृष्टि में उद्भूत हुआ कि कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर लोक अधिकारी है और वादी-अपीलार्थी द्वारा दाखिल वाद में भारत संघ को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXVII, नियम 5A सह-पठित धारा 79 के निबंधनानुसार पक्ष बनाया जाना ही चाहिए था। ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया था जिसे वादी (वर्तमान अपीलार्थी) के पक्ष में दिया गया था।

3. अपीलार्थी ने पहले अभिधान वाद सं॰ 78/1979 नामक अभिधान वाद दाखिल किया था जिसे इस आधार पर वापस ले लिया गया था कि कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर के लोक सेवक होने के नाते सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन नोटिस का तामील किए बिना वाद पोषणीय नहीं था।

4. तत्पश्चात्, अपीलार्थी ने सेवा से हटाए जाने का आदेश अपास्त करने के लिए और अन्य अनुतोषों के लिए प्रार्थना करते हुए सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 80 के अधीन नोटिस तामील किया और अभिधान वाद सं॰ 102/1990 दाखिल किया।

5. संक्षेप में, वादी का मामला यह था कि वह कोल माइंस भविष्य निधि संगठन, धनबाद का स्थायी कर्मचारी था। वह निम्न श्रेणी लिपिक के रूप में कार्यरत था और अपने उच्चतर अधिकारियों की पूर्ण संतुष्टतानुसार अपनी सेवाओं का निर्वहन कर रहा था। उसे उत्कृष्ट सेवा कीर्तिमान वाले कर्मचारी के रूप में प्रशंसित किया गया था। समय-समय पर उच्चतर अधिकारियों द्वारा उसे अनेक शंसा-पत्र जारी किया गया था। तत्कालीन सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ कमिश्नर (के मौखिक अनुदेश के अधीन वादी ने दिनांक 1.1.1973 को क्वार्टर सं॰ III/8 का अधिभोग प्राप्त किया था। उसके मासिक वेतन से किराया काटने के अनुरोध के साथ दिनांक 1.1.1973 का अधिभोग रिपोर्ट भी प्रस्तुत किया गया था। तत्कालीन सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ कमिश्नर द्वारा आबंटन अनुमोदित किया गया था और आबंटन कमिटि द्वारा अनुशंसित किया गया था। किन्तु वादी के बारंबार अनुरोध के बावजूद आबंटन आदेश जारी नहीं किया गया था। बाद में याची के वेतन से दिनांक 1.9.1973 से दिनांक 31.8.1975 तक 100/-रुपये प्रतिमाह की दर से दंड किराया काटा गया था। बाद में किराया बढ़ाकर 110/-रुपया प्रतिमाह कर दिया गया था। उसको उक्त क्वार्टर के अनुज्ञेय अधिभोगी के रूप में मानते हुए वेतन से उक्त किराया काटा गया था। अचानक उसको सूचित किए बिना वादी को दिनांक 1.9.1975 के प्रभाव से निलम्बन के अधीन कर दिया गया था। किन्तु इसे दिनांक 23.5.1976 को स्वप्रेरणा पर प्रतिसंहृत कर दिया गया था। वर्ष 1975 से 1978 तक की अवधि के लिए अपीलार्थी की वेतन वृद्धि को और उसके प्रोन्नति देयों को भी वापस ले लिया गया था। उसे गृह किराया भत्ता देने से भी इनकार किया गया था। आरोप के मदों के कथनों, दस्तावेजों की सूची अंतर्विष्ट करता दिनांक 17.3.1977 का मेमोरेंडम उस पर तामील किया गया था। वादी ने दिनांक 26.3.1977 को अपना स्पष्टीकरण (प्रदर्श 2) दाखिल किया। एक विभागीय जाँच कमिटि गठित की गयी थी और जाँच अधिकारी एवं प्रेजेन्टिंग अधिकारी को नियुक्त किया गया था। वादी ने प्रासंगिक दस्तावेजों की आपूर्त्ति के लिए अनुरोध किया किन्तु इनकी आपूर्त्ति उसे नहीं की गयी थी। दस्तावेजों की आपूर्त्ति का वादी का

अनुरोध इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि दस्तावेजों में से कुछ को लोकहित में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है और न ही उनके उद्धरणों को लिया जा सकता है किन्तु इन्हें भी वादी को न तो दिया गया था और न ही दर्शाया गया था। उसके स्पष्टीकरण की प्रतीक्षा किए बिना जाँच शुरू हुई। प्रेजेन्टिंग अधिकारी और चार अन्य गवाहों का परीक्षण किया गया था। अ॰ सा॰ 4 (श्री बी॰ के॰ यादव) के अतिरिक्त प्रति-परीक्षण के लिए वादी का अनुरोध जाँच अधिकारी द्वारा अस्वीकार दिया गया था। अपीलार्थी की सुनवाई का अवसर दिए जाने की प्रार्थना भी दिनांक 7.8.1978 के पत्र द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी। जाँच अधिकारी ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के घोर उल्लंघन में जाँच संचालित किया और वादी-अपीलार्थी को आरोप सं॰ I, II, III और V का दोषी अभिनिर्धारित करते हुए दिनांक 18.10.1978 को जल्दबाजी में अपनी जाँच रिपोर्ट को प्रस्तुत किया। तब अपना स्पष्टीकरण कि क्यों सेवा से हटाए जाने का दंड उस पर अधिरोपित नहीं किया जाए, प्रस्तुत करने के लिए उसको कहते हुए अपीलार्थी को दिनांक 13.11.1978 का मेमोरेंडम दिया गया था। वादी-अपीलार्थी ने दिनांक 8.12.1978 को स्पष्टीकरण दाखिल किया और अन्य बातों के साथ विहित नियमों और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरुप अपना बचाव करने के लिए समुचित अवसर देने और प्रभावकारी लिखित कथन दाखिल करने के लिए दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्त्ति किए जाने का अनुरोध किया। किन्तु उक्त जाँच कार्यवाही के क्रम में विभाग ने सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 के प्रावधानों के अधीन प्रश्नगत क्वार्टर से वादी की बेदखली के लिए संपदा अधिकारी, सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰, धनबाद के न्यायालय में केस सं॰ सी॰ पी॰ एफ॰/बेदखली/ई॰ डी॰ (1)/78 नामक बेदखली मामला अपीलार्थी के विरुद्ध संस्थापित किया। उक्त मामला भी जल्दबाजी में आगे बढ़ा और अपीलार्थी के विरुद्ध निष्कर्षित हुआ। इसी बीच विभाग ने पत्र सं॰ सी॰ पी॰ एफ॰/258 (4)/प्रशासन दिनांक 13/16.3.1979 द्वारा वादी की बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश जारी किया। वादी ने अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् अध्यक्ष, न्यासी बोर्ड, कोल माइंस भविष्य निधि संगठन के समक्ष कोल माइंस भविष्य निधि अधिनियम के प्रावधानों के अधीन विभागीय अपील दाखिल किया और बर्खास्तगी के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 80 के अनुपालन के बाद अभिधान वाद सं॰ 102/1990 भी दाखिल किया।

6. प्रतिवादी-विभाग ने लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया। अन्य बातों के साथ अभिकथित किया गया था कि वादी ने जबरन क्वार्टर का अधिभोग प्राप्त कर लिया था और अनेक पत्रों के बाद भी इसे खाली नहीं किया था। आचरण नियमावली, के अनुसार क्वार्टर का जबरन और अनधिकृत अधिभोग एक मुख्य अपराध है और ऐसे अधिभोग का जारी रहना अपराध की गंभीरता बढ़ाता है। यह तथ्य मात्र कि उसके वेतन से दंड किराया अथवा बाजार किराया वसूल किया गया था, वादी को विमुक्त नहीं करता है। उसके उक्त घोर अवचार के लिए वादी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी थी और उसे विधिपूर्वक और सही प्रकार से उसकी सेवाओं से हटाए जाने का दंड अधिनिर्णीत किया गया था। प्रतिवादी ने यह आधार भी लिया कि सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 80 के प्रावधानों का अनुपालन किए बिना पहले भी वाद दाखिल किया गया था और इस प्रकार सी॰ पी॰ सी॰ के प्रावधानों के अधीन वादी का वाद वर्जित है। यह अभिकथित किया गया था कि वाद भारत संघ को पक्षकार के रूप में असंयोजन के कारण दोषपूर्ण था। विद्वान विचारण न्यायालय ने पक्षों के उक्त अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया:

(i) क्या वाद विधितः पोषणीय है?

(ii) क्या वाद के लिए वाद हेतुक है?

(iii) क्या वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है?

(iv) क्या वाद आरोपों की त्रुटियों के कारण दोषपूर्ण है?

(v) क्या सी० पी० सी० की धारा 80 के अधीन नोटिस विधितः तामील की गयी है?

(vi) क्या वादी वाद में दावा किए गए अनुतोषों का हकदार है?

(vii) विधि के अधीन वादी किस अनुतोष अथवा किन अनुतोषों का हकदार है?

(viii) क्या वर्तमान वाद प्रतिवादी के विरुद्ध विधितः पोषणीय है?

(ix) क्या वादी के विरुद्ध समस्त विभागीय कार्यवाही नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन के कारण अकृत के रूप में दूषित हो गयी है?

(x) क्या विभागीय कार्यवाही जाँच अधिकारी द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप संचालित की गयी है?

(xi) क्या विभागीय कार्यवाही में स्वयं का बचाव करने के लिए वादी को समुचित और युक्तियुक्त अवसर दिया गया है?

(xii) क्या विभागीय कार्यवाही के निष्कर्षों के आधार पर वादी के विरुद्ध सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित बर्खास्तगी का आदेश नैसर्गिक का न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है?

(xiii) क्या वादी द्वारा दाखिल अपील पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश वादी के विरुद्ध नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है?

(xiv) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतिवादी के विरुद्ध इस वाद में दावा किए गए अनुतोष का वादी हकदार है, यदि हाँ तो किस अनुतोष का?

7. दोनों पक्षों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने समस्त साक्ष्यों पर विचार किया और तथ्यों, सामग्रियों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने के बाद अभिनिर्धारित किया कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर उल्लंघन हुआ है। पहली जाँच तात्विकत: त्रुटिपूर्ण थी तथा उस आधार पर पश्चातवर्ती आदेश भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंधनकारी था। जाँच अधिकारी को निरीक्षण के लिए भी प्रासंगिक दस्तावेजों जिसकी प्रार्थना वादी द्वारा की गयी थी, को प्रस्तुत किए बिना जाँच के साथ अग्रसर नहीं होना चाहिए था। घरेलू जाँच में स्वयं का बचाव करने का युक्तियुक्त अवसर वादी को नहीं दिया गया था। विभागीय अपीलीय प्राधिकारी ने भी वादी के आधारों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया था। अपीलीय प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र विवेक का इस्तेमाल नहीं किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि वादी कोल माइंस भविष्य निधि और बोनस योजना अधिनियम के अधीन सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ संगठन का कर्मचारी था। उक्त अधिनियम की धारा 24 (4) ने स्टाफ की भर्त्ती के लिए प्रावधानित किया और यह स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि बोर्ड द्वारा नियुक्त और निधि से भुगतान प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को सरकारी सेवक नहीं माना जाएगा। धारा 3(A) के अधीन न्यासी बोर्ड गठित किया गया है और सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ के समस्त क्रियाकलाप न्यासी बोर्ड द्वारा नियंत्रित किए जाते है और इस प्रकार सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ के कर्मचारीगण केन्द्र सरकार के कर्मचारीगण नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अन्य विवाद्यकों का उत्तर वादी के पक्ष में दिया और वाद को डिक्री किया।

8. यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि यद्यपि अभिधान वाद सं॰ 102/90 में कोल माइंस भविष्य निधि योजना के पैरा 3 के अधीन गठित न्यासी बोर्ड कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर के माध्यम से प्रतिवादी था, परन्तु न्यासी बोर्ड ने कोई अपील दाखिल नहीं किया। लेकिन कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर ने इसके लिए अनुमति लिए बिना जिला न्यायाधीश, धनबाद के न्यायालय में विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील दाखिल किया। उक्त अपील को अभिधान वाद सं॰ 29/02 के रूप में दर्ज किया गया था। उक्त अपील अंतत: अपर सत्र न्यायाधीश-XIII, धनबाद द्वारा सुनी और आक्षेपित निर्णय द्वारा निपटायी गयी थी।

9. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अपने निर्णय में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचे गए तथ्यों के निष्कर्षों के साथ सहमति जतायी और अभिनिर्धारित किया कि चूँकि वादी को स्वयं का बचाव करने का अवसर नहीं दिया गया था और उसके द्वारा मांगे गए दस्तावेजों की आपूर्त्ति उसे नहीं की गयी थी, अत: अपीलीय प्राधिकारी ने अपने विवेक का इस्तेमाल किए बिना वादी की अपील को अस्वीकार कर दिया। किन्तु, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अपील अनुज्ञात किया और विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि मामला केन्द्र सरकार से संबंधित है और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5 और धारा 79 के निबंधनानुसार भारत संघ आवश्यक पक्ष है किन्तु केंद्र सरकार को पक्ष नहीं बनाया गया है और उस आधार पर वाद विफल है।

10. वादी-प्रत्यर्थी-अपीलार्थी ने उक्त अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री का विरोध करते हुए इस द्वितीय अपील को दाखिल किया है।

11. इस द्वितीय अपील को विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के उक्त निष्कर्ष की दृष्टि में विधि के पूर्वोक्त सारभूत प्रश्न पर सुना गया है।

12. अपीलार्थी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ और निवेदन किया कि उसने न्यासी बोर्ड के विरुद्ध और न कि कोल माइंस भविष्य निधि अधिकारी के विरुद्ध वाद दाखिल किया था। निश्चय ही न्यासी बोर्ड केन्द्र सरकार का कर्मचारी नहीं है और इसलिए उक्त वाद में पक्ष के रूप में भारत संघ को जोड़ने का प्रश्न नहीं था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5A अथवा धारा 79 की कोई प्रयोज्यता नहीं है। वर्तमान मामले में, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचे गए तथ्यों और विधि के समस्त निष्कर्षों के साथ सहमति जतायी है किन्तु गलत रूप से एक विवाद्यक उठाया है जो अप्रासंगिक है और जिसे पहले कभी नहीं उठाया गया था, अपील के मेमोरेंडम तक में नहीं। अत: विद्वान अवर न्यायालय का निर्णय और डिक्री उक्त अप्रासंगिक अनुचिन्तन और बेबुनियाद एवं गलत निष्कर्ष कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5A के प्रावधानों के निबंधनानुसार भारत संघ आवश्यक पक्ष है, के कारण विकृत और दूषित है। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री असंपोषणीय है और अपास्त किए जाने के दायी है।

13. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ कमिश्नर लोक अधिकारी है और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5(A) एवं सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 79 के निबंधनानुसार भारत संघ आवश्यक पक्ष है। आदेश XXVII के नियम 5A के प्रावधान अनुबंधित करते हैं कि उसकी अधिकारिक क्षमता में उसके द्वारा अभिकथित रूप से किए गए किसी कृत्य के संबंध में हानि अथवा अन्य अनुतोष के लिए लोक अधिकारी के विरुद्ध संस्थापित किसी वाद में सरकार को वाद के पक्ष के रूप में संयोजित करना होगा। विद्वान अधिवक्ता ने **कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर बनाम रमेश चन्द्र झा** में **सिविल अपील सं॰ 1932/1982** (इन्हीं दोनों पक्षों के बीच) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया और उस पर विश्वास किया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ कमिश्नर सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 2(17) के अर्थ के अंतर्गत लोक अधिकारी है। अपीलार्थी की सेवा को समाप्त करने वाला आदेश सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰, कमिश्नर द्वारा अधिकारिक क्षमता में उसके शक्ति के प्रयोग में जारी किया गया था और उक्त आदेश को अपास्त किया जाना इप्सित किया गया था जो निश्चय ही अधिकारिक क्षमता में किया गया कृत्य है और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5A और धारा 2 (17) के प्रावधान द्वारा आच्छादित है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने उक्त पहलू पर विचार किया है और सही प्रकार से प्रतिवादी के अपील को अनुज्ञात किया है और सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5A के प्रावधानों के अननुपालन के लिए वादी का वाद खारिज कर दिया है।

14. पक्षों के परस्पर विरोधी तर्कों और निवेदनों के समुचित अधिमूल्यन के लिए सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5(A) और धारा 79 के प्रावधानों को देखना आवश्यक है।

15. सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 79 का पठन निम्नलिखित है:

*''[79. **सरकार द्वारा अथवा सरकार के विरुद्ध वाद.**–सरकार द्वारा अथवा सरकार के विरुद्ध वाद में वादी अथवा प्रतिवादी, जैसा भी मामला हो, के रूप में नामित किए जाने वाला प्राधिकारी–*

(a) केन्द्र सरकार द्वारा अथवा केन्द्र सरकार के विरुद्ध वाद के मामलों में भारत संघ, और

(b) राज्य सरकार द्वारा अथवा राज्य सरकार के विरुद्ध वाद के मामले में राज्य सरकार होगा ।]"

16. उक्त धारा के सरल पठन पर, यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान सरकार द्वारा अथवा सरकार के विरुद्ध संस्थापित वाद में प्रयोज्य है।

17. स्वीकृत रूप से, वादी–अपीलार्थी ने कोल माइंस भविष्य निधि योजना के पैरा 3 के अधीन कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर के माध्यम से गठित न्यासी बोर्ड के विरुद्ध और न कि सरकार के विरुद्ध अभिधान वाद सं॰ 102/90 दाखिल किया था।

18. वादी कोल माइंस भविष्य निधि और बोनस योजना अधिनियम के अधीन कोल माइंस भविष्य निधि संगठन का एक कर्मचारी है। उक्त अधिनियम की धारा 24 (4) स्टाफ की भर्त्ती के लिए प्रावधान करती है और इसका पठन निम्नलिखित है:

''बोर्ड द्वारा नियुक्त और निधि से वेतन पाने वाले व्यक्तियों को इसके बावजूद सरकारी सेवक नहीं समझा जाएगा कि केंद्र सरकार निर्देश दे सकती है कि सरकारी सेवकों पर लागू होने योग्य किसी सेवा नियमों को परिवर्तन सहित अथवा के बिना ऐसे व्यक्तियों पर लागू किया जा सकता है।''

19. इस धारा में स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि बोर्ड द्वारा नियुक्त और निधि से वेतन पाने वाले व्यक्तियों को सरकारी सेवक नहीं माना जाएगा।

20. उक्त प्रावधान को विद्वान विचारण न्यायालय तथा विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा भी ध्यान में लिया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि उक्त अधिनियम की धारा 24 (4) के प्रावधानों की दृष्टि में, वादी सरकारी सेवक नहीं है। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय के उक्त निष्कर्ष के साथ असहमति नहीं जतायी है। वे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचे गए तथ्यों के निष्कर्षों के साथ सहमत हैं।

21. मेरे दृढ़ दृष्टिकोण में, विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 24 (4) के निबंधनानुसार जो स्पष्टत: उल्लिखित करती है कि बोर्ड द्वारा नियुक्त और निधि से वेतन पाने वाले व्यक्तियों को सरकारी सेवक नहीं माना जाएगा, अपना निष्कर्ष दर्ज किया है।

22. वादी–अपीलार्थी इस प्रकार सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ संगठन का कर्मचारी होने के नाते सरकारी सेवक अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और वर्तमान मामले में सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 79 की कोई प्रयोज्यता नहीं है।

23. जहाँ तक सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII, नियम 5(A) की प्रयोज्यता का संबंध है, यह किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध वाद में पक्ष के रूप में सरकार के संयोजन के बारे में कथन करता है।

24. वर्तमान मामले में, वाद न्यासी बोर्ड के विरुद्ध है। यद्यपि वादी ने सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती दी थी जिसे कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर द्वारा जारी किया गया था।

25. सर्वोच्च न्यायालय ने वादी रमेश चन्द्र झा के विरुद्ध सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ कमिश्नर द्वारा दाखिल सिविल अपील सं॰ 1932/1982, जो उसी वादी द्वारा दाखिल पूर्व वाद से उद्भूत हुआ था, में अपने निर्णय में अभिनिर्धारित किया है कि सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 2(17) (h) के निबंधनों के अर्थ के अंतर्गत कोल माइंस प्रोविडेन्ट फंड कमिश्नर लोक अधिकारी है। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न था कि क्या सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 80 के अधीन नोटिस तामील किए बिना कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर के आदेश को चुनौती देने वाला वाद अक्षम था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सी॰ पी॰ सी॰ के प्रासंगिक प्रावधानों पर चर्चा की और अंतत: अभिनिर्धारित किया कि कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर एक लोक अधिकारी है और सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 80 के अधीन नोटिस तामील किए बिना दाखिल किया गया वाद सक्षम नहीं था। उक्त निर्णय में आदेश XXVII नियम 5A के प्रावधान से संबंधित ऐसा कोई बिन्दु अंतर्ग्रस्त नहीं था।

26. सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII का नियम 5A निम्नलिखित है:

*"5-A. **लोक अधिकारी के विरुद्ध वाद में पक्षकार के रूप में सरकार को संयोजित किया जाना.**–जहाँ उसकी आधिकारिक क्षमता में उसके द्वारा अभिकथित रूप से किए गए किसी कृत्य के संबंध में नुकसानों अथवा अन्य अनुतोष के लिए लोक अधिकारी के विरुद्ध वाद संस्थापित किया जाता है, सरकार को वाद के पक्षकार के तौर पर संयोजित करना होगा।''*

27. सी॰ पी॰ सी॰ का आदेश XXVII सरकार अथवा उनकी आधिकारिक क्षमता में लोक अधिकारियों द्वारा अथवा उनके विरुद्ध वादों पर विचार करता है। नियम 5 (A) के सरल पठन पर यह स्पष्ट है कि उसकी आधिकारिक क्षमता में उसके द्वारा अभिकथित रूप से किए गए किसी कृत्य के संबंध में नुकसानों अथवा अन्य अनुतोष के लिए लोक अधिकारी के विरुद्ध संस्थापित वाद में सरकार को पक्ष के रूप में जोड़ना होगा।

28. आदेश XXVII का नियम 8 (B) सरकार और सरकारी अभिवक्ता को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करता है:–

*"8B. **''सरकार'' और ''सरकारी अधिवक्ता'' की परिभाषाएँ.**–इस आदेश में ''सरकार'' और ''सरकारी अधिवक्ता'' का अर्थ क्रमश है:*

(a) केंद्र सरकार द्वारा अथवा के विरुद्ध अथवा उस सरकार की सेवा में लोक अधिकारी के विरुद्ध किसी वाद के संबंध में सरकार और ऐसे अधिवक्ता जिन्हें इस आदेश के उद्देश्य से सामान्यत: अथवा विशेषत: सरकार नियुक्त कर सकती है;

(c) राज्य सरकार द्वारा अथवा के विरुद्ध, अथवा राज्य की सेवा में लोक अधिकारी के विरुद्ध किसी वाद के संबंध में, राज्य सरकार और सरकारी अधिवक्ता, अथवा ऐसे अधिवक्ता जिन्हें राज्य सरकार इस आदेश के उद्देश्य से सामान्यत: अथवा विशेषत: नियुक्त कर सकता है।''

29. सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII का नियम 8(B) स्पष्टत: प्रावधानित करता है कि ''सरकार'' और ''सरकारी अधिवक्ता'' का क्रमश: अर्थ है केन्द्र सरकार द्वारा अथवा के विरुद्ध अथवा उस सरकार की सेवा में लोक अधिकारी के विरुद्ध किसी वाद के संबंध में केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा अथवा के विरुद्ध अथवा राज्य सरकार की सेवा में लोक अधिकारी के विरुद्ध किसी वाद के संबंध में राज्य सरकार।

(जोर दिया गया)

30. नियम 5(A) में उल्लिखित अभिव्यक्ति 'सरकार' अथवा 'लोक अधिकारी' को इस तरह नियम 8 (B) में असंदिग्ध रूप से विनिर्दिष्ट किया गया है।

31. तद्नुसार, यदि किसी लोक अधिकारी, जो केन्द्र सरकार की सेवा में अथवा राज्य सरकार की सेवा में है, के विरुद्ध वाद संस्थापित किया जाता है, केवल उस मामले में ही सरकार को पक्ष के रूप में जोड़ना होगा जैसा आदेश XXVII के नियम 5A द्वारा अपेक्षित है।

32. वर्तमान मामले में, यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (17), जो अनेक श्रेणियों के लोक अधिकारी को सम्मिलित करता है, के निबंधनानुसार कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर को लोक अधिकारी अभिनिर्धारित किया गया है, वह प्रासंगिक समय पर बोर्ड की सेवा में था। आदेश XXVII के नियम 8(B) में निश्चित परिभाषा प्रावधानित करके सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII का नियम 5(A) लोक अधिकारी को विनिर्दिष्ट करता है जो केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार की सेवा में लोक अधिकारी और न कि किसी अन्य लोक अधिकारी के बारे में स्पष्टत: कथन करता है।

33. कोयला खान भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1948 कर्मचारीगण के लिए भविष्य निधि की स्थापना के लिए कोल माइंस भविष्य निधि योजना विरचित करने के लिए प्रावधान करता है। यह स्पष्टत: प्रावधानित किया गया है निधि उक्त अधिनियम की धारा 3 (A) के अधीन गठित न्यासी बोर्ड इसको गठित करती अधिसूचना में विनिर्दिष्ट नाम के अधीन निगमित निकाय होगा जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और कॉमन सील होगा और उक्त नाम द्वारा वाद करेगा अथवा वादित होगा।

34. तद्नुसार, वादी ने न्यासी को एकमात्र प्रतिवादी बनाते हुए धारा 3(A) के अधीन गठित न्यासी बोर्ड पर मुकदमा किया था। उक्त अधिनियम की धारा 3(B) भी विनिर्दिष्टत: उल्लिखित करती है कि वाद न्यासी बोर्ड के द्वारा अथवा के विरुद्ध और न कि किसी सरकार, केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा अथवा के विरुद्ध दाखिल किया जाएगा। धारा 3(B) और 3(C) के प्रावधान प्रावधानित करते हैं कि कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर, बोर्ड के सामान्य नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अध्यधीन बोर्ड का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा।

35. धारा 3 (B) और 3 (C) के प्रावधान निम्नलिखित है:

*"3B. **न्यासी बोर्ड का निगमित निकाय होना.**–धारा 3A के अधीन गठित न्यासी बोर्ड इसको गठित करती अधिसूचना में विनिर्दिष्ट नाम के अधीन निगमित निकाय होगा जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और कॉमन सील होता और उक्त नाम द्वारा वाद करेगा अथवा वादित किया जाएगा।*

*3C. **अधिकारियों की नियुक्ति.**–(1) केन्द्र सरकार कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर नियुक्त करेगी जो बोर्ड का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा और बोर्ड के सामान्य नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अध्यधीन होगा।*

2. .....

3. .....

4. कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर की भर्त्ती, वेतन और भत्ते, अनुशासन और सेवा की अन्य शर्तें वैसी होंगी जैसा केन्द्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जा सकता है और ऐसे वेतन एवं भत्ते का भुगतान निधि से किया जाएगा।''

36. सर्वोच्च न्यायालय ने **कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर (ऊपर)** के मामले में विचार में लिया था कि चूँकि केन्द्र सरकार कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर को बोर्ड के मुख्य कार्यपालक

अधिकारी के रूप में नियुक्त करती है, केवल बोर्ड के हाथ में उसकी सेवाओं को देने से अधिकारी के रूप में वह अस्तित्वहीन नहीं होता है और इस प्रकार यह अभिनिर्धारित करना समुचित नहीं है कि कोल माइंस भविष्य निधि अधिकारी सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 2 (17)(h) के निबंधनों के अर्थ के अंतर्गत लोक अधिकारी नहीं है। साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है उसकी सेवाएँ बोर्ड को समर्पित की गयी थी और कोयला खान भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1948 की धारा 3 (C) को भी ध्यान में लिया है कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर बोर्ड के सामान्य नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अध्यधीन बोर्ड का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा, क्योंकि उसकी सेवाएँ बोर्ड को समर्पित की गयी है।

37. उक्त की दृष्टि में, बोर्ड के कार्यपालक अधिकारी के रूप में उन्मोचित किए गए किसी कर्तव्य को केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के अधिकारी के रूप में उन्मोचित कर्तव्य नहीं कहा जा सकता है और यदि किसी आदेश को चुनौती देते हुए वाद संस्थापित किया जाता है, यह बोर्ड के मुख्य कार्यपालक अधिकारी के विरुद्ध है। धारा 3(B) के अनुसार, धारा 3(A) के अधीन गठित न्यासी बोर्ड को और न कि कोल माइंस भविष्य निधि कमिश्नर के विरूद्ध मुकदमा करना होगा।

38. अत: बोर्ड के मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में अधिकारिक हैसियत से किए गए किसी कृत्य के लिए केन्द्र सरकार परिदृश्य में नहीं आती है और केन्द्र सरकार अथवा भारत संघ को कल्पना की किसी सीमा में विशेषत: धारा 3(B) जो धारा 3(A) के अधीन गठित न्यासी बोर्ड के विरूद्ध मुकदमा करने के लिए स्पष्टत: प्रावधानित करती है, की दृष्टि में बोर्ड के मुख्य कार्यपालक अधिकारी के आदेश को चुनौती देने वाले वाद में आवश्यक पक्ष नहीं कहा जा सकता है।

39. एस॰ ए॰ आई॰ एल॰ बनाम नेशनल यूनियन वाटरफ्रंट वर्कर्स, (2001)7 SCC 1, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि केवल इस कारण कि सरकारी कंपनियाँ/निगम और सोसाइटीज लोक कार्यों और कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं, वह उनको समस्त उद्देश्य के लिए केन्द्र अथवा राज्य सरकार का एजेन्ट नहीं बनाता है जो अनेक केन्द्रीय और/अथवा राज्य अधिनियमों के अधीन अथवा निजी विधि के अधीन उनके समस्त कृत्यों, दायित्वों और बाध्यताओं के लिए ऐसे सरकार को बाध्यकारी बनाता है।

40. माननीय उच्चतम न्यायालय ने बोर्ड के मामलों पर विचार करते हुए और यह विचार करते हुए कि क्या बोर्ड, जिसमें केन्द्र सरकार की संपत्ति निहित है, केन्द्र सरकार का विभाग है, अभिनिर्धारित किया है कि बोर्ड केन्द्र सरकार का विभाग नहीं है बल्कि इसकी कम्पनी के तौर पर सुभिन्न पहचान है। **विशाखापत्तनम पोर्ट ट्रस्ट के न्यासी बोर्ड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (AIR 1999 SC 2552)** के मामले को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

41. क्षेत्रीय भविष्य निधि कमिश्नर बनाम शिव कुमार जोशी, (AIR 2000 SC 331), में सर्वोच्च न्यायालय ने विनिर्दिष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम और कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 के अधीन क्षेत्रीय भविष्य निधि कमिश्नर योजना को चलाने के लिए सांविधिक कार्यों का निर्वहन करता है। इसे किसी भी रूप में राज्य के संप्रभुतापूर्ण शक्तियों को नहीं दिया गया है ताकि इसे केन्द्र सरकार के रूप में अभिनिर्धारित किया जा सके यदि यह अभिनिर्धारित किया भी जाता है कि प्रशासनिक शुल्कों का भुगतान केन्द्र सरकार द्वारा किया जा रहा है।

42. मेसर्स जी टेली फिल्म्स लि॰ बनाम भारत संघ एवं अन्य, AIR 2005 SC 2677, में सर्वोच्च न्यायालय ने सुभिन्नत: अभिनिर्धारित किया है कि चूँकि भारत में बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट पर वित्तीय रूप से, क्रियात्मक रूप से अथवा प्रशासनिक रूप से सरकार का प्रभाव नहीं है और सरकार

के नियंत्रण के अधीन नहीं है, इसे राज्य केवल इसलिए नहीं कहा जा सकता है क्योंकि सरकार सीमित नियंत्रण का प्रयोग करती है जो शुद्धत: विनियामक है और व्यापक नहीं है। आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि समस्त स्वशासी निकायों का सरकार से संबंध होना स्वयं में उनको अभिव्यक्ति ''राज्य'' के विस्तार के अंतर्गत नहीं लाएगा।

43. सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XXVII के नियम 8 (B) की स्पष्ट अभिव्यक्ति और सर्वोच्च न्यायालय की उद्घोषणाओं द्वारा अधिकथित सिद्धान्त इस सुविचारित निष्कर्ष की ओर ले जाते हैं कि वादी-अपीलार्थी का कोल माइंस भविष्य निधि संगठन, जिसको न्यासी बोर्ड द्वारा प्रशासित किया जाता है, का कर्मचारी होने के नाते उसके द्वारा न्यासी बोर्ड के विरुद्ध दाखिल वाद केन्द्र सरकार/भारत संघ के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण नहीं है और आदेश XXVII नियम 5(A) के प्रावधान की मामले में के प्रति कोई प्रयोज्यता नहीं है।

44. भारत सरकार के असंयोजन के लिए वाद को दोषपूर्ण अभिनिर्धारित करते हुए विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्टत: गलत, विधि के विपरीत और असंपोषणीय है।

45. तद्नुसार, इस अपील में विरचित विधि के सारभूत प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया जाता है और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय का उक्त निष्कर्ष और निर्णय एवं डिक्री एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। चूँकि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचे गए तथ्यों के निष्कर्षों के साथ सहमति जतायी है, अभिधान वाद सं॰ 102/09 में पारित विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को पुनर्स्थापित किया जाता है।

46. तद्नुसार, यह अपील 5000/-रुपयों के व्यय के साथ अनुज्ञात की जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

शशि रेखा मिन्ज (5280 में)

इमरान अंसारी (5330 में)

पुष्पलता भेंगरा (5333 में)

अर्चना खाल्खो (5334 में)

राव बिजेन्द्र कुमार (5385 में)

अदीप सोना (5375 में)

मो॰ सरवर आलम (5396 में)

दिनेश कुमार (5398 में)

परवेज खान (5429 में)

धिरेन्द्र कुमार सिंह (5616 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

W.P. (S) Nos. 5280, 5330, 5333, 5334, 5385, 5375, 5396, 5398, 5429, 5616 of 2010.
Decided on 10th January, 2011.

(क) सेवा विधि–नियुक्ति–संविदा के आधार पर पैरा मेडिकल स्टाफ के रूप में काम पर लगाए जाने का रद्दकरण–उनकी पात्रता एवं अन्य पहलूओं पर विचार करने के बाद स्क्रीनिंग कमिटि द्वारा याचीगण का चयन किया गया था–इस आधार कि उन्होंने यह दर्शाने के लिए

दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं किया था कि संस्थानों, जिन्होंने उन्हें प्रमाण पत्र प्रदान दिया था, को ए॰ आई॰ सी॰ टी॰ ई॰/यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा मान्यता दी गयी है, पर उनकी नियुक्तियों को रद्द करने के पहले उन्हें कोई नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था–दस्तावेज जिसे प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती थी, के विनिर्दिष्ट विवरण को आक्षेपित आदेश में भी नहीं दिया गया है–सेवा समाप्ति का आक्षेपित आदेश गैर कानूनी है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है–याचिकाएँ अनुज्ञात।

(पैराएँ 4, 7, 8, 11 एवं 18 से 21)

(ख) नैसर्गिक न्याय–नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन/अनुपालन आदेश से स्पष्ट होना ही चाहिए जिसके द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों को वापस ले लिया गया है अथवा उनका अतिलंघन किया गया है–इसे आस पास की परिस्थितियों द्वारा अथवा किसी पूरक द्वारा निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है। **(पैरा 14)**

अधिवक्तागण.–Mr. Anjani Kumar Verma (in all), For the Petitioners; Mr. S.C.-II (in all), For the Respondents.

आदेश

मामलों के इस बैच में याचीगण संविदा के आधार पर पैरा मेडिकल स्टाफ के रूप में उनको काम पर लगाए जाने के रद्दकरण से व्यथित हैं याचीगण ने अवधि जिसके लिए उन्होंने काम किया और अवधि जिसके लिए उन्हें काम नहीं करने के लिए मजबूर किया गया था, के सहमत समेकित पारिश्रमिक का भुगतान उनको करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाना इप्सित किया है।

2. झारखंड राज्य ने झारखंड राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अधीन राँची जिला सहित झारखंड के 24 जिलों में 1263 रिक्त मंजूर पदों के विरुद्ध स्टाफ नर्स, लैब टेक्नीशियन, फार्मासिस्ट/कम्पाउन्डर, रेफ्रिजरेटर मेकैनिक, रेडियोग्राफर (एक्सरे टेक्नीशियन) जैसे पैरा मेडिकल स्टाफ की नियुक्ति के लिए आवेदनों को आमंत्रित किया था।

3. याचीगण, जिनके पास अपेक्षित पात्रता थी ने उक्त पदों पर अपनी नियुक्तियों के लिए आवेदन दिया था।

4. उक्त उद्देश्य के लिए स्क्रीनिंग कमिटि गठित की गयी थी। कमिटि ने उनकी पात्रता और अन्य पहलुओं को विचार में लेने के बाद याचीगण का चयन किया। तद्नुसार, विभिन्न पदों पर उन्हें नियुक्त किया गया था।

5. तत्पश्चात्, यह दर्शाने के लिए कि संस्थानों, जहाँ से उन्होंने अपना प्रमाण पत्र/डिग्री लिया है, को ए॰ आई॰ सी॰ टी॰ ई॰/यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा मान्यता प्राप्त है, के प्रमाण पत्रों सहित अपने प्रमाण पत्रों को संवीक्षण एवं सत्यापन के लिए प्रस्तुत करने का निर्देश उनको देते हुए सिविल सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय से मेमो सं॰ 2143 दिनांक 3.8.10 द्वारा एक पत्र जारी किया गया था।

6. तत्पश्चात, याचीगण ने सत्यापन के लिए अपने प्रमाण पत्रों को प्रस्तुत किया जिन्हें सही पाया गया था।

7. किन्तु, अचानक उन्होंने उनको यह संसूचित करते हुए भिन्न मेमों संख्या वाला दिनांक 10.9.10 का पत्र प्राप्त किया कि यह दर्शाने के लिए कि संस्थानों, जिन्होंने उनको प्रमाण पत्र प्रदान किया था, को ए॰ आई॰ सी॰ टी॰ ई॰/यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा मान्यता प्राप्त है, दस्तावेजों को नहीं प्रस्तुत करने के लिए स्क्रीनिंग कमिटि के निर्णय द्वारा उनकी नियुक्तियों को रद्द कर दिया गया है।

8. याचीगण के अनुसार, उक्त आधार पर उनकी नियुक्तियों को रद्द करने के पहले उनको कोई नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। उनके अनुसार, उक्त रद्दकरण पूर्णत: मनमाना है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है।

9. सिविल सर्जन-सह-चीफ मेडिकल ऑफिसर की ओर से प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है। अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन किया गया है कि दिनांक 3.8.10 के पत्र द्वारा याचीगण को अपने प्रमाणपत्रों को प्रस्तुत करने का अवसर पहले दिया गया था किन्तु वे यह दर्शाने के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहे कि संस्थानों, जिन्होंने याचीगण को प्रमाण पत्रों को प्रदान किया था, को ए० आई० सी० टी० ई०/यू० जी० सी० द्वारा मान्यता प्राप्त है। याचीगण की नियुक्तियों को रद्द करने में कोई मनमानेपन अथवा अवैधता नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि संविदा के आधार पर उनकी नियुक्तियों के लिए शर्तों में से एक यह था कि उनके पास ए० आई० सी० टी० ई०/यू० जी० सी० द्वारा मान्यता प्राप्त प्रमाण पत्र होना ही चाहिए।

10. किन्तु, प्रतिशपथ पत्र में प्रत्यर्थी ने याचीगण के प्रतिवाद से इनकार नहीं किया है कि सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने के पहले कोई नोटिस तामील नहीं की गयी थी और उन्हें सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। बल्कि यह कहा गया हे कि उनकी सेवा समाप्ति के बाद उन्हें अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था किन्तु इसे वास्तविक नहीं पाया गया था।

11. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान सरकारी अधिवक्ता को सुना है। सुनवाई के समय, प्रत्यर्थीगण की ओर से निष्पक्षत: स्वीकार किया गया है कि उनकी नियुक्तियों को रद्द करते हुए आक्षेपित आदेशों को जारी करने के पहले याचीगण को कोई नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था।

12. किन्तु, यह कथन किया गया है कि याचीगण को यह दर्शाने के लिए दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए पहले कहा गया था कि संस्थानों, जिन्होंने उनको प्रमाण पत्र प्रदान किया, को ए० आई० सी० टी० ई०/यू० जी० सी० द्वारा मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार उन्हें ज्ञात था कि इसे स्थापित करने के लिए उनको दस्तावेजों को प्रस्तुत करना था। इस प्रकार, याचीगण को उनकी नियुक्तियों के रद्दकरण के आक्षेपित आदेश द्वारा आश्चर्य में नहीं डाला गया था और नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं हुआ है।

13. यह न्यायालय प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के उक्त दृष्टिकोण और निवेदनों का कायल नहीं है।

14. यह सुस्थापित है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन/अनुपालन आदेश से पूर्णत: स्पष्ट होना ही चाहिए जिसके द्वारा व्यक्तियों के अधिकार को वापस लिया जाता है अथवा अतिलंघन किया जाता है। यह आस-पास की परिस्थितियों द्वारा अथवा किसी पूरक द्वारा निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है।

15. पूर्वोक्त की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के पालन/अनुपालन के बारे में कुछ भी नहीं सुझाता अथवा कहता है। यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि उनको यह सूचित करते हुए कि निश्चित तिथि तक अपेक्षित दस्तावेज/प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफलता का परिणाम उनकी नियुक्ति के रद्दकरण में होगा, याचीगण को कोई नोटिस नहीं दिया गया था।

16. याचीगण की ओर से निवेदन किया गया है कि उन्हें ज्ञात नहीं था कि विनिर्दिष्ट तिथि तक किसी दस्तावेज विशेष को प्रस्तुत करने में विफल रहने पर उनकी नियुक्तियों को रद्द कर दिया जाएगा।

17. याचीगण के अनुसार, उन्होंने अपेक्षित दस्तावेजों को प्रस्तुत किया था और उन्हें सूचित नहीं किया गया था कि कौन सा दस्तावेज नहीं दिया गया था।

18. आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि ए॰ आई॰ सी॰ टी॰ ई॰/यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा उनके प्रमाण पत्रों की मान्यता के समर्थन में दस्तावेज के अप्रस्तुतीकरण के लिए याचीगण की नियुक्तियों को रद्द कर दिया गया है किन्तु दस्तावेज, जिसका प्रस्तुतीकरण अपेक्षित था, का विनिर्दिष्ट विवरण आक्षेपित आदेश में भी नहीं दिया गया है अथवा नहीं उपदर्शित किया गया है। आक्षेपित आदेश से प्रतीत नहीं होता है कि प्रत्यर्थीगण किस दस्तावेज विशेष की अपेक्षा करते थे। सिविल सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा अधिकारी जो न्यायालय में उपस्थित हैं ने इनकार नहीं किया है कि विहित प्रक्रिया के पालन और उनकी पात्रता के आधार पर उनके पदों पर याचीगण को संविदात्मक नियुक्तियाँ दी गयी थी। जब एक बार उन्हें नियुक्त किया जाता है, वे एक बहुमूल्य अधिकार अर्जित करते हैं और इसे लापरवाह तरीके से रद्द अथवा इनकार नहीं किया जा सकता है।

19. इसके अतिरिक्त, उक्त प्रत्यर्थी द्वारा इनकार नहीं किया गया है कि उनकी नियुक्तियों के बाद याचीगण ने अनेक माह तक काम किया था किन्तु उस अवधि के लिए भी उन्हें पारिश्रमिक का भुगतान नहीं किया गया था।

20. पूर्वोल्लिखित कारणों से, याचीगण की नियुक्तियों की समाप्ति के आक्षेपित आदेशों को अवैध और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता अभिनिर्धारित किया जाता है और एतद् द्वारा इन्हें अभिखंडित किया जाता है। इन रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है।

21. याचीगण को उनकी नियुक्तियों की तिथि से अर्थात् अवधि जिसके लिए उन्होंने काम किया और वह अवधि भी जिसके लिए उन्हें काम करने और कर्तव्य का निर्वहन करने के अधिकार से आक्षेपित अवैध आदेशों द्वारा वंचित किया गया था, सहमत समेकित पारिश्रमिक पाने का हकदार अभिनिर्धारित किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को चार सप्ताहों की अवधि के भीतर पारिश्रमिक के बकाया का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

22. यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थीगण को विधि के अनुरूप और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए अग्रसर होने की स्वतंत्रता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

डॉ॰ महेश्वर तिवारी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

W.P. (S) Nos. 363, 286, 5943, 5260, 4966, 5804, 4886, 6275, 6009, 6391, 6367, 6015, 5971, 6206, 6209, 6210, 6236, 6250, 6268, 5531, 4860, 2538, 6073, 5946, 5858, 5765, 5792, 3718, 4575, 4886, 363, 286, 5943, 5260, 4966, 5804, 4886, 6275, 6009, 6391, 6367, 6015, 5971, 6206, 6209, 6210, 6236, 6250, 6265, 5531, 4860, 2538, 6073, 5946, 5858, 5765, 5792, 3718, 4575 with 4886 of 2010.

Decided on 10th January, 2011.

(क) विश्वविद्यालय विधि–सेवानिवृत्ति–आयु–विश्वविद्यालय के शिक्षकों की आयु को 62 वर्ष से 65 वर्ष तक बढ़ाया जाना–केन्द्र सरकार द्वारा दिनांक 31.12.2008 को जारी किया गया पत्र–यदि राज्य सरकार योजना को अपनाना और लागू करना चाहती है, तब योजना को संपूर्णता में अपनाना होगा ताकि वेतन के पुनरीक्षण को लागू करने में अंतर्ग्रस्त अतिरिक्त खर्च की 80% की सहायता के स्वयं को हकदार बना सके–राज्य को योजना का एक हिस्सा अर्थात्

वेतन का पुनरीक्षण स्वीकार करने और 62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु को बढ़ाने से संबंधित निर्देश को स्वीकार नहीं करने का विकल्प नहीं दिया गया है–याचीगण की अधिवर्षिता की आयु 65 वर्ष तक विस्तारित बनी रहेगी। (पैराएँ 4, 14, 22 एवं 23)

(ख) भारत का संविधान, 1950–सूची I की प्रविष्टि 66 और सूची III की प्रविष्टि 25 और अनुच्छेद 254 (1)—62 वर्ष से 65 वर्ष तक शिक्षकों की आयु बढ़ाने के संबंध में कोई भी विधान सूची I की प्रविष्टि 66 के अधीन किसी विधान को बनाने के लिए केन्द्र सरकार की सक्षमता के परे नहीं होगा–62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाने के संबंध में विनियमन, 2010 के अधीन अनुबंध राज्य विधानमंडल के क्षेत्र का अधिक्रमण नहीं हो सकता है–भारत के संविधान की सूची III की प्रविष्टि 25 के अधीन विरचित झारखंड विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 67 के अधीन विहित अधिवर्षिता की आयु विनियमन के प्रतिकूल होने के नाते, जहाँ तक यह 62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाए जाने से संबंधित है, अनुच्छेद 254 (1) के निबंधनानुसार शून्य और अप्रवर्तनीय होगा–62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाए जाने से इनकार करता आक्षेपित मेमो अपास्त। (पैराएँ 21 एवं 22)

निर्णयज विधि.–(1985)4 SCC 104; (1999) 7 SCC 120; (1970) 3 SCC 355; (2005) 5 SCC 420; (2007) 11 SCC 58—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Sohail Anwar, Rajiv Ranjan, O.P. Tiwary, Abhay Kumar Mishra, Altaf Hussain, Saurav Arun, Neha Prashant, Abhisekh Sinha, Richa Sanchita, Dr. S.K. Pandey, Nagendra Tiwary, Sanjay Kumar Tiwary, Tapas Kabiraj, S.K. Ughal, Debesh Krishna, For the Petitioners; Sr. S.C. III, Sr. S.C. II, G.P. IV, M/s A.K. Mehta, Sanjay Piprawall, R.K. Sahi, Indrani Sen Choudhary, For the Universities; Mr. J.P. Gupta, For the U.G.C.; M/s. Ashok Singh and T.N. Mishra, For the Union of India.

आदेश

मामलों के इस समूह में अंतर्ग्रस्त एक ही प्रश्न यह है कि क्या दिनांक 30.6.2010 का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियमन राज्य सरकार/राज्य विश्वविद्यालयों पर बाध्यकारी है जहाँ तक इसका संबंध 62 वर्ष से 65 वर्ष तक शिक्षकों की आयु बढ़ाए जाने से है?

2. मामले की पृष्ठभूमि, जो इन रिट आवेदनों को दाखिल किए जाने की ओर ले गयी, यह है कि षष्ठम केन्द्रीय वेतन आयोग की अनुशंसा पर केन्द्रीय सरकार के कर्मचारीगण के वेतनमान के पुनरीक्षण के परिणामस्वरुप मानव संसाधन विकास विभाग, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (इसमें इसके बाद ''यू॰ जी॰ सी॰'' के रूप में निर्दिष्ट) की अनुशंसा पर एक योजना विरचित की गई जिसके द्वारा केन्द्रीय विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के शिक्षकों और समतुल्य कैडरों के वेतन को दिनांक 1.1.2006 के प्रभाव से इस अनुबंध के साथ पुनरीक्षित किया गया था कि केन्द्रीय सरकार 80% की सीमा तक अतिरिक्त व्यय को वहन करेगी जबकि 20% व्यय को राज्य सरकार को वहन करना होगा जिस निर्णय को मंत्रालय द्वारा सचिव, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नयी दिल्ली को दिनांक 30.12.2008 के अपने पत्र के तहत संसूचित किया गया था। योजना के अधीन वेतन के उक्त पुनरीक्षण को राज्य विधान की परिधि के अधीन आते विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और अन्य उच्चतर शैक्षणिक संस्थानों तक बढ़ाया जाना है बशर्ते राज्य सरकार उसमें अनुबंधित निबंधनों और शर्तों के

अध्यधीन इस योजना को अपनाना और लागू करना चाहती हो। इसके बाद यू॰ जी॰ सी॰ ने दिनांक 27.2.2009 के अपने पत्र के तहत वेतन के पुनरीक्षण और अधिवर्षिता की आयु बढ़ाए जाने के संबंध में दिनांक 31.12.2008 के पत्र के अधीन विरचित उक्त योजना को अपनाने के लिए राज्य सरकार से अनुरोध किया। झारखंड राज्य ने दिनांक 10.10.2009 के अपने संकल्प (डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 363 वर्ष 2010 का परिशिष्ट-6) के तहत दिनांक 1.1.2006 के प्रभाव से वेतनमान के पुनरीक्षण की योजना लागू करने के लिए निर्णय इस अनुबंध के साथ लिया कि राज्य सरकार द्वारा 20% की सीमा तक व्यय वहन किया जाएगा जबकि केन्द्र सरकार 80% की सीमा तक व्यय वहन करेगी। तत्पश्चात्, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार ने दिनांक 11.5.2010 को अपने पत्र के तहत राज्य सरकार को सूचित किया कि योजना लागू करने के लिए केन्द्रीय सहायता का भुगतान इस शर्त के अध्यधीन होगा कि विनियमन और अन्य मार्गदर्शक सिद्धान्तों के जरिए यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा अधिकथित समस्त शर्तों के साथ-साथ वेतनमान के पुनरीक्षण की संपूर्ण योजना राज्य सरकार और विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों द्वारा किसी परिवर्तन के बिना संयुक्त (कम्पोजित) योजना के रूप में लागू की जाएगी। इसके तुरन्त बाद यू॰ जी॰ सी॰ ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 26 (i) (e) और (g) के अधीन शक्ति के प्रयोग में केन्द्र सरकार द्वारा दिनांक 31.12.2008 के पूर्वोक्त पत्र के अधीन विरचित योजना को केन्द्रीय अधिनियम, प्रांतीय अधिनियम अथवा राज्य अधिनियम द्वारा अथवा के अधीन स्थापित अथवा निगमित प्रत्येक विश्वविद्यालय द्वारा और आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त घटक अथवा संबद्ध महाविद्यालय सहित प्रत्येक संस्थान द्वारा प्रभाव दिए जाने के लिए **(विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों एवं अन्य एकेडेमिक स्टाफ की नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हता और उच्चतर शिक्षा का स्तर बनाए रखने के लिए कदमों पर) यू॰ जी॰ सी॰ विनियमन, 2010** नामक विनियमन विरचित किया। दिनांक 31.12.2008 का उक्त पत्र, जो विनियमन का अंश निर्मित करता है, वस्तुत: 62 से 65 वर्ष तक अधिवर्षिता की आयु बढ़ाए जाने के बारे में अनुबंधित करता है। इसके बावजूद जब राज्य सरकार अथवा विभिन्न विश्वविद्यालयों ने 62 वर्ष से 65 वर्ष तक अधिवर्षिता की आयु बढ़ाए जाने के मामले में कोई निर्णय नहीं लिया, तो याचीगण जो राँची, विनोबा भावे, निलांबर एवं पीतांबर, कोल्हन अथवा सिद्धू-कान्हू विश्वविद्यालयों के घटक ईकाइयों के विभिन्न महाविद्यालयों के विभिन्न विभागों में विश्वविद्यालय प्रोफेसर, प्रोफेसर-रीडर, लेक्चरर हैं और दिनांक 30.6.2010 के पहले 62 वर्ष की आयु प्राप्त किए नहीं है, की ओर से विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की अधिवर्षिता की आयु को 62 वर्ष से 65 तक बढ़ाने के लिए राज्य को निर्देश देने के लिए परमादेश प्रकृति का रिट जारी करने के लिए इन रिट आवेदनों को दाखिल किया गया था। इन रिट आवेदनों के लंबित रहने के क्रम में झारखंड राज्य ने संकल्प लिया, जैसा दिनांक 20.11.2010 के मेमो सं॰ 1188 में अंतर्विष्ट है, जिसके द्वारा वेतन के पुनरीक्षण के संबंध में अनुशंसा स्वीकार कर ली गयी थी किन्तु इसी समय पर सरकार ने अधिवर्षिता की आयु को 62 वर्ष से 65 वर्ष तक बढ़ाने से इनकार कर दिया। कुछ मामलों में उक्त आदेश का अभिखंडन भी इप्सित किया गया है।

3. पक्षों की ओर से किए गए निवेदनों पर विचार करने के पहले कतिपय तथ्यों, जिन पर पक्षों ने अपने मामलों को आधारित किया है को ध्यान में लिया जा सकता है। इस संबंध में, यह कथन किया जाए कि केन्द्र सरकार ने शिक्षा के स्तरीकरण को क्रियान्वित करने के लिए और वेतन पुनरीक्षण को क्रियान्वित करने के लिए दिनांक 31.12.2008 के पत्र के अधीन योजना को विरचित किया जिसके द्वारा खंड 8 (f) के अधीन विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की आयु 62 वर्ष से 65 वर्ष तक बढ़ाने के लिए अनुबंध किया गया था जिसका पठन निम्नलिखित है:-

8 (f). <u>अधिवर्षिता की आयु:</u>

(i) विश्वविद्यालयों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षकों की कमी और उसके परिणामस्वरुप रिक्तियों से उद्‌भूत स्थिति का सामना करने के लिए, शिक्षण कैरिअर में पात्र व्यक्तियों को आकृष्ट करने और लंबी अवधि तक सेवा में शिक्षकों को बनाए रखने के लिए कक्षा में शिक्षण में अंतर्ग्रस्त केन्द्रीय शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों के लिए अधिवर्षिता की आयु पहले ही उच्चतर शिक्षा विभाग पत्र सं० एफ० सं० 119/2006-यू० II दिनांक 23.3.2007 के तहत 65 वर्ष तक बढ़ायी जा चुकी है। शिक्षकों की अधिवर्षिता की आयु के उर्ध्वगामी पुनरीक्षण के परिणामस्वरुप केन्द्रीय सरकार ने उच्चतर शिक्षा विभाग डी० ओ० पत्र सं० एफ० 1-24/2006 डेस्क (यू०) दिनांक 30.3.2007 के तहत अपने-अपने संविधियों में संशोधन के अध्यधीन और सक्षम अधिकारी (केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के मामले में कुलाध्यक्ष विजिटर) के अनुमोदन के साथ केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के कुलपति की अधिवर्षिता की आयु को 65 वर्ष से 70 वर्ष तक बढ़ाने के लिए केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को पहले ही प्राधिकृत कर दिया है।

तब खंड 8 (p) विनियमन की प्रयोजनीयता के बारे में कथन करता है जिसका पठन निम्नलिखित है:

8(p) : <u>योजना की प्रयोज्यता:</u>

(i) यह योजना समस्त केन्द्रीय विश्वविद्यालयों और उनके अधीन महाविद्यालय और विश्वविद्यालय समझे गए संस्थानों, जिनके देखभाल का व्यय यू० जी० सी० द्वारा वहन किया जाता है, में शिक्षकों और पुस्तकालय एवं शारीरिक शिक्षा के अन्य समतुल्य कैडरों पर प्रयोज्य होगी। पुनरीक्षित वेतनमानों का लागू किया जाना इस पत्र में और इस निमित्त यू० जी० सी० द्वारा विरचित किए जाने वाले विनियमनों में उल्लिखित समस्त शर्तों की स्वीकार्यता के अध्यधीन होगा। इस योजना को क्रियान्वित करने विश्वविद्यालयों को इस पत्र को जारी किए जाने की तिथि से तीन माह के अंतर्गत यू० जी० सी० विनियमनों के अनुकूल उनके प्रासंगिक संविधियों और अध्यादेशों को संशोधित करने के लिए यू० जी० सी० द्वारा परामर्श दिया जाएगा।

(i) .....

(ii) .....

(iii) .....

(iv) यह योजना राज्य विधान मंडलों के कार्य क्षेत्र के अधीन आने वाले विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं अन्य उच्चतर शैक्षणिक संस्थानों तक बढ़ायी जा सकती है बशर्ते राज्य सरकार निम्नलिखित निबंधनों एवं शर्तों के अधीन योजना को अपनाना और क्रियान्वित करना चाहती है:

(a) योजना के अधीन आच्छादित शिक्षकों और अन्य समतुल्य कैडरों के वेतनमान का पुनरीक्षण चुनने वाले राज्य सरकारों को केन्द्रीय सरकार से प्राप्त वित्तीय सहायता योजना के क्रियान्वयन में अंतर्ग्रस्त अतिरिक्त व्यय की 80% (अस्सी प्रतिशत) की सीमा तक सीमित रहेगी।

(b) वेतन का पुनरीक्षण चुनने वाले राज्य सरकार को अतिरिक्त व्यय का शेष 20% (बीस प्रतिशत) स्वयं अपने स्रोतों से वहन करना होगा।

(c) ऊपर उपखंड (a) में निर्दिष्ट वित्तीय सहायता दिनांक 1.1.2006 से दिनांक 31.3.2010 तक की अवधि के लिए प्रदान की जाएगी।

(d) विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के वेतनमान, आदि के पुनरीक्षण के कारण संपूर्ण दायित्व दिनांक 1.4.2010 के प्रभाव से वेतनमान का पुनरीक्षण चुनते राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित कर लिया जाएगा।

(e) केन्द्रीय सरकार से वित्तीय सहायता केवल उन पदों, जो दिनांक 1.1.2006 तक विद्यमान थे और भर दिए गए थे, के संबंध में वेतनमानों के पुनरीक्षण तक ही सीमित रहेंगे।

(f) अन्य स्थानीय दशाओं को विचार में लेते हुए राज्य सरकारें अपने स्वविवेक से इस योजना में उल्लिखित वेतनमानों की तुलना में उच्चतर वेतनमानों को पुरःस्थापित कर सकती हैं और दिनांक 1.1.2006 पर की अथवा बाद की तिथि से वेतन के पुनरीक्षित बैंड्स/वेतनमानों को प्रभाविता दे सकती है; किन्तु ऐसे मामलों में प्रस्तावित परिवर्तनों के विवरणों को केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत करना होगा और केन्द्रीय सहायता उस वेतन बैंड्स तक, और न कि राज्य सरकारों द्वारा नियत किसी उच्चतर वेतन मान तक, सीमित रहेगी।

(g) इस योजना के क्रियान्वयन के लिए केन्द्रीय सहायता का भुगतान उन शर्तों के भी अध्यधीन है कि वेतनमानों के पुनरीक्षण की संपूर्ण योजना, विनियमनों और अन्य मार्गदर्शक सिद्धान्तों के जरिए यू० जी० सी० द्वारा अधिकथित समस्त शर्तों के साथ-साथ, यहाँ ऊपर उल्लिखित क्रियान्वयन की तिथि और वेतनमानों के विषय को छोड़कर किसी परिवर्तन के बिना राज्य सरकारों और उनकी अधिकारिता के अधीन आते विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों द्वारा मिश्रित योजना के रूप में क्रियान्वित की जाएगी।

4. पूर्वोक्त खंडों के संयुक्त पठन पर यह निकलता है कि यदि राज्य सरकार योजना को अपनाना और क्रियान्वित करना चाहती है, तब योजना को संपूर्ण रूप में अपनाना होगा ताकि वेतन के पुनरीक्षण के क्रियान्वयन में अंतर्ग्रस्त अतिरिक्त व्यय की 80% सहायता प्राप्त करने के लिए स्वयं को हकदार बना सके।

5. केन्द्रीय सरकार ने दिनांक 11.5.2010 के अपने पत्र के तहत पुनः योजना को कंपोजिट योजना के रूप में अपनाने का अपना दृष्टिकोण दोहराया जिस पत्र के खंड (iv) और (vii) का पठन निम्नलिखित है:

खंड (iv) : इस प्रकार, मंत्रालय के दिनांक 31.12.2008 के पत्र के निबंधनों और शर्तों के मुताबिक राज्य सरकारों से अधिवर्षिता की आयु (मंत्रालय के दिनांक 31.12.2008 के पत्र के पैराग्राफ 8(f) में उल्लिखित) सहित विनियमनों और अन्य मार्गदर्शक सिद्धान्तों द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू० जी० सी०) द्वारा विनिर्दिष्ट अथवा विनिर्दिष्ट किए जाने वाले समस्त शर्तों के साथ-साथ योजना को कंपोजिट योजना के रूप में क्रियान्वित करने की अपेक्षा की जाती है।

खंड (vii) : इस मंत्रालय के दिनांक 31.12.2008 के पत्र के पैराग्राफ 8 (p) (v) और (f) में प्रावधानित किया गया है कि राज्य सरकारें अन्य स्थानीय दशाओं को विचार में लेते हुए अपने स्वविवेक में इस योजना में उल्लिखित वेतनमानों की तुलना में उच्चतर वेतनमानों को पुरःस्थापित करने के लिए भी निर्णय ले सकती हैं। यह अंतर्निहित करता है कि राज्य सरकारें इस मंत्रालय द्वारा विहित पे पैकेज को नीचे करते परिवर्तनों को नहीं कर सकती हैं। यह भी कि कंपोजिट पैकेज के रूप में केन्द्रीय योजना को अपनाने के बाद राज्य सरकारों से संलग्न प्रोफार्मा में केन्द्रीय सहायता के लिए अपने दावे के समर्थन में विस्तृत संगणना प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है।

6. तत्पश्चात् **यू॰ जी॰ सी॰ विनियमन (विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षकों और**

अन्य एकेडेमिक स्टाफ की नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हता और उच्चतर शिक्षा के स्तर को बनाए रखने के लिए अन्य कदमों पर) विनियमन, 2010 नामक विनियमन विरचित करके यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा पूर्वोक्त पत्र के अधीन यथा विरचित योजना विरचित की गयी थी।

खंडों 1.2, 2.1.0 और 2.3.1 का पठन निम्नलिखित है:

खंड 1.2: *ने केन्द्रीय अधिनियम, प्रांतीय अधिनियम अथवा राज्य अधिनियम द्वारा अथवा के अधीन स्थापित अथवा निगमित प्रत्येक विश्वविद्यालय पर, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 2 के खंड (f) के अधीन संबंधित विश्वविद्यालय के परामर्श के साथ, आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त घटक अथवा संबद्ध महाविद्यालय सहित प्रत्येक संस्थान पर और उक्त अधिनियम की धारा 3 के अधीन विश्वविद्यालय समझे गए प्रत्येक संस्थान पर लागू होंगे।*

खंड 2.1.0: *केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू० जी० सी०) द्वारा पोषित और अथवा निधि प्रदान किए गए अन्य संस्थानों में अधिवर्षिता की आयु सहित पुनरीक्षित वेतनमान और अन्य सेवा शर्तें कठोरतापूर्वक केन्द्रीय सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) के निर्णय, जैसा परिशिष्ट–1 में अंतर्विष्ट है, के अनुरुप होंगी।*

खंड 2.3.1: *पुनरीक्षित वेतनमान और अधिवर्षिता की आयु, जैसा ऊपर खंड 2.1.0 में प्रावधानित किया गया है, को इन विनियमनों और अन्य मार्गदर्शक सिद्धान्तों में यू० जी० सी० द्वारा विनिर्दिष्ट समस्त शर्तों के साथ परिशिष्ट–I में उपलब्ध एम० एच० आर० डी० अधिसूचनाओं और एम० एच० आर० डी० पत्र सं० एफ० 1-7/ 2010-यू० II दिनांक 11.5.2010 में अधिकथित निबंधनों और शर्तों के अनुरूप कंपोजिट योजना के रूप में योजना के क्रियान्वयन के अध्यधीन राज्य विधानमंडलों के कार्यक्षेत्र के अधीन आने वाले और राज्य सरकारों द्वारा पोषित विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और अन्य उच्चतर शैक्षणिक संस्थानों तक भी बढ़ाया जा सकता है।*

7. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री सोहैल अंसारी और श्री राजीव रंजन और याचीगण की ओर से उपस्थित अन्य अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया था कि राज्य सरकार/विश्वविद्यालय दिनांक 31.12.2008 के पत्र, जो विनियमन का अंश निर्मित करता है, के अधीन किए गए समस्त निर्देशों/अनुशंसाओं को स्वीकार करने के लिए बाध्य है और इसके एक अंश को स्वीकार करने और दूसरे अंश को अस्वीकार करने अर्थात् उस अंश को स्वीकार करने जो वेतन के पुनरीक्षण से संबंधित है और निर्देशों के उस अंश को अस्वीकार करने जो आयु को 62 वर्ष से 65 वर्ष तक बढ़ाए जाने से संबंधित है, की छूट राज्य सरकार को नहीं है जैसा इस मामले में झारखंड राज्य द्वारा किया गया है।

8. आगे निवेदन किया गया है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम संसद द्वारा संविधान की अनुसूची 7 की सूची I की प्रविष्टि 66 के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग में अधिनियमित किया गया था जबकि झारखंड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम राज्य विधानमंडल द्वारा सूची III की प्रविष्टि 25 के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग में अधिनियमित किया गया है जिसमें झारखंड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 67 के अधीन प्रावधान शिक्षकों की अधिवर्षिता की आयु 62 वर्ष अनुबंधित करती है जो विनियमन के प्रतिकूल है जो अब केन्द्रीय विधान अर्थात् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम का अंश निर्मित करता है और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 (1) में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में केन्द्रीय विधान को राज्य विधान के ऊपर प्राथमिकता दी जाएगी और इसलिए विरोध की मात्रा तक राज्य विधान को शून्य समझा जाएगा। परिणामस्वरुप, विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की अधिवर्षिता की आयु 65 वर्ष बनी रहेगी।

9. यू॰ जी॰ सी॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, डॉ॰ जे॰ पी॰ गुप्ता ने योजना के खंडों विशेषत: खंड 8 (p) (v) पर विरचित के प्रति ध्यान आकृष्ट करते हुए निवेदन किया कि यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा बनायी गयी योजना स्वैच्छिक है और इसकी अनुशंसा को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना राज्य सरकार पर निर्भर है।

10. बिहार राज्य की ओर से उपस्थित वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ अल्लम, विश्वविद्यालयों की ओर से उपस्थित श्री मेहता और अन्य अधिवक्ता ने भी खंड 8 (p) (v) को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन करेंगे कि दिनांक 31.12.2008 के पत्र के अधीन वेतन पुनरीक्षण और आयु वृद्धि और अन्य मामलों के संबंध में केन्द्रीय सरकार द्वारा बनायी गयी योजना निश्चय ही स्वैच्छिक प्रकृति की है क्योंकि उक्त खंड 8 (p) (v) कथन करता है कि योजना को अपनाना या नहीं अपनाना राज्य सरकार पर निर्भर करता है।

11. इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता इंगित करते हैं कि समरुप स्थिति, जैसी वर्तमान में विद्यमान है, पहले भी उद्भूत हुई है जब केन्द्रीय सरकार ने दिनांक 27.7.1998 के अपने पत्र के तहत केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की आयु को कतिपय निबंधनों और शर्तों के साथ बढ़ाया था किन्तु जब राज्य विश्वविद्यालय ने इसका क्रियान्वयन करने से इनकार कर दिया, मामला **बी॰ भरत कुमार एवं अन्य बनाम उसमानिया विश्वविद्यालय और अन्य, (2007)11 SCC 58,** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया। उस मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पत्रों के महत्व को विचार में लेने के बाद स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया था कि योजना स्वैच्छिक है और यह राज्य सरकार के स्वविवेक पर निर्भर करता है कि वह योजना को अपनाए अथवा नहीं अपनाए।

12. वे आगे निवेदन करेंगे कि अधिवर्षिता की आयु के विनिश्चय सहित विश्वविद्यालय शिक्षकों की सेवा शर्तों का निरुपण राज्य विधान का विषय वस्तु है क्योंकि यह सूची III की प्रविष्टि 25 के अंतर्गत आएगा जिसके अधीन झारखंड विश्वविद्यालय अधिनियम अधिनियमित किया गया है जिसकी धारा 67 के अधीन अधिवर्षिता की आयु 62 वर्ष विहित की गयी है और इस प्रकार जब तक उक्त धारा में कोई संशोधन नहीं किया जाता है अथवा इसे शून्य अथवा अधिकारातीत अभिनिर्धारित नहीं किया जाता है, शिक्षकों की आयु 62 वर्ष मानी जाएगी क्योंकि इस क्षेत्र में अर्थात् सूची III की प्रविष्टि 25 में जो राज्य विधान की विषय वस्तु है, विधान बनाना यू॰ जी॰ सी॰ की क्षमता के परे होगा।

13. इस संबंध में आगे निवेदन किया गया था कि यू॰ जी॰ सी॰ के दृष्टिकोण, जैसा यू॰ जी॰ सी॰ की ओर से उपस्थित अधिवक्ता की ओर से रखा गया है, कि योजना स्वयं में स्वैच्छिक है, की दृष्टि में याचीगण द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण कि यू॰ जी॰ सी॰ द्वारा निरुपित योजनाओं को राज्य द्वारा आज्ञापक रूप से स्वीकार करना ही होगा, छिन्न-भिन्न हो जाता है।

14. योजना से संबंधित प्रथम बिन्दु पर आते हुए कि क्या योजना स्वैच्छिक है अथवा आज्ञापक अथवा क्या इसे संपूर्ण रूप से स्वीकार करना है अथवा आंशिक रूप से, खंड 8 (p) (v) को पुन: निर्दिष्ट किया जा सकता है जो निश्चय ही कथन करता है कि योजना को अपनाना और क्रियान्वित करना राज्य सरकार पर निर्भर करता है किन्तु उक्त खंड 8 (p) (v) से संलग्न निबंधनों और शर्तों को ध्यान में लेते हुए यह प्रतीत होगा कि यदि राज्य सरकार इस योजना को अपनाना और क्रियान्वित करना चाहती है, इसे खंड (a) से (g) तक अधिकथित निबंधनों और शर्तों को स्वीकार करते हुए योजना को अपनाना होगा। खंड 8 (p) (v) के खंड (g) में अधिकथित शर्तों में से एक यह है कि यदि राज्य सरकार द्वारा योजना अपनायी जाती है, इसे कंपोजिट योजना के रूप में ही स्वीकार करना होगा। केन्द्रीय सरकार का उक्त दृष्टिकोण आगे दिनांक 11.5.2010 के पत्र के खंड (iv) में दोहराया गया था और अंतत:, वेतन के

पुनरीक्षण और आयु बढ़ाने से संबंधित उन योजनाओं को विनियमनों के रूप में विरचित किया गया था जिन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 26 की उपधारा (1) के खंड (e) और (g) के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में विरचित किया गया था और पूर्वोक्त दो पत्रों के अधीन विरचित योजना विनियमन का अंश निर्मित करती है। खंड 2.1.0 के मुताबिक, केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अधिवर्षिता की आयु सहित पुनरीक्षित वेतनमान और अन्य सेवा शर्तों को केन्द्रीय सरकार के निर्णय के अनुरुप कठोरतापूर्वक क्रियान्वित करना होगा। इसके अतिरिक्त, खंड 2.3.1 वस्तुतः अनुबंधित करता है कि आयु वृद्धि सहित वेतन के पुनरीक्षण और अन्य सेवा शर्तों से संबंधित योजना राज्य के विश्वविद्यालयों पर प्रयोज्य होगी और योजना को कंपोजिट योजना के रूप में अपनाना होगा। इस प्रकार, योजना के एक अंश अर्थात् वेतन के पुनरीक्षण को स्वीकार करने जैसा यहाँ किया गया है और 62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाने से संबंधित निर्देश को स्वीकार नहीं करने का विकल्प राज्य के पास नहीं है। राज्य विश्वविद्यालयों/राज्य सरकार को अन्य निर्देशों को स्वीकार किए बिना केवल वेतन के पुनरीक्षण से संबंधित अनुशंसा को स्वीकार करने और अतिरिक्त भार के कारण 80% अनुदान प्राप्त करने की छूट नहीं है क्योंकि यू॰ जी॰ सी॰ की समस्त अनुशंसाओं को स्वीकार करने में विफलता के कारण विनियमन के खंड 3 के निबंधनानुसार विश्वविद्यालय/राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार का अनुदान पाने से वर्जित हो जाएँगे।

15. जहाँ तक **बी॰ भरत कुमार एवं अन्य बनाम उसमानिया विश्वविद्यालय** के मामले में दिए गए निर्णय का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 27.7.1998 के पत्र की भाषा पर विचार करने के बाद वस्तुतः अभिनिर्धारित किया कि योजना स्वैच्छिक है और इस प्रकार यह राज्य पर बाध्यकारी नहीं है। इसने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह राज्य सरकार और यू॰ जी॰ सी॰ के बीच का मामला है और योजना क्रियान्वित करने के मामले में राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए रवैये के बारे में संतुष्टि पर निर्भर करते हुए, योजना के लाभ को बढ़ाना अथवा नहीं बढ़ाना यू॰ जी॰ सी॰ पर निर्भर करेगा। ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए न्यायालय ने इस तथ्य को भी ध्यान में लिया कि स्पष्टतः इस कारण से कि ऐसा कोई विनियमन, जैसा वर्तमान मामले में वहाँ है, उस समय पर निरुपित नहीं किया गया था, उक्त पत्र का कोई विधायी प्रभाव नहीं था। अब योजना का निरुपण एक पक्की भिन्नता निर्मित करता है क्योंकि विरचित किया गया विनियमन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम का अंश बन जाता है जिसे भारत के संविधान की अनुसूची 7 की सूची I की प्रविष्टि 66 के निबंधनानुसार संसद द्वारा अधिनियमित किया गया है जबकि झारखंड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम सूची III की प्रविष्टि 25 के अधीन अधिनियमित किया गया है। भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 66 और सूची III की प्रविष्टि 25 का पठन निम्नलिखित है:

प्रविष्टि 66 सूची I :

"66 उच्चतर शिक्षा के संस्थानों अथवा शोध एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थानों में स्तर का समन्वय और विनिश्चय''

''25. सूची I की प्रविष्टियाँ 63, 64, 65 और 66 के प्रावधानों के अध्यधीन तकनीकी शिक्षा, आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय सहित शिक्षा; व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण और श्रम प्रशिक्षणः

16. दोनों प्रविष्टियों के संयुक्त पठन पर किसी भी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता है कि यद्यपि राज्य के पास आच्छादन हेतु व्यापक विधायी क्षेत्र है, यह सूची I की प्रविष्टियों 63, 64, 65 और 66 के अध्यधीन है। इस प्रकार, जब एक बार यह पाया जाता है कि यदि कोई राज्य विधान भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 66 के विधायी क्षेत्र की सीमा में प्रवेश करता है, भारत के

संविधान के अनुच्छेद 254 (1) की दृष्टि में विधान के उस टुकड़े को अवैध अभिनिर्धारित किया जा सकता है। अत: अब यह परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है कि क्या विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की सेवा शर्त के संबंध में, विशेषत: अधिवर्षिता की आयु के संबंध में, कोई विधान भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 66 के अधीन संसद द्वारा बनाए गए विधान का विषय वस्तु हो सकता है।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय को इस प्रकार के विवाद्यक पर विचार करने का अवसर अनेक अवसरों पर मिला है। ऐसा एक मामला **तमिलनाडु राज्य बनाम अध्यमान शैक्षणिक एवं शोध संस्थान, (1995)4 SCC 104** है जिसमें न्यायालय ने निम्नलिखित निबंधनों में विधि अधिकथित किया है:

''41. ऊपर की गयी चर्चा से जो प्रकट होता है वह निम्नलिखित है:

(i) संविधान की सातवीं सूची की संघीय सूची की प्रविष्टि 66 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति ''समन्वय'' का अर्थ मात्र शिक्षा नहीं है। इसका अर्थ है निश्चित डिजाइन, योजना अथवा विकास की योजना के अनुसार सम्मिलित कार्रवाई के लिए एकरूप पैटर्न गढ़ने की दृष्टि से सामंजस्यकरण। अत: यह न केवल स्तरों में विषमता दूर करने के लिए बल्कि ऐसी विषमताओं को पुन: होने से रोकने के लिए कार्रवाई सम्मिलित करता है। अत: यह उन समस्त चीजों को करने की शक्ति सम्मिलित करता है जो वह रोकने के लिए आवश्यक है जो 'समन्वय' को असंभव अथवा मुश्किल चीजों को करने की शक्ति सम्मिलित करता है जो वह रोकने के लिए आवश्यक है जो 'समन्वय' को असंभव अथवा मुश्किल बनाएँगे। यह शक्ति संपूर्ण और शर्तविहीन है और किसी बाध्यकारी कारण की अनुपस्थिति में इसे इसके सरल और अभिव्यक्त आशय के अनुसार इसको पूर्ण प्रभाव देना ही होगा।''

18. प्रविष्टि 66 सूची I और प्रविष्टि 25 सूची III के पारस्परिक प्रभाव का परीक्षण मेडिकल कॉलेज में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु राज्य सरकार द्वारा स्तर नीचे किए जाने के संदर्भ में **प्रीति श्रीवास्तव (डॉ॰) बनाम म॰ प्र॰ राज्य, (1999)7 SCC 120,** के मामले में संवैधानिक पीठ द्वारा किया गया था और अभिनिर्धारित किया गया था कि राज्य में शिक्षा का नियंत्रण करते हुए राज्य उच्चतर शिक्षा के संस्थानों में स्तरों का अतिक्रमण नहीं कर सकता है क्योंकि यह अनन्यत: संघीय सरकार के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या प्रवेश के प्रतिमान (नार्म्स) का शिक्षा के स्तर के साथ कोई संबंध है और कि वे केवल सूची III की प्रविष्टि 25 द्वारा आच्छादित है, यह संप्रेक्षित किया गया था कि प्रवेश के प्रतिमानों को नीचे करना उच्चतर शिक्षा के संस्थान में शिक्षा के स्तर को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। संस्थानों में शिक्षा का स्तर अनेक कारकों पर निर्भर करता है, उदाहरणस्वरुप (i) शिक्षण स्टाफ की योग्यता, (ii) दिए गए समय में शिक्षा का उच्च स्तर प्राप्त करने का समुचित सिलेबस डिजाइन (iii) छात्र-शिक्षक अनुपात, (iv) यंत्र और प्रयोगशाला सुविधाएँ (v) प्रवेश पाए छात्रों की योग्यता (vi) संस्थान में पर्याप्त वास सुविधा; (vii) परीक्षा के स्तर के साथ-साथ परीक्षा पत्र बनाने, परीक्षित करने का तरीका और व्यावहारिक परीक्षा का मूल्यांकन।

19. यह इंगित किया गया था कि शिक्षा शिक्षकों और छात्रों के बीच निरन्तर अन्त: क्रिया को अंतर्ग्रस्त करती है। शिक्षा देने की नींव, स्तर जहाँ तक शिक्षण उठ सकता है और लाभ जिसे छात्र अंतत: प्राप्त करेंगे, छात्रों की योग्यता और शिक्षकों की योग्यता पर और पर्याप्त आधारभूत सुविधाओं पर निर्भर करता है।

20. प्रीति श्रीवास्तव (डॉ॰) बनाम म॰ प्र॰ राज्य (ऊपर) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त प्रतिपादना के अतिरिक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुन: **प्रोफेसर यशपाल एवं एक अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य, (2005)5 SCC 420,** के मामले में

संप्रेक्षित किया: ''इस न्यायालय का संगत और सुस्थापित दृष्टिकोण यह है कि राज्य सूची में विधायी शीर्ष के रूप में विश्वविद्यालयों के निगमन के बावजूद विश्वविद्यालय का संपूर्ण विस्तार, जो दी जा रही शिक्षा की शैक्षणिक गुणवता, परीक्षा का स्तर एवं मूल्यांकन और की जा रही शोध गतिविधियों को सम्मिलित करेगा, उच्चतर शिक्षा अथवा शोध और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा के संस्थान में स्तर के समन्वय और विनिश्चय पर विनिर्दिष्ट प्रविष्टि के संघीय सूची में होने के कारण राज्य विधान मंडल के कार्य क्षेत्र के अधीन नहीं आएगा। यह सुनिश्चित करना संसद का उत्तरदायित्व है कि संपूर्ण देश में उच्चतर शिक्षा अथवा शोध के संस्थान में समुचित स्तर बनाए रखा जाय और स्तर की एकरुपता भी बनायी रखी जाय।''

21. जब एक बार पूर्वोक्त दोनों निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित प्रतिपादना सुस्थापित की जा चुकी है राज्य और विश्वविद्यालयों द्वारा उठायी गयी इस आपत्ति में शायद ही कोई सार होगा कि शिक्षकों की आयु 62 वर्ष से 65 वर्ष तक बढ़ाए जाने के संबंध में कोई विधान प्रविष्टि 66 सूची I के अधीन किसी विधान को बनाना केन्द्रीय सरकार की क्षमता के परे होगा क्योंकि आयु पात्र व्यक्ति को शिक्षण कैरियर की ओर आकृष्ट करने के लिए बढ़ायी गयी प्रतीत होती है और तद्द्वारा छात्र अधिक अनुभवी शिक्षकों का लाभ पाएँगे जो निश्चय ही शिक्षण का स्तर बढ़ाएगा जिस प्रतिपादना को निष्पक्षत: और युक्तियुक्त रूप से समझा जा सकता है? इस चरण पर मैं **चेक पोस्ट अधिकारी बनाम के॰ पी॰ अब्दुल्ला एवं भ्रातागण, (1970)3 SCC 355,** के मामले को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रविष्टि विधि से बच निकलने के लिए प्रावधान सहित आनुषंगिक अथवा प्रासंगिक मामलों में विधान बनाने के लिए विधान मंडल को शक्ति प्रदान करती है। जब तक विधान सारभूत रूप से अनुज्ञेय क्षेत्र के अंतर्गत है, आपत्ति केवल इस आधार पर ग्रहण नहीं की जाएगी कि विधान अधिनियमित करते समय किसी मामले के लिए प्रावधान बनाया गया है जो यद्यपि उस उद्देश्य, जिसके लिए सक्षम विधान बनाया गया है, के लिए उपयुक्त है, यह सीमा परे क्षेत्र को आच्छादित करता है।

22. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित प्रतिपादना की दृष्टि में, जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, 62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाए जाने के संबंध में विनियमन के अधीन बनाए गए अनुबंध को राज्य विधान के क्षेत्र का अधिक्रमण नहीं कहा जा सकता है। यह स्थिति होने के कारण, भारत के संविधान की सूची III की प्रविष्टि 25 के अधीन विरचित झारखंड विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 67 के अधीन विहित अधिवर्षिता की आयु विनियमन के प्रतिकूल होने के कारण, जहाँ तक यह 62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाए जाने से संबंधित है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 (1) के निबंधनानुसार शून्य और अप्रवर्तनीय होगी। तद्नुसार, 62 वर्ष से 65 वर्ष तक आयु बढ़ाने से इनकार करते दिनांक 20.11.2010 के मेमो सं॰ 1188 में अंतर्विष्ट आदेश को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

23. इस प्रकार, यहाँ ऊपर पहुँचे गए निष्कर्ष और इस निष्कर्ष कि विनियमन के जरिए विरचित योजना को कंपोजिट योजना के रूप में अपनाना होगा, की दृष्टि में याचीगण की अधिवार्षिता की आयु 65 वर्ष तक बढ़ायी गयी बनी रहेगी। इसके परिणामस्वरुप, याचीगण, जो सेवा में थे, जिन्हें दिनांक 30.6.2010 को अथवा तत्पश्चात 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने के कारण सेवानिवृत्त कर दिया गया था, अधिवर्षिता की आयु बढ़ाए जाने के लाभ के हकदार होंगे जिसके परिणामस्वरुप उन्हें निरन्तरता और समस्त पारिणामिक लाभों के साथ सेवा में वापस लेना होगा।

इस प्रकार, इन समस्त रिट आवेदनों को अनुज्ञात किया जाता है।